सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५०

(जून-अगस्त १९३२)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें १ जून से ३१ अगस्त, १९३२ तककी सामग्री दी गई है। इस अवधिमें हम गांधीजीके जेल-जीवनकी उस शान्तिको भंग होते देखते हैं जिसके दर्शन हमें पिछले खण्डमें मिलते हैं। इस शान्तिको पहले तो भंग किया उनके पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें सरकारी नीतिमें हुए परिवर्तनने, जिसके फलस्वरूप गांधीजीके पत्र पाने और भेजनेमें काफी विलम्ब होने लगा और फिर उसे भंग किया उनके घनिष्ठतम मित्र प्राणजीवन मेहताके निधनके समाचारने। और अन्तमें १७ अगस्तको प्रधान मन्त्री रैमजे मैक्डोनॉल्डकी वह घोषणा आ गई, जिसमें दलित वर्गोंको एक ऐसी अल्पसंख्यक-जातिके रूपमें मान्य किया गया था जिसे पृथक् निर्वाचन मण्डलका अधिकार था। गांधीजीने पहले ही कह दिया था कि यदि सरकार ऐसा कोई निर्णय करेगी तो वे उसका मरकर भी विरोध करेंगे (देखिए खण्ड ४८ और ४९)। अपनी इसी घोषणाके अनुसार गांधीजीने प्रधान मन्त्रीको पत्र द्वारा सूचित किया कि वे २० सितम्बरसे "आमरण अनशन करने जा रहे हैं।" पत्रमें उन्होंने यह भी लिखा कि वे यह अनशन तभी तोड़ेंगे "जब अनशनके दौरान ब्रिटिश सरकार अपनी ही इच्छासे या लोकमतके दबावके कारण, अपने फैसलेपर पुनर्विचार करे और दलित वर्गोंके लिए साम्प्रदायिक मताधिकारकी योजनाको वापस ले ले। . . . " गांधीजीने आगे चलकर कहा कि उनका यह कदम "जीवनकी उस योजनाकी पूर्ति-जैसा है, जिसे मैंने एक चौथाई शताब्दीसे अधिक समयतक काफी सफलताके साथ आजमाया है।" (पृष्ठ ३९३-४)

इससे पहले मई मासमें मीराबहनको गांधीजीसे जेलमें मिलने आने देनेकी अनुमति प्रदान किये जानेकी बातको लेकर गांधीजी और सरकारमें संघर्ष चल रहा था। इस खण्डका आरम्भ एक ऐसे पत्रसे होता है जिसमें गांधीजीने मीराबहनको लिखा था कि यदि सरकार अपना रवैया नहीं बदलती तो "मैंने अब निश्चय कर लिया है कि अगले हफ्तेसे मुलाकातें बन्द कर दूंगा।" जैसाकि उन्होंने जेलोंके महानिरीक्षकको लिखा था कि "मैंने अरसा हुआ अपने परिवारके सदस्यों और अन्य लोगोंमें भेद करना छोड़ दिया है" और इसलिए यदि वे मीराबहन जैसी साथी कार्यकर्तासे नहीं मिल सकते तो वे अन्य लोगोंसे भी नहीं मिलना चाहेंगे जिनमें से अधिकांशतः उनके सम्बन्धी अथवा आश्रमवासी थे (पृष्ठ २१)। देवदासके आगे उन्होंने स्वीकार किया कि उनके इस निर्णयसे सबसे ज्यादा आघात कस्तूर-

बाको पहुँचेगा। "लेकिन उसने तो आघात झेलनेके लिए ही जन्म लिया है। मेरे साथ सम्बन्ध बनाने या रखनेवालोंको बड़ी कीमत देनी होती है" (पृष्ठ २५१-२)। जब देवदास गोरखपुरकी जेलमें बीमार थे, उस समय भी गांधीजीने यही तर्क दिया था कि "मैं किसीसे देशके पश्चिम भागसे गोरखपुर जानेके लिए नहीं कहूँगा।" उन्होंने कहा था कि "तत्वज्ञानका प्रयोग मैं यदि तुझपर न करूँ तो और किसपर करूँ? . . . तेरे सगे-सम्बन्धी, मित्र, माता-पिता सब-कुछ ईश्वर है, दूसरे तो नाम-भरके हैं" (पृष्ठ ४९)। तथापि वल्लभभाईने गांधीजीको इस बातके लिए राजी कर लिया कि वे संयुक्त प्रान्तके गवर्नरको तार भेजें और उसमें उनसे अनुरोध करें कि वे देवदासका तबादला एक ऐसी जेलमें कर दें जहाँकी आबोहवा स्वास्थ्यकर हो।

पत्र-व्यवहारको लेकर जो समस्या उठ खड़ी हुई थी, उसके सुलझनेमें करीब एक महीना लग गया और सरकार भी तभी मानी जब गांधीजीने जेलोंके महा-निरीक्षकको एक कड़ा विरोध पत्र लिखा। पत्रमें उन्होंने कहा था कि "मेरे पत्रोंको गन्तव्य स्थानतक भेजनेमें यह जो विलम्ब होता है, वह मुझे अपने प्रति घोर अन्याय और सरकारके लिए अशोभनीय प्रतीत होता है। . . . मेरे पत्रोंके वितरणसे सम्बन्धित इस दुखदायी परिवर्तनका कारण मेरी समझमें नहीं आता" (पृष्ठ २७६)। गांधीजी द्वारा गुजरातीमें पत्र-व्यवहार करनेके सम्बन्धमें सरकारके बार-बार निर्देश दिये जानेकी आलोचना करते हुए गांधीजीने कहा कि "उससे समूचे भारतीय सरकारी कर्मचारियोंके प्रति अविश्वासकी गन्ध आती है, और इसलिए स्वभावतः देशकी उस महान भाषाके प्रति अवमानना भी प्रकट होती है, जिसे यहाँके करोड़ों निवासी बोलते हैं।" उन्होंने आगे कहा, "मुझे यह सोचकर दुःख होता है कि मैं गुजराती या हिन्दी या उर्दूमें जो पत्र लिखता हूँ, वे नियमोंकी मर्यादामें आते हैं या नहीं, इसका निर्णय करनेके लिए किसी भी भारतीय अधिकारीको, जोकि ये भाषाएँ जानता है, योग्य अथवा विश्वसनीय नहीं माना जाता" (पृष्ठ २८४-५)।

जान पड़ता है, इन पत्रोंका अपेक्षित प्रभाव पड़ा और बाहर जानेवाली डाक एक बार फिरसे नियमपूर्वक भेजी जाने लगी। और यह सब ठीक समयपर ही हुआ, क्योंकि जिस दिन जेल-अधीक्षकको बाहर भेजी जानेवाली डाकके बारेमें नये निर्देश जारी किये गये (पृष्ठ ४७०), उसके दूसरे दिन अर्थात् ४ अगस्तको, गांधीजीको रंगूनमें डा० प्राणजीवनदास मेहताके निधनका समाचार मिला। उनके "जीवन-भरके विश्वस्त मित्र" (पृष्ठ ३३६) के निधनसे न केवल उनको व्यक्तिगत क्षति हुई थी, बल्कि वे प्राणजीवनदासके तीनों पुत्रोंके भविष्यके बारेमें भी बहुत चिन्तित थे। इनमें से एक, रतिलाल, साबरमती आश्रमके निकट रहते थे और उन्हें पागलपनके दौरे पड़ा करते थे तथा सबसे छोटे पुत्र मगनलाल अध्ययनके लिए विदेश गये हुए थे। उसी दिन

एच० एस० एल० पोलकको लिखते हुए गांधीजीने यह आशा व्यक्त की थी कि डा० मेहताने "अपनी स्वभावगत सावधानी बरतते हुए . . . मगनलालके लिए उपयुक्त आर्थिक प्रबन्ध कर दिया होगा।" पत्रमें उन्होंने आगे लिखा, "मुझे खेद है कि इस वक्त उनके परिवारके लोगोंके पास मैं नहीं हूँ। लेकिन मेरी नहीं, ईश्वरकी इच्छा ही पूरी हो, आज और हमेशा" (पृष्ठ ३३७)। डा० मेहताके भतीजेको लिखे एक पत्रमें उन्होंने कहा, "ऐसे में मगनका क्या होगा? यह सुन्दर घोंसला अब बिखर जानेवाला है। . . . लेकिन मैं यहाँ बैठे-बैठे उनके नीड़को अविच्छिन्न रखनेमें लगभग कोई भाग नहीं ले सकता, यह बात मेरे लिए अत्यन्त कष्टदायक है" (पृष्ठ ३३८)। डाक्टरके सबसे बड़े पुत्र छगनलालको उन्होंने लिखा कि मैं इस समय जेलमें हूँ "अन्यथा इस समय मैं तुम्हारे निकट खड़ा होता और कदाचित डाक्टरका सिर मेरी गोदमें होता और उनका अन्तिम श्वास छूटता" (पृष्ठ ३४०)। इसके बादके कई महीनोंतक गांधीजी डाक्टर-परिवारके मामलोंमें गहरी दिलचस्पी लेते रहे।

इस अवधिके दौरान अन्य मृत्युएँ भी हुईं और हर अवसरपर गांधीजीने शोकाकुल परिवारको जो सम्वेदनापूर्ण पत्र भेजे, उनमें सहानुभूति और दार्शनिक गम्भीरताका अद्भुत सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। च० राजगोपालाचारीके दामादकी भरी जवानीमें मृत्यु हो गई। उसके सम्बन्धमें उन्होंने राजगोपालाचारीको पत्र लिखा कि "तुम्हारे ऊपर जो विपत्ति आ पड़ी है, उसको देखते हुए मैं तुमसे मृत्युकी चर्चा नहीं करना चाहता। जॉबकी तरह तुम भी कह सकते हो कि 'यह तो ढाढ़स बँधाते हतोत्साह कर देनेवाला आदमी है'। लेकिन मुझे इतना तो लगता ही है कि यदि हम ईश्वरको पहचानते हैं तो हमें मृत्युमें भी आनन्द मानना सीखना ही चाहिए" (पृष्ठ २९८)। और इसी तरह एक पारसी पत्र-लेखिकाको उसके भाईकी मृत्युपर लिखते हुए वे कहते हैं, "तुम्हारे और तुम्हारी बूढ़ी माताजीके प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। . . . मगर हम इतना तो जानते ही हैं या हमें जानना चाहिए कि ईश्वर पूरी तरह भला है और पूर्णतः न्यायी है" (पृष्ठ ३०१)। शोक-सन्तप्त लोगोंको वे सदा एक ही सलाह देते हैं: "शोकको भुला दो और . . . सेवामें जुट जाओ" (पृष्ठ ३०२)।

इस खण्डमें एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है "सत्याग्रह आश्रमका इतिहास", जिसे गांधीजीने ५ अप्रैल, १९३२ को लिखना शुरू किया था और जिसका अन्तिम उपलब्ध अंश ११ जुलाईका है। इसमें मुख्यतः उन आदर्शोंकी व्याख्या की गई है जिनसे प्रेरित होकर आश्रमकी स्थापना की गई थी और इसके साथ ही उन आदर्शोंको जीवनमें उतारनेके प्रयत्नोंका लेखा-जोखा भी है। गांधीजीने काकासाहब कालेलकरको लिखा

था कि "आश्रमका इतिहास विचित्र स्वरूप धारण करता जा रहा है।" "इसमें व्यक्तियोंका उल्लेख कम ही हुआ है। इसमें भिन्न-भिन्न व्रतोंके बारेमें और उनका पालन कैसे किया जाता है, इस विषयपर लिखा गया है" (पृष्ठ २८२)।

जैसाकि गांधीजीने स्पष्ट किया है, आश्रमकी स्थापना एक व्यक्तिगत आवश्यकताके रूपमें की गई थी और बादमें समयके साथ यह राष्ट्रीय पुनरुद्धारके प्रयोग करनेवाली एक संस्थाके रूपमें परिवर्तित हो गया। वे लिखते हैं, "आजकी दृष्टिसे भूतकालका अवलोकन करते हुए मुझे लगता है कि इस तरहका आश्रम मेरे स्वभावमें ही था। जबसे मैंने अलग घर बसाया, तभीसे मेरा घर ऊपरकी व्याख्याकी दो शर्तोंके अनुसार आश्रम-जैसा बन गया था, क्योंकि यह कहा जा सकता है कि गृहस्थाश्रम भोगके लिए नहीं, बल्कि धर्मके लिए बना है" (पृष्ठ १८९)। धर्मके प्रति उनकी यह दिलचस्पी जितनी गहन थी उतनी ही नैसर्गिक भी थी। और उनकी 'आत्मकथा' से पता चलता है कि इसमें कैसे वृद्धि होती गई और जीवनमें वह उत्तरोत्तर दृढ़ होती चली गई। रस्किनकी 'अनटु दिस लास्ट' पढ़नेके बाद उनकी इस कल्पनाने ठोस योजनाका रूप धारण कर लिया और जैसाकि गांधीजीने 'इतिहास' में लिखा है, आश्रमके उनके आदर्शकी विकास-प्रक्रियामें पहला कदम था १९०४ में फीनिक्स बस्तीकी स्थापना। इससे अगला कदम था ब्रह्मचर्यका व्रत लेना, जो उन्होंने १९०६ में लिया। उनका यह व्रत भी व्यक्तिगत आवश्यकताकी ही उपज था। लेकिन इसके बाद उन्होंने जो दो कदम उठाये—अर्थात् १९११ में जोहानिसबर्गमें टॉल्स्टॉय फार्मकी स्थापना और १९१२ में फीनिक्स आश्रमका सत्याग्रहियोंकी बस्तीके रूपमें रूपान्तरण—वे एक जीवन-पद्धतिके रूपमें गांधीजीकी सत्याग्रहकी विकासशील कल्पना और अपने-आपको राष्ट्र-सेवाके योग्य बनानेके आवश्यक और प्रभावकारी उपायके रूपमें व्यक्तिगत जीवनमें अनुशासनके समावेशकी स्वीकृतिके परिणाम थे। भारतमें इस आदर्शका और भी विस्तार हुआ और आश्रमकी स्थापना सत्य, अहिंसा और भारतीय आध्यात्मिक परम्पराके अन्य नैतिक नियमोंका पालन करनेवाले समाजके रूपमें की गई। वे कहते भी हैं कि "आश्रमने देश और समाज-सम्बन्धी जिन-जिन बातोंको दोषपूर्ण माना, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न आश्रममें किया जाये, यही इच्छा थी" (पृष्ठ १९३)। सामाजिक उद्देश्यके विचारसे नैतिक अनुशासन और आध्यात्मिक साधनाकी अभिस्थापना गांधीजीके आश्रमकी सर्जनात्मक विशिष्टता थी और यही विशिष्टता उसे प्राचीन आश्रमोंसे अलग करती है; और सम्भवतः उनके मनमें भी यही बात रही होगी क्योंकि वे कहते हैं, जैसाकि वे अक्सर कहते थे, आश्रम ही उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है और एक नेताके रूपमें उनकी सफलता-असफलता आश्रमकी सफलता-असफलतापर से कूती जानी चाहिए।

नौ

आश्रममें जिन व्रतोंका पालन किया जाता था, वे मुख्यतः परम्परागत यम-नियम पर आधारित थे, लेकिन इस बातकी पूरी-पूरी कोशिश की जाती थी कि भावना और शब्दोंमें उनका समान रूपसे पालन किया जाये। इसमें गांधीजी कोई असाधारण सफलता मिलनेका दावा नहीं करते। इसके विपरीत वे यह स्वीकार करते हैं कि "आदर्श सत्यसे अभी आश्रम दूर ही है।" अन्य व्रतोंके पालनके बारेमें भी निश्चय ही यही बात थी। लेकिन वे यह दावा भी करते दिखाई देते हैं कि "उसके कार्यकर्ता सावधान हैं, अपनी अपूर्णताका उन्हें भान है और उनकी यह कोशिश रहती है कि कहीं भी असत्य न घुस जाये" (पृष्ठ १९८)। वे आश्रमकी सभी असफलताओंकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं तथापि पूछते हैं "... क्या पलायन कर जाऊँ, गुफामें जा बसूँ या मौन ले लूँ?" और उनका यह विश्वास था कि यदि वे ऐसा करते हैं तो यह कायरता होगी। "गुफामें बैठकर सत्यकी खोज नहीं होती ... खास परिस्थितियोंमें गुफाका महत्त्व है। मगर सामान्य मनुष्यकी कसौटी तो समाजमें रहते हुए ही हो सकती है" (पृष्ठ १९५)। गांधीजीको विश्वास था कि "यदि कार्यकर्ता सच्चे होंगे तो परीक्षा कितनी ही कठिन होनेपर भी आश्रमको उसमें उत्तीर्ण होना ही चाहिए। सत्यार्थीकी शक्तिका माप भले ही हो किन्तु सत्यकी शक्ति असीम है। लेकिन यदि सत्यार्थी जागरूक साधक हो तो उसकी शक्तिका भी अन्त नहीं है" (पृष्ठ १९८)।

आश्रममें सबसे ज्यादा साहसपूर्ण प्रयोग तो सम्भवतः ब्रह्मचर्यका पालन करनेके सम्बन्धमें था। आश्रममें स्त्री और पुरुष संग रहते और काम करते थे और गांधीजीके शब्दोंमें उनमें से कई लोगोंको "एक-दूसरेके साथ मिलनेकी काफी आजादी है;" क्योंकि आश्रमका आदर्श यह था कि "जितनी स्वतन्त्रता माँ-बेटे या बहन-भाई भोगते हैं, वही परस्पर व्यवहारमें आश्रमवासियोंको मिल सके" (पृष्ठ २१०)। गांधीजीका कहना है कि ब्रह्मचारीके लिए स्त्री "नरककी खान" नहीं है बल्कि "वह अम्बा माता है, वह जगत्-जननी है।" गांधीजी स्वीकार करते हैं कि आश्रमवासियोंको उन्होंने यह जो स्वतन्त्रता दी है "वह एक हदतक जानबूझकर की जानेवाली पश्चिमकी नकल है" (पृष्ठ २१२)। और इसमें जो खतरा है उससे वे पूरी तरह भिज्ञ हैं, लेकिन उन्हें भगवानपर पूरा भरोसा था जोकि इस सृष्टिका नियन्ता है। और गांधीजी ठीक ही कहते हैं कि "जो स्वतन्त्रता और आत्मविश्वास आश्रमकी स्त्रियोंमें आया है, वह उतने ही अरसेमें और उसी वर्गकी स्त्रियोंमें अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आया", और ऐसा इसलिए हुआ कि "स्त्रियोंके मनमें समानताका विचार शुरूसे ही भर दिया जाता है। कामोंमें सबको एक-सा भाग लेना पड़ता है" (पृष्ठ २३६)। प्रेमावहनको लिखे एक पत्रमें वे कहते हैं, "स्त्री-पुरुषके बीच जो प्रकृतिने

भेद किया है . . . उसके अलावा" (पृष्ठ ८८) मैं और कोई भेद नहीं मानता। लगता है कि इस सम्बन्धमें उनके विचार धीरे-धीरे परिवर्तित होते गये। अपने पुत्र रामदासको लिखे एक पत्रमें वे कहते हैं, "पति-पत्नीके सम्बन्धके बारेमें मेरे विचारोंमें परिवर्तन तो अवश्य हुआ है। मैं यह अवश्य चाहूँगा कि मैंने बा के साथ जैसा व्यवहार किया था, वैसा व्यवहार तुम लोग अपनी पत्नियोंके साथ न करो" (पृष्ठ ३६४)।

इसी तरह आश्रमवासियोंके प्रति उनके रवैयेमें भी परिवर्तन दिखाई देता है। गांधीजीने अपने परिवारके सदस्यों और आश्रमवासियोंके सम्मुख अनुशासनपूर्ण और समर्पित जीवनका जो आदर्श रखा था उस आदर्शका निरन्तर वर्षोंतक प्रशिक्षण देनेके बाद वे रामदाससे यह कह सकनेकी स्थितिमें थे कि उनकी अब हल्की-सी झिड़कीका भी लोगोंपर बड़ा प्रभाव होता है और इसलिए "आज मेरी तनिक भी सख्ती हिमालयके समान भारी लगती है" (पृष्ठ ३६३)। उनका इस छूट देनेका एक कारण यह भी था कि वह अपने प्रति भी अपेक्षाकृत कम कठोर हो गये थे। वे कहते हैं, "मैं जितना चाहता हूँ शरीर अब उतना काम नहीं करता, और जो मैं स्वयं ही नहीं करता, वह अन्य लोगोंसे करवाते हुए संकोच होता ही है" (पृष्ठ ३६४)। मीराबहनसे वह कहते हैं कि हालाँकि हम अपनी ही भूलोंके परिणामस्वरूप बीमार पड़ जाते हैं फिर भी "बीमार पड़ जानेपर हमें हमेशा अपनी भर्त्सना नहीं करनी चाहिए" (पृष्ठ ४१७)।

मानसिक चिन्ताओंसे निपटनेके लिए भी गांधीजी इसी तरहकी निस्पृहताकी सलाह देते हैं। एक पत्र-लेखकसे वे कहते हैं कि अशुद्ध विचारोंके लिए दुखी होना तो "अपने-आप बनाया हुआ नरक" है। "तुम्हें बुरे विचार आते हैं, उनका पुन-र्चिन्तन तो करना ही नहीं चाहिए, अपितु ऐसा सोचकर आगे बढ़ते जाना चाहिए मानो कुछ हुआ ही न हो" (पृष्ठ २३)। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मनुष्यको विचारोंके प्रति सजग नहीं रहना चाहिए। जिस तरह हम रोज अपने घरोंको साफ करते हैं, उस तरह हमें अपने दिलोंसे गन्दे विचारोंको निकाल बाहर करना चाहिए, उन्हें छिपानेके स्थानपर हमें किसी मित्रसे कहना चाहिए (पृष्ठ ५३)। सत्यके उपासकका जीवन सहज और निश्छल होता है। वह जैसा होता है वैसा ही दिखाई देता है, क्योंकि "उसके विचार, वाणी और व्यवहारमें एकरूपता होगी" (पृष्ठ २९१)। इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए उसे चिन्तन-शक्तिका विकास करना होगा। और यदि इसे हम हस्तगत कर सकते हैं तो बाकी सब उसके पीछे सुन्दर ढंगसे होता चला जायेगा (पृष्ठ ४४५)। किसी कार्यमें दक्षता या निपुणता तभी आती है जब उस कार्यके पीछे विचार हो। भंगीका काम भी कताईकी तरह यज्ञ हो सकता है यदि उसे सजग मन और ममतापूर्ण हृदयसे किया जाये। लेकिन व्यर्थके

विचार और ऐसी योजनाएँ और प्रस्ताव जिनपर अमल न किया जाये, "विचार व्यभिचार" है और यह "ब्रह्मचर्यका भंग" (पृष्ठ ४२०) करनेके समान है। व्यर्थके विचारोंपर नियन्त्रण रखनेसे व्यक्तिमें अपरिमित शक्ति आ जाती है (पृष्ठ २५)।

और अपने ऊपर इस तरहका अधिकार प्राप्त करनेका तरीका गांधीजीके अनुसार प्रार्थना और कार्य है। हमारे अन्दर जो परमशक्ति विद्यमान है, उसके मार्गमें स्वयं हमारे द्वारा उपस्थित की गई बाधाओंको प्रार्थना दूर करती है, क्योंकि "मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है" और "रामनाममें यही बात लागू होती है" (पृष्ठ ३३५)। जो स्त्री अथवा पुरुष आध्यात्मिक रूपसे जाग्रत है, वह "अपने प्रत्येक विचारका साक्षी ईश्वरको मानेगा, उसे स्वामी बनायेगा। . . . इस तरह जिसके समक्ष सारा समय ईश्वर विद्यमान रहता है, उसके हृदयमें राम वास करता है" (पृष्ठ २४८)।

लेकिन, हालाँकि प्रार्थना बहुत जरूरी चीज है, फिर भी पर्याप्त नहीं है। "जब तक हम सभी प्राणियोंके साथ एक जीवन्त समानता नहीं अनुभव करते तबतक हमारी सारी प्रार्थनाएँ, उपवास और व्रतादि बिल्कुल व्यर्थ हैं" (पृष्ठ ३३७)। और यदि हमारा दर्शन हमें अन्य मानवोंके सम्पर्कसे आनन्द पाना और उनकी सेवा करना नहीं सिखाता तो फिर वह सबका-सब बेकार है" (पृष्ठ ३७४)। गांधीजीका यह भी कहना है कि "सच्ची और शाश्वत चित्तशुद्धि तो मनुष्य कर्म करते हुए ही साध सकता है" (पृष्ठ ४२०-१)। लेकिन गांधीजी यह स्वीकार करते हैं कि ऐसे अपवाद भी हो सकते हैं जहाँ "विशुद्ध चित्तके विचार ही कार्य है और महत् परिणाम पैदा करते हैं" (पृष्ठ १३)। इस मानसिक यज्ञमें भी रचनात्मक कार्यके यज्ञकी तरह सभी प्राणियोंके साथ तादात्म्य स्थापित करनेकी आवश्यकता होती है और इसका ज्यादा-से-ज्यादा लोगोंका ज्यादा-से-ज्यादा भला करनेके 'निर्दय सिद्धान्त' के साथ कोई वास्ता नहीं है। गांधीजीके अनुसार "सबका ज्यादा-से-ज्यादा भला किया जाये यही एकमात्र सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवीय सिद्धान्त है और इसे पूर्ण आत्म-बलिदानके द्वारा ही अमलमें लाया जा सकता है" (पृष्ठ १४)।

जबकि गांधीजी हर किसीको सलाह द्वारा मदद देनेके लिए तत्पर रहते थे फिर भी वे लोगोंकी उनपर निर्भर करनेकी आदत छुड़ाना चाहते थे (पृष्ठ २५)। उन्होंने आध्यात्मिक मामलोंपर जो बातचीत और लेख लिखे हैं वे "किसी-न-किसी व्यक्तिको सामने रखकर" लिखे गये हैं और उनका मूल स्रोत बुद्धि न होकर हृदय है (पृष्ठ ७७-८)। मन, बुद्धि और शरीरका यह सामंजस्य गांधीजीको कभी एक नये अनुभव-जैसा नहीं जान पड़ा, वह उनके लिए सहज चीज थी। इसलिए उनका यह दावा है अथवा वह स्वीकार करते हैं कि "जैसे हमारे जाने बिना बाल बढ़ते हैं, उसी तरह मेरे आध्यात्मिक जीवनमें भी वृद्धि हुई है" (पृष्ठ ३३५)।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरोंके द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखनेका प्रयत्न किया गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें संशय था, उनको वैसे ही लिखा गया है जैसाकि गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यकता होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' गांधी स्मारक संग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, 'एस० जी०' सेवाग्राममें उपलब्ध सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध परिशिष्ट दिया गया है। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओंके आभारी हैं :

संस्थाएँ : साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली और महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग।

व्यक्ति : श्रीमती एफ० मेरी बार; श्री कनुभाई मशरूवाला, अकोला; श्रीमती गंगाबहन वैद्य; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्रीमती चम्पाबहन मेहता; श्री जयरामदास दौलतराम; श्रीमती तहमीना खम्भाता; श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, नई दिल्ली; श्री धीरूभाई झवेरी; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्रीमती निर्मला शराफ; श्रीमती निर्मलाबहन, बम्बई; श्री परशुराम मेहरोत्रा; श्री पुरुषोत्तम डी० सरैया; श्री प्रभुदास गांधी; श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी; श्रीमती प्रेमाबहन कंटक; श्री बनारसीलाल बजाज; श्री भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्या; श्री भाऊ पानसे; श्रीमती मनुबहन मशरूवाला; श्रीमती मीराबहन, आस्ट्रिया; श्री रामनारायण एन० पाठक; श्रीमती लक्ष्मीबहन खरे, अहमदाबाद; श्रीमती लीलावती आसर; श्रीमती वनमाला देसाई; श्री वालजी गोविन्दजी देसाई; श्रीमती शान्ता शंकरभाई पटेल; श्री शान्तिकुमार मोरारजी; श्री शामल रावल; श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और श्रीमती हरिइच्छा देसाई।

पुस्तकें : 'द डायरी ऑफ महादेव देसाई', खण्ड – १, 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व गंगाबहेनने', 'बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने' भाग १, 'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापूज लेटर्स टु मीरा', 'महादेवभाईनी डायरी', भाग – १ और 'सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास'।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'एडवांस', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'भावनगर समाचार' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके भी आभारी हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : मीराबहनको

१ जून, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र आज पहुँचा।

अगर निर्णयमें विलम्ब किया गया तो मैंने अब निश्चय कर लिया है कि अगले हफ्तेसे मुलाकातें बन्द कर दूँगा।[1] यदि निर्णय अनुकूल हुआ तो इन्हें फिरसे चालू कर दिया जायेगा।

बायें हाथकी कुहनीका हाल तो दाहिने हाथसे भी ज्यादा खराब है। बायीं कुहनीसे होनेवाला सारा काम बन्द हो गया है और शीघ्र ही इसे खपचियाँ लगाकर बाँध दिया जायेगा। डाक्टरोंका निश्चित मत है कि दिन-प्रतिदिन लगातार चरखा चलानेसे मोच बैठ गई है और कुछ नहीं। मुझे खुशी है कि मगन चरखेपर अब मेरा हाथ पूरी तरह सध गया है। इसलिए जबतक दाहिनी कुहनी भी सहानुभूतिमें हड़ताल न कर बैठे तबतक कताई उसी प्रकार मजेमें जारी है और जारी रहेगी।

तुम्हें जानकर खुशी होगी कि आज मेरा वजन १०६$\frac{3}{4}$ पौंड है। यह अच्छा रिकार्ड है। इसलिए तुम देख सकती हो कि कुहनीके लिए भी चिन्ता करनेका तनिक भी कारण नहीं है।

अलोने आहार सम्बन्धी तुम्हारे प्रयोगके दिलचस्प परिणाम निकल रहे हैं। लेकिन जो भी अच्छे परिणाम हैं वे नमक न लेनेके कारण हैं, ऐसा मान बैठनेकी जल्दबाजी मैं नहीं करूँगा।

पिछले सप्ताह मैंने खम्भाताके पतेपर वेरियरको पत्र लिखा था।[2] आशा है उन्हें मेरा पत्र मिल गया होगा। हाँ, स्वास्थ्य-लाभके लिए उनके इंग्लैंड जानेका विचार अच्छा है। जितनी जल्दी वे जायें उतना ही अच्छा है। शामरावको बुखार आया, यह बुरी बात है। क्या तुम उससे मिली हो?

दामोदरदासके बारेमें मुझे दुःख है। संलग्न पत्र उसके लिए है।

यह एक अन्धविश्वास है कि अलोना आहार स्वादहीन होता है। नमक तो स्वादको मार देता है। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो नमक पड़ी चीजको छूते भी नहीं। स्वाद तो आदतकी बात है। मैं समझता हूँ कि तुम मक्खन और रोटी लेती हो। इनमें नमक होता है। तुम्हारा प्रयोग तो अलगसे उपयोग किये जानेवाले नमककी

१. गांधीजीने सरकारसे अनुरोध किया था कि वह मीराबहन (कुमारी मैडेलिन स्लेड) को उनसे (गांधीजीसे) मुलाकातकी अनुमति न देनेके अपने निर्णय पर पुनर्विचार करे, अन्यथा वे अन्य मुलाकातियोंसे मिलनेकी जो सुविधा दी गई है उसका उपयोग नहीं करना चाहेंगे; देखिए खण्ड ४९, "पत्र: ई० ई० डॉयलको", १९-५-१९३२ तथा "पत्र: ई० ई० डॉयलको", ९-६-१९३२ भी।

२. २७ मईको, देखिए खण्ड ४९।

मात्राको कम करनेका है। तुमपर जो असर हुआ है वह नमककी मात्रामें कमीके फलस्वरूप हुआ है, आहारमें नमकके सर्वथा अभावके कारण नहीं। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न तुम्हें इसकी चिन्ता करनी चाहिए कि तुम किसी-न-किसी प्रकार कुछ नमक ले रही हो। इसमें दखल मत दो। क्या तुम्हारी मणिलालसे कभी भेंट होती है? या वह अभी भी वहाँ नहीं है?

हम सबकी तरफसे प्यार सहित,

बापू

[पुनश्च :]

वेरियरका सुझाव है कि हम लोगोंको हर शुक्रवारके दिन शामकी प्रार्थनामें ईसाइयोंका एक भजन गाना चाहिए। अतः महादेवने 'लीड काइंडली लाइट' को[1] गुजरातीमें शुरू किया, और इसे हम प्रत्येक शुक्रवारको जारी रखेंगे। अगर वेरियरको अभी मेरा पत्र न मिला हो तो कृपया वेरियरको यह बात बता देना।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२४) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९० से भी।

२. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

यरवडा मन्दिर[2]
१ जून, १९३२

चि० परसराम,[3]

हिन्दीके बारेमें निर्मलाका उत्साह बढ़ता जाता है, यह बहुत अच्छी बात है। हिन्दी कविता खुशीके साथ सिखाना। हाथकी रेखाओं आदिमें कुछ है या नहीं यह मैं नहीं जानता, लेकिन इनमें अथवा ज्योतिषमें अथवा किसी भी अन्य तरीकेसे भविष्य जाननेमें कुछ सार नहीं है, नुकसान तो है ही। और जो व्यक्ति 'गीता' का भक्त है अर्थात् जो परिणामका आधार ईश्वरपर रखे हुए है उसके लिए पहलेसे ही भविष्य जाननेकी इच्छा रखनेका निषेध है। पुस्तिका मुझे मिली नहीं, मिलनेपर देख जाऊँगा। आवश्यक कार्योंको करते हुए नाना प्रकारके जीवोंकी हिंसा अनिवार्य है। अतः जिन जीवोंको हम अपनी आँखोंसे देख सकते हैं उनके बारेमें जहाँतक हो सके हमें सावधानी बरतनी चाहिए। इससे आगे तो हम जा ही नहीं सकते। हमारे चलनेसे चींटीके समान छोटे जन्तु कुचलकर मर नहीं जाते। छोटे होनेके कारण ही ये सुरक्षित हैं,

१. **प्रेमलज्योति** — नरसिंहराव दिवेटिया द्वारा किया हुआ गुजराती अनुवाद; देखिए पृष्ठ ३३ भी।

२. यरवडा मन्दिरका वास्तविक अर्थ यरवडा सेन्ट्रल जेल है, जहाँ गांधीजी ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक रहे थे।

३. खादी कार्यकर्ता और हिन्दीके अध्यापक तथा कुछ समयके लिए गांधीजीके सेक्रेटेरिएटके सदस्य।

लेकिन इससे बड़े जन्तु कुचल जाते होंगे इसीलिए देख-समझकर और हमेशा अपनी दृष्टि नीचे और सामने रखकर चलना आवश्यक माना गया है। यह सब चीजें कोमलताकी सूचक हैं, लेकिन अहिंसा इससे बहुत आगे जानेवाली और आलौकिक वस्तु है। हमारे प्रत्येक कार्यमें, पारस्परिक सम्बन्धोंमें और हमारे प्रत्येक व्यवहारमें यह स्पष्ट दिखाई देनी चाहिए। जिस समय मोर सर्पका भक्षण कर रहा हो उस समय उदासीन रहना हमारा धर्म है। मोरके लिए यह खाद्य पदार्थ है, और इसमें हम हस्तक्षेप नहीं कर सकते। नारीके सम्बन्धमें तुमने तुलसीदासकी जिस चौपाईका[1] उल्लेख किया है वह नारीमात्रपर लागू नहीं होती। इतना ही नहीं, यह व्यंग्य नारी को लेकर नहीं, अपितु पुरुषकी विषय-भोगकी वृत्तिको लेकर किया गया है। इसमें तुलसीदासजीके कहनेका तात्पर्य यही है कि पुरुष विषयासक्त होकर केवल स्त्रीका ही विचार किया करता है और उस समय वह कैसा बन जाता है, तुलसीदासजीने उक्त चौपाईकी रचना यह बतानेके लिए ही की है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५००) से। सी० डब्ल्यू० ४९७७ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

३. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

१ जून, १९३२

भाई रामेश्वर,

तुम्हारा कार्ड और तुम्हारा पत्र दोनों मिले हैं। मेरे पत्रका तुमने जो भावार्थ किया है वह बिल्कुल ठीक है। बड़ी छलाँग न मारकर अपनी शक्ति-अनुसार पग भरनेसे उत्साह बढ़ता है और उत्साहके साथ आत्मविश्वासमें वृद्धि होती है। जमनालालजीकी तबीयत और सब तरह ठीक रहती है, इसलिए वजन घटनेसे मुझे कोई चिन्ता नहीं होती और जबतक विनोबा अपनी शक्ति बनाये रखते हैं तबतक वे भले ही दूध, घी न लें। उन्होंने मुझे सन्देश भेजा है, इससे मेरे मनको सन्तोष है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७९) से।

१. बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥
रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड

४. पत्र : नारणदास गांधीको[1]

२ जून, १९३२

चि० नारणदास,

मीराबहनके बारेमें अभी कोई जवाब नहीं आया है। इसलिए मुझे लगता है कि जबतक उत्तर नहीं आता तबतक मुझे मुलाकातें बन्द रखनी चाहिए। अतएव आगामी सप्ताहके लिए कोई नाम नहीं भेजना। अनुकूल उत्तर मिलनेपर मैं तुम्हें तार दूँगा। महादेवकी इच्छा है कि इस बातकी सूचना दुर्गाको[2] भी दे देना।

बापू

श्रीयुत नारणदास गांधी
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२३१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५. पत्र : फीरोजाबहन तलयारखाँको

२ जून १९३२

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र पढ़कर खुशी हुई। मुझे भाई नरीमनने तुम्हारा संदेश नहीं दिया था। लेकिन चूँकि तुम्हें मैंने कहीं नहीं देखा इसलिए सोचा कि तुम बम्बईमें नहीं होगी। उम्मीद है, तुम्हारी तबीयत ठीक रहती होगी। मुझसे मिलना तो मुश्किल है। ज्यादा-से-ज्यादा मेरा सब लोगोंसे मुलाकात करना बन्द हो जायेगा। लेकिन आनेपर क्या होता है सो मालूम हो जायेगा। सरदार और महादेव मेरे साथ हैं। मुझे पत्र लिखती रहना।

बापू

श्रीमती फीरोजाबाई तलयारखाँ
मार्फत पोस्ट मास्टर, बोधगया
बिहार

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९७७५)से।

१. यह पत्र "'तितिक्षा' और 'यज्ञ' के विषयमें" नामक लेख (देखिए पृष्ठ १४-१६) के साथ भेजा गया था।

२. महादेव देसाईकी पत्नी।

६. पत्र : प्रभावतीको

२ जून, १९३२

चि० प्रभावती[१],

तुमारा खत मिला है। जान बुझकर यह खत हिंदीमें लिखता हुं जिससे शीघ्र दिया जाय। मैंने दो खत कमसे कम तुमको लिखे हैं। यहांसे गये है। तुमको क्यों नहिं मिले समझमें नहिं आता। तुमारे दूध और फल लेने चाहिए। जयप्रकाश कहता है वह ठीक है। मेरी प्रकृति अच्छी है। इस खतका उत्तर आनेसे अधिक लिखुंगा। मेरे साथ सरदार और महादेव हैं। सरुप किसन कांताको आशीर्वाद।

बापुके आशीर्वाद

श्री प्रभावती देवी
'ए' क्लास प्रिजनर
सेंट्रल जेल
लखनऊ[२]

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४२२) से।

७. पत्र : वनमाला एन० परीखको

२ जून, १९३२

चि० वनमाला[३],

तुझे बायें हाथसे लिखनेकी आदत है इसलिए तुझे दायें हाथसे लिखनेकी टेव भी डालनी चाहिए। जन्म लेकर ही मनुष्य (एकसे) अनेक होता है। तू कैसे हुई, इसकी तुझे खबर है क्या? जैसे तू हुई वैसे ही सब लोग हुए। मनुष्यकी उत्पत्तिका कारण उसके माता-पिता हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७२) से। सी० डब्ल्यू० २९९६ से भी; सौजन्य: वनमाला एम० देसाई

१. जयप्रकाश नारायणकी पत्नी।
२. मूलमें पता अंग्रेजी लिपिमें है।
३. महात्मा गांधीके निकटतम सहयोगी नरहरि परीखकी सुपुत्री।

८. पत्र : नारणदास गांधीको

मंगलवार, ३१ मई/३ जून, १९३२

चि० नारणदास,

मैंने लगभग निश्चय कर लिया है कि फिलहाल कल अर्थात् बुधवार मेरी अन्तिम मुलाकात होगी। चूँकि मीराबहनके बारेमें उत्तर मिलनेमें देर हो रही है इसलिए उसका उत्तर 'ना' ही होगा ऐसा मानकर अब मुलाकात मुल्तवी रखनी चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। बादमें अनुकूल उत्तर आनेपर क्या नहीं मिला जा सकता?

हरिलाल अपना रोष बलीपर[1] उतारना चाहे तो भले उतारे। बलीमें इसे सहन करनेकी शक्ति है और हरिलालसे निपट लेनेकी भी। ऐसा हो अथवा न हो, हमें तो परिणामका विचार किये बिना यदि उचित मार्ग दिखाई देता हो तो उसे इख्तियार करना ही होगा। परिणामके प्रपंचमें पड़कर ही व्यक्ति बहुधा धर्ममार्गका त्याग कर बैठता है न? इसी एक चीजको स्पष्ट रूपसे बतानेके लिए 'गीता'की रचना की गई है और उसमें इसी वस्तुको किसी-न-किसी बहाने बार-बार दोहराया गया है।

[प्रार्थनाके समय] पाँच मिनटके मौनके पीछे जो उद्देश्य निहित है वह जैसे-जैसे हमारी आँखोंके सामने उभरकर आयेगा वैसे-वैसे वह हमें और भी भव्य लगेगा।

वसुमती ठाकोरकी अच्छी तरहसे सार-सँभाल की जाती है। उसका रोग पुराना है, ऐसा डाक्टरोंका कहना है।

जो मजदूर खुशीसे आश्रमके नियमोंका पालन करनको तैयार हो, उसे काम न होने पर भी नहीं निकालना। वह स्वयं खुशीसे जाना चाहे तो बात और है। खर्च बचानेके विचारसे भी हमें योग्य व्यक्तिको नहीं निकालना चाहिए। मजदूरी करने-वाले व्यक्तिका बोझ हमें कदापि भारी नहीं पड़ेगा और मजदूरके होते हुए हम भी हाथों-हाथ काम करें और उसके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर खड़े रहें, इसीमें हमारी शोभा है।

धीरू और कुसुमको अब कतई वापस न आने देना। जरा तबीयत सुधरने पर वे लोग आश्रममें ठीक रहेंगे, ऐसा मानना भारी भूल है। तबीयत अच्छी तरहसे सुधर जाये तभी वे आयें। वहाँ बैठे-बैठे नियमोंका पालन करें; जितना शरीरसे काम हो सके, करें, यह आश्रममें रहनेके समान ही है।

बा के पत्रोंके पीछे व्यर्थ परेशान न होना। एक पोस्टकार्ड मिला है। छारा[2] लोग कितने हैं और कहाँ हैं? वे कहाँके हैं? कौन-सी भाषा बोलते हैं? वे हमें परेशान करेंगे अथवा नहीं, यह खयाल बिल्कुल अलग रखकर हमें उनके प्रति अपने कर्तव्यका विचार कर लेना चाहिए। यदि इस सम्बन्धमें कुछ हो सकता हो तो करना।

१. बलीबहन वोरा, हरिलाल गांधीकी साली।

२. मध्य गुजरातकी एक भूतपूर्व जरायमपेशा जाति।

मगन चरखेके बारेमें अब मेरे पास नया कुछ लिखनेको नहीं है। उसपर हाथ अच्छी तरहसे बैठ गया है। आवाज कहाँसे आती है, इसके बारेमें भी आज कुछ मालूम तो हुआ है। अभी मैं छक्कड़दासकी पूनीका इस्तेमाल कर रहा हूँ। इतनी बढ़िया पूनियोंसे महीन तार निकालनेका लोभ रहता ही है। एक पूनीसे आज २२ तार निकले। एक पूनी इकन्नीके भारसे भी कम वजन की है। अनुमान तो यह है कि मेरे सूतका अंक ३० के आसपास होगा। ऐसे तार आज एक घंटेमें ११० निकले। इससे मोटे सूतकी गति १५० तक तो आ ही गई थी।

तोतारामजीके[1] पत्रको मैंने सँभाल कर रखा है। उसकी दो नकल भी की थी। एक गंगाबहनको और एक छगनलाल जोशीको भेजी है। यदि तोतारामजीने उसकी नकल अपने पास नहीं रखी है तो मैं उसकी नकल अथवा मूल पत्र यहाँसे भेज दूँगा। मुलाकातकी बात अभी कुछ अनिश्चित ही है, इसीसे मैंने जेल-अधिकारियोंसे चितालिया आदिसे मिलनेकी अनुमति नहीं माँगी है। मुझे भय है कि ठक्कर बापाके लिए तो इतना भी यहाँसे नहीं लिखा जा सकता। भणसाली अपने बारेमें समय-समय पर समाचार भेजता रहता है, यह भी गनीमत है।

गांडीवके हत्थेमें फेर-बदल करनेसे अंक, गति आदि एकदम कैसे बढ़ गई, इस विषयपर मैंने लक्ष्मीदासको सविस्तार पत्र लिखा था। वह उन्हें निश्चय ही मिल गया है, क्योंकि उसकी उन्होंने पहुँच दी थी। इसलिए मुझे लगता है कि कुछ गलतफहमी हो गई है। मुझे कृष्णाका एक पत्र मिला है, उसमें चौधरीजीका कोई उल्लेख नहीं है, और न चौधरीजीका ही कोई पत्र आया है। यह कौनसे चौधरीजी हैं? लगता है बा का वजन बहुत कम हो गया है, लेकिन उम्मीद है, अब बा और नवीन ठीक हो रहे होंगे। मीराबहनके पत्रसे यदि तुमने उपवासका अर्थ लगाया है तो यह उपवास नहीं अपितु उपवासका उपहास था। राष्ट्रीय सप्ताहकी[2] ६ और १३ तारीखको एक जून भोजन करनेकी बात थी।

नारायणप्पाका किस्सा सचमुच लज्जाजनक है। इस चोरीके प्रगट हो जाने पर अब हमें यह मानना चाहिए कि भगवानजीका सन्देह भी सच था। लेकिन यदि नारायणप्पाको सही अर्थोंमें पश्चाताप हुआ है और यदि तुम सबको ठीक लगे तो उसे अवश्य रहने देना। यज्ञका सूत यदि सब लोग दे दें तो यह यज्ञ पूरा हुआ माना जायेगा। जबतक यज्ञका सूत अपने निमित्त रखनेका लोभ रहता है, तबतक यज्ञ अधूरा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैंने जिस नियमकी चर्चा की है वह यह है कि जो जितना सूत काते आश्रमको दे दे और अपने पहननेकी जरूरत-भरकी खादी आश्रमसे ले ले। स्वयं महीनसे-महीन सूत काते और जितना शरीर सहन कर सके उतना मोटा अथवा उसके हिस्सेमें जो कपड़ा आश्रमसे प्राप्त हो उसे ले ले। यह सब अपरिग्रहके व्रतमें और सर्वस्व अर्पणमें आ जाता है। लेकिन यह नियम

१. तोताराम सनाढ्य, एक किसान जो फीजीसे आकर आश्रममें रहने लगे थे।

२. यह १९१९ में सत्याग्रह आन्दोलनके बादसे प्रति वर्ष अप्रैलमें मनाया जाता था।

सब पर लागू कर दिया जाये ऐसी मेरी हिम्मत नहीं होती। और फिर मैं अलग पड़ा हुआ हूँ, इसीसे प्रसंग उपस्थित होनेके कारण ही केवल इतना बता रहा हूँ कि आश्रम-धर्म क्या कहता है। यह सबको सुनाना और उन्हें समझाना और इसमें से जो व्यक्ति जितना ग्रहण कर सके उतना करे। इतना नियम तो बना ही दिया जाना चाहिए कि हर कोई यज्ञका सूत उसी दिन अथवा प्रत्येक सप्ताह सुन्दर गुंडी बनाकर नाम, पता, सूतका अंक आदि लिख कर दे दे और जब कपड़ा बुने जानेका समय आये तब जो बात तय हो उसके अनुसार ले जाये। सावधानी बरतनेकी खातिर इतना करना तो आवश्यक है ही।

रामभाऊकी एक हाथसे मगन चरखा चलानेकी गति कितनी और सूतका अंक क्या है?

महादेवका ४० अंकका सूत तो पुष्कल मात्रामें इकट्ठा हो रहा है, क्योंकि प्रतिदिन ६३० तार निकलते हैं। इसलिए इस सूतकी बुनाईके लिए आवश्यक राछ और फनी तैयार करवा लेना। सहज ही ४० अंकके सूतकी बुनाई करनेकी कुशलता हममें आनी चाहिए।

इमाम साहबके[1] लिए पक्की कब्र बनवानी चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ। लेकिन इस बारेमें उचित क्या है यह तो किसी अच्छे मुसलमानसे ही जानना चाहिए। जो एक समय विद्यापीठमें अध्यापक थे और जिनके इमाम साहबके साथ मधुर सम्बन्ध थे और दफनानेके समय भी जो हाजिर थे वे मौलवी साहब गुलाम नदवी[2] बहुत करके अभी अहमदाबादमें होंगे। उनसे इस बारेमें पूछना ठीक होगा। कोई जल्दी नहीं है। प्यारअलीने[3] स्वयं यदि इस बारेमें कोई सुझाव दिया हो तो मुझे बताना।

तुमने जिन व्यक्तियोंके नाम भेजे थे वे सब तो मिल गये। साथमें आनन्दलालका रणछोड़ था, वह भी उस दलमें शामिल था। इस तरह छः व्यक्ति हुए। लेकिन यह कुछ समय तक चल सकता है। अब जबतक मैं नाम लिखकर न भेजूँ तबतक कोई नाम न भेजना।

३ जून, १९३२

गंगाबहनके लिए एक रतल हींगकी गोली पार्सल करके भेजो। गंगाबहनको जल्दी जरूरत है।

पिछली बार जो मैंने लेख[4] भेजा था उसकी एक प्रति यह सोचकर अपने पास नहीं रखी थी कि वह देर-सबेर तुम्हारी ओरसे मिल जायेगी, लेकिन वह अभी नहीं मिली है।

१. अब्दुल कादिर बावजीर, दक्षिण आफ्रिकाके समयसे गांधीजीके सहयोगी और आश्रमवासी; देखिए खण्ड ४९, "इमाम साहब–१", ७-३-१९३२।

२. अबु जफर नदवी।

३. बम्बईके एक व्यापारी।

४. "बिल्ली—एक शिक्षिका", २२-५-१९३२; देखिए खण्ड ४९।

आशा करता हूँ कि वह देर-सबेर अवश्य मिलेगी।

बापू

[पुनश्चः]

आजकी डाकमें यह मेरा २९वाँ पत्र है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२३० से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

९. पत्र : मणिबहन एन० परीखको

३ जून, १९३२

चि० मणि[1],

धीरज अभ्याससे आता है। दुखको सुख माननेकी कला सब-कुछ ईश्वरपर छोड़ देनेसे आती है। इसलिए महिलाओंकी प्रार्थनामें वे तीन श्लोक[2] शामिल किये गये हैं। वे याद हैं न? प्रयत्न करनेसे ही दुखके प्रति उपेक्षा करना सीखा जा सकता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९६९)से। सी० डब्ल्यू० ३२८६ से भी; सौजन्य: वनमाला एम० देसाई

१०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३ जून, १९३२

चि० प्रेमा,

आज तो तुझे लिखनेकी खातिर ही मैं यह छोटा-सा टुकड़ा लिख रहा हूँ। उर्दू किताबें भेजना न भूलना। अब अगर मुलाकातें बन्द हो जायें तो रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट भेजना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८८)से। सी० डब्ल्यू० ६७३६ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

१. नरहरि परीखकी पत्नी।

२. इनमें, जब कौरवों द्वारा द्रौपदीका चीर-हरण किया जा रहा था उस समय द्रौपदीने भगवान श्रीकृष्णसे जो प्रार्थना की थी, वह शामिल है; देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ४०४-५, सं० ५६।

११. पत्र : द० बा० कालेलकरको

३ जून, १९३२

चि० काका[1],

तुम्हारे बारेमें समाचार तो मिलते ही रहते हैं। लेकिन जब तुम्हें लिखनेका समय मिले तब तुम अपनी तबीयतका हाल लिखना। . . .[2] तुम्हारी पीठका दर्द अब मिट गया होगा। आशा करता हूँ कि चौमासेका असर खराब नहीं हुआ होगा। तुम्हारे साथ कौन-कौन रहते हैं? मैं आजकल मगन चरखा चलाता हूँ। बायें हाथकी कुहनीमें दर्द होता है। डाक्टरोंका कहना है कि उसे सिर्फ आराम की जरूरत है और बहुत ज्यादा समय तक तार निकालनेसे यह दर्द उठ खड़ा हुआ है। इसलिए गांडीव पर ही दायें हाथसे सूत कातनेका अभ्यास किया। लेकिन डाक्टरोंका यह कहना है कि मुझे बायें हाथसे गांडीवके चक्रको घुमाने-जितनी मेहनत भी नहीं करनी चाहिए। मेरा मगन चरखा चलानेका तो पहलेसे ही विचार था, लेकिन डाक्टरोंके इस कथनसे उसे चलानेका एक और कारण बढ़ गया है और इसलिए मैंने चलाना शुरू किया। आरम्भमें इसपर हाथ बिठानेमें जरूर तकलीफ हुई, लेकिन अब अच्छा हाथ बैठ गया है, ऐसा कहा जा सकता है। अच्छी पूनीसे १५०की गति तक पहुँच सका था। अभी तो खराबसे-खराब पूनी कात रहा हूँ। उसमें १००से कम गति है, लेकिन इसके आसपास ही कही जा सकती है। थोड़ा समय उर्दूको देता हूँ। इसके अलावा आकाश-दर्शनकी कोई-न-कोई पुस्तक भी होती ही है। मैं इसमें खूब रुचि लेने लगा हूँ। अब तुम्हारे साथ बात करते हुए मैं नितान्त मूर्ख नहीं लगूँगा। अब तक जितनी पुस्तकें मेरे हाथ लगी हैं उनमें मुझे सबसे ज्यादा उपयोगी फ्लेमैरिअनकी पुस्तक लगी है। दीक्षितवाली[3] पुस्तकमें मेहनत तो खूब की गई है, लेकिन सीखनेवालेकी दृष्टि से उसमें अनेक संशोधन-परिवर्तन करानेकी जरूरत है। पटवाने 'आकाश-दर्शन' लिखी है, लेकिन वह बहुत सतही है। एक अच्छी पुस्तक गुजरातीमें होनी ही चाहिए और उसमें खगोलशास्त्रका ज्ञान भी होना चाहिए। हमारे यहाँ दो अलग-अलग पुस्तकें नहीं चल सकतीं। हमें तो खगोलका शास्त्रीय ज्ञान और अनुभव, दोनोंका मिश्रण चाहिए। तुम यहाँ होते तो ऐसी पुस्तकका काम मैं तुमसे लेता और इसमें मैं ठीक योगदान भी देता। मुझे यह इतना दिलचस्प लगा है और मैं इस शास्त्रकी धार्मिक उपयोगिताको भी समझ गया हूँ कि मेरा अपना ज्ञान यदि अत्यन्त कच्चा न होता

१. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (जन्म १८८५); काका साहब उपनामसे प्रख्यात, सन् १९१५ से गांधीजीके साथ काम करना प्रारम्भ किया।

२. यहाँ जेल अधिकारियों द्वारा ७ पंक्तियाँ मिटा दी गई थीं।

३. शंकर बालकृष्ण दीक्षित, **भारतीय ज्योतिषशास्त्र** के लेखक।

तो मैं स्वयं लिखने बैठ जाता। हीरालालके साथ इस विषयको लेकर कभी-कभी पत्र-व्यवहार चलता है। उसने मुझे दो-तीन पुस्तकें भेजी हैं। रोलाँ द्वारा लिखित राम-कृष्ण और विवेकानन्दका जीवन-वृत्तान्त मैं पढ़ गया हूँ। उनमें से एक पुस्तक महादेव पढ़ रहा है और दूसरी सरदार पढ़ रहे हैं। (सरदारका खास काम समाचारपत्र देखने और रद्दी खाकी कागज अथवा इस तरहके मोटे कागज मिल जायें तो उनके सुन्दर-सुन्दर लिफाफे बनानेका है। इस तरह देशके उत्पादनमें वृद्धि होती है और 'धूलमें से धन' पैदा करनेका प्रयोग चलता है।)

महादेव पींजनेमें और कताईमें रोज लगभग पाँच घंटे देता है। छक्कड़दास नामके चिमनलालके एक मित्र हैं जिन्हें कातनेका बहुत शौक है। उन्होंने कम्बोडिया और नवसारीकी रुईकी सुन्दर पूनियाँ भेजी हैं उनसे महादेव रोज ४०-४५ अंकके ६५० तार निकालता है, और हमने जो रुई मँगवाई है उसमें से भी रोज थोड़ा पींजता है। इस तरह हमारे पास पूनियोंका संग्रह बना ही रहता है। अभी तक दूध-त्यागका मेरा प्रयोग जारी है। वजन वही बना है। हम तीनोंकी तबीयत अच्छी है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

एक महीना पहले गंगादेवी[1] का देहान्त हो गया। मृत्युके समय वे अत्यन्त शान्त थीं। उनकी मृत्यु आश्रमके अनुरूप हुई। मेरे कहने पर तोतारामजीने उनके कुछ संस्मरण भेजे हैं, वे बहुत सुन्दर हैं। गंगादेवीका जीवन बहुत भव्य था, यह उनसे देखा जा सकता है।

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४८६) से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१२. पत्र : विद्या आर० पटेलको

३ जून, १९३२

चि० विद्या[2],

कच्ची अमिया मसालेके रूपमें खायें तो मसाला, और फलके रूपमें खायें तो फल है। आँखमें काजल सौन्दर्यकी दृष्टिसे नहीं आँजा जाता अपितु आँखके कुछेक रोगोंके लिए उसका उपयोग किया जाता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४२९) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

१. तोताराम सनाढ्यकी पत्नी।
२. रावजीभाई म० पटेलकी पुत्री।

१३. पत्र : भाऊ पानसेको

३ जून, १९३२

चि० भाउ[1],

तुमारे पत्रका उत्तर मैं भेज चुका हुं। उसमें से यदि कोई नया प्रश्न उठे तो लिखो।

तकलीके लायकके मेरे दोनों हाथ नहिं रहे। उंगलियां ऐसी निर्बल हो गई हैं जिससे जो क्रिया तकलीके लिये हाथोंको करनी पड़ती है वह आज तो मेरेसे नहिं हो सकती। भविष्यमें क्या होता है भगवान जानता है। इसलिये दूसरोंकी प्रगति सुनकर हि मुझको संतुष्ट रहना पड़ता है।

बापु

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३०) से। सी० डब्ल्यू० ४४७३ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१४. पत्र : डी० बी० परचुरे शास्त्रीको[2]

३ जून, १९३२

तुम्हारा पत्र पढ़कर हम तीनोंको बहोत आनन्द हुआ। मैं कैसा मूर्ख हरोलीकरकी हुकेरिकर मान लिया। नाम और चेहरा याद रखनेमें मैं बहुत मन्द हूँ। आप लोग आनंदसे व्याधि सहन कर लेते हैं, यह जानकर मुझे बड़ा हर्ष होता है। आप लोगोंसे मैं यही आशा करता था।

तुम्हारी पत्नीके व्याधिका सुनकर दुःख होता है। उनकी सेवामें कोई रहते हैं? मातपिता हैं? पूनीकी एक पूड़ी भेजता हूँ। महादेवने यहां बनाई हैं। हमारे पास हमेशा काफीसे ज्यादा भंडार रहता है, इसलिए मंगानेमें संकोच नहीं रखना। पुस्तक कौनसे चाहिए? यह भी बता दो। मैं मंगवानेकी कोशिश करूंगा।

प्राणत्यागके बारेमें जो कथन लिखा है, वह किसी ग्रन्थमें है? इस बारेमें मेरा अभिप्राय यह है: जिसको असाध्य रोग है, जो दूसरोंकी सेवा लेकर ही जीता रहता है और जो कुछ भी सेवा नहीं करता, उसे प्राणत्यागका अधिकार है। डूबकर मरनेसे पूर्ण अनशन करके प्राणत्याग करना बहुत ज्यादा अच्छा प्रतीत होता है। अनशनमें मनुष्यकी दृढ़ताकी परीक्षा होती है और अपना विचार बदलनेको भी स्थान रहता

१. एक आश्रमवासी।

२. इस समय परचुरे शास्त्री यरवदा सेंट्रल जेलके कुष्ठरोगी कक्षमें बन्दी थे।

है। रखना उचित और आवश्यक लगता है। परन्तु जहाँ तक ऐसा मनुष्य कुछ भी सेवा कर सकता है, वहां तक उसे प्राणत्याग करना अनुचित है। यद्यपि यज्ञमें शारीरिक क्रिया एक बड़ा और आवश्यक अंग है, तदपि अशक्तिके कारण शरीरसे कुछ भी न बन सके तो मानसिक यज्ञ सर्वथा निरर्थक नहीं है। मनुष्य अपने शुद्ध विचारसे भी सेवा कर सकता है। सलाह, इत्यादिसे भी कर सकता है। विशुद्ध चित्तके विचार ही कार्य है; और महत् परिणाम पैदा करते हैं।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१५. पत्र : जाल ए० डी० नौरोजीको[1]

४ जून, १९३२

कूपर अपने बनाये हल के बारेमें जो दावा करते हैं, वह सच्चा हो तो मैं सिर्फ इसी कारण उसपर आपत्ति नहीं करूँगा कि वह हल लोहेका है और उससे गाँवके बढ़ईका इतना काम कम हो जायेगा। अगर इस हल के प्रयोगसे किसानकी कमाई बढ़ जाती है, तो भले ही बढ़ईका काम इतना कम हो जाये। मगर कूपरने अपने हल के बारेमें जो दावे किये हैं, उनके बारेमें मेरे मनमें बड़ी शंकाएँ हैं। साबरमतीमें हमने हिन्दुस्तान और, मेरा खयाल है, दूसरे देशोंमें बने हुए करीब-करीब सभी किस्मके सुधरे हुए हल काममें लेकर देखे हैं और उनके बारेमें किये गये दावे अन्तमें सच्चे नहीं निकले। एक अनुभवी आदमीने कहा है कि देशी हल की बनावट हिन्दुस्तानकी जमीनके बहुत अनुकूल है। वह जमीनकी रक्षा करता है, क्योंकि वह जमीन इतनी ही गहरी जोतता है, जितनी किसानकी फसलके लिए जरूरी है; मगर इतनी ज्यादा गहरी नहीं जोतता जिससे जमीनको नुकसान पहुँचे। निश्चय ही मैं खेती-बारीका जानकार होनेका दावा नहीं करता। मैं तो उन्हींके सबूत दे रहा हूँ, जिन्हें इस मामलेमें खासा अनुभव है। हमें इतना याद रखना चाहिए कि सुधरे हुए औजार भारतकी विशिष्ट परि-स्थितिके अनुकूल होने चाहिए। खुद इंजनवाले हल के विरुद्ध भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। जिसके पास हजारों एकड़ जमीन हो और वह जमीन दरारोंसे भरी और सख्त हो, उसके लिए यह बड़ा लाभदायक साबित होगा। ऐसी जमीनपर देशी हल नहीं चल सकता। मगर हमें तो ऐसा औजार चाहिए, जो एकसे लेकर तीन एकड़की थोड़ी जमीनवाले किसानोंके अनुकूल हो।

ज्यादासे-ज्यादा लोगोंका ज्यादासे-ज्यादा लाभवाला सिद्धान्त मैं नहीं मानता। उसे नंगे रूपमें देखें तो उसका अर्थ यह होता है कि ५१ फीसदी लोगोंके हितोंकी खातिर ४९ फीसदी लोगोंके हितोंका बलिदान किया जा सकता है, बल्कि कर देना

१. श्री नौरोजीने कूपर द्वारा आविष्कृत एक नये हल के बारेमें गांधीजीको लिखा था जिसकी मददसे पैदावारमें १५ से लेकर १५० प्रतिशत तककी वृद्धि हो सकती थी।

चाहिए। यह एक निर्दय सिद्धान्त है, और मानव-समाजको इससे बहुत हानि हुई है। सबका ज्यादासे-ज्यादा भला किया जाये यही एकमात्र सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवीय सिद्धान्त है और इसे पूर्ण आत्मबलिदानके द्वारा ही अमलमें लाया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१६. पत्र : ऐन मारी पीटर्सनको[1]

४ जून, १९३२

'किसी बातकी चिन्ता न करो' यह पंक्ति मुझे हमेशा याद रही है, और इसे मैं कभी भूलता नहीं। ईश्वरके रहते मुझे चिन्ता क्यों हो? हमारी अचूक सँभाल करनेवाला वह बैठा है। अच्छी तरह सुरक्षित होते हुए भी जो चिन्ता करता है वह मूर्ख है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१७. 'तितिक्षा' और 'यज्ञ' के विषयमें[2]

६ जून, १९३२

कोढ़से पीड़ित एक भाई[3] के उद्गार निम्नलिखित हैं:

> मेरे जैसे रोगियोंके लिए आसन, प्राणायाम आदि सामान्य क्रिया और यज्ञ करनेके बाद प्राप्त किया हुआ भोजन इस रोगके लिए सबसे अच्छी दवा है, ऐसा मेरा विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। मेरा समय 'गीता' आदि पढ़नेमें, भजन गानेमें, चिन्तन-मननमें और कमसे-कम ५०० बार सूत कातनेमें जाता है। हमारा धर्म तितिक्षा सिखाता है और तितिक्षाका तो अर्थ यह है: सब दुखोंको, मनमें कोई विरोध किये बिना, चिन्ता-शोक किये बिना, सहन करना। मैं इस सहन-शक्तिका विकास कर रहा हूँ और इस विकास-क्रमके दौरान यह अनुभव कर रहा हूँ कि यदि हम कोई भी यज्ञकार्य न करें तो ऐसी तितिक्षा नहीं आती। मुझ जैसे लोगोंसे अन्य प्रकारके यज्ञकार्य तो हो नहीं

१. ऐन मारी पीटर्सन दक्षिण भारतमें डैनिश मिशनरी सोसाइटीकी सदस्या थीं।

२. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", २-६-१९३२ के साथ भेजा गया था।

३. डी० वी० परचुरे शास्त्री; देखिए "पत्र: डी० वी० परचुरे शास्त्रीको", ३-६-१९३२।

सकते, लेकिन लोकोपयोगी कार्य जैसे रास्ता साफ करने, मला उठाने और कातने के कार्य ईश्वरकी अनुकम्पासे मेरे लिए खुले हैं और उनसे मैं आनन्द प्राप्त कर लेता हूँ तथा सहनशक्तिकी साधना करता हूँ। लेकिन अनेक बार मनमें विचार उठता है कि यदि शरीर ऐसा हो जाये कि कोई भी यज्ञ मुझसे न बन सके तो क्या होगा? शास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहते हैं, आपने भी अनेक बार कहा और लिखा है तथा मैंने भी इस बातका अनुभव किया है कि यज्ञहीन जीवन मृतवत् है, भारमय है और जगतके लिए त्रासदायक है। तब सवाल यह उठता है कि अगर मनुष्य व्याधिसे इतना ज्यादा घिर जाये कि उससे किसी प्रकारका भी यज्ञ न बन पड़े और उसका शरीर प्रतिक्षण दूसरोंकी सेवापर ही निर्भर रहे तो ऐसे समय उसका क्या कर्तव्य है? मैंने किसी शास्त्रमें यह भी पढ़ा है कि यदि व्यक्तिको ऐसा असाध्य रोग हो जाये तो उसे पानीमें डूबकर अथवा किसी और ढंगसे अपने प्राण त्याग देने चाहिए।

यह तो मैंने सुन्दर पत्रका अपनी भाषामें सार दिया है। इस पत्रमें मैं हम सब लोगोंके लिए केवल इतना ही सार निकालना चाहता हूँ कि यह भाई जिस सहन-शक्तिके बारेमें लिखते हैं उस सहनशक्तिकी हम सबको साधना करनी चाहिए और व्याधि होने पर भी जबतक शरीर बोझ उठा सके तबतक यज्ञकर्म करते ही जाना चाहिए। सहनशक्तिका विकास करना और यज्ञ करना, ये दोनों बातें बहुत पुरानी हैं। आश्रममें तो पग-पग पर हम इसकी चर्चा सुनते हैं। लेकिन जब किसी अनुभवीकी कलमसे यह बात हमारे पास आती है तब यह नई सी जान पड़ती है और वह शक्ति से ओतप्रोत होती है। कोढ़से पीड़ित लोगोंसे हम ऐसी भाषाकी और अनुभवकी अपेक्षा नहीं करते। अधिकांश तो ऐसे लोग जब लिखते हैं तो उसमें अपने दुखका ही रोना रोते दिखाई देते हैं। यहाँ हम एक भिन्न बातका अनुभव करते हैं। इसीलिए मैंने आश्रमवासियोंके लिए इसका सार लिखा दिया है। इसमें जो शंका उठाई गई है वह भी विचारणीय है।

'यज्ञ' अर्थात् परोपकारके उद्देश्यसे प्रेरित होकर मनःपूर्वक किया गया कोई भी शारीरिक कार्य, ऐसा अर्थ हम करते हैं। लेकिन इससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि जो शरीरसे अशक्त है वह यज्ञहीन है। जो शरीरसे सर्वथा अशक्त हैं वे अपने मानसिक बलसे अनेक प्रकारकी सेवा कर सकते हैं और यह अवश्य यज्ञरूप माना जायेगा। लेकिन ऐसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब व्यक्तिमें ऐसा यज्ञ करनेके लिए आवश्यक शुद्धि न हो, इतना मनोबल न हो, फिर भी यज्ञकर्म करनेकी तीव्र इच्छा हो, देहके प्रति उदासीनता आ गई हो, दूसरोंसे सेवा लेनेमें दुख होता हो और व्याधि प्राणलेवा दीख पड़े तो मुझे लगता है कि ऐसी स्थितिमें जिसमें ऐसी शक्ति है उसे प्राण-त्याग करनेका पूरा अधिकार है; और कदाचित् यह भी कहा जा सकता है कि यही धर्म भी है। लेकिन "धर्म है" इस कथनसे सम्भवतः सुननेवालेको आघात पहुँच सकता है। जीवित व्यक्तिके मुखसे यह बात शोभा नहीं देती कि वह दूसरोंके लिए यह कहे कि प्राणत्याग करना धर्म है। और इस वाक्यको

सुननेवाला व्याधिग्रस्त मनुष्य कदाचित् व्याकुल भी हो उठे। लेकिन यहाँ ऐसा अनर्थ होनेकी सम्भावना नहीं है, ऐसा जानकर ही मुझे जो उचित लगा है सो संयमित ढंगसे मैंने लिख दिया है। असंख्य उपाय करनेके बाद और दूसरोंसे असीमित सेवा लेनेके बाद भी यदि जीनेकी तृष्णा कम और मृत्युका भय दूर हो जाये तो यह स्पृहणीय है। इसी चीजको लक्ष्यमें रखकर मैंने लिखा है कि यदि समझदार मनुष्य असाध्य रोगके समय प्राणत्यागको धर्म मानता है तो वह गलत काम करता है, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/११) से।

१८. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

७ जून, १९३२

भाई घनश्यामदास,

आपका खत मिला। मेरा शरीर तो अच्छा ही लगता है। वजन खासा है। आज एक सौ साडे छः रतल हुआ। डाक्टर लोग बताते हैं जैसा टैनिस खेलनेवालोंकी कई दफा बहुत खेलनेसे कहौनीमें दर्द होता है और उसका इलाज एक आराम ही है ठीक उसी तरह मुझको तार खेंच खेंच कर बरसोंके बाद कौहनीमें दर्द प्रतीत होता है। इसी कारण कहौनीको तीन चार हफ्ते तक पूर्ण आराम देना चाहिये। इसी लिये मैं मगनचर्खा चलानेका शुरू कर दिया। उसके पहले बांये हाथसे तार खींचनेके बदले चक्रकी घुमाता था। इतनेसे डाक्टरोंको संतोष न हुआ, तब मैंने पैरोंसे चक्र चलानेका रक्खा। उससे वे लोग राजी हुए। लेकिन अब लकड़ीकी पट्टीमें हौनीको बांध ली है जिससे कि वह बिलकुल हिल न सके। अब देखा जायेगा कि डाक्टर लोगोंका अनुमान सही है या नहीं। इसमें फिकरका कोई कारण नहीं है क्योंकि हिलाने सीवा कुछ दर्द प्रतीत होता ही नहीं है।

बहनजीके हाथके सूतकी खादी अवश्य भेजें। मेरे सामने उत्तर लिखनेके वक्त पत्र न रहा इसलिये खादीके बारेमें लिखना रह गया। यहाँसे निकलनेके पहले अर्थशास्त्रका अभ्यास जहातक संभवित है कर लेनेका इरादा कर लिया है। ऐसी उम्मीदसे कि यहाँसे जल्दी छूटना नहीं है मैंने और पुस्तक पढ़नेका शुरू कर दिया। लेकिन अब शीघ्रतासे अर्थशास्त्रका अभ्यास शुरू कर दुँगा।

मील २४ घंटे चलानेके बारेमें समजा। आपकी मिलोंका सूक्षमतासे निरीक्षण करनेका इरादा बहुत दफा किया। लेकिन मैं सफल नहीं हो सका। मेरी आंखोंसे मैं देख लेना चाहता हूं कि मजदूर लोगोंकी हालत कैसी है। हम सब कुशल हैं।

बापु

सी० डब्ल्यू० ७८९९ से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१९. पत्र : मीराबहनको

[८ जून, १९३२][1]

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र आज आया। हाँ, बायीं भुजापर पट्टी चढ़ी हुई है। देखनेवाले, जो कारण नहीं जानते, मुझपर जरूर दया करते होंगे। अगर पट्टीसे कुहनीकी हालत न सुधरी, तो शायद मुझे दूधका प्रयोग करना पड़ेगा; और अगर मैंने ऐसा किया तो मैं नमक छोड़कर भी देखूँगा। लेकिन जब मैंने यह जाना कि सर्वथा नमक छोड़ने के प्रयोग जैसी चीज है ही नहीं, तभी मैंने डाक्टर मित्रोंकी सलाह मानी और नमक लेना शुरू किया। पानीकी भाँति ही दूधमें भी काफी नमक होता है। और किसी तटवर्ती जगहपर तो आदमी बराबर नमक पीता है। तथापि मसालेके रूपमें अतिरिक्त नमक न लेनेका निश्चित ही कुछ लाभ है। पानी, दूध और हवासे जितना नमक हमारे शरीरमें पहुँच जाता है वह उसके लिए पर्याप्त है। मुझे अलोने भोजनके प्रति पक्षपात है। अलबत्ता, जबतक मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, तबतक मैं व्रत मानकर उससे परहेज नहीं रखना चाहता। इस बीच तुम्हारे अनुभव तो जमा हो ही रहे हैं। वे उपयोगी सिद्ध होंगे।

वेरियरके बारेमें जो स्थिति है वह मैं ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। वह अब क्या करनेका विचार रखता है? अगर अवधि जुलाई तकके लिए ही बढ़ाई गई है, तो उसके बाद क्या होगा? पासपोर्ट-सम्बन्धी बारीकियाँ मैं कभी नहीं समझ पाया। अगर वह इंग्लैंड नहीं जा सकता तो उसे किसी पहाड़ीपर जाना चाहिए। अलमोड़ा उपयुक्त जगह हो सकती है। अगर वह शाकाहारी हो और शाकाहारी ही रहनेवाला हो तो उसे तुम्हारे आहारका यथासम्भव अनुकरण करना चाहिए। बहुत थोड़ा मण्ड (स्टार्च), दालके रूपमें कोई प्रोटीन बिल्कुल नहीं, काफी मात्रामें दूध और हरी सब्जियाँ, आलू या अन्य ऐसी ही मण्डयुक्त सब्जियाँ बिल्कुल नहीं और मसाला तो बिल्कुल नहीं। उसे मेरा पत्र मिला है या नहीं?

तुम्हारे बारेमें जिसे अन्तिम उत्तर समझा जा सकता है वह मिल गया है। सरकारका कहना है कि चूँकि कैद होनेसे पहले तुम आन्दोलनका संचालन कर रही थी, इसलिए तुम मुझसे नहीं मिल सकतीं। मैंने इस बयानका खण्डन किया है[2] और कहा है कि तुम्हें सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें भाग न लेनेकी हिदायत थी और तुम सिर्फ

१. साधन-सूत्रमें "८-५-१९३२." है जो स्पष्ट ही भूल है। गांधीजीकी बाँहपर ५ जून, १९३२ को पट्टी चढ़ाई गई थी; देखिए इस खण्डके अन्तमें दी गई "दैनन्दिनी, १९३२" में ५ जून, १९३२ के अन्तर्गत प्रविष्ट। **बापूज लेटर्स टु मीरा**में भी यही तारीख दी गई है।

२. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", ९-६-१९३२।

खादीका काम करती थी और मित्रोंको समाचार भेजती थी। अगर इसमें मेरी भूल हो तो मुझे बता देना। अपनी गलती सुधारनेमें संकोच नहीं करूँगा।[1] मुझे पता नहीं कि मेरे पत्रका कोई परिणाम निकलेगा या नहीं। कुछ भी हो, मैं इस उत्तरको अन्तिम निर्णय मानकर चल रहा हूँ और इसलिए ना०[2] को लिख दिया है कि वह मुलाकातके लिए किसीको न भेजे। मैंने पहले ही सोचकर पिछले सप्ताह मुलाकातें बन्द कर दी थीं। अर्थात् मैंने मणिबहन और डाह्याभाईसे भेंट नहीं की।

तुम्हें इस नई परीक्षासे खुशी होनी चाहिए और ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिए कि हम एक-दूसरेको पत्र लिख सकते हैं। परन्तु यदि यह बन्द हो जाये तो भी हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। ईश्वरके हुक्मके बिना कुछ नहीं होता। और जो-कुछ वह होने देता है, उसपर हम शोक कैसे कर सकते हैं?

तुम्हें राधासे बराबर पत्र-व्यवहार करना चाहिए। उसके बारेमें तुम्हारी जो राय बनी है उसे मैं ठीक मानता हूँ। मुझे उस विषयमें नहीं लिखना चाहिए। उससे वह परेशान होगी। वह शायद तुम्हारी बात मान लेगी। उसे पत्र लिखनेके लिए तुम्हें समय निकालना चाहिए। मैं मानता हूँ कि उसका खर्च आश्रम उठाता है और पिछले कुछ महीनोंसे दामोदरदास पर उसका भार नहीं है।

तुम दामोदरदाससे फिर बात करना और यदि इससे उसका बोझ कम होता हो तो उसका घर छोड़ देना।

हम सबकी तरफसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२०) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६८६ से भी।

२०. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको[3]

८ जून, १९३२

वह[4] बूढ़ी हो गई है — कई बातोंमें तो मुझसे भी ज्यादा। आध्यात्मिक दृष्टिसे उसने अद्भुत प्रगति की है। . . .

चरखेकी धीमी गतिके कारण उसके प्रति मेरा मोहभंग होनेके लिए तो मुझे कई जन्म लेने पड़ेंगे। चरखेकी धीमी गति ही शायद मुझे सबसे ज्यादा आकृष्ट करती

१. मीराबहनके अनुसार यह सही है।

२. नारणदास गांधी, जो उस समय साबरमती आश्रमके व्यवस्थापक थे।

३. हेनरी सोलोमन लिअन पोलक, दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें गांधीजीके निकट सहयोगी। उन्होंने गांधीजीको लिखा था: "लन्दनके समाचारपत्रोंने रिपोर्ट दी है कि चरखेकी धीमी गतिके कारण उसके प्रति मोहभंगके लिए आपने सिलाईकी मशीन ले ली है। मुझे इस बातमें तनिक भी विश्वास नहीं है। फिर भी बहुत जल्द इसका खण्डन जरूरी है।"

४. कस्तूरबा गांधी।

है। मगर उसमें तो मेरे लिए और भी कई आकर्षण हैं, जिनके कारण मुझे उससे कभी अरुचि नहीं हो सकती। उसमें मेरी दिलचस्पी स्थायी है। उसकी नई-नई खूबियाँ दिन-दिन मेरे सामने आती जा रही हैं और उसके गहरे अर्थ अधिकाधिक मेरी समझमें आते जा रहे हैं। चरखेके बजाय सिलाईकी मशीनका इस्तेमाल करनेकी बात तो दूर, मैं उसका बिल्कुल इस्तेमाल नहीं कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि अखबारोंमें यह गपोड़ा किस तरह उठा है। पिछले दस सालसे लगातार चरखा चलानेके कारण मेरे दायें हाथकी कुहनीमें दर्द होने लगा और इस कारण डाक्टर इस नतीजेपर पहुँचे कि टेनिस खेलनेवालोंको लगातार रैकेट काममें लेनेसे अकसर जैसा दर्द हो जाता है, वैसा ही मुझे हुआ है। इसलिए उन्होंने कुहनीको कुछ समय तक आराम देनेकी सलाह दी। इसके मतलब होते कि मुझे कुछ समय तक कताई बन्द रखनी पड़ती; किन्तु प्रभुदासके आविष्कारने बचा लिया। प्रभुदासको तो तुम जानते हो न? छगनलालका लड़का। उसका आविष्कार ऐसा है कि चरखेका पहिया पैरसे चलाया जा सकता है और सूतका तार खींचनेके लिए दाहिना हाथ भी मुक्त रहता है और इस तरह सूत भी लगभग दूना निकलता है। मैंने इस किस्मका चरखा मँगवा लिया और डाक्टरोंको मात कर दिया और दायें हाथसे बिल्कुल काम बन्द करनेका ताकीदी हुक्म मिलनेसे पहले ही मैं पैडलवाला चरखा, जो स्व० मगनलालके नाम पर 'मगन चरखा' कहलाता है, चलाना सीख गया। एक मूर्ख अखबारवालेने जो इस आविष्कारके बारेमें कुछ भी नहीं जानता था, जब सुना कि मैं पैडलसे पहिया चलाता हूँ, तो वह मान बैठा कि मैं सिलाईकी मशीन चला रहा हूँ। और, अखबारवालोंमें ऐसे भलेमानस तो मौजूद ही हैं जो मेरे बारेमें कई तरहकी कल्पनाएँ कर लेते हैं और तरह-तरहकी बातोंसे मेरा सम्बन्ध जोड़ देते हैं। बस, उन्होंने उस गलत रिपोर्टमें इजाफा कर दिया और घोषणा कर दी कि चरखेके बारेमें मेरा भ्रम दूर हो गया है। सारी बात यह है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२१. एक पत्र

८ जून, १९३२

तुम्हारी हालत कैसी भी हो, इतना याद रखना:

१. जो रुपया कमाता हो, उसीको खो देनेका अधिकार है।

२. रुपया गँवा देनेमें शर्मकी बात नहीं है, गँवा देनेके बाद छिपानेमें शर्म है, पाप भी है।

३. हैसियतसे ज्यादा रहन-सहन कभी नहीं रखना चाहिए। आज बंगलेमें रहते हुए भी कल झोंपड़ीमें रहनेकी तैयारी रखनी चाहिए।

४. ऋणदाताको देने जितना रुपया हमारे पास न हो, तो इसमें शर्मकी बात नहीं है।

५. जो व्यक्ति एक दमड़ी भी अपने पास न रखकर सबकुछ ऋणदाताको दे देता है, उसने सब चुका दिया।

६. कर्ज लेकर व्यापार न करना यह पहली समझदारी है। यदि कर्ज लिया हो, तो जो-कुछ पास हो वह देकर उसमेंसे निकल जाना दूसरी समझदारी है।

आश्रममें जब जाना हो जा सकते हो।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२२. पत्र : ई० ई० डॉयलको

९ जून, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल[1],

मेजर भण्डारीने[2] मुझे श्रीमती मीराबाई (स्लेड)के बारेमें सरकारका निर्णय सूचित किया है। इस निर्णयके लिए जो स्पष्ट कारण बताये गये हैं, मैं उनकी कद्र करता हूँ। मैं नहीं जानता कि सरकार किस चीजको "सविनय अवज्ञा आन्दोलनको सक्रिय रूपसे प्रोत्साहन देनेमें व्यस्त" मानेगी। यह भी सम्भव है कि सरकारको गलत जानकारी मिली है। स्पष्ट है कि सरकारको जो सूचना दी गई थी, उसका खण्डन करनेका मीराबाईको कोई अवसर नहीं दिया गया। मैं तो सिर्फ अपने इस कथनको दोहरा सकता हूँ कि मेरे अन्य साथियोंकी भाँति ही उसे [मीराबाईको]

१. बम्बई प्रेसिडेन्सीके जेल-महानिरीक्षक।

२. यरवडा सेंट्रल जेलके अधीक्षक।

भी जानबूझकर और आन्दोलनके हितमें ही आन्दोलनके सविनय अवज्ञावाले हिस्सेसे अलग रखा गया है। किन्तु यदि मीराबाई किसी भी समय सविनय अवज्ञा आन्दोलनको सक्रिय प्रोत्साहन देनेमें सक्रिय रूपसे लगी हुई थी या इस समय लगी हुई हो, तो मेरी पत्नी और मेरे दो लड़के भी तो उसमें सक्रिय भाग ले रहे थे। फिर भी यदि वे जेलमें न होते तो मैं मानता हूँ कि मेरे परिवारके सदस्य होनेके नाते उन्हें मुझसे मुलाकातकी अनुमति दी जाती। जैसा कि मैं सरकारको लिखे अपने पिछले पत्रोंमें स्पष्ट कर चुका हूँ, मैंने अरसा हुआ अपने परिवारके सदस्यों और अन्य लोगोंमें भेद करना छोड़ दिया है। मेरे साथी भी मेरे परिवारके उसी प्रकार सदस्य हैं जिस प्रकार परिवारके तथाकथित सदस्य।

इसलिए जबतक सरकार अपने निर्णयपर पुनर्विचार नहीं करती तबतक मैं प्रति सप्ताह मुलाकातियोंसे मिल सकनेके सुखसे अपनेको वंचित रखूँगा। मैंने आत्म-त्यागके इस नियमको पिछले शनिवारसे लागू कर दिया है। वस्तुतः मीराबाईके मामलेमें सरकारने जो निर्णय दिया है, उसके तहत आश्रमवासियोंमें से कौन मुझसे मिले और कौन न मिले इसका निर्णय करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना मेरे लिए कठिन होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (२) भाग १, पृष्ठ १०९।

२३. पत्र : नथुराम त्रिकमदासको

९ जून, १९३२

भाई नथुराम,

तुम्हारा ब्यौरेवार पत्र पढ़कर खुश हुआ हूँ। अच्छा है कि तुम खादीकार्य सीखनेके लिए आये हो। यह काम अच्छी तरहसे सीखना। ऊपर-ऊपरसे यों ही सीखोगे तो वापस जानेपर तुम सिखानेका काम नहीं कर सकोगे। सूक्ष्मसे-सूक्ष्म वस्तुपर अधिकार प्राप्त करनेपर ही सिखाना सम्भव होगा। आश्रमके नियमोंका ठीक-ठीक पालन करना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२४. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

९ जून, १९३२

भाई रामेश्वरदास,

तुम्हारा पत्र मिला। पहलेके पत्र भी मिले हैं। उम्मीद है, तुम्हें मेरे उत्तर भी मिल गये होंगे। रामनामका उच्चारण करनेका कदापि यह अर्थ नहीं कि वह मात्र जीभ पर ही रहे, अपितु उसके पीछे यह विश्वास निहित है कि जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक आज जीभसे ही रामनामका उच्चारण करता है तो उसका विश्वास किसी-न-किसी दिन इस शब्दको गलेसे नीचे भी ले जायेगा और उसे हृदय तक पहुँचायेगा; और जबतक रामनाम हृदय तक नहीं पहुँचता तबतक मनुष्यको सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। तुम्हारी शान्तिके लिए मैं और कोई औषधि नहीं जानता। वैद्यकीय उपचार मानकर भी तुम्हें अपनी खुराककी मात्रा घटा देनी चाहिए और उससे भी यदि शरीर अच्छा न रहे तो उपवासादि करने चाहिए। प्यारेलालको तो अभी थोड़ ही दिन पहले मैंने एक कार्ड लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८०) से।

२५. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

९ जून, १९३२

चि० परसराम,

पिनसे जुड़े हुए तुम्हारे दो पत्र मिले। मैं देखता हूँ कि वह पत्र जिसम तुमन उपशीर्षक दिये हैं पहले पत्रका सार-रूप है और उसको पढ़नेसे विस्तृत पत्रको पढ़नेका हेतु सिद्ध हो जाता है। तथापि तुमने यह सोचकर पहला पत्र भी साथ भेजा है कि यदि मैं ज्यादा ब्यौरेसे पढ़ना चाहूँ तो वह भी पढ़ सकूँ।

जिस जगह दर्द होता हो उसका बलपूर्वक अर्थात् दर्द सहन करते हुए उपयोग नहीं करना चाहिए, और ऐसा करनेसे यदि तुम्हें यह लगे कि दर्द धीरे-धीरे कम होता जा रहा है तो समझ लो कि अन्य कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। और यदि दर्दवाली जगहका उपयोग न करनेपर भी दर्द कम होनेके आसार दिखाई न दें तब तो पूरा आराम किये बिना कोई चारा नहीं।

मनुष्यको भोजन करनेके लिए कितना समय चाहिए इसके बारेमें सबके लिए एक-सा नियम नहीं हो सकता। किसीका भोजन केवल दूध हो तो वह पाँच-सात मिनटमें ही पूरा हो जायेगा। किसीका भोजन यदि एक अनार ही हो और उसके दाँत न हों तथा अनारके रसके बदले उसे दाने चबाने हों तो उसे एक घंटा भी लग सकता है। इसलिए नियम तो यह हुआ कि जिस व्यक्तिके लिए जितना खाना और जो खाना जरूरी है उसे अच्छी तरह चबाकर खानेमें जितना समय लगे उतना समय उसकी खातिर समझा जाये। सामान्य रूपसे जो रोटी, दाल, भात, शाक आदि खाता है और जिसके दाँत अच्छे हैं उसके लिए २०-३० मिनट पर्याप्त माने जायें। अमुक दिशाकी ओर सिर करके सोनेकी जो बात कही जाती है उसके बारेमें मेरे मनमें कोई श्रद्धा नहीं जगी। मैंने इस नियमका पालन कभी नहीं किया।

पीपलका वृक्ष बहुत बड़ा होता है, खूब छाया देता है तथा अनेक स्थानोंपर उगाया जा सकता है इसीसे उसकी महिमा गाई गई है, ऐसी मेरी मान्यता है।

मेरे पत्रों आदिका हिन्दीमें अनुवाद करनेकी बातको मैं समझ गया हूँ। इस सम्बन्धमें सबको सन्तोष मिले, मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।

लौंग और मिश्रीका उपयोग मैं केवल आवाजको ठीक बनाये रखनेके लिए करता था। जबसे ऐसे और इतने ज्यादा भाषण देने बन्द हो गये तबसे लौंग और मिश्री लेना भी बन्द हो गया सो आज तक फिर जारी नहीं हुआ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५०१) से। सी० डब्ल्यू० ४९७८ से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

२६. एक पत्र

९ जून, १९३२

जैसा कि तुमने लिखा है, तुम्हें बराबर बुरे विचार आते रहते हैं और उनसे तुम परेशान रहते हो; इसीका नाम है अपने-आप बनाया हुआ नरक। इसमें मैंने तुम्हारे दोनों प्रश्नोंका उत्तर दे दिया। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा मैंने किसपर से लिखा; और इसे नरक क्योंकर कहा जाता है, यह भी स्पष्ट रूपसे कह दिया गया। इसकी प्रतीति हो जानेपर इससे कैसे निकला जा सकता है, यह तो सहज ही समझमें आ जाना चाहिए। तुम्हें बुरे विचार आते हैं उनका पुनर्चिन्तन तो करना ही नहीं चाहिए, अपितु ऐसा सोचकर आगे बढ़ते जाना चाहिए मानो कुछ हुआ ही न हो। मनुष्य राह चलते जब किसी चीजसे ठोकर खाता है तो वह यह सोचने नहीं बैठ जाता कि ऐसा क्योंकर हुआ। और फिर यदि वह उसके कुपरिणामका खयाल करके वहीं बैठा रहे तो वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। लेकिन ठोकरका

विचार न करके वह आगे ही बढ़ता जाता है तो वह उसे अन्ततः भूल जाता है। निरन्तर बढ़ते रहनेसे उसकी शक्ति बढ़ती जाती है और शक्ति बढ़नेके साथ-साथ ठोकरें भी कम लग पाती हैं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२७. पत्र : छगनलाल जोशीको

१० जून, १९३२

आश्रममें शारीरिक-श्रमका प्रायः सारा काम हाथों-हाथ हो जाता है। थोड़े मजदूर लोग भी हैं, लेकिन ऐसे मजदूर ही बच रह गये हैं जो आश्रमके नियमोंका पूरा-पूरा पालन करते हैं और उनके साथ ही आश्रमवासी काम करते हैं। धीरे-धीरे हर तरहकी मजदूरी पर काबू पानेका प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें बच्चे यथा-शक्ति अपना योगदान देते हैं।

नवागन्तुकोंको सर्वप्रथम प्रार्थना, भजन आदि सिखाया जाता है। इतना सीख लेनेके बाद ही जो अंग्रेजी सीखना चाहें वे अंग्रेजी सीख सकते हैं।

यज्ञके रूपमें की जानेवाली कताई सब लोग एकसाथ मिलकर करते हैं; यह एक घंटे तक चलती है। २० आँकसे नीचे काते गये सूतकी गणना यज्ञके हिसाबमें नहीं गिनी जाती। जितना सूत काता गया हो उस सारेको टोकरीमें डालकर उसी दिन दे देना चाहिए। मैंने यह सुझाव दिया है कि यदि सब इस बातपर राजी हों तो इस सूतको खुद अपने इस्तेमालके लिए कोई नहीं खरीद सकता।[1] मेरी हमेशासे यह मान्यता रही है कि जबतक इसे खरीदनेकी छूट है तबतक यज्ञ अधूरा है।

गत सप्ताहसे सब लोगोंकी मजदूरीका –– चाहे वह किसी तरहकी भी हो –– प्रति घंटा एक आनाके हिसाबसे हिसाब-किताब रखनेका निश्चय किया गया है। लेकिन उसीके अनुसार भुगतान भी किया जायेगा, यह तय नहीं हुआ है। फिलहाल नारण-दासको मैंने इतना ही सुझाव दिया है कि यदि यह बात उसके गले उतरे तो वह इस तरह हिसाब-किताब रखना शुरू कर दे। यह हिसाब-किताब वैसा ही है जैसा हम सामान्य हिसाब-किताब रखते हैं; उसके अलावा अभी तो केवल परिणाम देखने-भरके लिए ही यह हिसाब रखा जायेगा। इससे हमको काफी कुछ मालूम हो सकेगा, जिसके फलस्वरूप इस परिणाम पर पहुँच सकेंगे कि सबकी मजदूरी एक समान हो सके। तात्पर्य यह कि कताई, बुनाई, पाखाना-सफाई अथवा किसी भी समाजसेवाके कार्यका प्रति घंटा एक आना माना जाये। इसकी हमने चर्चा तो खूब की है, यह तुम्हें याद होगा। आजकल मैं नारणदासको बहुत पत्र लिख रहा हूँ। इन पत्रोंमें मैंने उससे इस

१. देखिए पृष्ठ ७-८।

विषयपर फिर चर्चा की है। मुझे लगता है कि नारणदासमें ऐसे विचारोंको ग्रहण कर लेनेकी शक्ति आजकल बहुत बढ़ गई है। अतः उसने मेरे इन सुझावोंका स्वागत किया है। यह हिसाब लिखनेमें बहुत समय जाता हो, ऐसी कोई बात नहीं। और इस समय जो प्रयोगकी स्थितिमें है वही जब अमलमें लाया जायेगा तब हिसाब रखनेका यह काम तो इतना आसान हो जायेगा कि सामान्य गुजराती जाननेवाला व्यक्ति भी इसे रख सकेगा। इस तरहके हिसाबकी सफलताका आधार समाजपर है। क्योंकि जो व्यक्ति अपने कामके घंटोंको लिखता अथवा लिखाता है, उसने यदि कामकी चोरीकी हो अथवा चाहे जैसा काम किया हो तो जाहिर है कि उसका हिसाब गलत होगा। मतलब यह कि, यह तो खोटा और सच्चा सिक्का एकसाथ मिल जानेकी बात होगी।

बच्चोंकी शिक्षाके बारेमें भी मैं यहाँसे काफी कुछ लिख रहा हूँ। इसमें से आश्रमवासी कितना ग्रहण कर सकेंगे, सो नहीं कहा जा सकता। लेकिन यदि मैं वह सब लिखने बैठूँगा तो इसमें बहुत समय चाहिए और उतना समय नहीं दिया जा सकता। इस विषयमें तुम धीरज रखना।

हम सबको यह जो अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है, उसका अपनी-अपनी समझके अनुसार सदुपयोग करना चाहिए और इसका अच्छेसे-अच्छा उपयोग अन्तर्चिन्तन करनेकी शक्तिका विकास करना है। बहुधा हम विचार-शून्य होते हैं, इसीसे हमें पढ़ना अथवा संलाप करना अच्छा लगता है। हममें से कुछ लोग सोच-विचार करते हैं, लेकिन केवल हवाई किले बाँधनेके लिए ही। वस्तुतः देखा जाये तो जिस तरह अध्ययन करना अपने-आपमें एक कला है उसी प्रकार चिन्तन करना भी एक कला है। निश्चित समय पर ही निश्चित विचार उत्पन्न हों। जिस तरह हम व्यर्थकी किताबोंको नहीं पढ़ते उसी तरह हम व्यर्थके विचारोंको भी मनमें न आने दें। ऐसा करनेसे जो शक्ति उत्पन्न होती है और जिस शक्तिका संग्रह होता है उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस तरह चिन्तन करना सीखनेके लिए यह सुन्दर अवसर है, यह बात मैंने कैदके दौरान हर बार अनुभव की है।

अतएव मेरी तुम सबको यही सलाह है कि सब कोई गम्भीर चिन्तन करनेकी कलाको साध लेना और यदि वैसा करोगे तो मुझसे पूछ-पाछकी जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन इसका कोई उल्टा अर्थ न करना। प्रश्न पूछनेसे मैं किसीको मना नहीं करता, लेकिन मैं परावलम्बनको टालना चाहता हूँ। बाकी तो मैं बैठा ही हूँ और जिस विषयपर मैंने दूसरोंकी अपेक्षा ज्यादा सोच-विचार किया है अथवा जिस विषयका मुझे ज्यादा अनुभव है और जिससे लाभ मिल सकता हो उसे प्राप्त करनेका तुम्हें अधिकार है, और यह तुम्हारा कर्तव्य भी है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२८. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

११ जून, १९३२

चि० मथुरादास[1],

तुम ऐसा क्यों मानते हो कि मेघजीकी[2] मृत्युके लिए तुम उत्तरदायी हो? यदि तुम जिम्मेदार हो तब तो मैं तुमसे भी कितना ज्यादा होऊँगा? और यदि यह मान भी लो कि तुम उत्तरदायी हो तो अब उसका शोक क्या करना? भूतकालका शोक नहीं करना चाहिए। उसमें से जो-कुछ सीखने लायक हो उसे ग्रहण करके उसे भूल जाना चाहिए।

बुनाईकी पुस्तकके पीछे रात-दिन एक न करके नियमित रूपसे समय देना ही उपयुक्त होगा। जल्दबाजीमें लिखी गई चीज बहुधा अपरिपक्व होती है। यदि विचार परिपक्व हो तो रचना प्रवाहबद्ध भी होगी और शोभायुक्त भी।

मैं एक ही दवा बताता हूँ। क्योंकि अनेक नामोंसे पहचाने जानेवाले रोगोंका मूल एक ही होता है, इसलिए दवा भी एक ही हो सकती है।

मैं चाहता हूँ कि तुम पूरी तरहसे जागरूक हो जाओ। शरीरको कसो और नियमित रूपसे काम करने लगो।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७५४) से।

२९. पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको

११ जून, १९३२

भाई नानाभाई[3],

तुम्हारा कार्ड मिला। मणिलालका पत्र मुझे तो अभी तक मिला नहीं। मेरी मुलाकातें तो बिल्कुल बन्द हो गई हैं। यदि बन्द न हुई होतीं तो भी विशेष अनुमति लिये बिना मेढ़ मुझसे नहीं मिल सकता था। तथापि मणिलालका पत्र आनेपर यदि मैं कोई राय बना सका तो बनाऊँगा। फीनिक्ससे कोई तार नहीं आया है, इसपर से कमसे-कम मैंने तो यह मान लिया है कि मणिलाल और सीता[4] दोनों सकुशल होंगे।

१. मथुरादास पी० आसर, आश्रमके एक अनुभवी बुनकर और खादी कार्यकर्ता।

२. आश्रमके उन तीन बच्चोंमें से एक जो चेचकके शिकार हुए थे; गांधीजीकी सलाहपर उन्हें टीका नहीं लगाया गया।

३. मणिलाल गांधीके ससुर।

४. मणिलाल गांधीकी पुत्री धैर्यबाला।

सीताके बारेमें तो तुम्हारे कार्डसे ही मालूम हुआ। सुरेन्द्रके पत्रसे पता चला कि वह वीसापुरमें मजेसे है।

तुम दोनोंको बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६८४) से। सी० डब्ल्यू० ४३२९ से भी; सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

३०. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

[११ जून, १९३२][१]

चि० पण्डितजी[२],

मृत्यु-सम्बन्धी लेखमें काकीका[३] नाम बादमें लिया गया है और वह भी महादेवके याद दिलाने पर ही। और चूँकि मैंने दूसरोंकी मृत्युसे तत्व ग्रहण किया था, इसलिए मैंने काकीके बारेमें अधिक नहीं लिखा। इस तरह अन्य मृत व्यक्तियोंके नाम भी छूट गये थे। पूरी तालिका तो वहीं [आश्रममें ही] बननी चाहिए।

रसिककी[४] मृत्युका इस लेखमें उल्लेख नहीं था, क्योंकि वह आश्रमके बाहरका व्यक्ति था। मगनलालका जिक्र कैसे किया गया वह तो लेखमें ही बताया गया है। मथुरी[५] जब मुझे मिली थी तब वह ठीक थी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २३०) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

३१. पत्र : जमनाबहन गांधीको

११ जून, १९३२

चि० जमना[६],

तुम राणावाव चली गईं, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी है। अब वहाँसे तुरन्त चली नहीं आना। सेनेटोरियम किसका है? कहाँ है? आसपास बस्ती है? किराया देना पड़ता है? वहाँ जानेका दुख न मानना। वहाँके गरीबोंसे जानपहचान

१. साधन-सूत्रमें "११-५-१९३२" तारीख दी गई है जो भूल है। मृत्यु-सम्बन्धी लेखकी चर्चासे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र उसके बाद लिखा गया था; देखिए खण्ड ४९, "मृत्यु बोध", ३०-५-१९३२।

२. आश्रममें संगीत-शिक्षक।

३. द० बा० कालेलकरकी पत्नी।

४. हरिलाल गांधीका लड़का, इसकी १९२९ में मृत्यु हो गई थी।

५. ना० मो० खरेकी सुपुत्री।

६. नारणदास गांधीकी पत्नी।

करना। हो सके तो सेवा करना। यह कुछ न बन पड़ता हो तो स्वयं अध्ययन करना, ज्ञान बढ़ाना, कार्यक्षमता बढ़ाना। पुरुषोत्तम[1] साथ है, यह बहुत ही अच्छी बात है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५५) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

३२. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

१२ जून, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मुझे जरा भी लम्बा नहीं लगता, क्योंकि तूने मेरा मनचाहा वर्णन दिया है। मैं सिंहगढ़ तीन बार गया हूँ। एक बार तो तब जब लोकमान्य थे,[2] और हम परस्पर एक दूसरेसे मिले भी बहुत थे। मैंने उनका घर देखा था। यह सच है कि उन्होंने कुछेक नई चीजें लिखी हैं। हरिनारायण आप्टेसे[3] मैं मिला था। उनके उपन्यास पढ़नेकी इच्छा तो बहुत है, लेकिन फिलहाल कोई नई चीज हाथमें लेनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। उर्दू, अर्थशास्त्र, आकाश-दर्शन, चरखा और पत्र-व्यवहार इन सबको ही मैं ज्यों-त्यों करके पूरा कर पाता हूँ और इसके अतिरिक्त बीच-बीचमें और भी बहुत कुछ पढ़ना होता है।

जेल-अधीक्षक[4] के बारेमें तूने जो लिखा है वह सच है। मैं सब-कुछ देख-समझ सका था। लेकिन हमें यह सब सहन करना चाहिए। एक व्यक्तिके रूपमें वह बुरा नहीं है। लेकिन अधिकार बुरी चीज है। और फिर यह अधिकार भी कहाँ है? इसलिए हमें इस तरहसे सोचना चाहिए। यह कितनी अच्छी बात है कि बुरी परिस्थितियोंमें भी [उसमें] थोड़ी बहुत इन्सानियत बच गई है? और फिर कौन जाने हम उस स्थितिमें होते तो कितने गिर जाते? तुझे जो अनुभव हुआ वैसे अनुभव तो होते ही रहेंगे। सहनशक्ति, उदारता, धीरज, विवेक इन्हीं बातोंसे आते हैं। सब-कुछ अनुकूल हो तो हर कोई ऐसा आचरण कर सकता है जो प्रशंसनीय हो।

"अब सन्तोष हुआ न" से मेरा कोई अभिप्राय नहीं था। यह तो मेरे मुँहसे सहज ही निकल गया। सुशीलाको भले ही बुरा न लगा हो, लेकिन मुझे लगा। उसे आने देनेके बाद मुझे उससे थोड़ी बातें करनी चाहिए थीं, लेकिन समय न होनेके कारण जमनादासके बारेमें पूछकर ही सन्तोष करना पड़ा। उसे आशीर्वाद।

१. जमनाबहनका पुत्र।

२. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४०१।

३. मराठी उपन्यासकार।

४. यरवडा सेंट्रल जेलके, मेजर भण्डारी।

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धमें मैंने लिखनेकी इच्छा तो की थी। लेकिन यदि तू खास प्रश्न लिख भेजे तो अच्छा होगा। अंग्रेजीका अभ्यास अभी बन्द नहीं करना है। मेरे कहनेका आशय यही था कि नये विद्यार्थियोंको अमुक विषय सीखनेसे पहले और कुछ नहीं सिखाना चाहिए। नारणदासके पत्रमें मैंने सब कुछ लिखा है।

तेरा शरीर ताँबेका-सा होना चाहिए। यदि मछलीको निषिद्ध न मानती हो और यदि तुझे लगे कि उसे खानेसे शरीर अच्छा रहेगा तो तू बाहर जाकर खा सकती है।[1] इमाम साहब ऐसा ही करते थे। इस बारेमें ज्यादा चर्चा करना चाहो तो करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२८९) से। सी० डब्ल्यू० ६७३७ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३३. पत्र : नारणदास गांधीको

८/१३ जून, १९३२

चि० नारणदास,

आज तुम्हारी डाक मिलनेसे पहले पोस्टकार्ड मिल गया था। लेकिन चूँकि कलकी डाकमें मैंने नारायणप्पाके बारेमें सविस्तार लिखा है इसीसे पोस्टकार्डका उत्तर अलगसे नहीं भेजा। मीराबहनके सम्बन्धमें अस्वीकृतिका जवाब आ गया है। अतएव मैंने बीचमें ही जो निर्णय कर लिया था सो ठीक ही हुआ। इसी कारण आज दुर्गा और आनन्दी[2] आये थे, लेकिन वल्लभभाई और मैं उनसे न मिल सके। महादेव मिल आये। दुःख तो हुआ, लेकिन ऐसे दुःखोंके घूँट पीनेमें ही हमारा धर्म सुरक्षित रह सकता है। अतएव मैंने इस दुःखको सुख माना है।

आश्रमके लोगोंके कार्यका प्रति घंटा एक आना हिसाब रखनेका तुमने जो निश्चय किया है वह ठीक किया है। मुझे लगता है कि इसके जरिये हम भारी खोज कर सकेंगे। यह काम ठीक तरहसे हो इसके लिए प्रत्येक व्यक्तिको समयका ध्यान बराबर रखना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो तुम्हें हर घंटेके बाद घंटी बजानी पड़ेगी अथवा किसी और उपायकी खोज करनी होगी जिससे प्रत्येक व्यक्तिको समयका पता रहे। दूसरा यह कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कामके जो आँकड़े पेश करे वे सही हों। समय ही पैसा है, यदि यह बात अच्छी तरहसे समझ ली जायेगी तो जाने-अनजाने गलत समय लिखाना खोटा सिक्का चलानेके समान होगा। इससे हमारा

१. प्रेमाबहन कंटकके एक डाक्टर मित्रने उन्हें सलाह दी थी कि मछलीका अपना परम्परागत आहार न खानेकी वजहसे उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है।

२. साबरमती आश्रमके लक्ष्मीदास आसरकी पुत्री।

हिसाब-किताब भी गड़बड़ हो जायेगा और हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचेंगे वे भी गलत साबित होंगे। मैं समझता हूँ कि हमें कमसे-कम एक महीने तक प्रत्येक व्यक्तिकी कार्य-सम्बन्धी कतरनको सँभाल कर रखना चाहिए। यह काम आसानीसे हो सके, इसके लिए सबको एक ही मापकी कतरनें दी जानी होंगी, और उसमें जो-कुछ लिखा हो वह साफ-साफ अक्षरोंमें हो। वह लिखवाते समय मनमें यह विचार जरूर आता है कि तुम यदि रोजका हिसाब न भी रखो तो चलेगा। तुम्हारा रोजनामचा तो ये कतरनें ही हैं और ये कतरनें हमेशाके लिए सँभाल कर रखनी हैं, यदि ऐसा विचार हो तो उन्हें चिपकाकर रखा जा सकता है, लेकिन मैं इसकी जरूरत भी नहीं समझता। जैसे-जैसे कतरनें आती जायें, वैसे-वैसे उनमें बताये हुए घंटोंको बहीखातेमें जमा करते जायें। यदि यह प्रश्न उठे कि इस तरह घंटोंको जमा करते हुए किस काममें कितने घंटे गये इसकी खबर नहीं रहेगी तो बहीखातेमें भिन्न-भिन्न कार्योंके शीर्षकके अन्तर्गत घंटे जमा किये जा सकते हैं, लेकिन इसका उपयोग करनेके लिए मेरा खयाल है कि तुम्हें दोहरा हिसाब-किताब रखना होगा। तात्पर्य यह कि (१) नामका और (२) कामका; तभी महीनेके अन्तमें तुरन्त इस निश्चय पर पहुँचा जा सकेगा कि किसने कितने घंटे काम किया और किस काममें हमें कितने घंटे देने पड़े। हमारी जानकारी के लिए इन दोनों प्रकारके आँकड़ोंकी जरूरत होगी, ऐसा मैं अवश्य देखता हूँ। इससे अधिक सुझाव तो मुझे अभी नहीं सूझते। तुम्हारे खुदके एक दिनके हिसाबको मैं समझ सकता हूँ। आवश्यकतानुसार यज्ञके दो घंटोंमें कमी करनी हो तो तुम कर सकते हो। जो व्यक्ति कातकर ही अपने सूतके पैसे चुकाता है वही शुद्ध यज्ञ करता है। इसमें अभी अपने हाथके कते सूतके कपड़े पहननेका लोभ बना हुआ है अर्थात् अच्छा सूत कातनेके पीछे उसका बुना कपड़ा स्वयं पहननेका स्वार्थ छिपा रहता है जबकि यज्ञके रूपमें की गई मजदूरी अथवा वस्तुका निजी उपयोग सर्वथा त्याज्य होना चाहिए। याज्ञिक जितनोंके लिए यज्ञ करता हो उसमें से वह मात्र उतने ही भागका उपयोग कर सकता है अर्थात् हमारे इस यज्ञ-कार्यके पीछे यह कल्पना निहित है कि हम तो यह यज्ञ ३० करोड़ व्यक्तियोंके लिए करते हैं, इसलिए हमारे काते गये सूतका ३० करोड़वाँ भाग हमारे हिस्सेमें भले ही आये। और हमें ऐसा समझना चाहिए कि जो खादी हमें पहननेको मिलती है उसमें यह हिस्सा हमें मिल ही जाता है। मेरी इस मान्यताके विरुद्ध महीन खादीके पक्षमें अनेक दलीलें दी गई हैं और उन्हें मैं समझा भी हूँ तथा इसी कारण यज्ञके शुद्धाशुद्ध रूपको मैंने सहन कर लिया है, लेकिन मन ही मन मैंने इस यज्ञमें निहित दोषको हमेशा देखा है। इसलिए मैं जो दोष तुम्हें बता रहा हूँ यदि तुमने उसे पूर्णतः समझ लिया है तो तुम अपने यज्ञका सारा ही सूत अवश्य दे डालना। उसमें से तुम अपने अथवा जमनाके कपड़े बनवानेके लोभका त्याग कर देना। सारा सूत इकट्ठा होनेपर उसका जो कपड़ा तैयार हो उसमें से अपनी जरूरतका कपड़ा तुम ले लेना। यदि मेरे विचारोंमें तुम्हें कोई दोष दिखाई दे तो मुझे बताना। दोष देखनेके बावजूद यदि इस समय इसपर अमल करना शक्तिके बाहर हो — फिर भले ही उसका कारण तुम स्वयं हो अथवा जमना — तो भी मेरे

सुझाव पर अमल न करना। यदि कोई कार्य-विशेष हमने आज तक न किया हो और कलसे करने लग जायें तो यदि वह विवेकपूर्वक किया गया हो तो उससे आनन्द की धारा बह निकलती है और हमारे सिरसे एक प्रकारका बोझ उतरता मालूम होता है। तुम्हें जबतक ऐसा अनुभव न हो तबतक मेरे सुझावको अमलमें न लाना। जैसा कि मैं अपने एक पिछले पत्रमें लिख गया हूँ, मेरी इच्छा तो यही है कि सबका यज्ञ दोषरहित हो, लेकिन जबतक सब लोग मेरे विचारोंको समझ नहीं लेते तबतक मुझे प्रतीक्षा करनी है। लेकिन तुम्हारे पत्रपर से मैं देखता हूँ कि सब लोग यहाँ तक पहुँच गये हैं कि अन्तिम कदम यदि उसमें [जिसे करनेके लिए वे सहमत हैं] नहीं आ पाया हो तो उसे लेना मुश्किल नहीं है। तुम्हारे पत्रका मैंने यह अर्थ लगाया है कि १२.३० से १.३० बजे तक सब कोई बारामदेमें बैठकर यज्ञ करेंगे और वहाँ जो सूत काता जायेगा उसे वहींका वहीं दे देंगे। इसका शब्दार्थ तो यह हुआ कि यह सूत पैसा चुकाकर भी अपने लिए नहीं खरीदा जायेगा और यदि यह बात सबपर लागू होती है तो तुम्हारा एक घंटेका सूत भी इसी तरह दे दिया जायेगा। लेकिन इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि एक बार सूत दे देनेके बाद यदि कोई अपने हाथका सूत अपने लिए खरीदना चाहे तो खरीद सकता है। यदि ऐसी बात हो तो इसमें उस हदतक दोष ही रहेगा जैसा मैंने ऊपर लिखा है। इसे दूर करनेके लिए यदि सब लोग सहमत हों तो अच्छा है। लेकिन सहमत होनेका अर्थ यह है कि आजतक जितनी सावधानीके साथ, इस खयालसे कि यह सूत अपने इस्तेमालके लिए काता जा रहा है, हम सूत कातते थ, अब उससे कहीं अधिक सावधानीके साथ काता जाना चाहिए।

पिछले १०-१२ दिनोंसे मैं इतनी खराब पूनियोंसे सूत कात रहा हूँ जितनी खराब पूनियोंसे पहले कभी नहीं काता। ऐसा मैं जानबूझकर कर रहा हूँ। मैंने प्रेम-लीलाबहनसे रुई मँगवाई थी। उसके उत्तरमें उन्होंने तुरन्त मुझे पूनियाँ भेज दीं। ये पूनियाँ उन्हींमें से हैं। इन पूनियोंको फेंका तो नहीं जा सकता। यह तो निठल्ला-पन होगा। ये बहनोंको भी नहीं भेजी जा सकतीं। यदि ये कातनेके लायक हों तो इन्हें कातनेके लिए मैं अपने-आपको दुगुना ज्यादा योग्य मानता हूँ। इसीसे मैंने इनसे कातनेका निश्चय किया है। इसपर से मैं देख सकता हूँ कि अच्छी पूनीमें और खराब पूनीमें कितना ज्यादा अन्तर है। यह बात मैं हमेशासे जानता आया हूँ। लेकिन इसका अनुभव तो मैंने इस बार ही किया है, क्योंकि सामान्यतया मेरे हिस्से तो अच्छी पूनी ही आती है। इसलिए किसी भी दिन ऐसी खराब पूनी कातनेकी बात मुझे याद नहीं आती और अच्छी रुई क्या कर सकती है, इसका अनुभव मुझे महादेवकी कताईसे हो रहा है।

यह सब लिखनेका उद्देश्य केवल इतना ही है कि यदि हम यज्ञार्थ अच्छेसे-अच्छा सूत कातना चाहते हों तो हमारी पूनी भी अच्छीसे-अच्छी होनी चाहिए, रुई बिल्कुल साफ होनी चाहिए और चरखा भी अच्छी स्थितिमें होना चाहिए। इतना हो तो यज्ञका घंटा किसीके लिए भी भारी न पड़े; इतना ही नहीं अपितु सब एक साथ

बैठकर मौन भावसे कातें तो अच्छी तरहसे चलते हुए चरखोंसे इतनी मधुर संगीत-लहरी बह निकले कि एक घंटा एक पलमें ही बीत जाये और सारा समय आनन्दसे बीत जाये। इस सबके पीछे यज्ञके प्रति प्रेम-भाव तो निहित ही है। अत्यन्त दिलचस्प कही जानेवाली वस्तु भी जिसे समझमें न आती हो अथवा जिसे रुचिकर न लगती हो तो उससे उसे उकताहट ही होगी और इस तरह मेरा बहीखाता पुराण और उसके अन्तर्गत यज्ञ पुराण समाप्त होता है।

मुलाकात बन्द हो जानेकी बात तो मैं लिख ही चुका हूँ। मेरे हाथके बारेमें जबतक मैं न कहूँ तबतक चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि मैं उसके बारेमें कुछ नहीं छिपाता; छिपाना मैं अनावश्यक समझता हूँ। हमपर जो गुजरे उसे हमें सहन करना सीखना है। तब दर्द आदिको छिपाना तो दोष माना जायेगा। अभी तो बायें हाथमें प्लास्टर लगा है। इसलिए यदि कोई देखे तो यह करुणाजनक ही लगेगा जबकि दया करनेका कोई कारण ही नहीं है। यदि इस कुहनीमें दर्द होनेका कारण मेरा उससे जरूरतसे ज्यादा काम लेना ही हो तो स्पष्ट है कि उसे पूरा-पूरा आराम दिया जाना चाहिए। और उसे आराम देनेका तरीका यदि उसपर प्लास्टर लगाना है तो लगा दिया गया है। अब इसका परिणाम क्या निकलेगा यह तो एक-दो सप्ताहमें मालूम होगा और यदि आरामकी ही जरूरत हुई तो बाहरसे जिस सहायताकी आवश्यकता महसूस होगी उसे जेल-अधिकारी स्वयं प्राप्त करेंगे। दूसरी तरहसे मेरी तबीयत अच्छी ही कही जा सकती है। मेरा वजन १०६$\frac{१}{२}$ पौंड है, इसलिए कह सकते हैं कि वह बढ़ रहा है। एक ही हाथ काम देता है इसके बावजूद, और खराब पूनोंके साथ माथापच्ची करनेके बावजूद, मैं हमेशा २०० तार कात सकता हूँ। दूसरे अध्ययन आदि भी चल पाते हैं। बालकके समान मैं बड़ी उर्दू कापी बुकमें लिखता हूँ। यह सब-कुछ अगर तबीयत ठीक न हो तो नहीं किया जा सकता, मन अवश्य इन्कार कर दे।

जयन्तीप्रसादकी लड़कीके बारेमें मैं तुम्हारे निर्णयको बिल्कुल ठीक मानता हूँ। अभी नया बोझ नहीं ही उठाना चाहिए। लेकिन यदि यह लड़की अपनी देखभाल स्वयं कर सके और तन्दुरुस्त हो तो इसे लेनेका मुझे लोभ अवश्य होगा।

चिमनलालको[1] हर सम्भव यत्न करके अपने शरीरको सुधार लेना चाहिए। पारनेरकरको[2] अब तुम उसके पुरुषार्थपर छोड़ देना। वह रह सकता हो तो हमें उसको अपने साथ रखना चाहिए। न रह सके तो आग्रह करनेकी जरूरत नहीं। यहाँ भी 'गीता' का वह श्लोक[3] लागू होता है कि एक सीमाके बाद निग्रह क्या कर सकता है?

१. एक पुराने आश्रमवासी, दमेके मरीज़।
२. यशवन्त महादेव पारनेरकर; पशु-पालनके विशेषज्ञ।
३. सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥
३, ३३

सावित्री बहनका पता वहाँ नहीं मिलता, इसका अर्थ यही हुआ न [कि] फिलहाल उसके पत्र वहाँ नहीं आते हैं। लेकिन इनके साथ हमारे बहुत पुराने सम्बन्ध हैं। इनके पुराने पत्र भी कहीं पड़े होंगे और यदि नाम, पता कहीं नोट किये जाते हैं तो उनका नाम-पता भी कहीं-न-कहीं मिलना चाहिए। प्रेसमें यदि कोई रहता हो तो उससे उनका पता मिलना चाहिए। और फिर उन्होंने मुझपर जो पुस्तक लिखी है वह हमारे यहाँ है, जिसमें उन्होंने मेरे कुछ पत्र दिये हैं। सम्भव है पता वहाँसे मिल जाये। लेकिन इसके लिए मैं तुम्हारा बहुत ज्यादा समय बरबाद नहीं करना चाहता।

फादर एल्विनने[1] यह नहीं बताया कि उन्होंने ईसाई ढंगकी प्रार्थनाके लिए शुक्रवारका सुझाव क्यों दिया है? रविवारकी शामको पवित्र हृदय ईसाई गिरजा-घरोंमें गये हुए होते हैं और विशेष क्रियाओंमें लगे रहते हैं, अतएव इस प्रकारके सार्वजनिक मिलनके लिए कदाचित् रविवार अनुकूल न बैठे और चूँकि शुक्रवार बहुत करके ईसामसीहके सूलीपर चढ़नेका दिन है इसीसे उन्होंने शुक्रवार पसन्द किया होगा। पर यह तो मेरी कल्पना-मात्र है। एक दिन इस्लामी भजन भी रखा जाये, यह कल्पना मुझे बड़ी पसन्द है। पर यदि शुक्रवार हमें न मिल पाये तो गुरुवार रहे। गुरुवार यानी जुमेरात। जुमेरात भी इस्लाममें शुभ रात्रि मानी जाती है, ऐसा मेरा खयाल है। पर हमारे लिए तो सारे ही मुहूर्त अच्छे हैं। भावना शुद्ध हो, इतना ही पर्याप्त है।

सूटकेसकी खबर हमने भी समाचारपत्रोंमें यहाँ पढ़ी थी। उसके आधारपर महादेवका खयाल है कि सन्दूक खो ही गया होगा। आलूविहारी तो हमारे साथ था और हमारे दलमें था और लगता है समाचारपत्रोंमें यह बात देखकर वहाँ पहुँच गया है। इस सूटकेसमें किसके कपड़े और किताबें होंगी, इसका तो महादेवको ही ध्यान नहीं है, मुझे तो हो ही कैसे सकता है? पर अब जाकर यह सूटकेस ठीक स्थानपर पहुँचा है। कदाचित् आलूविहारी वह सूटकेस तुम्हें भेजेगा अथवा उसे जैसा ठीक लगेगा वैसा करेगा। अवश्य ही उसका पत्र मुझे मिलेगा।

मुझे हमेशा यही उचित लगा है कि आश्रमम नवागन्तुकोंको तुरन्त अंग्रेजी शुरू नहीं करवानी चाहिए। मेरी मान्यता यह है कि नित्यकर्मके लिए आवश्यक संस्कृत आनी चाहिए, हिन्दी आनी चाहिए, उर्दू लिपिका ज्ञान हो, भजनोंमें साथ देने लायक संगीतकी समझ होनी चाहिए और रुई-सम्बन्धी समस्त क्रियाओंको सीख लें, इसके बाद ही वे चाहें तो अंग्रेजी अवश्य सीखें। उपरोक्त कार्यक्रमको पूरा कर पानेके लिए मैं सामान्य व्यक्तिके लिए एक वर्षकी अवधि पर्याप्त समझता हूँ। लेकिन यह अवधि किसीको कम तथा किसीको ज्यादा भी लग सकती है। जो लोग आश्रममें अपना जीवन व्यतीत करनेके लिए आये हैं अथवा जो थोड़ी मुद्दतके लिए ही सही लेकिन सेवाभावसे आये हैं, उन्हें अंग्रेजीका मोह तो होना ही नहीं चाहिए और जिसे मोह हो उसे जान लेना चाहिए कि आश्रममें उसकी इस इच्छाकी पूर्ति नहीं हो

१. वेरियर एल्विन।

सकती। इसका अर्थ कोई व्यक्ति यह भी न करे कि हम अंग्रेजीका बहिष्कार किये हुए हैं अथवा हमारे मनमें उस भाषाके प्रति कम आदरभाव है। हमारा उद्देश्य तो उसे उसकी सीमासे आगे नहीं ले जाना है। अनेक लोगोंके लिए अंग्रेजी भाषा सेवाके अर्थ भी उपयोगी है, लेकिन आश्रममें उसका ज्ञान आश्रमके उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए तथा आश्रमकी सुविधानुसार ही दिया जा सकता है। और इतने धैर्यकी आशा हम आश्रममें रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे रख सकते ही हैं।

११ जून, १९३२

इमाम साहबकी कब्रके लिए भाई प्यारअलीने खतीब साहबसे पूछा था। उनका कहना है कि कब्र बनवाना इस्लामकी दृष्टिसे अनुचित है। अतः वह जगह सुरक्षित रहे तथा उसकी पहचान बनी रहे उस दृष्टिसे उसपर पत्थर रखवा देना चाहिए। तुम अपने साथ किसी मुसलमानको लेकर जाना अथवा भेजना और वहाँ पत्थर रखवा देना। यदि हम अपने ही हाथोंसे रख सकें तो यों रख दिये जायें।

मौनवार, १३ जून, १९३२

आज तुम्हारा पत्र मिला है। कल (मंगलवार)को छुट्टी है इसीलिए आज ही पत्र भेजता हूँ। मैंने सीतला सहायको[१] जो पत्र लिखा है उसे पढ़ जाना। तथापि अन्ततः तुम्हें जो ठीक लगे सो करना। इसके बारेमें मैं यहाँसे कोई अन्तिम निर्णय न करूँ, यही उचित है। तुम जो करोगे वह मुझे उचित लगेगा। मेरे पास निर्णयके लिए पूरी जानकारी भी नहीं है।

माधवलाल आजकल कहाँ है? मेरा खयाल था कि वह जेलमें है, लेकिन विट्ठल लिखता है कि वह जेलमें नहीं है।

इस सप्ताह मैं लेख नहीं भेज रहा हूँ। समय भी नहीं है और तुम्हें लिखा यह पत्र भी लेख जैसा ही बन गया है।

बायें हाथसे प्लास्टर उतार दिया है। कोई फायदा नहीं जान पड़ा। इससे उसका कारण कुछ और ही होना चाहिए। लेकिन चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। मीराबहन आजकल अलोना (बिना नमकका) भोजन कर रही है। इसलिए उसका आग्रह है कि मैं भी ऐसा ही करूँ। कलसे शुरू किया है। मेरे लिए तो यह खेलके समान है, क्योंकि मैंने आठ वर्ष तक अलोना भोजन किया था। अब फिर उसका अनुभव होगा। कोई लिखने लायक बात हुई तो बीचमें लिखूँगा।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३२ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

१. उत्तर प्रदेशके एक खादी कार्यकर्ता।

३४. पत्र : भारतीको

१३ जून, १९३२

सुन्दर लिखावटसे युक्त तेरा पत्र मिला।[1] ऐसे पत्रोंसे मैं ऊब जाऊँ, सो बात नहीं।

तुम भाई-बहन वज्रके समान कठोर और मजबूत बनो। सर्दी-गर्मी सहन कर सको, यह बात तो मुझे अच्छी लगती है। लेकिन शिमलाकी इस गर्मीमें मैं तुम पर यह प्रयोग नहीं कर सकता। ऐसी सहनशक्तिका विकास विधिपूर्वक और धीरे-धीरे हो तभी फलीभूत होता है। कोमल परिस्थितियोंमें रहनेवाला व्यक्ति समय आनेपर कठिन बन सकता है, ऐसा मानना बड़ी भूल है। यह तो प्रकृतिके विरुद्ध जानेके समान है। इस तरहकी भूलके सैकड़ों उदाहरण मेरी दृष्टिके सामने हैं।

साहित्य पढ़ना मुझे निश्चय ही अच्छा लगता है। विद्यार्थी जीवनमें मैं स्कूली शिक्षासे आगे नहीं जा सका। उसके बाद तो एकके बाद एक ऐसे धन्धे आ पड़े कि पठन-पाठन कम ही हो सका, और जो हुआ सो जेलमें ही हुआ। लेकिन इससे मैंने बहुत खोया हो, ऐसा मुझे नहीं दिखाई देता। विचार करनेको बहुत मिला और अनुभवकी पाठशालाका अभ्यास तो पढ़नेकी अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी होता ही है।

'कलाके लिए कला'का दावा करनेवाले लोग भी वस्तुत: देखा जाये तो वैसा नहीं कर सकते। कलाका जीवनमें स्थान है, लेकिन कला किसे कहा जाये यह एक अलहदा सवाल है। लेकिन हम सबको जिस मार्गका अनुसरण करना है उसमें कला आदि साधन मात्र हैं। यही जब साध्य हो जाती है तब वह मनुष्यके लिए बन्धन रूप बन जाती है और मनुष्यके पतनका कारण होती है।

ईश्वर अर्थात् 'सत्य'। थोड़े वर्षोंसे मैं यह न कहकर कि 'ईश्वर सत्य है', यह कहने लगा हूँ कि 'सत्य ही ईश्वर है'। यही वाक्य मुझे अधिक उचित जान पड़ता है। सत्यके अतिरिक्त इस संसारमें अन्य कुछ नहीं।

यहाँ सत्यकी व्यापक व्याख्या करनी होगी। यह सत्य चेतनमय है। यह सत्य रूपी ईश्वर और इसका विधान भिन्न नहीं है अपितु एक ही है; इसीसे यह भी चेतन-मय है। इसलिए यह जगत सत्यमय अथवा नियमबद्ध है, ऐसा कहना एक समान है। इस सत्यमें अनन्त शक्ति समाहित है। 'गीता'के दशम अध्यायके अनुसार कहा जाये तो उसके एक अंशमात्रसे यह संसार टिका हुआ है। इसीलिए जहाँ-जहाँ ईश्वर शब्द आता है वहाँ-वहाँ यदि तुम सत्य शब्दका व्यवहार करोगी तो उससे जो अर्थ निकलेगा, उससे ईश्वर-सम्बन्धी मेरे अभिप्रायको समझा जा सकता है।

१. भारतीने अपने इस पत्रमें गांधीजीसे पूछा था कि क्या उन्हें साहित्यमें दिलचस्पी है, क्या वे 'कलाके लिए कला'के सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं और ईश्वरके सम्बन्धमें उनकी क्या धारणा है?

जो ईश्वर है — भले ही उसे हम सत्यके नामसे पुकारें — उसकी आराधना करना हमारा धर्म हो जाता है। हम जिसकी आराधना करते हैं स्वयं भी ठीक वैसे ही बन जाते हैं। प्रार्थनाका अर्थ इससे विशेष कुछ नहीं है। लेकिन इस विवेचनसे सब-कुछ समझमें तो आ जाता है न? सत्य हमारे हृदयमें बसता है, लेकिन हमें उसका ज्ञान नहीं है, अथवा थोड़ा है। यह हार्दिक प्रार्थनासे ही सम्भव हो सकता है[१] . . .।

मेरी लिखावट पढ़नेमें कठिनाई होती है क्या? मैं यह पत्र जिस लिफाफेमें भेज रहा हूँ वह सरदारकी कृति है। जितने व्यर्थके और कोरे कागज उनके हाथमें आते हैं उनका इस तरह उपयोग करनेमें वे अपना बहुत-सा समय व्यतीत करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३५. पत्र : मैत्री गिरिको

१४ जून, १९३२

चि० मैत्री[२],

तेरा पत्र मिला। तुझे दुखी होनेका कोई कारण न था। तुझसे पूछा; ऐसा तो मैं सब लड़कियोंसे, जो बड़ी हो गई हों, पूछता हूँ। तुममें से किसीको विवाह करने की इच्छा हो तो उसे मैं स्वाभाविक मानता हूँ। मनमें घुलते रहनेसे तो मुझसे सब बात कह देना अच्छा है न? लेकिन यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा न हो तो यह बात मुझे अवश्य पसन्द आयेगी। मैंने तो तुझे निर्भय करनेके लिए ही पूछा था। लेकिन यदि फिलहाल तेरा विवाह करनेका मन ही न हो तो यह तो सबसे बढ़िया बात है। लेकिन ऐसी पवित्रता बनाये रखनेके लिए भगवद्भक्ति और परोपकारी उद्यमकी बहुत आवश्यकता है, यह अच्छी तरह समझ लेना। तुम सब अपनी सेहत सुधारना। कृष्णमैया देवी[३] की तबीयत कैसी रहती है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३६) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ छूटा हुआ है।
२. दलबहादुर गिरिकी पुत्री।
३. दलबहादुर गिरिकी विधवा।

३६. पत्र : शामल आर० रावलको

१४ जून, १९३२

चि० शामल[1],

तेरा पत्र मिला। भाई अथवा अन्य लोग चाहे कितना ही दबाव क्यों न डालें तुझे विनयपूर्वक अपने निश्चय पर दृढ़ रहना चाहिए और जबतक मन पर काबू रख सके तबतक विवाह नहीं करना चाहिए। इसमें अनसूयाबहन[2] की मदद लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४१) से। सी० डब्ल्यू० २८७७ से भी; सौजन्य : शामल आर० रावल

३७. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ जून, १९३२

चि० नारणदास,

कलकी[3] डाक भेजनेके बाद महावीरका पत्र मिला कि उसे पैसे नहीं मिले। उसने प्रति व्यक्ति १५ रुपये खर्चका अनुमान लगाया है। कितना होना चाहिए, सो तुम विचार करना। मैत्री लिखती है कि फिलहाल उसका विवाह करनेका कोई इरादा नहीं है।

वह जबतक दार्जिलिंगमें रहे तबतक उसे रहने देना चाहिए, यह बात मुझे तो ठीक लगती है।

बापू

चि० नारणदास गांधी
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. नवजीवन प्रेसमें एक कार्यकर्ता।

२. अहमदाबादके एक मिल-मालिक अम्बालाल साराभाईकी बहन, जो अहमदाबादके श्रमिक संघसे सम्बन्धित थीं।

३. कृष्णमैया देवीका पुत्र।

३८. पत्र : तारामती म० त्रिकमजीको[1]

१४ जून, १९३२

मीराबहनको मिलनेकी मनाही होनेके कारण मुझे अन्य सब लोगोंसे मिलना बन्द करना पड़ा है। जब लोगोंसे मिलनेकी छूट मिलेगी मैं तुरन्त लिखूंगा।

[गजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

३९. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१५ जून, १९३२

प्रिय अगाथा[2],

तुम्हारा पत्र मिला। प्रतिवन्धोंका ईमानदारीसे पालन करके तुम बिल्कुल ठीक कर रही हो। वस्तुतः दीर्घकालीन अभ्यासके कारण कौतूहलकी सारी भावना मुझमें समाप्त हो गई है। एक कैदीका कौतूहल व्यर्थ ही है, क्योंकि यदि उसे अप्रत्यक्ष या अवैध तरीकोंसे कुछ चीजोंकी जानकारी हो भी जाये तो भी वह कुछ नहीं कर सकता। और जो चीज शायद इससे भी बड़ी है वह यह कि मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि मेरे मित्रोंको जबतक हमारे अनुष्ठानकी न्याय्यतामें आस्था है तब तक वे अपनी भरसक जो कर सकते हैं, करेंगे।

हाँ, महादेवको पिछले हफ्ते ही अपनी पत्नी और पुत्रसे मुलाकात करने दी गई थी। उसे प्रतिमाह एक बार मुलाकातियोंसे मिलनेका हक है।

हम दोनोंके प्यार सहित,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४५४) से।

१. मथुरादास त्रिकमजीकी पत्नी।

२. इंडिया कंसिलिएशन ग्रुप (१९३१) की मन्त्री।

४०. पत्र : भाऊ पानसेको

१५ जून, १९३२

चि० भाउ,

मैं पिछले सप्ताह तुम्हारे छः तारीखके पत्रका उत्तर नहीं दे पाया और इस सप्ताह तुम्हारा दूसरा पत्र भी मिला। अबसे विनोबाके प्रवचन न भेजनेकी तुम्हारी बात मेरी समझमें आई। विनोबाका प्रतिबन्ध उचित है।

हाँ, 'रामायण' के चित्रोंको लेकर मुझे अवश्य गलतफहमी हुई। कल्पनामें तो चाहे जैसा चित्र खींचा जाये और उसका ध्यान किया जाये, इसमें मैं कोई दोष नहीं मानता। लेकिन यदि 'गीतामाता'के ध्यानसे सन्तोष हो तो अन्य किसी चीजकी क्या जरूरत है? 'गीता' का ध्यान दो तरहसे हो सकता है। एक तो उसे मातृरूपा माना गया है, अतः अपनी माताके ही चित्रका—यदि उसके चित्रकी आवश्यकता हो तो (और यदि वह मर गई हो तो)—ध्यान किया जाये और ध्यान करते हुए उसमें कामधेनुका आरोपण किया जाये। अथवा जैसा मन करे वैसा काल्पनिक चित्र मनमें चित्रित किया जाये। उसे गौमाताका रूप दिया जाये तो भी ठीक होगा। यदि दूसरी तरह बन पड़ता हो तो उसे मैं ज्यादा ठीक समझता हूँ। हम जिस अध्यायका पाठ सदा करते हों, उसमें से अथवा किसी भी अध्यायके किसी भी श्लोक अथवा किसी भी शब्दका ध्यान करनेका मतलब होता है उसका चिन्तन करना। 'गीता' में जितने शब्द हैं वे सब गीतामाताके आभूषण हैं और जिस तरह किसी प्रियजनके किसी भी आभूषणका विचार मनमें लानेका अर्थ उस प्रियजनका ध्यान धरना है, उसी तरह 'गीता' के किसी भी शब्दका ध्यान करना स्वयं 'गीता'का ध्यान करना है। लेकिन यदि किसी व्यक्तिको इसके अलावा कोई और तरीका उपलब्ध हो तो वह उस तरहसे ध्यान कर सकता है। जितने दिमाग, उतनी ही विविधता होती है। कोई भी दो व्यक्ति एक ही वस्तुके बारेमें एक जैसा नहीं सोचते। दोनोंके वर्णन और कल्पनामें कुछ-न-कुछ भेद तो अवश्य होगा ही।

छठे अध्यायके अनुसार की गई थोड़ी-सी भी साधना निरर्थक नहीं जाती और जहाँसे छूट गई हो वहाँसे दूसरे जन्ममें अग्रसर होती है। इसी तरह जिस व्यक्तिके मनमें कल्याण मार्गकी ओर प्रवृत्त होनेकी इच्छा तो है लेकिन उसे आचरणमें उतारनेकी शक्ति नहीं, उसकी वह इच्छा दूसरे जन्ममें और भी दृढ़ हो इसका अवसर उसे अवश्य प्राप्त होगा। इसके बारेमें मेरे मनमें तो कोई शंका नहीं है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं किया जा सकता कि हम इस जन्ममें शिथिल–प्रयत्न हों तो भी हर्ज नहीं। ऐसी इच्छाको मैं इच्छा ही नहीं मानता, अथवा वह इच्छा बौद्धिक है, हार्दिक नहीं, और बौद्धिक इच्छाका तो कोई स्थान हीं नहीं है, क्योंकि

यह इच्छा मृत्युके बाद नहीं रहती। लेकिन जो इच्छा हृदयमें घर कर गई है, उसके पीछे प्रयत्न तो होना ही चाहिए, लेकिन हो सकता है कि अनेक संयोगोंके कारण, शारीरिक दुर्बलताके कारण, वह इच्छा इस जन्ममें पूरी न की जा सके——और ऐसा अनुभव हम रोज करते हैं। लेकिन इस इच्छाको लेकर यदि जीव अपना देह-त्याग करता है तो दूसरे जन्ममें इस जन्मकी चिन्ताएँ कम हो जाती हैं तथा उसकी इच्छा फलवती होती है, अथवा वह इच्छा और भी दृढ़ तो होती ही है। और इस तरह कल्याणकृत व्यक्ति तो उत्तरोत्तर आगे बढ़ता ही चला जाता है।

ज्ञानेश्वर महाराजने निवृत्तिनाथके[1] जीवनकालमें ही उनका ध्यान किया हो तो उन्होंने भले ही ऐसा किया हो, लेकिन यह हमारे लिए अनुकरणीय नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ अभिप्राय है। जिसका हम ध्यान करें वह पूर्णताको प्राप्त व्यक्ति होना चाहिए। जीवित व्यक्तिके लिए पूर्णताका आरोपण करना बिल्कुल ठीक नहीं है और न यह आवश्यक ही है। लेकिन हो सकता है कि ज्ञानेश्वर महाराजने शरीरधारी व्यक्ति निवृत्तिनाथका ध्यान न किया हो अपितु अपनी कल्पनानुसार पूर्णताको प्राप्त निवृत्तिनाथका ध्यान किया हो। लेकिन इस प्रपंचमें हम क्यों पड़ें? और जब जीवित मूर्तिका ध्यान धरनेका प्रश्न उठता है उस समय काल्पनिक मूर्तिका कोई स्थान नहीं रह जाता और इसके उल्लेखसे हम जिस निर्णयपर पहुँचेंगे वह मतिभ्रम पैदा करनेवाला होगा।

पहले अध्यायमें जो नाम दिये गये हैं वे मेरे मतानुसार खास नामोंकी अपेक्षा गुणवाचक अधिक हैं तथा दैवी और आसुरी वृत्तियोंके बीच संग्रामका वर्णन करते हुए कविने इन वृत्तियोंको मूर्तिमान रूप दे दिया है। पांडवों और कौरवोंके बीच हस्तिनापुर के निकट सचमुच युद्ध हुआ होगा, इस कल्पनामें इस बातका कोई निषेध नहीं है। उस युगकी वैसी किसी महान घटनाका दृष्टान्त लेकर कविने एक महान ग्रन्थकी रचना की है, ऐसी मेरी कल्पना है। इसमें भूल हो सकती है अथवा ये सब सचमुच ऐतिहासिक नाम हों तो ऐतिहासिक आरम्भके लिए इन नामोंका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा तथा विषय-वस्तुके विवेचनकी दृष्टिसे पहला अध्याय आवश्यक है इसलिए 'गीता' पाठ करते समय इसे पढ़ जाना भी जरूरी है।

किसीकी बनाई हुई पूनीसे कातना अपूर्ण यज्ञ अवश्य ही है। यह सम्भव है कि अपंग हो जानेके कारण मेरे जैसे लोग पूनी न बना सकें, लेकिन जिनमें पर्याप्त शक्ति है उन लोगोंको तो अपनी पूनी स्वयं बनानी ही चाहिए।

तकली पूरी तरहसे सीख लेनेकी बातको मैं एक आवश्यकता मानता हूँ। मैं जानता हूँ कि विनोबाकी यह मान्यता है कि कताई-यज्ञके लिए यह अधिक सरल साधन है, मैंने इस सम्बन्धमें कोई निर्णय नहीं किया है और विनोबाके साथ बैठे बिना मुझे निश्चय करना

१. ज्ञानेश्वर महाराजके बड़े भाई।

भी नहीं है। इसीसे इस सम्बन्धमें उदासीन हूँ। लेकिन तुम इस सुझावके बारेमें नारणदाससे चर्चा करना। मैं भी कर रहा हूँ।

बापू

[पुनश्च :]

अपने कब्जके बारेमें लिखना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३१) से। सी० डब्ल्यू० ४४७४ से भी; सौजन्य : भाउ पानसे

४१. पत्र: मनु गांधीको

१५ जून, १९३२

चि० मनु[1],

तेरा पत्र मिला। जमनादासको[2] लिखे पत्रके साथका पत्र तुझे क्यों नहीं मिला सो समझमें नहीं आता। तेरी बहादुरीकी खूब परीक्षा हो रही है। घबरानेका तनिक भी कारण नहीं है। तू साफ-साफ कह देना कि ठीक बचपनसे ही तू बा और बलीके साथ रही है और हरिलालके साथ रहनेका तेरा कतई कोई इरादा नहीं है। समझदार बच्चों पर माँ-बाप बलात् अपना अधिकार नहीं जमा सकते। इसलिए कहाँ रहना है, यह बात केवल तेरी इच्छा पर निर्भर करती है। तेरी इच्छाके बिना तेरा कोई विवाह कर दे यह तो हो ही नहीं सकता। इसलिए याद रख कि तेरा उद्धार तेरे अपने ही हाथमें है। मैं तुझे इस तरह पत्र लिख कर हिम्मत प्रदान कर सकता हूँ, लेकिन एक कैदीके रूपमें समाचारपत्रोंमें कुछ प्रकाशित नहीं कर सकता; और इसी तरह मेरे पत्र अदालतोंमें नहीं चल सकते। लेकिन इन सबकी कोई जरूरत ही नहीं है, इतना तू निश्चित रूपसे समझ लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५१४) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला

१. हरिलाल गांधीकी पुत्री।

२. जमनादास गांधी, मगनलाल गांधीके छोटे भाई और राजकोट राष्ट्रीय शालाके मुख्याध्यापक।

जहाज चट्टानोंसे टकरा दिये हैं। अतएव तुम्हारे जैसे लोगोंके मनमें मुझ जैसे व्यक्तियों को लेकर जहाँ-जहाँ शंका उठे वहाँ-वहाँ सावधान तो कर ही देना चाहिए। लेकिन सावधान करनेके बावजूद भी यदि वे अपने मार्गका त्याग नहीं करते तो वही उचित मार्ग है ऐसा तुम लोगोंको श्रद्धापूर्वक मान लेना चाहिए। ऐसा करते हुए अनेक बार यह श्रद्धा झूठी होती है, लेकिन समाज-व्यवस्थाको चलानेका जीवनमें अन्य कोई मार्ग नहीं है। मुझे जब लगेगा कि मुझे अमुक सुविधाका उपभोग नहीं करना चाहिए तब उसका त्याग करनेकी शक्ति मुझमें है, ऐसा मुझे कमसे-कम अभी तो लगता है। एक सामान्य कैदीके रूपमें मैंने दक्षिण आफ्रिकामें काफी समय बिताया है।

कृष्णदास[1] के बारेमें तुमने जो सुना है वह कहाँसे सुना है? यह बात तो बिल्कुल गलत है। कृष्णदासको निस्सन्देह निकाला नहीं गया है। कुछेक कारणोंको लेकर उसने ही जानेकी अनुमति चाही। लेकिन छुट्टी लेनेके बाद भी उससे सम्बन्ध तो बना ही हुआ है। किसीके कहनेसे ऐसा कदम उठाना मेरे स्वभावके विरुद्ध है। कृष्णदासके बारेमें मुझे किसीने ऐसी प्रेरणा नहीं दी। लेकिन मैं इस बातका मूल स्रोत जाननेके लिए उत्सुक हूँ। इसलिए यदि वह बता सकने लायक हो तो मुझे बताना।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४३. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

[१६ जून, १९३२ से पूर्व][2]

चि० परसराम,

तुम्हारे पत्रोंके अनुसार बालकोंने अच्छी प्रगति कर ली जान पड़ती है। तकली पर तुम्हारी गति भी अच्छी है। रोज कमसे-कम आधा घंटा तो अवश्य देना और इतने समयमें यदि १६० तार तक पहुँचा जा सके तब तो इसके जैसी और कोई बात ही नहीं है। 'कूलेकी हड्डी' इसका तात्पर्य क्या है? 'कूला' शब्द हिन्दी शब्दकोषमें नहीं मिलता, और हड्डी सूजनेका क्या कारण है? अब सूजन ठीक हुई है अथवा नहीं? यदि ठीक न हुई हो तो उसे दूर करनेके तुरन्त उपाय करने चाहिए।

अब ये रहे महादेवसे पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर :

(१) मैं तुम्हारे और अन्य सबके लिए सवेरे और शामको कमसे-कम आधा घंटा सैर करना अनिवार्य समझता हूँ। एक आसनमें एक घंटेसे ज्यादा बैठे रहनेकी जरूरत नहीं है। एक मिनटके लिए भी आसनको छोड़कर तनिक खड़े हो जाना चाहिए अथवा आसनको बदल लेना चाहिए।

१. १९२१-२२ में गांधीजीके सेक्रेटरी।

२. तिथिका निर्धारण पत्रके पाठमें आये कूल्हेकी हड्डीकी सूजनके आधारपर किया गया है; देखिए "पत्र : परशुराम मेहरोत्राको", १६-६-१९३२।

(२) माता अपने पुत्रसे मिलना चाहे यह बात स्वाभाविक ही है, लेकिन इस इच्छाके प्रति माताको संयमसे काम लेना चाहिए और यदि उसका पुत्र किसी सेवा-कार्यमें लगा हुआ है तो उसे चाहिए कि वह अपनी माँके मोहको दूर करे।

(३) पुत्र यदि हिन्दुस्तानसे बाहर जाये और दस वर्षके लिए वहाँ रहे तो उसका वियोग माताको सहन करना पड़ता है। हिन्दुस्तानमें असंख्य ऐसी मातायें हैं जो शायद जीविकोपार्जनके लिए बाहर जानेवाले पुत्रोंका फिर कभी मुँह भी न देख पाती हों। माताको पत्र द्वारा आश्वासन प्रदान् करना उचित है। उदाहरणों द्वारा और दलीलोंसे जितना मनोरंजन हो सके उतना करना चाहिए।

(४) इस बार मेरा हृदय इतना पत्थर हो गया है कि अदृश्य रूपसे बम्बईकी घटनाओंका यदि उस पर कोई असर हुआ हो तो हो। मुझे स्वयं इसकी कोई जान-कारी नहीं। थोड़ी देर तक विश्वास-भर करके ही शान्त हो गया हूँ, ऐसा लगता है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४८१) से। सी० डब्ल्यू० ४९५६ से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

४४. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१६ जून, १९३२

प्रिय चार्ली,

मुझे तुम्हारा पत्र और अगाथाके पत्रके नीचे तुमने जो चन्द लाइनें घसीटी हैं, वे मिले। यहाँ अखबारोंमें जो-कुछ छपता है उससे तुम्हारी गतिविधियोंका पता मुझे चलता रहता है, लेकिन तुम क्या कर रहे हो इसकी कल्पना मैं अखबारोंकी सहायताके बिना भी कर सकता हूँ।[1] मैं हृदयसे आशा करता हूँ कि चीनमें तुम्हारा अनुष्ठान[2] सफल होगा। कैंटरबरीके नेक डीनको जब चिट्ठी लिखो तब हमारा सप्रेम अभिवादन लिख देना। मुझे पता नहीं कि वह कितने समय तक वहाँ रहेंगे। क्या उनके साथ कोई है? यह कैसी बात है कि तुम्हारी सबसे नई पुस्तक[3] हमें अभी तक नहीं मिली? मैं देखता हूँ कि उसका पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक गया।

हम सबोंके सप्रेम अभिवादन सहित,

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९७४) से।

१. एन्ड्रयूज कांग्रेस नेताओं और ब्रिटिश सरकारके बीच समझौता करानेके उद्देश्यसे लॉर्ड इर्विन, लॉर्ड सैंकी, सर सैमुअल होर और रैमसे मैकडॉनल्डके साथ व्यक्तिगत तौरपर भेंट कर रहे थे।

२. चीनके बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रोंमें कैंटरबरीके डीनके साथ सहायता-कार्यके उद्देश्यसे।

३. व्हाट आई ओ टु क्राइस्ट।

४५. पत्र : मीराबहनको

दुबारा नहीं पढ़ा

१६ जून, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र[1] आज ही आया।

मुझे खुशी है कि तुमने दामोदरदासका घर छोड़ दिया है। अभीतक उसका कोई पत्र न लिखना अनिष्ट-सूचक है। हमें आशा करनी चाहिए कि उसने कोई गलत कार्य नहीं किया है, और न करेगा। उसके बारेमें मेरी राय हमेशा बहुत अच्छी रही है। लेकिन यदि वह वैसा नहीं है तो इस बातका मुझे दुःख रहेगा।

मुझे कोई सन्देह नहीं है कि तुम्हें रखनेमें शान्ताबाईको कोई परेशानी नहीं होने पाये, इसका इतमीनान तुमने कर लिया है।

हाँ, रविवारसे मैंने नमक छोड़ दिया है। चूँकि डाक्टरोंने पट्टी खोल दी है और मालूम हुआ कि उसके लगानेसे कोई आराम नहीं हुआ, इसलिए मुझे तुरन्त तुम्हारा खयाल आया और भान हुआ कि मैं नमक छोड़ दूँ तो तुम्हें ज्यादा इतमीनान होगा। मेरे लिए यह कोई त्याग नहीं था और इसलिए मैंने उसे लेना तुरन्त बन्द कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि डबल रोटी छोड़कर मैंने फुलके लेना शुरू कर दिया। पता नहीं कारण फुलका था या नमक का अभाव, लेकिन दस्त ज्यादा ही ढीला होने लगा। इसलिए कलसे मैं अंगूर, आम और एक सब्जीपर हूँ। इससे बिल्कुल तो नहीं मगर अँतड़ियाँ फौरन ठीक काम करने लगीं। इसलिए मैं कुछ दिन और फुलके और बादाम नहीं लूँगा और देखूँगा कि इसका क्या

१. अपने इस १४ जून, १९३२ के पत्रमें मीराबहनने लिखा था: "मेरी गतिविधियोंके बारेमें जहाँतक सरकार द्वारा आपको लिखे गये पत्रका सवाल है. . .। (आन्दोलनका मैं संचालन कर रही हूँ जरा इसकी कल्पना तो कीजिए — मैं इतनी महत्त्वपूर्ण हूँ यह जानकर मुझे बहुत हँसी आई।) लेकिन अब मैं आपको बता दूँ कि मैं क्या कर रही थी, क्योंकि कुछ ऐसी बातें शायद रही हों जिनकी वजहसे वे शंकालु हो उठे हों। आपने जो काम मेरे जिम्मे छोड़ा था, उसे करनेमें मैं सारे समय व्यस्त थी, लेकिन प्रति सप्ताह अपनी रिपोर्ट आदि तैयार करनेके सिलसिलेमें स्वभावतः मैं अपने मित्रोंसे मुक्त रूपसे मिलती-जुलती थी, जिनमें से कई लोग आन्दोलनके निर्देशनमें सक्रिय भाग ले रहे थे। एक बार मुझे याद है कि मैंने कांग्रेसके तत्कालीन कार्यवाहक अध्यक्षको अपने एक मित्रके बारेमें पत्र लिखा था। यह मित्र उन्हें व्यक्तिगत रूपसे नहीं जानते थे। और कभी-कभी लोग सत्य और अहिंसा सम्बन्धी आपके सिद्धान्तोंको लागू करनेके बारेमें मेरी सलाह लेते थे। विभिन्न 'युद्ध परिषदों' के साथ सम्पर्क रखनेकी बात तो दूर, मैं उनके नाम तक नहीं जानती। १५ मईको अपनी रिहाईके बाद से . . . मैं फिर आपके बताये कामको करनेमें लगी रही हूँ। यह है सारी बात — और जैसा कि आप कहते हैं, हमें ईश्वरकी इच्छामें ही प्रसन्न रहना चाहिए।" गांधीजीने इस पत्रको १८ जून, १९३२ को ई० ई० डॉयलको भेज दिया था।

परिणाम होता है। कल मेरा वजन लिया गया था; १ $\frac{१}{२}$ पौंड घटा। इसमें शिकायत की कोई बात नहीं। ताकत उतनी ही बनी हुई है। नमक न लेनेकी शर्तका यह अर्थ नहीं कि दूध फिरसे लेने लगूँ। अगर दूध फिरसे लेने लगूँ और कुहनीका दर्द जाता रहे, तो उसका कारण दूधको समझना ठीक ही होगा। अगर दूधके बावजूद कुहनीका दर्द नहीं मिटता है और नमक छोड़ देनेसे मिट जाता है, तो यह दावा किया जा सकता है कि प्रयोग सफल हुआ। डा० मेहताको विश्वास है कि भीतरी कोई खराबी नहीं है और जरूरत इतनी ही है कि दर्दवाले अंगको आराम दिया जाये। जहाँतक चरखेका सम्बन्ध है, यह आराम मैं दे रहा हूँ। बहरहाल, नमक खाना बन्द कर ही दिया है। इसलिए मैं उसके दूसरे परिणामों पर निगाह रखूँगा और जरूरत हुई तो दूध लेने लगूँगा। मैं अपने शरीर पर ध्यान दे रहा हूँ। इसलिए चिन्ताका जरा भी कारण नहीं है। और सब बातोंमें शरीर बिल्कुल ठीक है। वल्लभभाई ठीक ही कहते हैं कि अगर कोई भीतरी खराबी होती तो वह शरीरके अन्य भागोंमें फैल जानी चाहिए थी। मैं यह सब ब्योरा आश्रमके पत्रमें नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि मैं तुम्हें जो-कुछ लिखता हूँ वह तुम उन्हें दिखा ही देती हो।

अपने कार्यके सम्बन्धमें तुम जो कहती हो उसे मैं समझता हूँ। देखूँगा इस जानकारीका क्या उपयोग किया जा सकता है।

मेरे खयालसे तुम्हें मालूम ही है कि देवदास बुखारमें पड़ा है। जो तार मिला है उसमें लिखा है कि कोई गम्भीर बात नहीं है। मैंने अधिक ब्यौरेके लिए तार दिया है। और मणिलाल, सुशीला, उनकी लड़की और प्रागजी सब भयंकर मलेरियाके शिकार हो गये थे। परन्तु अत्यन्त दुर्बल होकर भी अन्ततः उन्होंने मलेरियासे पिण्ड छुड़ा लिया दीखता है। सर जेम्स जीनकी पुस्तकमें एक बढ़िया वाक्य है: 'जीवन मृत्युकी ओर गतिशील है।' यों भी कहा जा सकता है कि जिन्दगी मौतकी तैयारी है। पता नहीं क्यों हम उस अनिवार्य और महान घटनाके विचारसे ही काँपने लगते हैं। उसे पहलेसे बेहतर जिन्दगीकी तैयारी समझें तो भी वह महान है। और जो ईश्वरसे डरकर जीनेकी कोशिश करता है, उसके लिए ऐसा ही होना चाहिए।

शान्ताबाईको मेरी याद दिला देना। बेशक तुम दामोदरदाससे अकसर मिलती रहोगी और अपनी सलाहसे उसकी मदद करना। क्या केशव[१] वहाँ है? वह क्या कहता है? उससे कहना कि मुझे सविस्तार लिखे।

हम सबकी तरफसे प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

लिफाफा देखकर तुम वल्लभभाईकी कारीगरीकी प्रशंसा करोगी।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२५) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६९१ से भी।

१. मगनलाल गांधीका पुत्र।

४६. पत्र : नारायणप्पाको

१६ जून, १९३२

हमारे रोजमर्राके काम कितने ही छोटे हों मगर उनसे हम पूरा सन्तोष मानें, तो इसके बराबर और कोई अच्छी बात नहीं है। जो राह देखते हैं, जाग्रत रहते हैं और प्रार्थना करते हैं, उनके लिए ईश्वर बड़े काम और बड़ी जिम्मेदारियाँ जुटा देता है।

[अंग्रेजीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१६ जून, १९३२

चि० परसराम,

तुम्हारी पुस्तिका अभी मुझे नहीं मिली। अखबारकी कतरन महादेव पढ़ लेगा। सूजनका[1] उपचार करना और उसे दूर करना।

विमलके[2] बड़े भाईके लिए तुम दौड़े हुए नहीं गये, यह ठीक किया लेकिन तुम्हें स्वयंको भी ऐसा ही लगना चाहिए। वह भाईकी देखरेखमें है और वह उनकी सार-सँभाल कर रहा है, इतनी जानकारी तुम्हारे लिए पर्याप्त होनी चाहिए। तुम्हारे पास उसे ठीक करनेकी यदि कोई जड़ी-बूटी हो अथवा तुम्हारी उपस्थिति उसके लिए जड़ी-बूटीका काम करे तो वहाँ जाना तुम्हारा कर्तव्य है। तात्पर्य यह कि यदि अपने वर्तमान कार्यसे मुक्त हो सको तो ऐसे समय जाना उचित होगा। लेकिन यह बात केवल विमलके भाई पर ही लागू नहीं होती, अपितु ऐसी स्थितिमें चाहे जो कोई भी रोगी हो उसके लिए यदि तुम्हारी उपस्थिति जड़ी-बूटीका काम दे तो तुम्हें जाना चाहिए। ऐसे अनुभवोंको प्राप्त करके ही मनुष्य अपने हृदयकी दुर्बलताको दूर कर सकता है।

यदि हो सके तो कामके बारेमें ज्यादासे-ज्यादा घंटे निश्चित करने चाहिए, यह मेरी मान्यता है। लेकिन मुझे लगता है कि यह मर्यादा प्रत्येक व्यक्तिके लिए भिन्न-भिन्न होगी। जहाँ कौटुम्बिक भावना है और जहाँ मनुष्य दूसरे लोगोंके समान ही अपनेको जिम्मेवार मानता है वहाँ सबके लिए ज्यादासे-ज्यादा मर्यादा बाँधना असम्भव

१. कूल्हेकी; देखिए "पत्र : परशुराम मेहरोत्राको," १६-६-१९३२ से पूर्व।
२. परशुराम मेहरोत्राका पुत्र।

तो है ही, कदाचित् अनुचित भी हो। जिसका शरीर काम करता है, जिसका मन तैयार है, जिसके पास सेवाका और कोई ज्यादा काम भी नहीं है वह अपना समय संस्थाकी सेवामें नहीं लगा सकता, ऐसा नियम कैसे बनाया जा सकता है? अतएव मैं तो केवल इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि यदि हम अपने सारे कार्य विवेकपूर्वक करें, सात्विक वृत्तिसे करें, और उसमें कोई गड़बड़ न हो तो किसीको बोझ लग ही नहीं सकता। बोझ तो हमें तब प्रतीत होता है जब हम कोई काम बाहरी दबावमें आकर करते हैं। स्वेच्छासे और आनन्दपूर्वक किये गये कामका बोझ प्रतीत नहीं होता। लेकिन जिसकी प्रवृत्ति आसुरी है, जो स्वार्थके वशीभूत होकर अपने शरीरसे अनेक प्रकारके काम लेता है और बादमें उसे तोड़ डालता है—ऐसे व्यक्ति स्वस्थचित्त तो कदापि नहीं होते और इसलिए एक आदर्शके रूपमें हम उन्हें स्वीकार नहीं करते।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें तुमने जो पंक्ति उद्धृत की है, उसका मैंने जो अर्थ बताया वही है।[1] यह पंक्ति विषयी व्यक्तिपर ही लागू होती है। व्यभिचारीके लिए स्त्री अवगुणकी खान ही है, ऐसा कहनेमें कोई दोष नहीं है—ठीक उसी तरह जिस तरह, धनके लोभीके लिए सोनेकी खान नरककी खान है। लेकिन जगतके लिए वह नरककी खान नहीं है। स्वर्णके तो अनेक सदुपयोग हैं।

बापू

[पुनश्च :]

बालककी कुशलताके समाचार आये, यह सुनकर प्रसन्नता हुई।[2]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५०२) से। सी० डब्ल्यू० ४९७९ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

४८. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

१६ जून, १९३२

भाईश्री विट्ठलदास,

तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम पर एक्स-रे का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ है। अब तो तुम्हारी सेहतमें तीव्र गतिसे सुधार होना चाहिए। लेकिन चूँकि एक रोग विशेष में ये किरणें कारगर सिद्ध हुई हैं, इसलिए मुझ जैसे रोगियोंके लिए भी ये उतनी ही कारगर होंगी, ऐसा माननेमें भूल हो सकती है। हो अथवा न हो, लेकिन यहाँ तो शरीर दारोगाके हाथमें है, उसे जो सूझे सो करे। इन लोगोंको डरकी कोई बात

१. देखिए "पत्र : परशुराम मेहरोत्राको", १-६-१९३२।

२. मूल पत्रमें इसके बाद महादेव देसाईके हस्ताक्षरोंमें यह टिप्पणी दी गई है: "तकली वाला लेख पढ़ गया। उसमें खास विशेषता नहीं मालूम हुई, बल्कि आर्थिक दृष्टि उसमें दी ही नहीं गई है। बच्चोंके लिए इसी विषयपर दिलचस्प वार्ता लिखनी चाहिए।"

दिखाई नहीं देती और वे मानते हैं कि इस कुहनीको केवल आरामकी जरूरत है। मुझे दर्द लगातार नहीं होता। कुहनीसे अमुक काम करनेसे दर्द होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७८२) से।

४९. पत्र : देवदास गाँधीको

१६ जून, १९३२

चि० देवदास,

मुझे पहलेसे ही आशंका थी। कल मुझे कुछ ऐसा आभास भी हुआ था कि कहीं-न-कहींसे ऐसा समाचार अवश्य मिलेगा। इतनेमें ही कल तार आया। तुरन्त वल्लभ-भाईसे कहा "यह तार किस सम्बन्धमें है?" तो वह तेरी बीमारी का निकला। तू गोरखपुरमें है और तुझे बुखार न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता था। लेकिन मैं माने लेता हूँ कि इस पत्रके मिलने तक तू बुखारसे मुक्त हो गया होगा। मेरा खयाल है, और जैसा कि तेरा स्वभाव है, ऐसे समय यदि सगे-सम्बन्धी, मित्र लोग तेरे आसपास रहें तो तुझे अच्छा लगेगा। तू इसके योग्य भी है, क्योंकि तूने अनेक लोगोंकी सेवा की है। लेकिन मैं तो ठहरा पाषाण-हृदय! इसलिए मैं किसीसे देशके पश्चिमी भागसे गोरखपुर जानेके लिए नहीं कहूँगा। मनमें यदि ऐसी इच्छा हुई भी तो उसे दबा दूंगा। तत्वज्ञानका प्रयोग मैं यदि तुझ पर न करूँ तो और किस पर करूँ? इस बातको तू समझे, सहन करे और प्रफुल्ल रहे, ऐसी मेरी इच्छा है। तेरे सगे-सम्बन्धी, मित्र, माता-पिता, सब-कुछ ईश्वर है, दूसरे तो नाम-भरके हैं। वे तो स्वयं अपंग हैं, उनका सोचा हुआ थोड़ा ही होता है? इन व्यर्थके नाते-रिश्तोंका सहारा न लेकर सर्वव्यापक शक्तिका आश्रय लेना। उसके मनमें जो आयेगा वैसी मदद वह तुझे भेज देगा। मेरा विश्वास तो यह है कि तू जहाँ भी रहेगा वहाँ अपने पड़ोसीको अपनी ओर आर्कषित कर लेगा। जेलमें इससे भिन्न अनुभव होनेका कोई कारण नहीं है।

इतना लिखनेके बाद कहूँगा कि यदि तू आश्रमसे किसी व्यक्तिको अपने पास बुलाना चाहे तो इस आशयका तार वहाँ देना। लेकिन मुझे तो ऐसी उम्मीद है कि जबतक तुझे यह पत्र मिलेगा तबतक तेरी बीमारीकी बात भूतकालकी बात हो जायेगी। हम सबका आशीर्वाद तो तेरी जेबमें है ही।[1]

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. वल्लभभाई पटेलने गांधीजीको संयुक्त प्रान्त के गवर्नरसे यह कहनेके लिए राजी किया कि वे उनसे निवेदन करें कि वे देवदास गांधीकी बदली किसी ऐसी जेलमें करें जहाँका मौसम बहुत विषम न हो। देखिए "तार: सर मैलकम हेलीको", १८-६-१९३२।

५०. एक पत्र[1]

१६ जून, १९३२

साँपकी बात ठीक है और ठीक नहीं भी। सांप मेरे शरीर परसे चला जा रहा था। ऐसे मौके पर चुपचाप पड़े रहनेके सिवा और मैं या तो दूसरा कोई क्या कर सकता था? इसलिये इसमें कोई स्तुतिका कारण नहीं देखता, जैसी स्तुति लेखकने की है। और वह जहरीला था, या नहीं, यह तो कैसे कहा जा सकता है? मृत्यु कोई भयंकर घटना नहीं है। ऐसे ख्याल बहुत वर्षोंसे रहनेके कारण मेरेपर किसीकी मृत्यु ज्यादह समय असर नहीं कर सकती है।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

५१. पत्र : अमतुस्सलामको

१७ जून, १९३२

प्यारी अमतुल,

तुम्हारा खत मिला। मुझे खुशी है कि तुम अपने लोगोंके साथ रहती हो। डा० शर्माको[2] अबतक मैं लिख नहीं सका हूँ। लेकिन जल्दी ही लिखूँगा।[3] अगर मुलाकातोंके लिए फिरसे द्वार खुल जायें, तो तुम जरूर आना और मुझसे मिलना। तुम कुछ पढ़ती हो क्या? तुम अपनी दिनचर्या मुझे अवश्य लिखो। कुछ-न-कुछ उर्दूमें हमेशा लिखा करो।

प्यार,

बापू

श्रीमती अमतुस्सलाम
४२, घोड़ बन्दर रोड
सान्ता क्रूज
बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५१) से।

१. क्या यह कथा सच है कि गांधीजीने एक जहरीले साँपको अपने शरीर परसे गुजर जाने दिया था? यह पत्र इस प्रश्नके उत्तरमें भेजा गया था।

२. डा० हीरालाल शर्मा, दिल्लीके एक प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्री।

३. देखिए "पत्र: डा० हीरालाल शर्माको", १८-६-१९३२।

५२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१७ जून, १९३२

चि० प्रेमा,

तुझे मूर्ख न मानूँ तो और क्या मानूँ? प्रश्न पूछनेमें बच्चोंको कोई दिलचस्पी न हो, लेकिन फिर भी वे लिखते हैं तो यह समयका अपव्यय है। लिखनेकी खातिर भी दिलचस्पीके साथ लिखें, वह तो अर्थपूर्ण है। बच्चे माता-पिताके पत्रकी उम्मीद न करते हों फिर भी यदि उनका पत्र आ जाये तो वे अवश्य खुश हो उठेंगे। इसमें स्वार्थकी तनिक भी गन्ध नहीं होती। इससे हिस्टीरिया होनेकी बात तो सिद्ध नहीं होती। हिस्टीरियाके लक्षण तो मैंने अपने एक पत्रमें बताये थे।[1]

प्रार्थनामें साकार मूर्तिका मैंने निषेध नहीं किया है, लेकिन निराकारको उच्च स्थान दिया है। कदाचित इस तरहका भेद करना उचित न हो। किसी को कोई चीज, तो किसीको कोई चीज पसन्द आती है। इसमें तुलनाको कोई स्थान नहीं है। मुझे निराकार अधिक अच्छा लगता है। शंकर, रामानुज आदिका तूने जो पृथक्करण किया है वह मुझे तो ठीक नहीं जँचा है।[2] परिस्थितियोंकी अपेक्षा अनुभवका अधिक प्रभाव होता है। सत्यके पुजारी पर परिस्थितियोंका कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए। उसे उन परिस्थितियोंको भेदकर निकल जाना चाहिए। परिस्थितियोंके आधार पर स्थिर की गई राय वहुधा गलत होती है, ऐसा हम देखते हैं। प्रसिद्ध उदाहरण आत्मा और देहका है। इस समय आत्माका देहके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है इसीसे देहसे भिन्न आत्मा झट ही दृष्टिगोचर नहीं होता। इस परिस्थितिको भेदकर जिसने सर्वप्रथम – 'नेति' शब्दका उच्चारण किया उसकी शक्तिको अभी तक कोई प्राप्त नहीं कर सका है। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण तुझे सहज ही मिल जायेंगे। तुकाराम आदि सन्तोंके वचनों का शब्दार्थ करना उचित ही नहीं है। उनका एक वचन अभी-अभी पढ़नेमें आया है। उसे मैं तेरे लिए लिख रहा हूँ।

केला मातीचा पशुपति। परि मातीसि काय म्हणती।।
शिवपूजा शिवासी पावे। माती मातीमाजी समावे।।
केला पाषाणाचा विष्णु। परी पाषाण नव्हे विष्णु।।
विष्णुपूजा विष्णुसि अर्पे। पाषाण राहे पाषाणरूपें।।

१. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ २५४-५ और ३१४-५।

२. **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१ के अनुसार प्रेमाबहनने अपने पत्रमें लिखा था कि सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलनेके साथ ईश्वरके प्रति हमारा दृष्टिकोण भी बदल गया है। शंकराचार्य उस कालमें हुए थे जब लोग ईश्वरके साथ समानताकी बात करते थे। वह स्वतंत्रताका काल था। रामानुजाचार्य गुलामीके युगमें हुए जब लोग अपनेको ईश्वरका दासानुदास कहते थे।

इस पदसे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऐसे सन्तोंकी भाषाके पीछे जो कल्पना निहित है, हमें उसे देखना चाहिए। वे साकार भगवानका चित्रण करते हुए भी, सम्भव है, निराकारकी पूजा करते हों। हम प्राकृत मनुष्य ऐसा नहीं कर पाते, इसीसे उनके भेदको समझ कर नहीं चलते और फिर दुःखको प्राप्त होते हैं।

जो व्यक्ति उर्दू पढ़ सकता है वह यदि इमाम साहबके यहाँ चला जाये तो पुस्तक तुरन्त हाथ आ जायेगी। वहाँ मीराबहनका उर्दू-अंग्रेजी शब्दकोष है और अंग्रेजी-उर्दू शब्दकोष भी साथ ही भेजना। इमाम साहबके घरकी कभी-कभी सफाई होती है या नहीं? प्रत्येक खाली मकानकी सप्ताह या पखवाड़ेमें सफाई होनी चाहिए।

जबतक आदत नहीं पड़ जाती तभी तक समयका हिसाब रखनेकी मुश्किल पड़ती है। तत्पश्चात् उसमें तनिक भी समय नहीं जाना चाहिए। यह सब-कुछ विवेकपूर्ण ढंगसे किया जाये तभी सुशोभित होता है और फल भी देता है।

मैं दक्षिण आफ्रिकाके बच्चोंका जो उदाहरण देता हूँ वह यहाँके बच्चोंकी निन्दा करनेके लिए नहीं अपितु उन्हें प्रोत्साहन देनेके लिए देता हूँ। यहाँके बच्चे भी उद्यमशील हैं, यदि किसीको उनसे काम लेना आता हो तो काम कर सकते हैं। तू ऐसी है न?

कमरके दर्दके लिए तुझे गर्म पानीमें बैठना चाहिए। ऐसा पन्द्रह-बीस मिनट तक करना चाहिए। इस बीच कमरको हाथसे रगड़ना चाहिए। इससे दर्द दूर होगा और इसका मासिक धर्म पर भी [अच्छा] असर होगा। डाक्टर क्या कहता है सो लिखना। ऐसे दर्दके उठने पर ही उसके शमनका उपाय करना चाहिए।

तेरा कार्यक्रम मैं अच्छी तरहसे देख गया। यह बहुत ज्यादा है। उसमें आसानीसे कटौती की जा सकती है। १२-३० से ५-४० तक उद्योग वर्ग है अर्थात् ५ घंटे और १० मिनट हुए। इसमें से एक घंटा निकाल देनेसे आवश्यक फुरसत पाई जा सकती है। इस समयमें एकान्त पाकर सोना चाहे तो सो, लेट अथवा ऐसा कोई काम कर जो थकानेवाला न हो। लेकिन यह समय बातों अथवा अन्य कामोंमें न बिता। इस घंटेका यदि उसी समय उपयोग न कर पाये तो अन्य कार्य आगे खिसका कर रातके समय एक घंटा ज्यादा ले। जो अपने काममें मग्न हैं उसे कामका बोझ नहीं लगता अथवा वह समयका अपव्यय नहीं करता। जिसे काममें दिलचस्पी नहीं होती उसे थोड़ा काम भी ज्यादा लगता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कैदीको एक दिन भी वर्षके समान प्रतीत होता है। भोगी मनुष्यको एक वर्ष एक दिन लगता है।

पहले जब मैं पाश्चात्य संगीत सुना करता था तब उकता जाता था। लेकिन अब कुछ-कुछ समझमें आता है, और उसमें आनन्द भी आता [है]।

'यहाँ पढ़नेका लोभ नहीं रखा जा सकता' तेरा ऐसा लिखना ठीक नहीं है। ज्यादा पढ़नेको नहीं मिलेगा, यह बिलकुल सच है; और यह गौण है, यह बात भी सही है। तथापि आश्रममें रहनेवाले अनेक लोग बहुत कुछ पढ़ सके हैं। तेरे निराशापूर्ण वचन मुझे अच्छे नहीं लगते। जहाँ अपूर्णता लगे वहाँ उसे पूर्ण करनेका

प्रयत्न कर। लेकिन जहाँ कुल मिलाकर अपूर्णता ही दिखाई दे अर्थात् कुल जमा जोड़ करनेके बाद भी दोष ज्यादा दिखाई दे तो उसका त्याग ही करना चाहिए। ऐसा करते हुए व्यक्ति अपने प्रति और समाजके प्रति न्याय करता है।

तुझे अपने लम्बे पत्रके लिए मुझसे माफी माँगनेकी कोई जरूरत नहीं। मैं उससे नहीं उकताता, अपितु वह मुझे अच्छा लगता है। उससे मैं ग्रहण करता हूँ, क्योंकि उसमें तेरा हृदय प्रतिबिम्बित होता है अर्थात् पत्र लिखते समय तेरे हृदय के क्या भाव थे, सो पता चलता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९०) से। सी० डब्ल्यू० ६७३८ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

५३. पत्र: मोहन एन० परीखको

१७ जून, १९३२

चि० मोहन[1],

तेरा पत्र अच्छा लिखा है। अभी और ज्यादा साफ लिखना। तू सफाई करता है और पींजता है, यह बहुत अच्छी बात है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१८०) से।

५४. एक पत्र

१७ जून, १९३२

तुम आत्मविश्वास खो बैठो यह ठीक नहीं है। बुरे विचार मनुष्यको अक्सर आते हैं। मगर जैसे घरमें कूड़ा-करकट भर जाने पर जो व्यक्ति उसे समय-समय पर निकालता रहता है उसके लिए कहा जाता है कि वह साफ है और अपना घर साफ रखता है, उसी तरह कुविचारोंके आते ही जो उन्हें निकालता रहे उसकी सदा जय ही है। वह कभी दम्भी नहीं कहलाता। इस दम्भसे बचनेका मैंने स्वर्ण उपाय यह बताया है कि हमें इन विचारोंको कभी नहीं छिपाना चाहिए, बल्कि जाहिर कर देना चाहिए। उनकी डौंडी पीटनेकी भी जरूरत नहीं है। किसी-न-किसी मित्रको जरूर कह देना चाहिए। और मनकी यह स्थिति होनी चाहिए कि सारी दुनिया जान ले तो भी हर्ज नहीं। विनोबाके वचनोंपर श्रद्धा रखना और निराश न होना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. नरहरि परीखका पुत्र।

५५. पत्र : छगनलाल जोशीको[1]

१७ जून, १९३२

प्रकृति जीवमात्रके लिए पल-पलकी आवश्यकताकी वस्तु उपलब्ध कर देती है, इससे तनिक भी अधिक पैदा नहीं करती, इस सत्यका मैं रोज अनुभव कर रहा हूँ; और मैं यह भी देख रहा हूँ कि इस महान नियमको हम इच्छा या अनिच्छासे, जाने-अनजाने प्रतिक्षण भंग कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप एक ओर बहुत सारे व्यक्ति विषयोंसे ग्रस्त हैं, तो दूसरी ओर अनेक लोग क्षुधा-पीड़ित हैं, यह बात तो हम सब देख सकते हैं। मतलब यह कि एक ओर तो भुखमरी है तथा दूसरी ओर अमेरिकाके धनवान लोग अर्थशास्त्रकी गलत व्याख्या करते हैं और अनाजका नाश कर रहे हैं। हमारा प्रयत्न इसी आपत्तिसे उबरनेकी दिशामें है। हाँ, प्रकृतिके इस कानूनका पूर्ण रूपेण पालन करना इस समय तो नितान्त ही असम्भव है। लेकिन उससे हमारे लिए घबरा जानेका कारण नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

५६. एक पत्र[2]

१७ जून, १९३२

कैदियोंके बर्तावके बारेमें यहाँसे प्रकाशित किये जानेके योग्य कुछ लिखा ही नहीं जा सकता। तुम लिखते हो कि इसका ज्यादा स्पष्टीकरण होना चाहिए सो तो ठीक है, लेकिन वह तो अब मौका मिलने पर ही होगा। बेड़ीके बारेमें तुम्हारी दलील समझ ली है मगर मेरी राय अभी वही है, क्योंकि मेरे खयालसे राजनीतिक और दूसरे कैदियोंमें फर्क नहीं है। तात्पर्य यह कि सारे जेलकी पद्धतिमें सुधार की जरूरत है। यह माना जाना चाहिए कि जेल सजाकी जगह नहीं, परन्तु सुधारकी जगह है। और यदि यह मान लिया जाये तो उस आदमीके लिए, जिसने झूठा दस्तावेज बनाया हो और जिसके कारण वह कैदमें हो, बेड़ीकी क्या जरूरत है? बेड़ीसे तो वह सुधरनेका नहीं। जिसके भाग जानेका डर नहीं हो, झगड़ा करनेकी जिसमें शक्ति नहीं हो, इच्छा भी नहीं हो, ऐसे व्यक्तिको बेड़ी पहनाना मुझे असह्य लगता है। मगर एक राजनीतिक कैदी, जो शरीरसे तुम्हारे जैसा पहलवान हो, जो रोज जेल

१. छगनलाल जोशीने गांधीजीसे अपरिग्रह-व्रतकी व्याख्या करनेका अनुरोध किया था।

२. पत्र-लेखकने कामके लिए जेलसे बाहर ले जाते समय राजनीतिक कैदियोंको बेड़ियाँ और हथकड़ी पहनाये जानेके विरुद्ध सत्याग्रह करनेका सुझाव दिया था।

तोड़नेके मनसूबे गढ़ता हो, जिसके हाथ चलते हों और जिसे अपनी जबान पर नियन्त्रण न हो तो उसे बेड़ी पहनाना मैं धर्म मानूँगा। मेरे इतना सब कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि राजनीतिक और अराजनीतिक का भेद गलत है। और हम सुधारकोंका धर्म यह है कि जो भी सुविधा हम माँगें, वह सिर्फ नीतिके आधार पर होनी चाहिए और इस प्रकारके सभी कैदियोंके लिए लागू होनी चाहिए। राजनीतिक कैदीके लिए गेहूँ और अराजनीतिकके लिए मक्का, यह मेरे लिए तो असह्य होना चाहिए। लेकिन जिस कैदीको मक्का हजम न हो तो उसे भी गेहूँ मिलना चाहिए, फिर चाहे वह खूनी ही क्यों न हो; और मक्केको आसानीसे हजम कर सके ऐसी अच्छी पाचन शक्तिवाला राजनीतिक कैदी हो तो उसे चाहिए कि वह खुद गेहूँ छोड़कर मक्का माँग ले और ऐसा करके दूसरोंकी भी लाज रख ले। मगर ये तो मेरे विचार हुए। इनपर इस जगहसे मैं हरगिज आग्रह नहीं कर सकता। सब कोई अपने-अपने अन्तर्नाद पर चलें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

५७. तार: सर मैलकम हेलीको[1]

१८ जून, १९३२

हिज एक्सेलेंसी गवर्नर
संयुक्त प्रान्त

तीन महीनेसे ऊपर हुए मेरे पुत्र देवदासपर सविनय अवज्ञा सत्याग्रहीके नाते दिल्ली और मेरठमें मुकदमा चलाया गया था और सजा होनेके कुछ दिन बाद उसका तबादला गोरखपुर जेलमें किया गया था। गोरखपुरकी जलवायुमें मलेरिया बहुत होता है। बिना किसी साथीके उसका इतनी दूर-दराजके जेलमें ले जाये जानेका कारण अज्ञात है। वह इसी छः तारीखसे आन्त्र-ज्वरसे पीड़ित है हालाँकि

१. इसके बारेमें महादेव देसाईने इस प्रकार लिखा है: "देवदासका एक तार . . . कल मिला: 'उच्चतम तापमान १०२ था और अब १०० से नीचे पहुँच गया है। गोरखपुरकी जलवायु बहुत खराब है। . . .' बापूने कहा कि देवदासने जलवायुका जिक्र इस आशासे किया है कि हम उसका गोरखपुरसे तबादला करानेकी कोशिश करें। सरदारने सुझाव दिया कि निश्चय ही उसका तबादला किसी बेहतर जगह कर दिया जाना चाहिए। बापूने कहा, 'हाँ, लेकिन यदि हम चाहते हैं तो तबादलेकी अर्जी हमें देनी चाहिए, और मेरा ऐसा करनेका कोई विचार नहीं है। हरिलाल दक्षिण आफ्रिकाकी सबसे खराब जेलमें था, लेकिन उसने अपना तबादला खुद करवाया था, मेरे जरिये नहीं।' सरदारने कहा, 'लेकिन हम लोग यहाँ कैदी नहीं हैं। भारतकी परिस्थितियाँ भिन्न हैं। हमें अर्जी देनी चाहिए।' बापू अन्ततः मान गये और उन्होंने हेलीको तार दिया। . . ." (**द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड-१)

उसकी हालत सुधरती प्रतीत होती है। अनुरोध है कि उसे अधिक स्वास्थ्यकर और निकटतर स्थानपर भेज दिया जाये, हो सके तो देहरादूनमें पण्डित जवाहरलालके पास रख दिया जाये जिनके साथ उसकी घनिष्ठ मैत्री है या यदि यहाँ तबादला सम्भव हो तो मेरे पास यरवडामें भेज दिया जाये।

मो० क० गांधी
कैदी, यरवडा सेंट्रल जेल

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग १, पृष्ठ २८३।

५८. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१८ जून, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

श्रीमती मीराबाई (स्लेड) के विषयमें अपने इसी ९ तारीखके पत्रके सन्दर्भमें अब मैं उनका दिनांक बम्बई, १४ जून, १९३२ का मूल पत्र[१] (साथ दिया हुआ) यहाँ संलग्न कर रहा हूँ जो मेरी पूछ-ताछके[२] जवाबमें अभी-अभी प्राप्त हुआ है। मेरी रायमें इस विस्तृत पत्रकी सुस्पष्ट भाषा इस कथनका मुँहतोड़ उत्तर है कि वह "सविनय अवज्ञा आन्दोलनको प्रोत्साहन देनेमें सक्रिय रूपसे लगी हुई थीं।" जेलमें बन्द किये जानेसे पहले उनकी कार्रवाइयोंके विषयमें सरकारके पास जो जानकारी है उसका यह जोरदार खण्डन भी सरकारके पास होना चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ। समय बचानेके खयालसे मैंने पत्रसे सम्बन्धित अंशों पर चिह्न लगा दिया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (२) भाग १, पृष्ठ ११५।

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १६-६-१९३२ की पाद-टिप्पणी।
२. देखिए "पत्र : मीराबहनको", ८-६-१९३२।

५९. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

१८ जून, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी)[१],

मुझे तेरे दोनों पत्र मिले। जबतक मीराबहन परसे प्रतिबन्ध नहीं हटता तबतक मुझसे मिलनेके लिए नहीं आया जा सकता। त्यागका मूल्य इसीमें है न?

यदि हम हरिलालकी ओरसे तुझे लिखे गये पत्रोंका प्रकाशन नहीं करते तो हम हरिलालके साथ न्याय नहीं करेंगे। यदि तू उनके आदर्शको प्राप्त नहीं कर सकी तो इसमें हरिलालका क्या दोष? अब उस आदर्शको प्राप्त कर। तेरी अपूर्णताको छिपानेके लिए इन पत्रोंके प्रकाशनको रोका नहीं जा सकता। लेकिन तू ऐसी निराश और पस्त-हिम्मत क्यों होती है? तू स्वयं तो ऐसा नहीं मानती कि तू बहुत बड़ी हो गई है? चौबीस अथवा पचीस वर्षकी आयुमें ही तू कैसे आशा छोड़ बैठी है? तेरे सामने आगे बढ़नेका सच्चा समय यही है। सावधान! !

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४०) से।

६०. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

१८ जून, १९३२

चि० सुशीला,

तुझे मैंने जो पत्र लिखा था वह मिल गया होगा। यह पत्र तो मैंने यह सोचकर लिखा था कि मणिलाल रवाना हो चुका होगा। तुम लोगोंको बहुत कष्ट सहना पड़ा। इसीमें हमारी कसौटी है। अब तो बीमारीका कोई असर नहीं रह गया होगा? डाक्टरको बुलाना पड़ा कि सामान्य उपचारसे ही काम चल गया? प्रेसमें तू क्या मदद करती है?

मैं समझता हूँ कि अब तो मणिलाल भी वहीं रहेगा। इसका शोक न करना। ईश्वर जैसा रखे वैसा हमें रहना है। हमारा सोचा हमेशा फलित नहीं होता।

सीता अब तो बड़ी हो गई होगी। उसे कुछ सिखाती है। क्या ते कान कुछ खुले?

१. आश्रमवासी हरिलाल माणेकलाल देसाई की विधवा'

प्रागजी[१] और पार्वतीसे कहना कि मुझे पत्र लिखें। उनके पत्रसे हम तीनोंको ही प्रसन्नता होगी। प्रागजी क्या अभी वहीं रहेंगे? पत्र लिखनेमें तू तनिक भी आलस्य न करना और उसे खबरोंसे भर दे तो और भी अच्छा होगा। बाकी तो तू बड़े आदमीकी बेटी है इसलिए तुझे ज्यादा थोड़े ही कहा जा सकता है? और फिर जमनालालजी सम्बन्ध करवानेवाले पुरोहित ठहरे। जो कहीं सामान्य घरकी होती तो कान पकड़कर मैं तुझसे लम्बे ब्यौरेवार पत्र लिखवाता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७८९) से।

६१. पत्र : मणिलाल गांधीको

१८ जून, १९३२

चि० मणिलाल,

मेढ़[२] के साथ तेरा पत्र मिला। मेढ़से मिलना तो नहीं हो सकता। एक तो मुझे जबसे मीराबहनसे मिलनेकी मनाही हुई है तबसे मैंने सबसे मिलना बन्द कर दिया है; और दूसरे जिससे मिलना होता है उसका नाम सरकारको भेजना पड़ता है। मेढ़को कदाचित् इजाजत भी नहीं मिलेगी और यदि (सरकार) देगी भी तो दक्षिण आफ्रिकाकी बात नहीं करने देगी, ऐसा मुझे लगा है। उन्हें सरकारको यही कारण बताते हुए मुझसे मिलनेकी अनुमति माँगनी चाहिए। इसलिए उनसे मिलनेके बाद तुझे तार देनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। मेढ़का मुझे पत्र भी नहीं मिला है। वे पत्र तो अवश्य लिख सकते हैं।

तुम सब लोग जहरीले बुखारकी चपेटमें आ गये। और चूँकि तारसे मुझे तुम्हारी और कोई खबर नहीं मिली है इसीसे मान लेता हूँ कि तुम सब सकुशल होगे। सुशीला और सीताका स्वास्थ्य वहाँ अच्छा रहेगा, इसी विचारसे मैंने उन दोनोंका वहाँ रह जाना पसन्द किया, पर ईश्वरने मुझे कहला भेजा, 'तू मूर्ख है, कौन कहाँ स्वस्थ-अस्वस्थ रह सकता है, इसका विचार करनेवाला तू कौन है? मुझे स्वस्थ-अस्वस्थ रखना है, उसे मैं रखता हूँ। इतनी सीधी बात तेरी समझमें क्यों नहीं आती?' इतने ज्ञानकी प्रतीति होनेके बावजूद यदि वे दोनों वहाँ रहें तो यही कदाचित् ठीक होगा। लेकिन अब तो तुझे भी वहीं रहना होगा, क्यों ठीक है न? यह तो मैं भी मानता हूँ कि प्रागजी यदि जिम्मेदारी लेनेके लिए तैयार न हों अथवा यह उनकी

१. प्रागजी खण्डुभाई देसाई, दक्षिण आफ्रिकी समयके पुराने सहयोगी, जो नियमित रूपसे **इंडियन ओपिनियन** के गुजराती भागमें लिखते रहे।

२. सुरेन्द्र मेढ़, दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईके प्रमुख सत्याग्रही।

शक्तिके बाहर हो और तू अन्य कोई बन्दोबस्त न कर सके तो तू नहीं आ पायेगा। अभी अखबार[1] बन्द करना उचित न होगा। यहाँका काम तो चलता ही रहेगा। तू निश्चिन्त होकर वहाँ रहना और रहनेका दुःख न मानना। वहाँ भी सेवा ही करनी है, स्वार्थके लिए नहीं रहना है। मुझे नियमित रूपसे पत्र लिखते रहना।

हम तीनों आनन्दसे हैं। कताई तो खूब जोर-शोरसे चलती ही है। मैं अब चरखेका चक्र पाँवसे चलाता हूँ और तार दायें हाथसे खींचता हूँ। प्रभुदासकी खातिर इस चरखेका अनुभव तो लेना ही था। लेकिन अब बड़ी बात तो यह है कि मेरे बायें हाथकी कुहनी आराम माँगती है। महादेव ४० अंकका सूत कातता है। सरदार रद्दी कागजोंसे लिफाफे बनाते हैं। ऐसे ही एक लिफाफेमें मैं यह पत्र भेजनेवाला हूँ।

रामदास इसी जेलमें है। कभी-कभार मिलता है। उसका स्वास्थ्य अच्छा है। विद्याभ्यास कर रहा है। नीमु और बच्चे आश्रममें हैं।

देवदास तो दूर गोरखपुरमें है। उसे अभी बुखार आता है लेकिन चिन्ताका कोई कारण नहीं, बुखार कम हो रहा है।

बा साबरमती [जेल] में है, कान्ति[2] विसापुर [जेल] में; दूसरे तो और भी बहुतसे नाम हैं लेकिन उन सबको कहाँ घसीटूँ? देवदासकी सगाई राजाजीकी बेटीके[3] साथ होनेके सम्बन्धमें तो मैं तुम्हें लिख ही चुका हूँ न? दोनोंकी तीव्र इच्छाके कारण ही यह हुआ है। युद्धके कारण ही विवाह अभी मुल्तवी रखा है।

आश्रममें जो सुधार हो रहे हैं वे ठीक ही हैं। सुधार अर्थात् अधिक संयम।

लड़ाई कब खत्म होगी इसका विचार मैं तो करता ही नहीं हूँ। जब होनी होगी, हो जायेगी। जो सत्यके लिए सत्य-साधनों द्वारा लड़ता है उसके लिए हार-जीत एक समान है। तात्पर्य यह है कि उसकी जीत ही है, फिर भले ही वह आज मिले अथवा कल।

सरदार और महादेवके आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९०) से।

१. **इंडियन ओपिनियन**।

२. हरिलाल गांधीका पुत्र।

३. लक्ष्मी।

६२. पत्र : वनमाला एन० परीखको

१८ जून, १९३२

चि० वनमाला,

हिन्दीमें लिखनेका तेरा प्रथम प्रयास सुन्दर कहा जा सकता है। यह क्या तूने अपने-आप लिखा है? लिखावट अभी और सुधारी जा सकती है? आश्रमकी सफाई खूब सावधानीके साथ करना। हमेशा सर्वत्र शान्ति नहीं होती। सर्दी-गर्मी तो जगतका नियम है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७४) से। सी० डब्ल्यू० २९९७ से भी; सौजन्य: बनमाला एम० देसाई

६३. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१८ जून, १९३२

बालको और बालाओ,

भगवान कभी बुरा करता ही नहीं, क्योंकि वह सत्य है। इसलिए बुरा करनेकी जिम्मेदारी स्वयं मनुष्यकी है और अच्छा सब उसीकी प्रेरणासे होता है, इसीसे सब-कुछ वही करता है, यह बात हुई।

संस्कृतकी जानकारी होनेकी परिसीमा यह है कि अच्छी तरहसे 'गीता' समझ-में आ सके। इसमें व्याकरणका भी समावेश हो गया।

यदि तुम्हारा काम इतना ज्यादा बढ़ गया है कि तुम्हें आधे घंटेका भी समय न मिल पाये और वह समय तुम अभ्यासके समयसे ले लो तो यह मत समझो कि विद्याभ्यासमें कमी आ गई है। इतना आराम करनेसे ग्रहण-शक्तिमें वृद्धि हो जाती है, अत: कुल मिलाकर लाभ ही होता है। ऐसा शास्त्रियोंने प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दिखाया है।

धार्मिक पुस्तकोंके उपरान्त हमारे यहाँ और बहुत-सा साहित्य है। उसमें से जिसे जो अच्छा लगे वह पढ़ सकता है और वह भी मात्र गुजरातीमें ही नहीं, बल्कि उर्दूमें, हिन्दीमें, और संस्कृतमें भी मिलता है; अंग्रेजीमें तो है ही।

नये निर्वाचनमें सब लोग अपने-अपने कर्तव्यका पालन करोगे, ऐसा मैं मान लेता हूँ।

मैं देखता हूँ कि बालक और बालाएँ लापरवाहीके साथ कागजोंका इस्तेमाल करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। और फिर नोटबुकके पृष्ठोंका तो कदापि इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

६४. पत्र : विद्या आर० पटेलको

१८ जून, १९३२

चि० विद्या,

स्वप्नमें हम जो देखें उससे डरें नहीं। दुःख भी न मानें। बिल्लीके बच्चे मेरी गोदमें बैठते हैं। उसी तरह बालक भी बैठते हैं।[1] बिल्लीमें बुद्धि नहीं है, हममें बुद्धि है। इसलिए बिल्लीका जन्म वांछनीय तो नहीं कहा जा सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४३५) से; सौजन्य: रवीन्द्र आर० पटेल

६५. पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको

१८ जून, १९३२

चि० भगवानजी,

तुम्हें आश्चर्य होगा कि फिलहाल अध्ययनमें रायचन्दभाई और 'गीता'[2]को भी छोड़ देनेकी मेरी सलाह है। प्रार्थनाके समय जो 'गीता' के अंश और भजन आयें उन्हींको समझना और मनन करना। यह संयम कठिन है लेकिन इसका तुम चमत्कारी प्रभाव देखोगे। इस समय अपना वाचन ही, तुम्हारा काम है। फुरसत हो तब जो अच्छा लगे वह उपयोगी काम हाथमें ले लेना। तर्क-मात्र छोड़ देना। "मेरे लिए एक पग ही पर्याप्त है" "मने एक डगलुं बस थाय" इसका यही अर्थ है। जो साधन बन्धन-रूप हो जाये उसे छोड़ देना चाहिए।

बापू

१. विद्या पटेलने लिखा था: "आप बिल्लीके बच्चोंके संग बहुत खेलते हैं और उन्हें अपनी गोदीमें भी बैठने देते हैं। काश, मैं भी एक बिल्लीका ही जन्म ले लेती!" (**महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१)

२. भगवानजी बहुत ज्यादा धार्मिक पुस्तकें पढ़ते और उनपर मनन किया करते थे।

[पुनश्च :]

अखबार पढ़ना चाहो तो भले ही पढ़ो।

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ३४८) से; सौजन्य: भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्या

६६. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१८ जून, १९३२

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे लगता है कि लोथियन रिपोर्टके[१] बारेमें कुछ न लिखना अच्छा होगा, हालाँकि मुझे इसमें तात्विक दृष्टिसे कोई दोष नहीं दिखाई देता। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरा तो इस बारेमें कुछ लिखनेका मन ही नहीं करता। मुझे तो लगता है कि इस विषय पर विचार करनेके लिए मेरे पास पूरी सामग्री ही नहीं है। और यदि यह बात है तो विचारोंका और समयका अपव्यय क्यों करना?

देवदास बीमार पड़ गया है। अब बुखार उतरनेपर है। चिन्ताका कोई कारण नहीं। मणिलाल, सुशीला और सीता, प्रागजी तथा उनकी पुत्री, ये सब नेटालमें विषैले ज्वरके चँगुलमें आ गये थे, लेकिन अन्तिम समाचार अच्छे थे।

तुम नाटक[२] लिखोगे ऐसा तो मैंने कभी सोचा भी न था। तुम्हारे विचार आधुनिक सुधारोंकी ओर झुक रहे हैं। अमुक मर्यादाके भीतर तलाक लिया जाना चाहिए — ऐसा मैं अवश्य मानता हूँ, लेकिन इसका प्रचार करनेका मेरा तनिक भी मन नहीं होता। हम सामान्यतया अपनी वृत्तियोंके इतने गुलाम हैं कि हमारी आज जो मनःस्थिति है कल भी वही रहेगी, यह बात हम निश्चित रूपसे नहीं कह सकते। इसलिए स्वेच्छासे किया गया विवाह, जबतक बहुत सबल कारण न हो तबतक नहीं टूटना चाहिए, मुझे तो यही उचित जान पड़ता है। अस्पृश्यताके प्रश्नको लेकर मैंने यदि बा से तलाक ले लिया होता तो आज जो सुन्दर स्थिति बन पड़ी है वह नहीं

१. लॉर्ड लोथियनके नेतृत्वमें गठित मताधिकार समितिने अपनी रिपोर्ट ३ जून, १९३२ को प्रकाशित कर दी थी। इसमें प्रान्तीय निर्वाचकोंकी संख्या ७० लाखसे बढ़ाकर ३ करोड़ कर देनेकी सिफारिश की गई थी और सभी वर्गोंके लोगोंको प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था थी। महादेव देसाईके अनुसार गांधीजीने इस समितिकी सिफारिशोंके बारेमें कहा था: "समितिने इस हद तक अच्छा काम किया है कि उसने अस्पृश्यताकी परिभाषा कर दी है और तथाकथित 'अस्पृश्यों' की संख्या ७ करोड़के बजाय साढ़े तीन करोड़ मानी है। इसके लिए लोथियन शायद श्रेयके अधिकारी हैं। इस परिभाषाका भला हो, क्योंकि अब इसके चलते हिन्दू लोग यदि चाहें तो एक क्षणमें 'अस्पृश्यों' को हिन्दू समाजमें शामिल कर सकते हैं और प्रकटतः उनकी ओरसे जो माँगें रखी जाती हैं उन सभी माँगोंको कलमकी एक लकीरसे पूरा कर सकते हैं।" (**महात्मा**, खण्ड–३ **इंडिया इन १९३१-३२**, और **द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड–१)

२. जिसमें तलाकका समर्थन किया गया था।

होती न? बा कहाँ पड़ी होती और मैं कैसा विवाह कर बैठा होता, सो कौन कह सकता है? लेकिन तलाक नहीं लिया जा सकता — यह शिक्षा हमें विरासतमें मिली थी। इसीसे वह विषम काल बीत गया और अब तो केवल उसकी याद रह गई है। इसीसे मैं आशा करता हूँ कि तुमने अपनी पुस्तकमें हर किसीको तलाक लेनेकी बिना स्टाम्पकी अनुमति प्रदान नहीं की होगी।

यदि मनुष्यको विषयोपभोगकी इच्छा हो और उसे सन्तुष्ट करना मनुष्यका धर्म हो तब तो सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंकी आवश्यकताको मैं समझ सकता हूँ।[1] लेकिन यदि हम सन्ततिकी इच्छा किये बिना विषयोपभोगको पापका मूल मानते हैं — और मेरे विचारसे मानना चाहिए — तो कृत्रिम उपायोंसे सन्तानको पैदा होनेसे रोकना पापका ब्याज चुकानेके समान है। प्रकृतिका यही नियम है कि जो जैसा करे वैसा भरे। मनुष्य विषय-सेवन करे तो भले सन्तानका बोझ उठाये। स्त्री किसलिए यह बोझ उठाये, यह प्रश्न उठता ही नहीं है, क्योंकि हम स्त्रीको सम्पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र मानते हैं। आजकल पश्चिममें कृत्रिम उपायोंका जो उपयोग हो रहा है उसका एक परिणाम यह निकला है कि विवाहकी पवित्रता समाप्त हो गई है और जिसे जो समय उपयुक्त जान पड़े उस समय वह निर्मुक्त होकर विषयोपभोग कर सकता है। इस वस्तुका प्रचार हुए अभी कुछ वर्ष भी नहीं बीते हैं कि इस बीच जिसे आजतक पवित्र बन्धन माना है वे टूट गये हैं। आजकल पश्चिमके अच्छे कहे जानेवाले विचारक भी यह मानने लगे हैं कि विवाह एक भ्रान्ति है और यदि सगे भाई-बहन भी एक दूसरेके प्रति विकारवश हों तो उसे सन्तुष्ट करनेमें कोई दोष नहीं है, अपितु यह उचित ही है। इन सब विचारोंको मैं एक छोरसे दूसरे छोर तक जानेवाली अतिशयता नहीं मानता, लेकिन सन्तति-नियमनके पीछे निहित विचारश्रृंखलाका यह सहज और सीधा परिणाम है। और इससे यह भी हो सकता है कि आज हम विवाह आदिके जिन बन्धनोंको आत्माका विकास करनेवाले मानते हैं वे आत्माका हनन करनेवाले हों। लेकिन मैं तर्ककी खातिर ऐसी वस्तुओंकी सम्भावनाको स्वीकार करनेसे आगे नहीं जा सकता। नीति और शास्त्रके नामपर होनेवाली ये बातें मुझे अत्यन्त भयंकर लगती हैं। झूठी दयासे, अधीरतासे और अपने क्षणिक अनुभवोंसे ये जो नवीन विचार प्रस्फुटित हो रहे हैं उनसे हम सराबोर न हो जायें, यही मेरी इच्छा है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तानकी आजकी परिस्थितियोंको देखते हुए इन कृत्रिम उपायोंके लिए कोई स्थान नहीं है। असंख्य व्यक्तियोंके शरीर नष्ट हो गये हैं, मन दुर्बल पड़ गये हैं। उनमें यदि विषयेच्छा जाग्रत हो और वे उसे सन्तुष्ट करनेमें लग जायें तब तो हमारा विकास अवरुद्ध हो जायेगा। इन उपायोंका उपयोग करनेवाले कुछेक व्यक्ति तो सचमुच नपुंसक जैसे हैं। समाचारपत्रोंमें जो विज्ञापन प्रकाशित होते हैं उन्हें देख जाना। यह बात मैं विस्तृत अनुभवोंके आधारपर कह रहा हूँ। 'नीतिनाशने मार्गे'[2] में मैंने जो लेख लिखे हैं वे शक्तिहीन विद्यार्थियों और अध्यापकोंके हर हफ्ते जो पत्र

१. मथुरादास त्रिकमजीने सन्तति-नियमनका समर्थन किया था।

२. "अनीतिकी राहपर"; देखिए खण्ड ३१।

आते थे उनके प्रत्युत्तरमें लिखे गये हैं। हिन्दुस्तानके नवयुवकोंको अभी अपने ऊपर जोर-जबरदस्ती करके भी संयमका पाठ सीखना है। लड़कियोंकी भी विचित्र स्थिति है। आश्रममें पली-बढ़ी . . .[१] जैसी लड़की, पन्द्रह वर्षकी अल्पायुमें और शरीरसे दुर्बल, विवाहकी माँग करे, यह कैसी विचित्र बात है? पन्द्रह वर्षकी लड़कीमें किस लिए विकार पैदा हों? लेकिन हमारा वातावरण ही मलिन है। बचपनसे ही लड़के और लड़कियोंको विकारका प्याला पिलाया जाता है। ऐसे बच्चोंको विकारवश होनेका धर्म सिखानेके लिए मैं तो तनिक भी तैयार नहीं हूँ। लेकिन अब मैं इस बातको और ज्यादा नहीं खींचूँगा। इतने भरसे मेरे विचारोंको तुम जान सकोगे।

प्यारेलाल धूलिया [जेल] में हैं और देवदास गोरखपुर [जेल] में। धूलियामें, कह सकते हैं, इस समय गीता मंडली इकट्ठी हुई है, क्योंकि वहाँ विनोबा रोज 'गीता' पर प्रवचन करते हैं।

तुम्हारी तबीयत अच्छी है इसलिए १७ पौंड वजन जानेका तनिक भी खेद नहीं है। वजन स्वास्थ्यका अनुमान लगानेमें अमुक सीमा तक ही सहायक है। जमनालाल-जीका वजन २५ पौंड कम हो गया है। तुम्हारी और उनकी स्थितिमें बहुत भेद है। जितनी उदारतासे वे अपना वजन खो सकते हैं उतनी उदारतासे तुम नहीं खो सकते।

तारामती और दिलीपके[२] पत्र आते रहते हैं। उन्हें मैंने अपने पास बुलाया था। और जब ये लोग तैयार हुए तब मुलाकात ही बन्द हो गई। दरवाजे फिर खुलेंगे तो बुलाऊँगा।

साप्ताहिक 'टाइम्स' में हर महीने आकाशदर्शनका एक चित्र प्रकाशित होता है, इसे तुम सब लोग एक बार देख जाना। मैं तो अभी आकाशदर्शनका, तारोंको देखनेके आनन्दका रसास्वादन कर रहा हूँ। मुझमें वृद्धावस्थामें जागृति आई है, लेकिन यदि आकाशदर्शनसे आत्मदर्शनकी झाँकी मिलती हो, तो अन्तिम श्वास लेनेके समय भी जाग्रत होनेमें क्या बुराई है? जो तुमसे मिले उसे आशीर्वाद।

[पुनश्च :]

जिस लिफाफेमें मैं अपना यह पत्र तुम्हें भेज रहा हूँ वह तुम्हारे पत्रके लिफाफे में से ही सरदारने बनाया है। लिफाफे बनाना उनका रोजका धन्धा हो गया है। देशमें जो नया पैदा होगा उतनी ही देशकी सम्पन्नतामें वृद्धि होगी।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. नाम नहीं दिया गया है।

२. मथुरादास त्रिकमजीका पुत्र।

६७. पत्र : शारदा सी० शाहको

१८ जून, १९३२

चि० शारदा,

भूल बुरी चीज है, इसलिए उसकी शर्म लगती है। भूलकी माफी माँगना अच्छा काम है, इसलिए उसकी शर्म कैसी? माफी माँगनेका अर्थ है फिरसे भूल न करनेका निश्चय। यह निश्चय हो तो उसमें शर्म किस बातकी? यह समझमें आया?

सत्य और अहिंसाकी तुलना क्या की जाये? मगर करनी ही पड़े तो मैं कहूँगा कि सत्य अहिंसासे भी बढ़कर है, क्योंकि असत्य भी हिंसा है। जिसे सत्य प्रिय है, वह तो अहिंसाको किसी दिन अपना ही लेगा।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९५०) से; सौजन्य: शारदाबहन जी० चोखावाला

६८. पत्र : डा० हीरालाल शर्माको

१८ जून, १९३२

प्रिय मित्र,

श्रीमती बहन अम्तुस्सलामने कुछ दिन हुए तुम्हारी कुछ पत्रिकाएँ और 'लाइट ऐन्ड कलर इन द मेडिकल वर्ल्ड' नामक तुम्हारी पुस्तकके दो भाग मेरे पास भेजे थे। उन्होंने मुझे बताया है कि तुमने उनकी चिकित्सा बड़ी सावधानी और विशेष ध्यान देकर की है। मैं इसके लिए आभारी हूँ। रही प्रकाश और रंग सम्बन्धी साहित्यकी बात—सो इस विषयपर मैं कोई सम्मति नहीं दे सकता क्योंकि इस चिकित्साका मुझे नाममात्र भी अनुभव नहीं है।

औषधियोंमें मेरा कुछ अधिक विश्वास नहीं। मैं तो सूर्यकी रोगनाशक शक्तिमें आस्था रखता हूँ इसलिए मुझे तो स्वभावतः यह जान कर खुशी होगी कि जिस चिकित्सा विधिके तुम समर्थक हो, वह ठोस हो और परीक्षामें पूरी उतरे। जिन सीमित परिस्थितियोंमें मेरा जीवन चल रहा है उनमें प्रयोग करना यदि मेरे लिए सम्भव हुआ तो मैं करूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह

६९. प्रार्थना[1]

१९ जून, १९३२

प्रार्थना आश्रमकी आधारशिला है। इसलिए इसे हमें अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिए। यदि यह मनोयोगपूर्वक न की जाये तो सब-कुछ झूठा समझना चाहिए। खाते समय बहुत करके कोई भी व्यक्ति सोया हुआ दिखाई नहीं देता। प्रार्थना तो खानेसे करोड़ गुना ज्यादा उपयोगी चीज है। इस समय यदि कोई सोता है तो यह बड़ी ही दयनीय स्थिति कही जायेगी। प्रार्थना छूट जाये तो मनुष्यको भारी दुःख होना चाहिए। खाना छूटे तो छूटे, लेकिन प्रार्थना न छूटे। खाना छोड़ना कितनी ही बार शरीरके लिए लाभकारी होता है। प्रार्थनाका छूट जाना तो कदापि लाभदायक हो ही नहीं सकता।

लेकिन जो व्यक्ति प्रार्थनामें सोता है, आलस्य करता है, बातें करता है, ध्यान नहीं करता, विचारोंको अनेक जगहोंपर जाने देता है, उसके लिए माना जायेगा कि उसने प्रार्थना छोड़ दी है। वह तो केवल शरीरसे प्रार्थनामें हाजिरी देता है और दम्भ करता है। इस तरह वह दोहरा अपराध करता है। प्रार्थना छोड़ी और समाजको धोखा दिया। धोखा देना अर्थात् असत्यका आचरण करना अर्थात् सत्यव्रतका भंग।

लेकिन किसीको अनिच्छासे नींद आये, आलस्य आये तो क्या करना चाहिए? वस्तुतः ऐसी कोई चीज है ही नहीं। यदि हम बिस्तरसे उठकर सीधे प्रार्थनामें जायें तब तो नींद आयेगी ही। प्रार्थनामें जानेसे पहले जाग्रत हो जाना चाहिए, दातौन करनी चाहिए और तरो-ताजा रहनेका निश्चय करना चाहिए। प्रार्थनामें एक दूसरेसे सटकर नहीं बैठना चाहिए। लकड़ीके समान सीधा बैठना चाहिए, धीरेसे श्वासोच्छ्वास करना चाहिए और यदि पाठ करना आये तो ऊँचे स्वरोंमें करना चाहिए। जो श्लोक अथवा भजन हों उन्हें मनमें बोलना चाहिए। यह भी न आये तो रामनाम लेना चाहिए। तिसपर भी यदि शरीर काबूमें न रहे तो खड़े हो जाना चाहिए। बड़े हों अथवा छोटे, किसीको भी इसमें शर्म नहीं करनी चाहिए। शर्म मिटानेके लिए, नींद न आनेके बावजूद, समय-समय पर बड़ोंको खड़े रहना चाहिए।

प्रार्थनामें जो पाठ किया जाये वह तुरन्त सबकी समझमें आ जाना चाहिए। संस्कृत न आये तो भी उसके अर्थको जान लेना चाहिए। और उसपर मनन करना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", १६/१९-६-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

७०. पत्र : नारणदास गांधीको

१६/१९ जून, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक मंगलवारको मिल गई थी। जेठालालके पत्रका मेरा उत्तर[1] पढ़ जाना। उसकी रिपोर्ट नहीं मिली। वह रजिस्टर करवा कर भेज देना। तुमने हीरालाल शास्त्रीका[2] "जीवन कुटीर" का विवरण भेजा है लेकिन उसके साथ न तो कोई पत्र है और न उसके बारेमें तुम्हारे पत्रमें कोई उल्लेख ही है। तुम कुछ जानते हो तो इस भाईका परिचय देना। सीतलासहायके बारेमें मैं तुम्हें लिख ही चुका हूँ। महावीरके सम्बन्धमें लिखा पोस्टकार्ड भी तुम्हें मिल गया होगा।

मेढ़का पत्र इसके साथ है। मणिलालकी समस्या बहुत उलझ गई है और अब तो उसके आनेकी आशा छोड़ देनी चाहिए।

प्रार्थनाके बारेमें मैं अलगसे लेख लिखनेका विचार करता हूँ, जिससे कि वह सबके लिए उपयोगी होगा। इसीसे यहाँ कुछ नहीं लिखता। जो नया नियम[3] बनाया गया है, उसका पालन किया जाये तो पर्याप्त है।

मजदूर खादी पहने। उसके बाल बच्चे हों तो उन्हें आश्रममें पढ़नेके लिए भेजे, बन सके तो बीड़ीका व्यसन छोड़े, दारूका व्यसन तो होना ही नहीं चाहिए, आश्रमकी भूमिपर रहता हो तो सवेरे-साँझकी प्रार्थनामें शामिल हो। खादी मात्र आश्रममें ही पहने, इतना ही पर्याप्त नहीं होना चाहिए। उसकी रुचि हो तो काते, नहीं तो जरूरी नहीं। मुझे लगता है कि हमें इसके अलावा दूसरे किसी भी नियम-पालनकी और कोई शर्त नहीं करनी चाहिए। लेकिन हमें इस बातकी प्रतीति रखनी चाहिए कि यदि हम उसके जीवनमें प्रवेश करेंगे, उसके सुख-दुःखके साथी बनेंगे, उसके बच्चोंसे परिचय बढ़ायेंगे तो वह स्वेच्छासे और विवेकपूर्वक अन्य नियमोंका पालन करेगा। अभी तो उसे इसका ज्ञान देना चाहिए, इसका क्या महत्त्व है सो समझाना चाहिए और हमारा संग यदि सचमुचमें सत्संग होगा तो तुलसीदासकी प्रतिज्ञा[4] झूठी सिद्ध नहीं होगी। इससे हमारी भी परीक्षा हो जायेगी। आजतक इन्हें हमने अपना स्वजन नहीं माना है। भाईचारा रखनेका प्रयत्न तो अवश्य किया है, लेकिन उसके पीछे बड़प्पनका भाव रहा है। उनकी अपेक्षा हम कुछ श्रेष्ठ हैं, उच्च हैं — यह मान्यता रही है। मैं जैसे-जैसे देखता जाता हूँ वैसे-वैसे मुझे यह विश्वास होता जाता है कि ऊँच-नीच जैसी

१. देखिए "पत्र : जेठालाल गोविन्दजी सम्पतको", १९-६-१९३२।

२. राजस्थानके एक रचनात्मक कार्यकर्ता; वनस्थली विद्यापीठके संस्थापक।

३. प्रार्थनाके समय पाँच मिनट मौन रखनेका नियम।

४. सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥ (**रामचरितमानस** — बालकाण्ड)

कोई बात है ही नहीं। किसका पुण्य ज्यादा होगा इसका अन्दाज हम लगा ही नहीं सकते, इसका हमारे पास साधन ही नहीं है। राई बड़ी है अथवा पर्वत, इसकी तुलना कौन कर सकता है? आकारके अनुसार तो बड़े-छोटे होनेकी बात हम नहीं करते। इसी तरह हम परस्पर एक-दूसरेके बारेमें ऊँच-नीचकी तुलना नहीं कर सकते और इसीसे मैंने आसानसे-आसान नियमका सुझाव दिया है अथवा अपने शास्त्रोंसे मैंने सार निकाला है कि प्रत्येक व्यक्तिको शून्यवत् होकर रहना चाहिए। उसके बाद हमें अपने ऊपर अभिमान करनेका कोई कारण नहीं रह जाता। मजदूरोंके बारेमें मेरे इन विचारोंमें तुम्हें अथवा किसी भी अनुभवीको कोई दोष दिखाई दे तो मुझे लिखना। इसको व्यवहारमें लानेमें तो कठिनाइयाँ अवश्य आयेंगी, लेकिन प्रत्येक अच्छे काममें कठिनाइयाँ तो होनी ही चाहिए।

धीरू और कुसुमने लौट आनेमें बहुत उतावली की है। इतनी उतावलीके साथ वापस आनेके पीछे कोई कारण होना चाहिए। तुम इसे जान सको तो मुझे लिखना। पिछले सप्ताह राणावावसे धीरूका पत्र आया था जिसमें लिखा था कि दोनोंकी तबीयत अच्छी है और वजन भी खूब बढ़ रहा है। इससे मेरा खयाल यह है कि इतनी जल्दी वापस आ जानेके पीछे जो कारण है वह मानसिक क्लेश है। हस्ताक्षर लिखते समय मैं आशीर्वाद नहीं लिखता, उसका कारण तो मैंने तुम्हें बता ही दिया था — आशीर्वाद न लिखनेसे इतना श्रम बचता है और आशीर्वाद तो है ही, ऐसा तुम सबको मानकर चलना चाहिए।

आम खाकर बीमार पड़नेके बारेमें बा का जो उत्तर है वह मेरे विचारानुसार ठीक नहीं है। ऐसे कठिन समयमें आम नहीं खाने चाहिए ऐसा बा का दृष्टिकोण है। और उसके दृष्टिकोणके अनुसार यह विचार ठीक ही है। बा मन ही मन मेरे प्रति भी यही इच्छा रखती है अर्थात् मेरा दृष्टिकोण भी वही होना चाहिए जो बा का है, इसके पीछे बा का मेरे प्रति प्रेमभाव है। मैंने जब भी किसी वस्तुको लेकर संयमका पालन किया है, उसका स्वाद बा ने भी चखा है। पहले मेरे संयमकी बातसे वह उलझनमें पड़ जाती थी, वह समझ भी नहीं पाती थी, लेकिन धीरे-धीरे वह उसकी कीमत समझने लगी। लेकिन इस बार मैंने अपने आहारसे आमोंको नहीं निकाला है। मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ उसमें ताजे फलोंकी आवश्यकता है। आम मेरे लिए हमेशा पोषक सिद्ध हुआ है इसीसे अनायास ही जो आम मिल गये तो मैंने उनका परहेज नहीं किया और चूँकि यह बात लोगोंको मालूम हो गई इसीसे ढेरों आम आने लगे हैं। तथापि बा ने भले ही उनसे परहेज किया।

छारा लोगोंमें यदि तुम प्रवेश करो तो उन्हें छोड़ना नहीं। यदि यह कार्य अपनी शक्तिके बाहर जान पड़े तो उसे छोड़ा जा सकता है। अपनी ओरसे कुछ त्याग करके भी हमें उनसे मिलना चाहिए, यह हमारा धर्म है और मेरी मान्यता भी यही है। यदि हम उनसे मिलनेकी, उनके साथ एक होनेकी कोशिश करेंगे तो वे कदाचित् उपद्रव करेंगे। उससे बच निकलनेका लोभ लेकर यदि हम उनके पास जायेंगे तो उनके बीच कभी प्रवेश नहीं किया जा सकेगा और न इस प्रकार बचा ही जा

सकेगा। ईश्वरको बचाना होगा तभी बच सकेंगे। यदि वह नहीं बचायेगा तो जो कुछ भी होगा उसे उसकी प्रसादी समझकर सहर्ष शिरोधार्य कर लेंगे। वे हमारे पड़ोसमें रहते हैं, उनसे मिलना, उनमें प्रवेश करना हमारा धर्म है -- यह मानकर हमें प्रवेश करना चाहिए। प्रवेश करनेके योग्य तो मैं पण्डितजी[1]को ही मानता हूँ। पहला प्रवेश रामधुनसे होगा। लेकिन पण्डितजीको उसके विषयमें आत्मविश्वास होना चाहिए। आगे चलकर वे अपने साथ बच्चोंकी टोली भी ले जा सकते हैं। छारा लोगोंके बच्चोंको पढ़ानेका काम हम अपने हाथमें ले सकते हैं। उनकी बीमारीमें मदद पहुँचा सकते हैं। यदि यह करें तो इसके लिए एक व्यक्ति मुकर्रर करना होगा। बीमारीमें दो प्रकारसे मदद की जा सकती है। सामान्य बीमारीमें हम उनकी सहायता करें और यदि बीमारी ऐसी हो कि हम कुछ मदद न कर सकें तो उसके लिए हम अपने सम्पर्कमें आनेवाले डाक्टरोंकी मदद लें। यह मदद खुशी-खुशी मिल सकती है।

छक्कड़दाससे कहना कि उसकी पूनी इतनी अच्छी है कि मुझमें और लेनेका लोभ हो आया है। इस तरहकी रुईकी पूनी यहाँ नहीं है इसलिए जैसा कि उसने लिखा था, यदि वह चाहे तो भले ही और पूनियाँ भेज सकता है। मैं उनका उपयोग नहीं करूँगा, क्योंकि मैं मगन-चरखे पर ४० अंकका सूत नहीं कात सकता। इस चरखे पर किसीके ४० अंकका सूत कातनेकी बात भी सुननेमें नहीं आई है। इससे कम अंकवाले सूतके लिए ऐसी बढ़िया पूनीका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। महादेवके लिए हर महीने कमसे-कम ३० तोला पूनियाँ चाहिए। लेकिन अभी कोई जल्दी नहीं है। छक्कड़दासकी इतनी पूनियाँ तो पड़ी हैं कि वे करीब तीस दिनों तक चल सकती हैं। इनके समाप्त होनेपर जो पूनियाँ यहाँ बनती हैं उनसे कितने अंकका सूत काता जा सकेगा -- इसका प्रयोग महादेव करेगा ही। यह तो छक्कड़दास पर जरूरतसे ज्यादा बोझ न पड़े इस खयालसे पहलेसे ही लिख दिया है। और यदि वह सहज ही भेज सके तभी भेजे। उसे इतना परेशान करना चाहिए अथवा नहीं, इसपर तुम और चिमनलाल स्वतन्त्र रूपसे विचार करना और यदि तुम्हें लगे कि उसने और पूनियाँ भेजनेकी जो बात लिखी थी वह उसकी भलमनसाहत थी और वस्तुतः ऐसा करना उसके लिए कठिन है तो यह सन्देश उसतक न पहुँचाना।

तोतारामजीका पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। भणसालीकी[2] दृढ़ता सचमुच बहुत भारी है। लीलाबहन[3] कहाँ है, क्या करती है? उसने आश्रमके साथ कोई सम्बन्ध रखा है या नहीं? रामनारायण चौधरीका[4] पत्र मुझे मिला ही नहीं और चूँकि आश्रम वर्धा चला गया इससे सम्भव है कि वे गिरफ्तार भी हो गये हों। इस सम्बन्धमें यदि ज्यादा जानकारी हो तो लिखना।

१. नारायण मोरेश्वर खरे।
२. प्रोफेसर जयकृष्णदास प्रभुदास भणसाली।
३. भणसालीजीकी एक रिश्तेदार महिला।
४. राजस्थानके एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता, जो **हिन्दी नवजीवन** के सम्पादनमें सहायता देते थे।

लालजी[1] आजकल कहाँ काम कर रहा है? बीजापुरमें अथवा अमरेलीमें, मुझे कोई खबर नहीं। विद्यापीठमें सरकारकी ओरसे कोई रहता है क्या? मकानोंका कोई उपयोग करता है क्या? कनैयालाल बिल्कुल ठीक हो गया होगा? दामोदरदास बहुत ज्यादा कठिनाईमें है, इसकी तुम्हें खबर पड़ी होगी।

मैं तुम्हें यह पत्र लिख ही रहा था कि इतनेमें मुझे तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। देवदासके सम्बन्धमें मुझे सीधे तार मिला था, जिसपर मैंने और विवरण लिख भेजनेके लिए तार भी किया था। अभीतक कोई जवाब नहीं आया है।

बापू

१९ जून, १९३२

गुजरातीकी माइक्रोफिलम (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३४ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

७१. पत्र: लॉरी सॉयरको[2]

१९ जून, १९३२

प्रिय लॉरी,

प्रो० होरेस अलेक्जेंडर मुझे तुम्हारी याद दिलाते हैं और कहते हैं कि तुम बहुत कमजोर हो। अवश्य ही मुझे तुम्हारी बहुत अच्छी तरह याद है। तुम शरीरसे कमजोर भले होगी, मगर मैंने जब पहली बार तुम्हें देखा था तभी जान लिया था कि तुम्हारा मन बहुत दृढ़ है। और अगर ईश्वरको तुम्हारे इस शरीरसे और सेवा करानी होगी, तो वह तुम्हें पर्याप्त शारीरिक शक्ति भी देगा। जिन्हें ईश्वर-पर श्रद्धा है, उनके लिए मृत्यु और जीवन एक समान है। हमारा फर्ज तो आखिरी दम तक सेवा करना है। तुम लिख सको तब जरूर लिखना। महादेवकी तरफसे प्यार।

तुम्हारा,
बापू

१. लालजी परमार, पंचमहलके एक हरिजन विद्यार्थी।

२. इस पत्रकी भूमिका देते हुए महादेव देसाईने लिखा है: "इंग्लैंडमें हमारी सहायता करनेवाली अनेक महिलाओंमें लॉरी सॉयर एक थी। वह पहले कैंसरसे पीड़ित हो चुकी थी और उसके बाद क्षय रोगसे, लेकिन मैंने उस जैसी प्रफुल्लचित्त और कुशाग्रबुद्धि लड़की कम ही देखी है। होरेसने लिखा था कि लॉरीके ज्यादा समय तक जीवित रहनेकी आशा नहीं है, इसलिए बापूको उसे एक पत्र लिख देना चाहिए। अत: उन्होंने फौरन उसे पत्र लिखा।. . ."; देखिए "पत्र: होरेस जी० अलेक्जेंडरको", २३-६-१९३२ भी।

[पुनश्च :]

मैं अपने लोगोंके बारेमें कुछ नहीं लिख रहा हूँ, क्योंकि जानने लायक सब तुम्हें मालूम ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

७२. पत्र : जेठालाल गोविन्दजी सम्पतको[1]

१९ जून, १९३२

तुम्हारे प्रयोगको मैं शास्त्रीय कहता हूँ और इसलिए मेरी दृष्टि तुम पर सदा रहती ही है और तुम्हारे कामका आदिसे अन्ततक हाल जाननेकी इच्छा हमेशा बनी रहती है। तुम अनुभवी कार्यकर्ता हो, इसलिए ज्यादा मुश्किलें तो तुम अब अनुभव करोगे। महान कार्योंके सम्बन्धमें सदा ऐसा ही होता रहा है। जब यह लगता है कि अब रास्ता साफ हो गया है इसलिए जल्दी प्रगति कर लेंगे, और यह मानकर जरा आराम लिया कि तुरन्त खाई नजर आती है। इसलिए तुम्हें वहाँ समाधि लगाकर बैठ जाना चाहिए। पहली चीज तो अटूट धीरज है और ऐसे धीरजके लिए आत्म-विश्वास होना चाहिए। और आत्मविश्वासका अर्थ है अपने काममें अटूट श्रद्धा। इतना हो जाये तो फिर अनजानमें बेशुमार भूलें होती हों तो भी चिन्ताकी कोई बात नहीं रहती। कहीं हम भूल तो नहीं करते, निरन्तर इस भयसे सूखनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे प्रयोगको मैं शास्त्रीय मानता हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं इसे आज ही पूर्णरूपेण शास्त्रीय समझता हूँ। लेकिन तुम्हारे काममें शास्त्रीय प्रयोगके लक्षण हैं। और इस तरहके प्रयोगोंमें जो धीरज चाहिए वह भी तुममें है। पहले मुझे तुममें एक दोष दिखाई देता था, लेकिन मुझे लगता है कि तुमने अपने उस दोष को सोच-समझकर दूर कर दिया है, या तुम जानते भी न हो इस ढंगसे तुम्हारी सत्यनिष्ठाके कारण वह दूर हो गया है। वह दोष यह था : अधूरे कामसे सन्तोष मानकर तुम झट निष्कर्षपर पहुँच जाते थे। यह मैं अब तुममें नहीं देखता। शास्त्रीय प्रयोग करनेवाला व्यक्ति अपनेमें अटूट श्रद्धा रखनेके कारण कभी निराश नहीं होता। मगर उसके साथ-साथ उसमें इतनी ज्यादा नम्रता होती है कि वह अपने कामसे सन्तोष नहीं कर लेता और तुरन्त ही किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच जाता। मगर समय-समयपर गहराईसे हिसाब लगानेके बाद निश्चयपूर्वक कहता है कि इसका परिणाम यही आयेगा। ऐसी शास्त्रीय नम्रताकी कमी हम सबमें है। इसलिए तुममें जो यह बात मुझे नजर आई थी, सो कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी। सिर्फ मैंने तुम्हारे सम्बन्धमें यह माना है कि तुममें अन्त तक जानेकी शक्ति है। इसलिए यह दोष भी

१. जेठालाल गोविन्दजी सम्पतने अपने कार्यकी रिपोर्ट भेजी थी। वे पिछले तीन वर्षोंसे मध्यप्रदेशके अनन्तपुर गाँवके गरीबोंके बीच काम कर रहे थे।

तुममें न रहे, इस तीव्र इच्छासे वर्षों पहले बहुत धीरेसे मैंने तुम्हारा ध्यान उस बातकी तरफ खींचा था। कार्य-सिद्धिके लिए तुम्हें सबसे पहले साथियोंकी खोज करनी होगी। तुम्हारी साधना ऐसी है कि धीरे-धीरे साथी मिल ही जायेंगे। साथी जुटानेके लिए हमें एक गुणकी उपासना करनी ही पड़ती है — सहिष्णुता और उससे उत्पन्न उदारता। हम जो-कुछ करते हैं या करना चाहते हैं वह सब साथी उसी तरह नहीं कर सकते। लेकिन जबतक यह लगे कि वे अच्छी नीयतवाले और उद्यमशील हैं, तबतक हमें उन्हें निभाना चाहिए। ऐसा न करें तो साथी बढ़ते नहीं। कितनोंको तो मिलते ही नहीं।

अब तुम्हारे कामके सिलसिलेमें एक और बातकी जरूरत समझता हूँ। जो लोग दूसरे ढंगसे काम करते हों, उनसे भी सीख लेनेकी इच्छा होनी चाहिए। शास्त्रीय प्रयोग एक ही ढंगसे सफल हो सकता है, ऐसा माननेमें बड़ी भूल होती है। बहुत लोग ऐसा मानते जरूर हैं, मगर ऐसा मानकर वे खुद बहुत खोते हैं। हमारी वृत्तियाँ ऐसी होनी चाहिए कि हमारे लिए तो वही तरीका ठीक है जिसे हम सच्चा या पूर्ण मानते हैं। मगर दूसरे लोग, जो इसकी पूर्णताको नहीं देख सकते या इसकी अपूर्णताको जान सकते हों, वे जरूर दूसरी पद्धतिसे बाकी काम कर सकते हैं। ऐसी भावनाका विकास करनेसे हमारी ग्रहणशक्ति बढ़ती है।

तुम इस समय जिस ढंगसे काम कर रहे हो, उसके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता। यानी तुम्हारे कामके प्रति पक्षपात होनेके कारण यहाँसे तो सब अच्छा ही अच्छा लगता है। वहाँ आँखोंसे देखूँ तो मुमकिन है कि मुझे कई विचार आयें और मैं उन्हें तुम्हारे सामने रखूँ। यहाँ बैठे हुए मैं तुम्हारे कामका चित्र अच्छी तरह नहीं खींच सकता। इसलिए कोई भी सुझाव देनेमें अविनय ही मालूम होगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

७३. पत्र : शामल आर० रावलको

१९ जून, १९३२

चि० शामल,

जो खुराक तू खा रहा है वह यदि माफिक आ जाये तो अच्छा ही है। तुझे कब्ज रहता है इसका मतलब कदाचित् यह है कि तुझे उबली हुई सब्जियाँ पर्याप्त मात्रामें लेनी चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४२) से। सी० डब्ल्यू० २८८१ से भी; सौजन्य : शामल आर० रावल

७४. पत्र : नानाभाई इ० मशरूवालाको

१९ जून, १९३२

भाई नानाभाई,

तुम्हारे पत्र मिले। जितने अंशकी नकल तुमने मुझे भेजी है मणिलालके पत्रका उतना अंश मुझे मिल गया है। दूसरे भागमें से मेरे जानने योग्य कुछ हो तो उसकी नकल भेजना।

प्रागजी 'इंडियन ओपिनियन' की जिम्मेदारी अपने सिर लेनेसे इन्कार करते हैं तो मणिलालको वहाँ [दक्षिण आफ्रिकामें] रुक जाना चाहिए, ऐसा मुझे भी लगता है। 'इंडियन ओपिनियन' चलानेकी उसमें स्वयं हिम्मत हो तबतक उसे नहीं छोड़ना चाहिए। यह उसका पहला कर्तव्य है। हमें तो जहाँ-तहाँ सेवा ही करनी है। वहाँ रहकर वे सब लोग सुखी रहें तो समझो बहुत है। नेटालका बुखार तो प्राणलेवा था। उससे अभी तो ये सब बच गये हैं। सुशीला और सीताके वहाँ रहनेके समाचारसे मैं यह सोचकर खुश था कि वहाँ वे ज्यादा तन्दुरुस्त रहेंगी। इस बातकी किसे क्या खबर है कि किससे प्रसन्न हों और किससे दुखी। हमें दोनोंका त्याग कर देना चाहिए।

दादासाहब महाजनीके परिवारको मेरी ओरसे संवेदना व्यक्त करना।

सरदार और महादेवको यथायोग्य।

तारा[1] अपना समय किस तरह बिताती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५२०) से। सी० डब्ल्यू० ४९९६ से भी; सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

१. नानाभाईकी पुत्री।

७५. पत्र : पूँजाभाई एच० शाहको[1]

१९ जून, १९३२

तुम काफी अच्छा लिखते हो। तुमने जन्म सफल कर लिया है। जिसका मन परोपकारमें रमा रहता है और जो अन्त तक ऐसी हालतमें बना रहता है उसका जन्म सफल हुआ है। नारणदास कहता है कि तुम फिर मूर्च्छित हो गये थे। ऐसा करते-करते कभी पूरी नींद आ जायेगी। आये, तब स्वागत कर लेना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

७६. पत्र : एक बालकको

१९ जून, १९३२

बरतन मलने और पाखाना साफ करनेका काम आम तौर पर अच्छा नहीं लगता। इसलिए खास जातियोंसे कराया जाता है। यह दोष है। अतएव जो परोपकारकी भावनासे यह काम करता है वह सेवा करता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

७७. एक पत्र[2]

१९ जून, १९३२

किसी भी हालतमें रहकर जो सत्यका आचरण कर सकता है, वही सत्यार्थी माना जायेगा। व्यापारमें किसीको झूठ बोलनेकी मजबूरी नहीं है और न नौकरीमें। जहाँ मजबूरी दीखे वहाँ नहीं जाना चाहिए, फिर भले भूखों मर जायें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. गांधीजीके एक पुराने सहयोगी; इस समय पूँजाभाई बीमार थे और अक्टूबर, १९३२ में इनकी मृत्यु हो गई। इनके बारेमें गांधीजीके संस्मरणोंके लिए देखिए खण्ड ५१, "चिरंजीवी पूँजाभाई!" २३-१०-१९३२।

२. यह जिसे पत्र भेजा गया था उसने एक वस्त्र-व्यापारीके असिस्टेंट होनेकी नौकरीके विकल्पमें गांधीजीसे राय माँगी थी, क्योंकि उसमें झूठ बोलना पड़ता था।

७८. पत्र : अब्बास तैयबजीको

२० जून, १९३२

प्रिय भुर्रर[1],

तुम कोशिश करो तो भी मुझे निराश नहीं कर सकते।[2] इसलिए ऐसे कोई विचार करके उदास मत हो। जब रेहाना[3] गाये तब तुम नाचो, बस इतना ही है। हम सबको खुशी है कि तुम अब सांसारिक झंझटोंसे मुक्ति पानेवाले हो।

हामिदअली परिवारको कृपया मेरा सलाम भेजना। मुझे विश्वास है कि वे ऐसा नहीं मानते कि उस सुन्दर पहाड़ीपर तुमने सुअर्जित आराम लेकर उनकी छुट्टियाँ खराब की हैं। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं वहाँ कभी नहीं गया हूँ।

तुम्हें हम लोगोंका प्यार।

तुम्हारा,
भुर्रर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५७८) से।

७९. पत्र : प्रिंसेस एफी एरिस्टार्शीको

२० जून, १९३२

प्यारी बहन,

तुम्हारे प्रेमभरे पत्र मुझे मिलते रहते हैं। पिछले पत्रमें तुमने अपनी आर्थिक परेशानियोंका जिक्र किया है। मैं तुम्हारे लिए जरूर प्रार्थना करता हूँ। जो ईश्वरका डर रखकर चलते हैं, उन्हें रुपये-पैसेका या और किसी नुकसानका डर रखनेका कारण नहीं है। भगवानके भक्तोंके लिए अकसर ऐसी मुश्किलें छिपे हुए आशीर्वादके समान साबित होती हैं। तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारे धैर्यसे तुम्हारी वृद्धा माताजीको उत्साह मिलेगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

१. गांधीजी और तैयबजी एक दूसरेको 'भुर्रर' कहकर ही सम्बोधित करते थे।

२. तैयबजी अपनेको गिरफ्तार करा सकनेमें असमर्थ थे जिसका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा था: "यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि एक भी क्षण ऐसा नहीं है जब मुझे तुम्हारा और तुम्हारे साथियोंका ध्यान न रहता हो और मुझे लगता है कि मैं तुम्हें कितना निराश कर रहा हूँ।" (**महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१)

३. अब्बास तैयबजीकी पुत्री।

[पुनश्चः]

तुमने 'उपनिषद्'[1] के सुन्दर श्लोक[2] का जो चरण उद्धृत किया है उसका उत्त-रार्द्ध तुम्हें मालूम ही है। उसका अर्थ है, "संसारका त्याग करके उसका सुख भोगो।" यह कितना उपयुक्त है!

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

८०. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२० जून, १९३२

कौन जानता है तन्दुरुस्त रहनेसे अच्छा है या न दुरुस्त रहनेसे। नल दमयन्ती की कथा सुनी है ना? नल वहुत खूबसूरत था, उसे बचानेके लिए खुदाने करकोटक नागको हुक्म दिया। जाओ नलको काटो और उसे बदसूरत बना दो। जब नागने काटा, नल घबड़ा गया। आखिरमें उसे पता चला कि ये तो खुदाकी नियामत है। ठीक ऐसा ही मैं तुम्हारे बारेमें जानता हूँ। इसलिए दर्दका इलाज करते रहें, लेकिन अच्छे-बुरेकी हरगिज फिकर न करें। तुम्हें हर हालतमें गाना नाचना ही है और अम्माजानकी खिदमतमें रहना है।[3]

मेरा भाषण पूरा हुआ। तुम्हें तो कुछ भी हो हँसते ही रहना है। अगर तुमने अपना सब-कुछ ईश्वरको सौंप दिया है तो शरीर उसका है, तुम्हारा नहीं है। रोग भी उसीको है, तुम्हें नहीं है। फिर दुख कैसा? जो गजल तुमने गुजरातीमें दी है वह समझनी पड़ेगी। तुम मानती हो कि तुम्हें होशियार शागिर्द मिला है। पर थोड़े ही समयमें तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी। जो होशियार होगा, वह शिष्य ही क्यों बनेगा? और वह भी तुम्हारी जैसी उस्तादिनीका? इसलिए कोई हर्ज नहीं। जैसी तुम वैसा मैं। या जैसा मैं वैसी तुम। यह कौन कह सकता है कि तुमने मुझे शिष्यके रूपमें पसन्द किया या मैंने तुम्हें उस्तादिनीकी गद्दीपर बिठा दिया?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. **ईशोपनिषद्**, १।

२. ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत् किंचिज्जगत्यांजगत।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

३. गांधीजीने यह अनुच्छेद उर्दूमें तथा इसके बादका अंश गुजरातीमें लिखा था।

८१. पत्र : रोहिणीबहन देसाईको

२० जून, १९३२

चि० रोहिणी[1],

तेरा और सुरबालाका पत्र मिला। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि लगभग हमीदाके पत्रके साथ ही तेरा पत्र भी मिला! अब फिर लिखनेकी प्रवृत्ति जगे तो लिखना कि मन्दिरमें [जेलमें] तू अपना समय कैसे बिताया?

मामाकी तबीयत ठीक हो गई होगी। दोनों बहनोंको हमारा आशीर्वाद।

बापू

श्रीमती रोहिणीबहन
मार्फत श्रीयुत् कानजीभाई देसाई
गोपीपुरा, सूरत

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६५७) से।

८२. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दारको

२१ जून, १९३२

किसी व्यक्तिको सामने रखकर तो आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर देनेमें[2] मुझको सुविधा रहती है। अखबारोंके लिये लिखनेमें कष्ट होता है। जब यह ज्ञात हुआ कि जो प्रश्न मुझको पूछे थे वह 'कल्याण' ही के लिये थे, तो ऐसा ही समझो कि मेरी बुद्धि जड़-सी बन गई। इसका यह मतलब नहीं है कि अखबारोंमें कुछ लिखा जाय उससे जनताको लाभ नहीं होता है। मैं तो अपनी प्रकृतिका खयाल दे रहा हूँ। इसी कारण मैंने 'यंग इंडिया'में बहुत दफे लिखा है। मेरी दृष्टिसे वह कोई अखबार न था। परन्तु मित्रोंको मेरा साप्ताहिक पत्र था। और जो कुछ आध्यात्मिक बातें उसमें और 'नवजीवन'में पाई जाती हैं, वह करीब-करीब किसी-न-किसी व्यक्तिको सामने रखकर ही लिखी गई हैं। इसका कारण भी है। मैं शास्त्रज्ञ नहीं हूँ।

१. कनैयालाल देसाईकी पुत्री।

२. अपने पहले पत्रमें हनुमानप्रसाद पोद्दारने गांधीजीसे अपने जीवनकी कुछ उन घटनाओंका उल्लेख करनेके लिए लिखा था जिनके कारण उनका ईश्वरमें विश्वास जागृत हुआ और दृढ़ हुआ। इसपर गांधीजीने पूछा कि कहीं यह प्रश्न इस दृष्टिसे तो नहीं पूछा गया है कि आप इसका उत्तर अपनी धार्मिक हिन्दी पत्रिका **कल्याण** में प्रस्तुत कर सकें।

अगर मैं बुद्धिका काफी उपयोग कर लेता हूँ, परन्तु जो कुछ बोलता हूँ और लिखता हूँ वह बुद्धिसे नहीं पैदा होता है उसका मूल हृदयमें रहता है। और हृदयकी बात निबन्धके रूपमें नहीं आ सकती है।

'संयममयी श्रद्धा' शब्दप्रयोग[1] मैंने लाचारीसे किया था। वह मेरे सब भाव प्रकट नहीं करता है। और कोई शब्दरचना इस वक्त मेरे खयालमें नहीं आती। तात्पर्य यह है कि वह श्रद्धा मूढ़, विवेकहीन, अन्ध होनी ही नहीं चाहिए, अर्थात् जिस जगह बुद्धि भी चलती है वहाँ कोई कहे, 'बुद्धि कुछ भी कहे, मैं श्रद्धासे वही मानता हूँ और मानूँगा — यह श्रद्धामें संयम नहीं है। पृथ्वी गोल है या चपटी यह कहना बुद्धिका विषय है। तदपि कोई कहे मेरी श्रद्धा है कि पृथ्वी चपटी है! यह श्रद्धा संयममयी नहीं है।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

८३. एक पत्र[2]

२१ जून, १९३२

सुन्दर चीजोंकी लालसा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। इतनी ही बात है कि सुन्दरताका कोई सुनिश्चित माप नहीं है। इसलिए मेरा यह खयाल बना है कि यह लालसा पूरी करने लायक नहीं है, बल्कि बाहरी चीजोंकी लालसा रखनेके बजाय हमें भीतरी सुन्दरताको देखना सीखना चाहिए। अगर हमें यह आ जाये, तो सौन्दर्यका विशाल क्षेत्र हमारे सामने खुल जाता है और फिर इसपर अधिकार जमानेकी इच्छा मिट जाती है। यह बात मैंने जरा भोंडे ढंगसे रखी है, मगर आशा है कि मेरा मतलब तुम समझ जाओगी। . . .

जीवनका ध्येय बेशक खुद अपनेको — आत्माको — पहचानना है। जबतक हम प्राणीमात्रके साथ एकता महसूस करना न सीख लें, तबतक आत्माको पहचान नहीं सकते। ऐसे जीवनका समग्र योग ही ईश्वर है। इसीलिए हम सबमें रहनेवाले ईश्वर को जानना जरूरी है। ऐसा ज्ञान असीम और निःस्वार्थ सेवासे ही मिल सकता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. हनुमानप्रसाद पोद्दारने २३ मई, १९३२ के पत्रमें गांधीजी द्वारा प्रयुक्त 'संयममयी श्रद्धा' शब्दाक स्पष्टीकरण माँगा था।

२. म्यूरियल लेस्टरकी एक सहकर्मिणी। उसने गांधीजीसे पूछा था कि मनुष्य सुन्दर वस्तुओंको देखने और उनका उपयोग करनेकी लालसा क्यों करता है, और जीवनका उद्देश्य क्या है।

८४. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

२१ जून, १९३२

चि० रामेश्वरदास,

तुम्हारे पत्रका उत्तर इस सप्ताहकी डाकसे भेजना रह गया। अपने मोहके वश होकर तुम श्रीरामके स्वार्थको कभी नहीं बिगाड़ना। तुम समय-समय पर कांगड़ी अथवा काशी आते-जाते रहा करना और उससे मिलते रहना। विनोबा तुम्हें और क्या छूट देंगे? याद करो कि कमलनयन कहाँ-कहाँ भटकता है? माँ-बापको अपनी सन्तानके स्वार्थोंको बिगाड़नेका कतई कोई अधिकार नहीं है। शिवाजी, दत्तु, शंकरराव इत्यादिकी तुम्हें ज्यादा खबर हो तो लिखना। अन्नाहार और फलाहारके बीच जो भेद किया गया है वह मिथ्या है, ऐसा जानना। शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे कुछ अनाज किन्हीं विशेष परिस्थितियोंमें फलोंसे अधिक सात्विक होते हैं। मूँगफली, यद्यपि फल मानी जाती है तथापि लगभग समस्त रोगोंमें त्याज्य है; जबकि चावल अन्न है, फिर भी वे एक निश्चित मात्रामें खाये जा सकते हैं। जिसे केवल इन्द्रिय-निग्रह करना है वह चावल खाकर जैसे-तैसे गुजारा कर सकता है, लेकिन सम्भव है कि उसके लिए मूँगफली त्याज्य हो। तुम्हारी सेहतके विचारसे पेड़ा जहरके समान है। दाल-भात, रोटी, शाक आदि पूरा भोजन करनेकी अपेक्षा शामको थोड़ा फल अर्थात् मुनक्का, सन्तरा, अनार अथवा ऐसा ही कोई रसीला फल खा लो तो यह जरूर हलका आहार है। बा की खानेकी चीजके रूपमें ये दोनों अन्न ही माने जाने चाहिए। अन्न-फलके भेदकी योजना स्वाद छोड़नेमें असमर्थ होनेके कारण प्रभु और अपनेको धोखा देनेवाले वैष्णवोंकी जान पड़ती है। वैष्णव परिवारमें जन्म लेनेके कारण मैं यह बात अनुभवसे कह रहा हूँ। जिस तरह अलसीकी अथवा गेहूँकी पुलटिस बनाते हैं उसी तरह मिट्टीमें पानी डालकर उसे आटेकी तरह गूँधकर (सान कर) कपड़ेकी एक पट्टीमें लपेटकर पेटपर बाँधना चाहिए। यह भूखे पेट ही बाँधी जानी चाहिए। पेट भरा होने पर यदि इसे बाँधा जाये तो यह नुकसान करती है, और पेट दुखने लगता है। गीता माताका ध्यान करनेका अर्थ है 'गीता' के चाहे किसी भी श्लोक अथवा शब्दके अर्थका चिन्तन करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८२) से।

८५. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

२१ जून, १९३२

भाईश्री खम्भाता,

आपका पत्र मिला। आप दोनोंके लिए मैंने सरकारसे अनुमति प्राप्त कर ली थी और आपको आनेके लिए लिखनेकी तैयारीमें था, इतनेमें मीराबहनके लिए मनाही का आदेश जारी हुआ। इसलिए मुझे यह उचित लगा कि यदि मीराबहनसे नहीं मिला जा सकता तो किसीसे भी नहीं मिलना है। फलतः मुलाकातें बन्द हो गईं। मनाहीके आदेशको रद करवानेके सिलसिलेमें मैं अभी थोड़ा बहुत प्रयत्न कर रहा हूँ। इसीसे आपको कुछ नहीं लिखा। मैंने समझा कि मीराबहनके विरुद्ध आदेशकी बात आप जान गये होंगे। पिछली बार नौरोजी बहनोंके कारण मुलाकातें बन्द हो गई थीं, यह बात आप जानते हैं, ऐसा मेरा खयाल था और मैंने सोचा कि इसीसे आपने स्थितिका सही अन्दाज कर लिया होगा। आपके लिए मैंने जो अनुमति प्राप्त की थी वह हड्डियोंके वैद्यके रूपमें नहीं अपितु एक सम्बन्धीके रूपमें की थी। आप आते तो हाथकी जाँच तो करते ही और फिर यदि आपको लगातार मालिश करनेकी आवश्यकता महसूस होती तो उसके लिए विशेष अनुमति ले लेता। आपसे ऐसी सेवा न लेनेका सिद्धान्त हो ही कैसे सकता है? आपके स्पर्शसे मेरा हाथ अच्छा हो, यह तो मुझे अच्छा ही लगेगा। लेकिन हाँ, सिद्धान्त रूपमें तो नहीं परन्तु मैं इतना आग्रह तो अवश्य ही रखूँगा कि बाहरसे किसी हकीमको बुलानेकी जवाबदारी सरकारकी रहे। लेकिन इस हदतक तो यहाँ ऐसा अवसर आया ही नहीं है। हाथकी स्थिति बिल्कुल ही खराब नहीं हो गई है। आपकी पुस्तकसे कुछ मदद लेकर महादेव मेरी मालिश तो करता ही है। आजकल मेजर मेहता यहाँ विशेष डाक्टरके रूपमें आये हैं। और फिर यह बिजलीका उपचार करते हैं। इतना सब करनेके बावजूद यदि अन्ततः कुछ लाभ नहीं हुआ और यहाँके डाक्टर भी हार गये तो स्वाभाविक ही बाहरी सहायताका प्रश्न उठेगा और वैसा होने पर मित्रोंसे मुलाकातका सिलसिला बन्द होने पर भी हड्डियोंके डाक्टरके रूपमें आप अवश्य आयेंगे। मैं आपके स्नेहभावको हमेशासे समझता आया हूँ, अतः आपसे सेवा लेनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं होगा। आवश्यकता दीख पड़ने पर माँग ही लूँगा। 'लीड काइंडली लाइट' का भजन कहाँ गवाना है? अथवा आप दोनों प्रत्येक शुक्रवारको घरमें ही गाया करेंगे? यदि घरमें ही गाना हो और कोई अंग्रेज भाई-बहन साथ न हो और इच्छा हो तो उसका गुजराती अनुवाद[1] 'भजनावली' में है, यह तो आप जानते ही होंगे, ठीक लगे तो इसे गाना। हम यहाँ इसे ही गाते हैं। फादर एल्विन आजकल आपके साथ हैं या अभी आश्रममें ही हैं?

१. नरसिंहराव दिवेटिया द्वारा अनूदित **प्रेमल ज्योति**।

मालिशके लिए आपने खास तेल लिखा था। मालिशके अलावा यदि इस तेलका कोई खास असर होता हो तो थोड़ा भेज देना। आप दोनों आनन्दपूर्वक होंगे। हम तीनों सकुशल हैं।

आप दोनोंको बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५४९) से। सी० डब्ल्यू० ५०२४ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता

८६. पत्र : मीराबहनको

२२ जून, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र कल आया।

मैं हार गया। मैंने दूध और डबल रोटी ली और इसलिए नमक भी ले लिया है। मेजर भण्डारी मुझे ऐसे प्रयोग करने देनेको तैयार नहीं हैं जिनसे स्वास्थ्यको खतरा हो। और उनके खयालसे समय आ गया था कि मैं दूध-रोटी लेने लगूँ और फल भी। उनकी राय है कि नमकके न होनेसे वजन जरूर घटता है और मेरे लिए वजनका घटना मँहगा पड़ेगा। मैं लाचार हो गया। अब अलोने आहारका प्रयोग मुझे किसी अन्य समयके लिए टाल रखना पड़ेगा। इस थोड़े दिनोंके प्रयोगसे मेरी हालत सुधरी नहीं तो बिगड़ी भी नहीं। मैंने कुछ अवलोकन किये हैं। परन्तु उनका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि वे बहुत थोड़े दिनोंके प्रयोग पर आधारित हैं। अगर तुमने कुछ और खोजें की हों, तो अपने प्रयोगका हाल मुझे बताना।

तुम्हारा पिछला पत्र[1] मैंने अपने पत्र[2]के समर्थनमें सरकारके पास भेजा है। देखें क्या होता है।

तुमने पूछा है कि बिजलीका इलाज क्या है। इसे तेज मालिश (हाई फ्रीक्वेन्सी) कहते हैं। इसमें बैंगनी किरणोंसे आवेशित काँचके चकटे लट्टूसे रगड़ते हैं। सिवाय इसके कि ये यान्त्रिक किरणें गरम होती हैं, प्रातःकालीन सूर्यके तापसे भी वही मतलब हल होना चाहिए।

तुमने आश्रमके इतिहासके बारेमें भी पूछा है। मैं आश्रमकी प्रवृत्तियोंके हर पहलूकी चर्चा कर रहा हूँ। लेकिन यह काम बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। कोई-न-कोई कारण ऐसा आ जाता है कि मैं इसे रोज थोड़ा समय नहीं दे पाता। और अभी तक मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ कि इससे लिए निश्चयपूर्वक नित्य एक घंटा दूँ। लेकिन अगर मेरा यहाँ काफी लम्बे अर्से तक रहना हुआ और ईश्वरने चाहा, तो इतिहास अवश्य पूरा हो जायेगा।

१. देखिए "पत्र : मीराबहनको", १६-६-१९३२ की पाद-टिप्पणी।

२. देखिए "पत्र : ई० ई० डॉयलको", १८-६-१९३२।

दामोदरदासका पत्र आ गया है। उसके घरमें रहते हुए उसके साथ तुम्हारी जो आखिरी बातचीत हुई थी उससे उसे ठेस लगी प्रतीत होती है। मैंने उसको लिखा है कि वह तुमसे उसके बारेमें बात करे। लेकिन तुम खुद पूछ लेना कि उसे किस बातसे ठेस लगी थी। मैंनें उससे विनती की है कि वह सट्टेबाजी बिल्कुल छोड़ दे और सीधे-सादे जीवनसे ही सन्तुष्ट रहे। देवदासको हलका आन्त्र-ज्वर है। तुम्हें उसे पत्र लिखना चाहिए। उसका पता है: जिला जेल, गोरखपुर, संयुक्त प्रान्त।

मेरे खयालसे तुमने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि इस कथनमें कि "बहादुरोंको मौत एक ही बार आती है" एक गहरा अर्थ है और उसमें मोक्षकी हिन्दू कल्पनाके अनुसार पूर्ण सत्य समाया हुआ है।[1] इसका मतलब है जन्म-मरणके चक्कर से छुटकारा। यदि 'बहादुर' शब्दका अर्थ उन लोगोंके लिए लिया जाये, जो ईश्वरकी खोजमें दृढ़ हैं, तो वे एक ही बार मरते हैं, क्योंकि उन्हें फिर जन्म लेने और यह नाशवान चोला धारण करनेकी जरूरत नहीं होती।

इन दिनों यहाँका मौसम सदा ठंडा रहता है। हमारे यहाँ भी पानी गिरा।

शान्ताबाईने चरखा कातना फिरसे शुरू कर दिया है इसकी उनको बधाई।

मुझे खुशी है कि तुम तिलकको[2] बच्चे जैसा प्यार दे रही हो। उसे इसकी जरूरत है। अवश्य ही नूरबानूका[3] व्यवहार उसके प्रति बहुत अच्छा है। लेकिन वह इतनी हिन्दी नहीं जानता कि उसके (नूरबानूके) साथ जी भरकर बातें कर सके। और उसे जो तुम दे सकती हो वह नूरबानू नहीं दे सकती। तुम नूरबानू और प्यारअलीसे भेंट करनेकी कोशिश तो करोगी ही।

हाँ, मैंने नारणदासको लिखकर पाँच मिनटके मौनका सुझाव दिया है। मैं इसके बारेमें तुम्हें लिखना भूल गया। मैं यहाँ ऐसा नहीं कर रहा हूँ। यहाँ यह अनावश्यक है, और तुम्हारे लिए अव्यवहार्य है। किसी नई जमातमें द्रुतगतिसे राम-नामकी धुन बेशक अच्छी है। बहुत तेजीसे रटनेके लिए अकसर केवल 'राम, राम, राम, राम . . .' बोला जाता है। ठीक लयसे बोला जाये तो बड़ा आनन्द आता है। हाँ, हम ३-४० पर उठते हैं। प्रार्थना ४ और ७-३० पर होती है।

नरगिस और जालको मेरा प्यार। मुझे खुशी है कि नरगिस इतनी सुधर गई है। मुझे हिल्ला पेटिट नाम याद नहीं आता। सम्भव है मैं उससे मिला होऊँ।

मुझे खुशी है कि गुलाब और मणिलाल तुमसे आकर मिल लिये हैं। उनसे कहना कि मुझे चिट्ठी लिखें। मुझे अब घीकी जरूरत नहीं है।

१. **द डायरी ऑफ महादेव देसाई,** खण्ड–१ के अनुसार "मीराबहनको बापू द्वारा जीवनकी यह परिभाषा बहुत पसन्द आई कि जीवन तो मृत्युकी तैयारी है। मीराबहनने शेक्सपियरकी वे पंक्तियाँ उद्धृत कीं: 'कायर मौतसे पहले ही कई बार मरते हैं, लेकिन वीरोंकी मृत्यु तो एक ही बार होती है।' मीराबहनके खयालसे शेक्सपियरकी ये पंक्तियाँ बापूके विचारको व्यक्त नहीं करतीं।"

२. आश्रममें रहनेवाला एक छात्र।

३. बम्बईके एक खोजा सज्जन प्यारअलीकी पत्नी।

आशा है तुम बूतेसे ज्यादा काम नहीं कर रही हो।
हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

[पुनश्च :]

तुम जानती हो कि क्वेकरों (शान्ति-प्रचारकों) के अभ्यासमें मौनके समय आँखें बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं होती। उस सूरतमें समय सम्बन्धी कठिनाई दूर हो जाती है। लेकिन तुम्हारे लिए ये सब बातें बेकार हैं।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२६) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९२ से भी।

८७. पत्र : तिलकम्‌को

२२ जून, १९३२

वह[1] विशुद्ध आत्मा है। उसमें आत्मत्यागकी अपार शक्ति है।

[अंग्रेजीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

८८. पत्र : शान्ताबहन जी० पटेलको

२२ जून, १९३२

चि० शान्ता,

तुम जुलाईके अन्तमें नरसिंहभाई[2] से मिलनेके लिए आनेवाली हो, ऐसा भक्तिबहन[3] कहती है। जब आओ तब भक्तिबहनसे भी मिल लेना। नरसिंहभाईसे मिलो तो मेरी ओरसे भी बातचीत करना। आजकल मैं उन्हें नहीं बुलाता हूँ और वे भी दूसरे लोगोंकी खातिर मेरे पास न आनेके संयमका पालन करते हैं। तुमने जो पुस्तकें भेजी हैं उनमें से अधिकांशको मैं पढ़ गया हूँ। अब बहनें पढ़ रही हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती शान्ताबहन नरसिंहभाई
मार्फत श्रीयुत गोर्धनदास पी० पटेल
पूना सिटी[4]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५२२९) से।

१. मीराबहन।
२. शान्ताबहनके पिता।
३. दरबार गोपालदासकी पत्नी।
४. गांधीजीने यह पत्र पाटीदार कार्यालय, आणंदको लिखा था जहाँसे यह उक्त पतेपर भेजा गया था।

८९. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

२३ जून, १९३२

प्रिय होरेस,

तुम्हारे दो पत्र मिले। लॉरीकी याद दिलाना तुम्हारा ही काम हो सकता था। मुझे उसकी बहुत अच्छी तरह याद है। उसे देखते ही मुझे लगा था कि वह बहुत भली लड़की है। उसके बाद मेरा खयाल है कि चार्ली उसे मेरे पास लाये थे। मैंने उसे तत्काल चिट्ठी लिखी और पत्र[1]को हवाईडाकसे भेज दिया। कमसे-कम मैंने अधिकारियोंसे वैसे ही भेजनेको कह दिया था और चिट्ठीको हवाई-डाक निकलनेसे पहले ही लिख दिया था। मैं जानता हूँ कि उसे जो बीमारी बदी है उसको और मृत्युको झेलनेका उसमें पर्याप्त साहस है।

हम तीनों स्वस्थ और बिल्कुल ठीक-ठाक हैं। महादेव और मैं कताई करने, पढ़ने और लिखनेमें अपना वक्त गुजारते हैं और सरदार किताबें पढ़ने और हम लोगोंके पास कागजके जो टुकड़े इत्तफाकसे आ जाते हैं उनके लिफाफे बनानेमें। मैं इस कार्यको हम सबोंके नाम पर और सबोंकी खातिर स्वस्थ धन-उत्पादन करना कहता हूँ।

मैं तुम्हें इससे पूर्व लिखना चाहता था, लेकिन किसी-न-किसी प्रकार यह छूटता ही रहा। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आश्रममें मौन रखनेका समय बढ़ा कर पाँच मिनट कर दिया गया है। आश्रमसे मुझे जो पत्र मिल रहे थे उनसे मैंने देखा कि आश्रमवासी जो कड़ी मेहनत कर रहे थे उसके कारण उनके मनोंमें तनाव पैदा हो गया था और इसलिए मुझे लगा कि जो लोग जम कर मेहनत करनेके अभ्यस्त नहीं हैं उनके लिए शायद वांछित शान्त मनसे प्रार्थना कर सकना सम्भव नहीं होगा। अतः यदि उन्हें अपना मन स्थिर करने और परमात्माके साथ तादात्म्य स्थापित करनेके लिए पाँच मिनट अखण्डित मौनका समय मिल जाये तो प्रार्थना ज्यादा फलदायी होगी। यह नियम लागू हुए अब करीब एक महीना या इससे कुछ ज्यादा ही हुआ। नारणदासने मुझे सूचित किया है कि मौनसे बहुत लाभ हुआ है।

मुझे चार्लीकी किताब अभी तक नहीं मिली है। हर सप्ताह उसके आनेकी प्रतीक्षा करता हूँ। सेटलमेंट[2]में रहनेवाले आप सब लोगोंकी हम बराबर याद करते हैं। 'सेली ओक' में आपके साथ जो समय गुजरा वह बड़ा सुखद रहा। शरीरसे कमजोर होनेके बावजूद अगाध भक्ति और सदा उत्फुल्ल रहनेवाली ऑलिव[3] हमारे

१. देखिए "पत्र: लॉरी सॉयरको", १९-६-१९३२।

२. वुडब्रुक सेटलमेंट, बरमिंघमके निकट स्थित क्वेकर सेंटर।

३. होरेस अलेक्जेंडरकी पत्नी।

लिए बहुत बड़ा आदर्श है। महादेव कहता है कि वुडब्रुकमें उनके [ऑलिवके] साथ हुई उसकी बातचीत और अन्य अनेक मधुर बातोंकी उसे याद है। हम दोनोंकी कामना है कि वह अनेक वर्षों तक ऐसी ही प्रेमपूर्ण सेवा करती रहें।

सारे परिवारको हम सबोंकी ओरसे प्यार सहित,

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४१३) से।

९०. पत्र : वनमाला एन० परीखको

२३ जून, १९३२

चि० वनमाला,

सबसे पहले तेरा पत्र ही मेरे हाथमें आया है। हिन्दीका चार गुजरातीके चारसे भिन्न लिखा जाता है यथा ४ (हिन्दीमें) और ૪ (गुजरातीमें)। 'गीताजी' के श्लोक कंठस्थ कर रही है, यह अच्छी बात है। उच्चारण ठीक-ठीक करना। अर्थ समझ लेनेका प्रयत्न करना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७५) से। सी० डब्ल्यू० २९९८ से भी; सौजन्य : वनमाला एम० देसाई

९१. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२३ जून, १९३२

चि० परसराम,

कमलकी तबीयतको लेकर मुझे कोई भय अथवा चिन्ता थी ही नहीं। बच्चोंको बुखार आदि तो अनेक बार होता ही है। इस बारेमें कम जानकारी रखनेवाले डाक्टरों के हाथमें यदि न पड़ जायें और यदि माता-पिता झूठे प्रेमके वश होकर उनके पेट जरूरतसे ज्यादा न भर दें तो अधिकांश बच्चे चंगे हो जाते हैं। जल्द ठीक होने और पुरानी ताकतको फिरसे हासिल कर लेनेकी शक्ति बच्चोंमें अपेक्षाकृत अधिक होती है। 'रामायण' की क्लासमें जो लोग पहले आया करते थे और अब नहीं आते उनसे कारण पूछ लेना चाहिए — आनेका आग्रह करनेकी खातिर नहीं, अपितु 'रामायण' पाठमें जो दोष दूर किये जा सकते हों, उन्हें दूर करनेकी दृष्टिसे। तुम यदि

सबके साथ 'साकेत',[१] पढ़ना चाहो तो भले पढ़ो, लेकिन मेरा सुझाव यह न था। मेरा सुझाव तो यह था कि हिन्दी सीखनेवालोंमें जो आगे बढ़ गये हों उन्हें उसके कुछ चुने हुए अंश सिखा दो ताकि उनमें अपने-आप उसे पढ़नेकी दिलचस्पी पैदा होने पर वे उसे पढ़ें और जो न समझ पायें वह पूछें।

'अनासक्ति' का अर्थ अवश्य यह है कि अपने प्रति और अपने सम्बन्धियोंके प्रति अनासक्ति; लेकिन 'पर' के प्रति अर्थात् सत्यके प्रति, ईश्वरके प्रति आसक्ति इतनी कि हम तन्मय हो जायें, तद्रूप हो जायें। यह अर्थ हम समझ नहीं पाते इसीलिए निरुत्साह आदि दोष पैदा हो जाते हैं। तुमने 'निरुत्साह' शब्दका प्रयोग संज्ञाके रूपमें किया है जिससे महादेवने तुरन्त ही यह कहा कि 'निरुत्साह' विशेषण है। मैंने कहा कि परशुरामने उसका प्रयोग संज्ञाके रूपमें किया है और उससे ऐसी भूल नहीं हो सकती। जिसपर महादेवने कहा कि परशुराम यहाँ भूलते हैं। अतएव हमारे पास यहाँ पर एक छोटा शब्दकोष है उसमें देखा। इसमें यह शब्द विशेषणके रूपमें ही दिया गया है। इस गुत्थीको सुलझाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५०३) से। सी० डब्ल्यू० ४९८० से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

९२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२३ जून, १९३२

चि० प्रेमा,

उर्दूकी किताबोंमें नदवी द्वारा रचित दो खण्ड भी हैं क्या? नदवीने शिबलीके बाद कुछ लिखा है। कदाचित् पुस्तकपर मौलाना सुलेमान नदवी लिखा हो।

मछली खानेके बारेमें मैंने कोई तेरे साथ अपवाद नहीं किया है। कॉड-लिवर ऑयल (मछलीका तेल) निषिद्ध है तथापि मैंने उसे आश्रममें चलने दिया है। मांस-मछलीको खाना मैंने आश्रममें वर्जित किया है, उसकी एक मर्यादा रखी है लेकिन यह बात व्यक्तियोंके बारेमें लागू नहीं होती और न हो सकती है। मैंने किसी भी दिन ऐसी मर्यादा नहीं बाँधी है। इसीसे इमाम साहब बाहर खा सकते थे। तेरे बदले मान लो कि नारणदास ही हो। उसने तो जीवनपर्यन्त मांसादि नहीं खाया है। लेकिन उसे भयंकर रोग हो जाये और उसकी इच्छा मांस खाकर जीनेकी हो तो मैं उसे अवश्य मांस खानेसे नहीं रोकूँगा। वह आजके मेरे विचारोंसे परिचित है, मेरे धर्मको भी वह पहचानता है। लेकिन मृत्युके समय व्यक्तिकी मनःस्थिति भिन्न हो सकती

१. मैथिलीशरण गुप्त विरचित हिन्दीका एक महाकाव्य।

है। उस समय यदि उसके मनमें इच्छा उत्पन्न हो तो उसे न रोकना मेरा कर्तव्य है। इसके विपरीत यदि उसके स्थान पर कोई बालक हो तो मैं उसे मर जाने दूँगा, लेकिन मांस नहीं दूँगा। एक बार ऐसी परिस्थिति बन पड़ी थी सो तू जानती है? बहुत करके यह किस्सा 'आत्मकथा'[1] में है। यदि तू इसे न जानती हो और वहाँ भी इससे कोई परिचित न हो तो मुझसे पूछना, लिख भेजूँगा। यह पवित्र प्रसंग दोनोंके लिए – बा और मेरे लिए – था। अब समझी? मैं तुझसे मछली खानेका आग्रह नहीं करूँगा। उसके बिना यदि मृत्यु आये और तू मरनेको तैयार हो तो मैं उसके लिए तैयार हूँ। मछली खाकर कदाचित् जीना हो सके, लेकिन वह भी अन्ततः मरनेके लिए ही न? लेकिन यह बात तो उसीके लिए धर्म स्वरूप है जो इसे माने और इसका पालन करे। ऐसा धर्म दूधके सम्बन्धमें मैं अपने ऊपर कहाँ तक लागू करता हूँ? यद्यपि प्राणीमात्रको दूध-त्यागके धर्मका पालन करना चाहिए यह बात मुझे दीपकके प्रकाशके समान स्पष्ट दिखाई देती है, लेकिन इसकी अपेक्षा दूसरोंसे नहीं की जा सकती। यह स्वयं अपने लिए होती है — अस्तु।

तेरी आजकल क्या खुराक है, और किस मात्रामें खाती है, सो फिरसे लिखना। यदि मुझे कुछ रद्दोबदल करवाना हुआ तो सुझाव दूँगा।

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धमें तेरे प्रश्न अच्छे हैं।

बच्चे जिस-जिस विषयको लेकर हमसे प्रश्न करें उस-उस विषयके बारेमें यदि हमें मालूम हो तो बताना चाहिए अथवा उसके प्रति अपने अज्ञानको स्वीकार करना चाहिए। यदि उत्तर देना उचित न हो तो उन्हें पूछनेसे रोकना चाहिए और दूसरोंसे भी न पूछनेके लिए कहना चाहिए। उन्हें कभी भी टरकाना नहीं चाहिए। हम जितना सोचते हैं बालक उसकी बनिस्बत कहीं ज्यादा जानते-समझते हैं। और यदि उन्हें अमुक बात मालूम न हो और हम भी न बतायें तो वे अनुचित ढंगसे उसकी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। इतना होने पर भी यदि ऐसा विषय हो जिसके बारेमें उन्हें नहीं बताना चाहिए तो हमें जोखिम उठाकर भी उन्हें नहीं बताना चाहिए। यदि वे अश्लील बातोंकी जानकारी चाहें तो हम कदापि न दें, फिर भले ही वे इस जानकारीको गलत तरीकोंसे हासिल कर लें।

पक्षियोंमें सम्भोगकी क्रिया बालकोंने देखी और उसे जाननेकी इच्छा उनके मनमें हुई तो मैं उनकी जिज्ञासाको अवश्य शान्त करूँगा तथा उससे ब्रह्मचर्यका पाठ सिखाऊँगा। पक्षी, पशु और मनुष्यके बीचके भेदको बताऊँगा। जो स्त्री-पुरुष इसी तरहका आचरण करते हैं वे मनुष्य-देह प्राप्त करने पर भी पशुपक्षीके समान ही हैं। इसमें निन्दाकी अथवा भर्त्सनाकी कोई बात नहीं है, यह तो वस्तुस्थिति है। पशुत्वसे छुटकारा पानेके लिए ही मनुष्यकी देह और बुद्धि हमें मिली है।

मासिक धर्मका सम्पूर्ण ज्ञान उस वयको प्राप्त लड़कीको देना चाहिए। उससे छोटी उम्रकी लड़की भी यदि उसके बारेमें पूछे तो उतना बताया जाये जितना वह समझ सके।

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २४६-९।

लड़के और लड़कियाँ, हम चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, पूर्णतः निर्दोष नहीं रह सकते। यह जानकर अच्छा यही है कि अमुक समय पर हम उन सबको सही जानकारी दें। इस ज्ञानको प्राप्त करनेवाला ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता, यदि ऐसी बात हो और ब्रह्मचर्य ऐसा निर्बल हो तो वह ब्रह्मचर्य हमारे किसी कामका नहीं। इस ज्ञानको प्राप्त करते हुए ब्रह्मचर्य अधिक सशक्त होना चाहिए। मेरे अपने साथ तो यही बात हुई है।

ज्ञान प्रदान करने और प्राप्त करनेमें बहुत भेद है। एक व्यक्ति अपने विकारों के प्रसारके लिए ज्ञान प्राप्त करता है तो दूसरेको वह अनायास ही प्राप्त हो जाता है और तीसरा व्यक्ति विकारका शमन करनेके लिए तथा औरोंकी मदद करनेके लिए उस ज्ञानको प्राप्त करता है।

यह ज्ञान तभी दिया जा सकता है और वही व्यक्ति इसे दे सकता है जिसमें इसकी योग्यता हो। तुझमें यह कला होनी चाहिए। तुझमें आत्मविश्वास होना चाहिए कि तेरे ज्ञान देनेसे लड़कियोंमें विकार उत्पन्न नहीं होंगे। विकारका शमन करनेके लिए ही तू उन्हें यह ज्ञान दे रही है, इस बातकी उन्हें प्रतीति होनी चाहिए। यदि तुझमें विकारोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना है तो इस बातका ध्यान रखना कि विषयवासना-सम्बन्धी जानकारी देते समय तेरे मनमें विकार उत्पन्न न हों।

स्त्री-पुरुष, पत्नी-पतिके रूपमें जो सांसारिक जीवन व्यतीत करते हैं उसके मूलमें भोगवृत्ति ही है। उसमें से हिन्दू-धर्मने अथवा यों कहें कि समस्त धर्मोंने न्याय का – संयमका – विकास करनेका प्रयास किया है।

पति अगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर है तो पत्नी भी वही है। पत्नी दासी नहीं, समानाधिकारवाली मित्र है, सहचारिणी है। दोनों परस्पर एक दूसरेके गुरु हैं।

लड़कीका हिस्सा लड़के जितना ही होना चाहिए।

पति-पत्नीमें से जो कोई भी धन कमाता है उस धनके दोनों समान रूपसे अधिकारी हैं। पति, पत्नीकी मददसे ही कमाता है, फिर भले पत्नी केवल रसोई सँभालती हो। वह दासी नहीं, हकदार है।

जिस पत्नीके प्रति पति अन्यायपूर्ण आचरण करता हो उसे अपने पतिसे मुक्त होनेका अधिकार है।

बच्चों पर दोनोंका समान अधिकार है। बड़े होने पर किसीका भी नहीं। पत्नी नालायक हो तो उसका अधिकार खत्म हो जाता है। यही बात पतिके सम्बन्ध में भी है।

संक्षेपमें स्त्री-पुरुषके बीच जो प्रकृतिने भेद किया है और जो इन आँखोंसे स्पष्ट ही देखा जा सकता है उसके अलावा मुझे, और कोई भेद मान्य नहीं है। अब इस विषय पर तेरा एक भी प्रश्न रह गया है, ऐसा मुझे नहीं लगता।

नारणदासके सम्बन्धमें मुझे पूर्ण विश्वास है। यदि वह कहे कि 'मुझे शान्ति है' तो मैं अशान्ति माननेको तैयार नहीं हूँ। मैंने उसे अनेक बार चेताया है। दूर बैठा हुआ मैं अब परेशान नहीं करूँगा। नारणदासमें अनासक्त होकर काम करनेकी

भारी क्षमता है। अनासक्त व्यक्ति आसक्तसे कहीं ज्यादा काम कर सकता है, फिर भी निठल्ला लग सकता है। वह सबसे अन्तमें थकता है। सच पूछो तो उसे कभी भी थकना नहीं चाहिए। लेकिन यह तो आदर्शकी बात हुई। तू इस समय वहाँ उपस्थित है, यदि ऐसा जान पड़े कि अशान्ति है, नारणदास अपनेको छल रहा है तो तेरा कर्तव्य मुझसे भिन्न होगा। तुझे तो नारणदासको चेताना ही चाहिए। मैं भी यदि वहाँ होऊँ और जैसे वह कहता है उससे भिन्न बात देखूँ तो मैं भी यही करूँगा। तेरे सावधान करनेके बावजूद यदि वह तेरा विरोध करता है तो तुझे उसका कहना मानना चाहिए, तबतक जबतक तू उसे सत्यवादी समझे। बहुधा हमारी अपनी आँखें हमें धोखा देती हैं। यदि तू मुझे खिन्न दिखाई पड़े, लेकिन तू अस्वीकार करे तो मुझे तेरी बातको ही मानना चाहिए। तू मुझसे कुछ छिपा रही है, ऐसा मुझे भय अथवा सन्देह हो तो यह दूसरी बात है। फिर मुझे तुझसे पूछनेके लिए कुछ नहीं रह जायेगा। मुझे जाननेके लिए अन्य उपाय खोज निकालने होंगे। लेकिन आश्रमजीवन इस तरह नहीं चल सकता। उसके मूलमें सत्यकी भावना निहित है। वहाँ उद्देश्य शुभ होने पर भी किसीको धोखा नहीं दिया जा सकता, छला नहीं जा सकता।

खादी-सम्बन्धी मेरे विचार या तो तुझे नारणदासके पत्रमें[1] पढ़नेको मिलेंगे अथवा बच्चोंके पत्रमें।

नारणदास तेलकी मालिश क्यों नहीं करवाता, सो पूछना।

४ जुलाईकी अवश्य राह देखना।[2] लेकिन किस वर्षकी ४ जुलाई, सो विचार करना होगा। वर्ष भले ही कोई हो। गनीमत यही है कि महीनेकी तारीखका ही निश्चय हो जाता है। तब किसी और महीनेकी अथवा तारीखकी राह नहीं देखनी होगी। ४ जुलाईके बीतने पर हमें १९३३ के जुलाई महीने तक शान्त होकर बैठना होगा।

बापू

[पुनश्च :]

ऐसा लगता है कि विद्याके ऊपर ध्यान देना होगा। वह मूर्ख जान पड़ती है। उसे प्रश्न पूछना भी नहीं आता — देखना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९१) से। सी० डब्ल्यू० ६७३९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", २२/२६-६-१९३२।

२. उस समय किसी व्यक्ति द्वारा की गई यह भविष्यवाणी प्रकाशित हुई थी कि गांधीजी ४ जुलाईको रिहा कर दिये जायेंगे।

९३. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२३ जून, १९३२

चि० विद्या,

तुझे पत्र लिखना सीखना चाहिए। तेरे प्रश्न बेतुके हैं। तुझे अपने पत्र प्रेमाबहनको दिखाने चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४३१) से; सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

९४. पत्र : देवदास गांधीको

२३ जून, १९३२

हरिलालकी लाल प्याली रोज भरी रहती है। पीकर इधर-उधर भटकता है, और भीख माँगता है। बली और मनुको धमकाता है। इसमें भी नीयत रुपया ऐंठनेकी दिखती है। मुझे भी बड़ी उद्धत धमकियोंके पत्र लिखे हैं। मनु पर अधिकार करनेके लिए बलीपर नालिश करनेकी धमकी दी है। मुझे दुख नहीं होता, दया आती है। हँसी भी आती है। ऐसे और बहुत लोग हैं, उनका क्या होगा? उनके लिए भी मुझे उतना ही खयाल होना चाहिए न? वे सब भी स्वभाव-नियत कर्म करते हैं। क्या करें? हमारा बरताव सीधा होगा, तो वह अन्तमें ठिकाने आ जायेगा। हरिलाल आज जैसा है वैसा बननेमें मैं अपना हाथ कम नहीं मानता। जब उसका बीज बोया, तब मैं मूढ़ दशामें था। जब उसका पालन हुआ, वह समय श्रृंगारका कहा जा सकता है। मैं शराबका नशा नहीं करता था; सो यह कमी हरिलालने पूरी कर दी। मैं एक ही स्त्रीके साथ खेल खेलता था, तो हरिलाल अनेकके साथ खेलता है। फर्क सिर्फ मात्राका है, प्रकारका नहीं। इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्तका अर्थ है आत्मशुद्धि। प्रगति चींटीकी चालसे हो रही है। . . .[1]

यहाँ बैठे-बैठे आश्रममें फेरबदल कराया करता हूँ। नारणदासकी अनन्य श्रद्धा, उसकी पवित्रता, दृढ़ता, उसका उद्यम और कार्यदक्षता, इन सबका लाभ ले रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. देवदासको लिखे जानेवाले इस पत्रका मुख्य उद्देश्य संयुक्त प्रान्तके गवर्नरको दिये गये तारके बारेमें सूचना देना था; देखिए "तार : सर मैल्कम हेलीको", १८-६-१९३२।

९५. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२४ जून, १९३२

बालको और बालाओ,

तुम सब अथवा तुममें से अधिकांश बच्चे नोटबुकके पृष्ठों पर पत्र लिखते हैं, यह ठीक नहीं है। इसमें नुकसान है और यह कूहड़पनकी निशानी है। लिखनेके लिए जो दूसरे कागज हों तुम्हें उनपर लिखना चाहिए।

प्रेमाबहन यदि मछली खाना चाहे तो उसे खानेकी अनुमति देनेमें भी अहिंसा-की दृष्टि निहित है। इसके बारेमें मैंने प्रेमाबहनको लिखे पत्र[1] में ज्यादा विचार किया है। उसे वहाँ पढ़ जाना। प्रेमाबहनका मन यदि स्वतन्त्र भावसे सोचे तभी उसमें मछलीके प्रति अहिंसाके भावका स्फुरण हो सकता है। मैंने अपने सम्पर्कमें आनेवाले अनेक व्यक्तियोंको लेकर इस बातका अनुभव किया है। इसको ध्यानमें रखते हुए और प्रेमाबहनको मैंने जो पत्र लिखा है उसे पढ़ लेनेके बाद भी यदि तुम्हारे मनमें कोई शंका रह गई हो तो मुझे फिर लिखना।

प्रार्थनामें जिसे अभी भी नींद आती हो उसे निस्संकोच भावसे खड़ा हो जाना चाहिए। बैठे-बैठे भी वह यदि एक-दो प्राणायाम कर ले तो उसकी नींद दूर हो जायेगी। क्योंकि सोता हुआ व्यक्ति प्राणायाम नहीं कर सकता।

'मधपूडो'के[2] बारेमें यहाँसे लिखकर कुछ नहीं भेजा जा सकता। यह बात मैं पहले ही लिख चुका हूँ।

बड़े होने पर आश्रमके बालकोंका सेवाका आदर्श क्या होगा, इसकी कल्पना मैंने अपने मनमें सँजो रखी है। उनका सेवा-क्षेत्र, यदि उन्हें ईश्वर पर विश्वास हुआ तो वही चुनेगा और इसकी शक्ति भी देगा कि जिस क्षेत्रमें उन्हें रखेगा वहीं वे शोभायमान हो सकेंगे। भक्तके योगक्षेत्रका दायित्व ईश्वर अपने ऊपर ले लेता है। ('गीता', ९/२२; १०/१०)। तुम लोगोंका अक्षरज्ञान धीरे-धीरे, किन्तु बढ़ रहा है। जिसकी इसमें रुचि है वह इस ज्ञानमें और भी वृद्धि करेगा। जिस हदतक तुम मेहनत करोगे, प्रत्येक कामको सोच-समझकर करोगे, तुम्हारी बुद्धि उसी हदतक विकसित और तेजस्वी होगी। अक्षरज्ञान होनेके बावजूद व्यक्ति मूढ़ बना रह सकता है। यह बात यदि ठीकसे समझमें न आई हो तो मुझे फिर लिखना। इस समय जैसा चल रहा है उससे मनमें भी असन्तोष न रखना। इतना करना कि प्रत्येक कार्य जो तुम्हारे सुपुर्द हो उसे विवेकपूर्वक करना। पाखाना साफ

१. २३-६-१९३२ का।

२. आश्रमके बच्चों द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पत्रिका।

करनेमें भी बुद्धिकी बहुत आवश्यकता है। सो कैसे, अगर यह न जानते हो तो लिखना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

९६. पत्र : महेन्द्र वी० देसाईको

२४ जून, १९३२

चि० मनु[1],

तेरा पत्र मिला। तेरी लिखावट सुधर गई जान पड़ती है। वजन बढ़ानेके लिए खुली हवामें कसरत और दूध-घीवाली खुराक। तुझे दूध कितना मिलता है? छोटे पत्रमें यदि सब-कुछ समा जाये तो लम्बा पत्र लिखकर क्या करूँ?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७५९) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई

९७. पत्र : शारदा सी० शाहको

२४ जून, १९३२

चि० शारदा,

जो बात मोर पर लागू होती है वही हम मनुष्यों पर भी होती है।[2] रूपवान स्त्री-पुरुषको भी हम लोग मृत्युके पश्चात् देखना पसन्द नहीं करते और उन्हें तुरन्त जला डालते हैं। इसीसे शरीरके प्रति मोह नहीं करना चाहिए।

सहधर्मचारिणी[3] का मूल अर्थ तो वही है जो तूने किया है। लेकिन व्यवहारमें इसका प्रयोग पत्नीके लिए ही किया जाता है। विवाह होने पर बहन भाईके साथ नहीं रहती। 'चारिणी' शब्दमें जीवनपर्यन्त साथ रहनेकी गन्ध आती है। और फिर

१. वालजी गोविन्दजी देसाईका पुत्र।

२. शारदाने आश्रमके एक मोरकी मृत्युका जिक्र करते हुए अपने पत्रमें लिखा था कि जीवितावस्थामें वह जितना सुन्दर लगता था उतना ही मृत्युमें भयंकर दिखाई देता था।

३. शारदाने अपने पत्रमें यह जिज्ञासा प्रगट की थी कि कोई बहन अपने भाईकी सहधर्मचारिणी क्यों नहीं कही जा सकती जबकि वह फलकी आशा किये बिना समान धर्मका पालन करती हो?

शब्दका यह एक अर्थ रूढ़ हो गया है, इसलिए उसे बदलना मुश्किल है; जरूरत भी नहीं है। तू आरामसे अकेली रह रही है। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना।

बापू

[गुजरातीसे]

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९५०) से; सौजन्य: शारदाबहन जी० चोखावाला

९८. एक पत्र[1]

२४ जून, १९३२

चि० . . .,

तेरी लम्बी चिट्ठी मिली। किसीके शरीरमें भूत आदिके प्रवेश करनेकी बातको मैं तो वहम ही मानता हूँ। करोड़ों व्यक्तियोंको ऐसा कुछ नहीं होता। संसारमें सब जगह ऐसा देखनेमें नहीं आता। लेकिन ऐसा होता हो अथवा न होता हो, तो भी ईश्वर पर ही भरोसा करना। यही जंतर है, यही मंतर है; हमारे लिए तो यही सब-कुछ है। अतएव तू निरन्तर रामनाम जपा कर। तेरे भाग्यमें जो बदा है सो होगा। तू उसको सहन करनेकी शक्ति हासिल कर ले; बादमें जो होना है सो हो।

बापू

[गुजरातीसे]
भावनगर समाचार, १७-१२-१९५५

९९. अहिंसाका पालन कैसे किया जाये[2]

२५ जून, १९३२

साँपको मारना चाहिए अथवा नहीं? स्त्रीके साथ बलात्कार हो तब उस दुष्टकी हत्या की जानी चाहिए अथवा नहीं? खेतमें हल चलानेसे छोटे-मोटे जीव मर जाते हैं, यह जानने पर भी हल चलाना चाहिए अथवा नहीं? अहिंसाका उपासक ऐसी समस्याओंको सुलझानेके चक्करमें नहीं पड़ता। इन समस्याओंको जब सुलझना होगा तब अपने-आप सुलझ जायेंगी। इस भूलभुलैयामें पड़ना अहिंसाको भूलनेके समान है।

जिस व्यक्तिके मनमें अहिंसाका पालन करनेका उत्साह है उसे चाहिए कि वह अपने हृदयमें झाँके और अपने पड़ोसीकी ओर देखे। यदि उसके मनमें द्वेष भरा हो तो वह समझ ले कि वह अहिंसाकी प्रथम सीढ़ी ही नहीं चढ़ पाया है। और जो

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र प्राणजीवन मेहताके परिवारके एक सदस्यको लिखा गया था।
२. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", २२/२६-६-१९३२के साथ भेजा गया था।

अपने पड़ोसीके प्रति, साथीके प्रति अहिंसाका व्यवहार नहीं करता वह अहिंसासे हजारों योजन दूर है।

फलतः वह रोज रातको सोते समय अपने-आपसे पूछे: "आज मैंने अपने साथी का तिरस्कार किया; उसे खराब खादी देकर स्वयं अच्छी खादी ली; उसे कच्ची रोटी देकर मैंने अच्छी सिकी रोटी ली; अपने कामसे जी चुराकर अपने साथी पर बोझ डाला; आज पड़ोसी बीमार था उसकी तीमारदारीके लिए उसके पास नहीं गया; प्यासे राहगीरने मुझसे पानी माँगा, मैंने उसे नहीं दिया; मेहमानोंके आने पर मैंने उन्हें नमस्कार तक न किया; मजदूरोंको कटुवचन कहे, उनपर बिना विचार ज्यादा काम लादता गया, बैलोंको छड़ी मारता रहा; रसोईमें चावल कच्चे थे इससे रुष्ट हुआ।" इन सबमें भारी हिंसा है। इस तरह नित्यके व्यवहारमें यदि हम स्वाभाविक रूपसे अहिंसाधर्मका पालन नहीं करते तो अन्य चीजोंके सम्बन्धमें पालन करने लायक नहीं बनते अथवा यदि अन्य चीजोंके बारेमें हम अहिंसाका पालन करते हैं तो उसकी कीमत बहुत कम है अथवा कोई कीमत नहीं। अहिंसा प्रतिपल कार्य करनेवाली प्रचण्ड शक्ति है। उसकी कसौटी हमारे प्रतिक्षणके कार्यमें, प्रतिपलके विचारमें होती है। जो कौड़ीकी चिन्ता करेगा उसका रुपया भी सलामत रहेगा। लेकिन जिसे कौड़ीकी परवाह नहीं उसने कौड़ी तो खो ही दी, उसका रुपया भी कभी उसका नहीं रहा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१००. पत्र: नथुराम त्रिकमदासको

२५ जून, १९३२

भाई नथुराम,

मन्दिरों और चौपालोंका उपयोग तो प्रसिद्ध है। इनके द्वारा लोग एक स्थान-पर इकट्ठे होते हैं, भजनादि करते हैं, सभाओंका आयोजन करते हैं, आदि-आदि। और इनकी स्थापना किये जानेका उद्देश्य भी यही था।

मूर्तिपूजाकी आवश्यकता है अथवा नहीं, यह प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि वह अनादिकालसे चली आ रही है, और चलती रहेगी। प्रत्येक मनुष्य मूर्तिपूजक नहीं होता।

वैष्णव धर्मकी पूजाविधिमें परिवर्तन किया जाना अभीष्ट हो सकता है।

ईश्वर चूंकि सर्वव्यापक है इसीसे मूर्तिमें भी विद्यमान है। मूर्तिपूजाके नाशको मैं असम्भव मानता हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१०१. पत्र : भाऊ पानसेको

२५ जून, १९३२

चि० भाउ,

आधे घंटेमें १९८ तार निकालना, बहुत तेज रफ्तार कही जायेगी। यह दृश्य देखने लायक होगा।

सेवाके लिए सत्य, नम्रता, ब्रह्मचर्य, एकनिष्ठा आदिका होना तो आवश्यक ही है, लेकिन यदि प्रश्न उठे कि ऐसे व्यक्तिको कौनसे काम करने चाहिए तो उसका उत्तर देना मुश्किल है। जितना जानते हैं वह कम ही कहा जायेगा। नियम तो यही हो सकता है कि जो काम अपने जिम्मे आये उसमें तल्लीन हो जाना चाहिए अथवा हम जो क्षेत्र चुनें उसमें हमें निपुणता प्राप्त करनी चाहिए। इससे आगे जाना मुश्किल है। और यदि प्रश्न यह हो कि देशकी आजकी परिस्थितियोंको देखते हुए कौन-सी सेवा उत्तम होगी तो उसका उत्तर सरल है और वह दिया जा चुका है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७२८) से। सी० डब्ल्यू० ४४७१ से भी; सौजन्य: भाऊ पानसे

१०२. पत्र : निर्मलाबहन गांधीको[1]

२५ जून, १९३२

बाबू[2] के कानमें तेलकी बूंद डालती हो, उसमें यदि लहसुनकी कली डाल कर कड़कड़ा लो तो शायद ज्यादा फायदा देगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. रामदास गांधीकी पत्नी।
२. रामदास गांधीका पुत्र।

१०३. पत्र : लक्ष्मीनारायण गाडोदियाको

२५ जून, १९३२

भाई लक्ष्मीनारायणजी,

आपका पत्र पाकर मुझे बहोत आनन्द हुआ।

इस समय तो मुलाकात बंद है। रुकावट दूर होनेकी आशा कम है।

आप दोनों आनंदमें होंगे। आपका प्रेम बहोत बार याद आता है।

हम तीनों अच्छे रहते हैं। वाचनमें और कातनेमें समय व्यतीत होता है।

बापु

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६२३) से।

१०४. पत्र : नारणदास गांधीको

२२/२६ जून, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पुलिन्दा मिला। तुम्हारी खाताबही मैं देख गया। मुझे लगता है कि यह पर्याप्त है। मात्र इसमें किस काममें कितने घंटे दिये गये, यह बात नहीं आती। इसका हिसाब रखनेका विचार तो है न? प्रत्येक व्यक्तिसे जो परचियाँ आयेंगी उनमें तो इसका उल्लेख अवश्य होगा। यदि तुम इन सबको एक जगह चिपका दोगे तो जिस समय हमें जो हिसाब निकालना हो वह हमें मिल जायेगा। एक ही व्यक्ति यदि यह सारा हिसाब रखेगा तो मुझे लगता है कि इसमें एक घंटा अवश्य जायेगा। सब-कुछ सरल हो जाये तो भी एक व्यक्ति बोले और दूसरा लिखे तो समय बचेगा और दोनोंको लगनेवाला समय भी कुल मिलाकर कम ही आयेगा, यह मैं समझ सकता हूँ। लेकिन जितना भी समय जाता है वह निरर्थक नहीं जाता, यह तो मैं तीन दिनोंके हिसाब पर से भी देख सकता हूँ। कतरनमें जिसके नौ घंटेसे कम समय हो वह यदि उसका कारण भी स्पष्ट करे तो अच्छा होगा। कतरनसे हमें सूचनाका बहुत भण्डार मिलेगा। इस बार इस सम्बन्धमें तो मैं इतना ही लिखूँगा।

गिरि परिवारके बारेमें मुझे ऐसा लगता है कि इसका बोझ हमारे परिवार पर अनायास ही आ पड़ा है। दलबहादुर गिरिका त्याग बहुत ही सुन्दर था। मरते

समय वे कृष्णमैयादेवीको आश्रममें जानेके लिए कह गये, उन्होंने इतनी श्रद्धा रखी हम पर। उसका और कोई पोषण नहीं करता। वहाँकी कांग्रेसने कुछ नहीं किया, अथवा नहीं कर सकी। उसके लिए यदि मैं भिक्षा भी माँगता तो मुझे इतनी मिल जाती। लेकिन उसकी जरूरत नहीं जान पड़ी और फिर आश्रमकी स्थापना इस आधारपर की गई है कि यदि कोई व्यक्ति दिनमें नौ घंटे काम कर लेता है तो वह अपने खाने-पहनने लायक कमा लेता है। इससे यदि वह आश्रममें रहती है तो उसके लिए खास तौरसे माँगना नहीं पड़ेगा। हमारा कर्तव्य तो यह है कि वह जबतक आश्रममें रहती है तबतक ही उसका भरण-पोषण हम करें। लेकिन इतने वर्षोंके बाद उसने जानेकी इच्छा व्यक्त की। कृष्णमैयादेवी, महावीर, धर्मकुमार, ये सब बीमार तो थे ही, मैत्रीकी सेहत भी कुछ-कुछ खराब चल रही थी इसलिए उसकी इस इच्छामें कुछ वजन था। इस परिवारपर खर्च करते समय इसके गुण-दोषों पर विचार करना अप्रासंगिक और अनुचित होगा। यदि लोग ऐसे दोषयुक्त हैं तो वे आश्रममें न रहें, और न रह ही सकते हैं। यदि वे आश्रममें रहते हैं तो इसे हम भले ही आश्रमवासियोंकी सहनशीलता मानें, लेकिन उनकी सहनशीलता भी कम नहीं है। हमें ऐसे अनेक लोग मिलेंगे जो भूखे मर जाना पसन्द करेंगे, लेकिन आश्रमके कठोर जीवनको सहन नहीं कर सकेंगे। लेकिन इस परिवारने भिन्न भाषा, भिन्न रहन-सहन, मांसाहारका निषेध, उसकी दृष्टिमें परदेश, यह सब सहन किया। मुझे लगता है कि हम यह सब भुला नहीं सकते। तात्पर्य यह कि कृष्णमैयादेवीका जाना उचित ही था। और यदि यह उचित है तो हमें उसका खर्च उठाना चाहिए। दार्जिलिंगमें यदि वह अलग मकान लेती तो प्रति व्यक्ति १५ रुपया खर्च अवश्य आता। चूँकि वे लोग अपने चाचाके साथ रहते हैं इसलिए उनके चाचा इसमेंसे अवश्य कुछ बचा लेते होंगे। लेकिन यदि वह आग्रहपूर्वक मुझसे कहें कि नहीं बचा सकते तो मैं उनकी बातको अवश्य सच मान लूँगा। इन लोगोंके लिए वह [चाचा] कुछ-न-कुछ अतिरिक्त खर्च भी करते ही होंगे। मैंने हिसाब और दिनचर्या माँगी थी। हिसाबके बारेमें उसने लिखा था कि चूँकि वह चाचाके साथ रहती है इसलिए वह प्रति व्यक्तिके हिसाबसे उन्हें इतना पैसा-भर देती है। और इनके साथ रहकर अलगसे हिसाब नहीं रखा जा सकता, यह बात समझमें आती है। छोटे-मोटे खर्चके लिए कुछ पास रखती होगी, इसके बारेमें मैंने कुछ नहीं पूछा। मेरा खयाल था कि तुम्हें उसके ब्यौरेवार पत्र आते होंगे। मुझे जो हालमें पत्र मिला है वह २०–२५ दिनों बाद आया है और सो भी उसमें पैसा न मिलनेकी शिकायत-भर लिखी है। मैंने दिनचर्या माँगी थी लेकिन वह तो मुझे अभी तक नहीं मिली है। वह रखती है, अथवा नहीं, भेजती है अथवा नहीं, अभी तो हमें पैसा देना ही चाहिए। वह दार्जिलिंगमें रहती है। इसमें उसकी भी कसौटी हो जायेगी। जहाँतक रहनेकी बात आती है मुझे लगता है कि वह वहाँ दो-तीन महीनेसे ज्यादा नहीं रहना चाहेगी। और इस बारेमें मैंने अपने मनमें भी कोई निश्चित अवधि नियत नहीं की है। मेरी इच्छा तो केवल यही है कि वह जी भर कर वहाँ रहे। उसकी वहाँ स्थायी रूपसे बस जानेकी भी इच्छा हो सकती है और

मैंने इस बारेमें उससे पूछा भी था। उसका तो महावीरने तड़ाकसे उत्तर दिया था, "हम तो आश्रमके ही अंग हैं। और वहीं हमें रहना भी है; यहाँ हम कोई धन्धा करनेके लिए नहीं आये हैं। आप कहें तो आज ही लौट आयें। बात सिर्फ इतनी ही है कि बहुत दिनोंके बाद यहाँ आना हुआ है और तबीयत भी कुछ सुधर गई है, इसीसे थोड़ा समय और रहनेका मन होता है। मुझे अपनी जिम्मेवारीका पूरा-पूरा ध्यान है। हम ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिससे आश्रमकी बदनामी हो।" यह उसके पत्रका भावार्थ था। अबसे यदि उसके इस तरहके पत्र और आयेंगे तो सावधानीपूर्वक उन्हें तुम्हें भेज दूँगा। विवाहके सम्बन्धमें मैत्रीका पत्र भी बिल्कुल खरा और स्पष्ट था, "अभी आपने मुझसे ऐसा प्रश्न पूछा ही क्यों कर? ऐसे समय विवाह का प्रश्न ही कहाँ उठता है? मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है, और अगर हुई भी तो आप ही को मेरा विवाह करना होगा?"[१] अन्तमें, जबतक हम राधापर होनेवाला १०० रुपयेके खर्चका भार वहन करते हैं तबतक हमें इन ९० रुपयोंके खर्चका भार भी वहन करना चाहिए। राधा आश्रमके प्राणरूप मगनलालकी पुत्री है, यह विचार यहाँ नहीं किया जा सकता। यदि हम इस तरह विचार करने बैठेंगे तो भेद-भावके कुएँमें डूब जायेंगे अथवा इसका विचार करते हैं तो बेहतर यह होगा कि हम राधासे और सहनशीलताकी अपेक्षा रखें। लेकिन राधासे अथवा सन्तोक[२] से इस तरह सहन करनेको कहनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। माँ-बेटी जिस बातमें अपना कर्तव्य मानती हैं सो कर रही हैं—इस विचारसे ही मैं अपने मनको सन्तोष देता हूँ। मेरे इस दृष्टिकोणमें यदि तुम्हें कहने लायक कोई बात दिखाई दे तो तुम मजेसे कह डालना। तुम यह सब अच्छी तरहसे समझ सको, इसीलिए इतने विस्तारसे लिखा है।

इसी जगह मैं दूधीबहन[३] और नीमूके बारेमें भी लिखे डालता हूँ। दूधीबहन तो अपना खाना खुद बना लेती होगी; यदि ऐसा है तो वह सब खर्च कर डालती होगी। वालजीका रहन-सहन अत्यन्त सादा है। बीमार आदि पड़नेपर भी किसीको कोई तकलीफ नहीं देते—ऐसे वातावरणमें दूधीबहन रही है। इसलिए उसे कुछ भी कहनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। नीमूका मामला भिन्न है और उससे तुम पूछ भी सकते हो। तुम चाहो तो मैं भी लिखूँ। लेकिन यदि यहाँसे लिखता हूँ तो उसे कदाचित् आघात पहुँचेगा। रामदास सादगीके साथ रहनेके मन्सूबे तो बहुत बाँधता है लेकिन उसका भरण-पोषण दक्षिण आफ्रिकामें हुआ है, मुक्तभावसे खर्च किया है, उसमें कितनी सादगी हो सकती है! और फिर नीमू बच्ची ठहरी, माता-पिताके यहाँ भी खुले हाथ खर्च करती रही है, वह अवश्य अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च लेती होगी। महादेवका कहना है कि वह संयुक्त रसोईमें खाती है, इसका अर्थ तो इतना ही हुआ कि वह मात्र छ:-सात रुपयेका खाना खाती है—दूध-दहीके पैसे वह इन साठ रुपयोंमें से देती होगी। दो बच्चोंका भोजन तो रसोईमें से नहीं निकलता, उनके

१. इस विषयपर गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: मैत्री गिरिको", १४-६-१९३२।

२. मगनलाल गांधीकी विधवा।

३. वालजी गोविन्दजी देसाईकी पत्नी।

दूध-दहीका खर्च भी वह उन ६० रुपयोंमें से निकालती होगी। यदि यह बात है तो ६० रुपयेकी रकम कोई बहुत चौंकानेवाली रकम नहीं है। लेकिन इसका निर्णय तो वही कर सकता है जिसे इस बातकी जानकारी हो कि यह साठ रुपया किस तरह खर्च किया जाता है। और यह तुम जान लेना।

यह पत्र इतनेपर ही अधूरा रह गया था और मैं खाने आदिके कार्यमें लग गया था। इतनेमें तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। उसमें मैंने विभिन्न कार्योंके घंटोंका जो हिसाब पूछा था उसका उत्तर मिल गया। इससे मुझे बहुत सारी चीजें स्पष्ट हो जाती हैं। "प्रयोग" नामक शीर्षकसे जो टिप्पणी लिखी मिलती है उसमें कदाचित् केशूके प्रयोग होंगे। मैं देखता हूँ कि यज्ञमें सबसे ज्यादा घंटे हैं जो बहुत शोभनीय बात है और इससे यह प्रकट होता है कि जहाँ सब व्यक्ति एक ही काम करते हों वहाँ सबसे ज्यादा समय उसीको मिला होगा और फिर भी वह कार्य किसीके लिए कष्टकर न होगा। तात्पर्य यह कि यदि सब कोई अपना जीवन यज्ञकी दृष्टिसे व्यतीत करेंगे तो समस्त जीवन सरल हो उठेगा। सामूहिक यज्ञके इस महत्त्वको मैं अपने अन्तर्मनमें समझता तो अवश्य था, लेकिन किसी दिन आँकड़े निकाल कर मैंने उसे देखा नहीं था।

दफ्तरका काम छठी अँगुलीके समान है। अभी तो अगर यह छठी अँगुली न हो तो सब काम अटक जायेगा। लेकिन जहाँ सब लोग मन, वचन और कर्मसे सत्यका पालन करनेवाले हों वहाँ दफ्तरकी जरूरत ही नहीं होती और अगर होती भी है तो इसमें कमसे-कम समय लगता है।

१४वें खानेमें "बीमार" लिखा है और २०वेंमें "बीमारकी सेवा" है। "बीमार" का क्या अर्थ है? शारदा अब किसके साथ रहती है? तात्पर्य यह कि उसकी विशेष जिम्मेदारी किस पर है?

यज्ञ बाहरके दालानमें होता है यह तो उत्तम है और यह निभ रहा है, यह बहुत अच्छी बात है। इससे लोगोंको अच्छी आदतें पड़ जायेंगी, इस बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। तुम दो घंटे दे सकते हो, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती है और मैं यह भी अच्छी तरहसे समझता हूँ कि तुम्हारे लिए तो यह आराम है। जिस तरह प्रार्थना मनुष्यके लिए विश्राम-स्वरूप होती है उसी तरह यह यज्ञ-कार्य भी है। जिसे यह बोझरूप जान पड़ेगी वही व्यक्ति इससे निकलनेके लिए छटपटायेगा अथवा जैसे-तैसे इसे पूरा करेगा। यज्ञका एक घंटा निश्चित करनेका सुझाव देनेके पीछे मेरे मनमें केवल एक ही विचार था कि तुम अन्य कार्योंको भी इतनी कठोरतासे करो और सोनेको भी कम समय मिले तो इस हालतमें यज्ञको विश्राम नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम शान्तिका उपभोग कर रहे हो और तुम्हें यह भाररूप भी नहीं जान पड़ता, इसलिए मेरे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है।

भाऊका सुझाव है कि जिस तरह वर्धामें यज्ञका सूत तकलीसे काता जाता है उसी तरह साबरमतीमें भी काता जाना चाहिए। उसे मैंने लिखा था कि मैं तुम्हें यह बात लिखूँगा, लेकिन पिछले पत्रमें लिखना भूल गया। इस बारेमें मैं निरपेक्ष

हूँ। मैंने इसके गुणदोषका विश्लेषण नहीं किया है। लेकिन तुम भाऊकी पूरी बात सुनना और सुननेके बाद जो ठीक लगे सो करना।

हाथकी हालत खराब नहीं है लेकिन उसमें सुधार हुआ है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। आज फिर हार कर दूध लिया है। इस बारेमें मैंने मीराबहनको विस्तारसे पत्र[1] लिखा है। वह पत्र उसे इस पत्रसे पूर्व मिल जायेगा। वह तुम्हें तो अवश्य मिलेगा, इसलिए यहाँ ज्यादा नहीं लिखता। अलोना भोजन ग्यारह दिन तक चला। इसका परिणाम अच्छा ही निकला, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, दूध लेनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। लेकिन जो कुपरिणाम निकला उसका कारण नमक न लेना था, यह भी नहीं कहा जा सकता। मैं तो अन्य अनेक कारण देख सकता हूँ, लेकिन जिन प्रयोगोंमें जरा भी जोखिम हो वे यहाँ नहीं किये जा सकते। हमारे ऐसा करनेसे अधिकारियोंकी स्थिति भी विषम हो जाती है, क्योंकि इस सम्बन्धमें वे मुझ पर कुछ अंकुश भी नहीं रखना चाहते और विपरीत परिणाम निकलनेपर वे धर्मसंकटमें भी पड़ जाते हैं। इसी कारण मैंने आज दूध लिया और कल रोटी लूँगा। तात्पर्य यह कि अलोना व्रत टूट गया। लेकिन अलोनाके प्रभावको यदि कोई आजमाना चाहे तो अवश्य आजमा सकता है। अलोनी सब्जी मेरे लिए तो रेचक सिद्ध हुई है इसलिए जिन लोगोंको कब्ज रहती हो उनके लिए अलोना भोजन कदाचित उपयोगी सिद्ध हो। दक्षिण आफ्रिकामें तो यह आहार लिया ही जाता था। संयमकी दृष्टिसे भी अलोना भोजन बहुत अच्छा होता है, इस बारेमें तो तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए। पारनेरकरका उद्देश्य तो निश्चय ही पूरा नहीं हुआ। वह अब कुछ शान्त है अथवा नहीं?

सावित्रीबहनका जो पत्र मैंने तुम्हें भेजा था क्या वह तुमने भेज दिया है?

मुस्लिम भजन अमुक दिवसपर ही गाना चाहिए, इसका विरोध महादेवने तो किया ही था, अब छगनलालका भी आया है। तर्क यह है कि 'भजनावली' में मुस्लिम भजन हैं ही और यदि वे समय-समय पर गाये जाते हैं तो यह पर्याप्त होगा। अमुक दिवसपर एक ही भजन गाया जाना उचित नहीं है, यह दलील मेरी समझमें आती है। लेकिन मुझे मन ही मन लगा करता है कि यदि एक दिन खास मुस्लिम भजन गाया जाये तो इसमें बहुत तथ्य निहित है। अमुक कार्यको इच्छा होनेपर किसी-किसी दिन करनेमें और उसके लिए निश्चित किसी एक दिन करनेमें बहुत फर्क है। हम नित्य अमुक श्लोकोंका पाठ क्यों करते हैं? जिस भावनासे प्रेरित होकर हम उन श्लोकोंका पाठ करते हैं, मुस्लिम भजन एक निश्चित दिन गाये जानेके पीछे भी वही भावना है। इसके द्वारा हम मुसलमानोंके साथ ऐक्य स्थापित करेंगे। यह भावना मुझे तो एकदम त्याज्य नहीं जान पड़ती। अब तुम सबको वहाँ जैसा ठीक लगे वैसा करना। मैंने तो तुमसे अपने मनकी बात कह दी है लेकिन मुझे कोई आग्रह नहीं है; और यदि तुम्हें मेरी यह बात पसन्द आये तो "है बहारे बाग"[2] निश्चय ही

१. २२-६-१९३२ को।

२. देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ४४७।

उत्तम भजन है क्योंकि यह मगनलालको प्रिय था; इतना ही नहीं, वरन् यह ठीक दक्षिण आफ्रिकासे आया है। यह एक अत्यन्त निर्मल-हृदय मुसलमान नवयुवकके सुझाव पर दक्षिण आफ्रिकामें शामिल किया गया था।[1] यह नवयुवक अब नहीं रहा। इस तरह इस भजनके पीछे तो अनेक बातोंका समावेश है। यह भजन उस नवयुवकको इतना ज्यादा प्रिय था कि "याद कर तू ऐ नजीर कब्रोंके रोज" में वह नजीरके स्थानपर अपना नाम 'हसन' गाया करता था। वह फीनिक्समें अनेक बार आया-जाया करता था। मेरे लिए तो वह बेटेके समान ही था और यह भजन एक बार नहीं, अनेक बार फीनिक्समें गाया जाता था। उस नवयुवकको पियानो बजाना भी आता था और कई बार वह पियानोपर अकेला ही इसे सुनाता था। इसलिए इस भजनकी पसन्दगी तो उत्तम ही है। साथ ही इसका मर्म भी बहुत सुन्दर है।

फादर एल्विनकी देखभाल बराबर की जाती है न? उनकी तबीयत बहुत नाजुक रहती है इसीसे यह विचार मनमें आ जाता है। आलूविहारीको सूटकेसके बारेमें लिखनेकी कोई जरूरत नहीं। वह जब चाहेंगे तब उसे भेजेंगे। मेरे पास उनका पता मौजूद था, लेकिन मैंने उसे सँभालकर नहीं रखा।

पुरातन भावनगरमें है। "दक्षिणामूर्ति"के पतेपर इस तक पहुँचना सम्भव है।

आश्रमके लिफाफेके एक कोनेमें जो लिखा है उसकी ओर वल्लभभाई मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं। वहाँ लिखा है "सत्याग्रहाश्रम, उद्योग मन्दिर, साबरमती"। 'सत्य' और 'उद्योग,' दोनों किसलिए। जब मैं इसे पढ़ने बैठा तब मेरा ध्यान नीचे अंग्रेजीमें 'बी० बी० सी० आई०' की ओर गया। यह अंग्रेजीमें क्यों है? और इसकी जरूरत भी क्या है? लेकिन यदि हो भी तो हम हिन्दीमें 'बी० बी० सी० आई० रेलवे' क्यों नहीं लिख सकते? फिलहाल तो हमारे पास जितने लिफाफे हैं उनके लिए यह टीका व्यर्थ है, लेकिन भविष्यमें इसका ध्यान रखना।

२४ जून, १९३२

दूध बाहर देनेके लिए जाते समय जो कठिनाई होती है, उसका नारायणप्पाने जिक्र किया है। इस विषयपर मैंने उसको पत्र लिखा है कि वह इस प्रश्नकी चर्चा तुम्हारे साथ करे। वह पत्र देख जाना।

२६ जून, १९३२

यदि कोई व्यक्ति स्वयं काता हुआ सूत अपने लिए नहीं बुनवा सकता तो खादी महँगी पड़ेगी, आदि-आदि प्रश्न पूछे गये हैं। इन प्रश्नोंके उत्तरमें मैं केवल यही कहना चाहूँगा :

१. उत्तम तो यही है कि हम जितना सूत कातें वह सारा-का-सारा सूत आश्रमको दे दें और आश्रममें जो खादी प्राप्य हो उसमेंसे जो जिसके हिस्सेमें आये उसीसे सन्तोष मानें।

२. जो लोग ऐसा करनेके लिए तैयार न हों वे यज्ञके समय काता गया सूत आश्रमको दें। इसके उपरान्त जो सूत काता हो उसे यदि वे अपने पास रखना चाहें तो भले रखें।

१ देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २२४–७।

३. जो खादी आश्रमवासियोंको दी जाये उसके कमसे-कम जितने दाम लिये जा सकें सो लें।

४. आश्रममें ऐसी खादी तैयार रखी जाये जो सबको अनुकूल पड़े।

५. आश्रममें कते अच्छेसे-अच्छे सूतकी बुनी खादी तो बाहर जानी ही चाहिए।

६. आश्रमवासी जितनी मोटी खादीसे अपना काम चला सकें, चलायें और उसीमें प्रसन्न रहें। इसके पीछे यह भावना निहित है कि वह केवल शरीर-रक्षाके लिए ही वस्त्र पहनते हैं। इस तरह हम सबसे घटिया किस्मकी और कमसे-कम खादी पहनेंगे।

७. इस तरह काता हुआ सारा सूत यज्ञार्थ अर्पित कर देनेसे यदि अच्छा सूत कातनेका उत्साह भंग होनेका भय हो तो हमें वह जोखिम उठानी चाहिए। क्योंकि इसका अर्थ यह होगा कि याज्ञिक यज्ञके लिए जो सूत कातते हैं वह गोया बेगार है। यह एक भयंकर बात होगी, जबकि धर्म यह कहता है कि अपने लिए हम भले ही कैसा भी क्यों न खाना बनायें अथवा सूत कातें, लेकिन परोपकारार्थ काता गया सूत अथवा पकाया गया खाना उत्तमोत्तम होना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते वे वस्तुतः यज्ञ करते ही नहीं, वे तो सचमुच बेगार ही कातते हैं। उनका यज्ञ व्यर्थ होता है और यह उनके दम्भका परिचायक है। अतएव यज्ञार्थ काता गया सूत पहलेकी अपेक्षा अधिक उम्दा न हो अथवा कमसे-कम पहले जैसा ही न हो तो हम कसौटीपर खरे नहीं उतरेंगे।

यह सब समझ लेनेके बाद हर किसीको अपनी राय व्यक्त करनी चाहिए और अपनी इच्छानुसार आचरण करना चाहिए। धर्म तो मैंने जो बताया है, वही है, इसके बारेमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं है। इसे जान लेनेके बाद उसका पालन करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। लेकिन तिसपर भी यदि कोई व्यक्ति उसके अनुरूप आचरण नहीं करता, क्योंकि आज तक वह इसके विपरीत चलता रहा है, तो वह जैसा चाहे वैसा करनेके लिए स्वतन्त्र है। मैं तुम्हारे लिए नई मुश्किलें पैदा करना नहीं चाहता। मुझे लगता है कि मेरी ओरसे समझानेके लिए अब कुछ बाकी नहीं रह जाता।

मेरा हाथ ठीक ही है। दूध, रोटी चालू हैं। उनके प्रभावके बारेमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं।

ये पत्र तो गाजरकी पोंगीके समान हैं, यह बात तो तुम समझ ही गये होगे। मुलाकातकी ही तरह ये भी जब चाहे तब बन्द हो जायें तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हमें इसके लिए भी निश्चित मनसे तैयार रहना चाहिए। अभी तो ऐसी कोई बात नहीं है, लेकिन कब ऐसी स्थिति आ पड़े, सो नहीं कहा जा सकता।

इस बार तो मैंने खूब लम्बा पत्र लिखा है।

बापू[1]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. इस पत्रके साथ भेजे गये "अहिंसा का पालन कैसे किया जाये" नामक लेखके लिए देखिए पृष्ठ ९३।

१०५. पत्र : कृष्णाबहन माधवदास कापड़ियाको

२८ जून, १९३२

चि० कृष्णा,

तुम्हारा तथा माधवदासका पत्र मिला। तुम्हारी तबीयत अब अच्छी रहती होगी। आजकल माधवदासकी आर्थिक स्थिति कैसी है, जरा यह भी लिखा होता तो अच्छा होता। अब लिखना। मैं अपने हाथको अभी आराम ही देता हूँ। चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। मणिलाल, सुशीला और सीता तीनों नेटालके जहरी बुखारकी चपेटमें आ गये थे, सो तो तुम्हें मालूम ही होगा। लेकिन उनका जो पत्र था ठीक होनेके बादका था, अतः अब तो वे सब बिल्कुल ठीक हो गये होंगे। रामदास ठीक है, ऐसे समाचार मिलते रहते हैं।

माधवदास व्यग्र-चित्त क्यों रहते हैं? धन तो आज है और कल नहीं। उसका तनिक भी हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए। गरीब होनेमें और रहनेमें कोई शरम नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः देखा जाये तो मनुष्यकी सामान्य स्थिति यही है। धनवान तो इस जगतमें बहुत कम लोग होते हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत माधवदास गोकलदास कापड़िया
मनोरदास स्ट्रीट
फोर्ट, बम्बई

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

१०६. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

२८ जून, १९३२

भाईश्री खम्भाता,

आपका पत्र मिला। दवाकी बोतल आनेकी खबर मुझे दी गई है, लेकिन मुझे इसका उपयोग करने देनेमें मेजर भण्डारी संकोच कर रहे हैं। उनका कहना है कि यह तो ब्रिटिश फार्माकोपियाका 'कैम्फर लिनिमेंट' है और इसकी गन्ध बहुत तीव्र है, यह कदाचित चमड़ीको नुकसान पहुँचाये। कोई नुकसान हो जाये तो जिम्मेवारी उनकी होगी, इसलिए यदि उन्हें मालूम हो जाये कि इसमें कौन-सी दवा किस परिमाणमें डाली गई है और यदि उन्हें परिमाण अपेक्षाकृत कम जान पड़े तो वह उसका उपयोग करने दे सकते हैं। चूँकि परिस्थिति यह है इसलिए यदि आप स्वयं ही इस

तेलको तैयार करते हैं तो आप उन्हें परिमाण लिख भेजें और इसके उपयोगके सम्बन्धमें अपना अनुभव भी उन्हें लिखें तो सम्भव है वह इसका उपयोग करने दें। मैंने तो इस्तेमाल करने देनेका आग्रह किया था, लेकिन उनकी जवाबदेहीकी बात आनेपर मैं चुप रह गया। हाथके दर्दमें कोई वृद्धि नहीं हुई है। आराम तो उसे पूरा मिलता ही है।

आप दोनोंको बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५५०) से। सी० डब्ल्यू० ५०२५ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता

१०७. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२८ जून, १९३२

चिरंजीवी रेहाना,

तुम्हारा लम्बा खत मिला है। गजल बहुत अच्छी है। दोबारा पढ़नेके लिए मैंने तुम्हारे सब खत रखे हैं। उसमेंसे एक डिक्शनरी बनाना चाहता हूं। ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूटमें तुमको जो काम मिल गया है वह तो बहुत अच्छा है। अब तो रेहाना स्कालर कहलायेगी। अब आसमानमें उड़ेगी और हम सब देखते रहेंगे। पशा-भाईसे कहो हम सबको उनके दुखसे दुख हुआ। अब तो लड़की अच्छी हो गई होगी। सरदार, और काका, अमीर अलीकी किताब खूब दिलचस्पीसे पढ़ रहे हैं। अब्बाजान और अम्माजानसे हम सबकी तरफसे बहुत आदाब और बन्देमातरम।[1]

पुरोहित भाई अब अच्छे होंगे। सरदारकी तरफसे खबर पूछो। डा० सुमंत वजन बढ़ा रहे हैं। यह खबर शारदाबहनने भी दी थी।[2]

आज अब और ज्यादा गुजराती नहीं लिखूँगा। बहुत कुछ तो ऊपर आ ही गया है। हमीदाके पत्रकी राह देख रहा हूँ। सरदार और महादेवके यथायोग्य वन्देमातरम् आदि आदि।

बापूके आशीर्वाद और चपत

उर्दू/गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४६) से।

१ और २. ये अनुच्छेद उर्दूमें हैं।

१०८. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको[1]

२८ जून, १९३२

भाई घनश्यामदास,

मुझे खद्दर मिल गया, लेकिन कोई चिट्ठी नहीं मिली है। कृपया बहनजीसे कह दीजिएगा कि मैं इस खद्दरका बहुत प्रेमसे उपयोग करूँगा। पिछला पत्र लिखनेके बादसे[2] मैं अर्थशास्त्रकी पुस्तकें पढ़ता रहा हूँ। मैंने तुम्हारी दो पुस्तिकाएँ पढ़ीं। मैं (विषयको) पहलेसे ज्यादा ठीक समझ सकता हूँ। लेकिन अभी सब चीजोंकी तस्वीर मेरे सामने नहीं आती। लेकिन मैं बराबर कोशिश कर रहा हूँ और आशा है कि विषयका मुझे पर्याप्त परिचय हो जायेगा। अभी तक मैं बैंकिंग और एक्सचेंज पर (प्रोफेसर) शाहकी किताब पढ़ता रहा हूँ। इस सम्बन्धमें जो भी पढ़ने लायक किताबें हों वे भेज दी जायें। हर्शेल कमेटी, फाउलर कमेटी, वेबिंगटन स्मिथ, चैम्बरलेन और हिल्टन यंग कमेटियोंकी रिपोर्टें पुस्तक रूपमें प्रकाशित की जायें तो बहुत अच्छा होगा। यदि वे पुस्तक रूपमें छपी हुई न हों तो जैसी मिलती हों वैसी ही भेजी जा सकती हैं। विसम्मत टिप्पणियाँ भी उनके साथ होनी चाहिए। आपके ध्यानमें जो पुस्तकें हैं उनके अलावा ये रिपोर्टें भी मैं खुद चाहता हूँ। हमारे विशेषज्ञोंने जो पुस्तकें लिखी हैं, यदि आप उन्हें भी भेज दें तो, मेरी इस विषयकी जानकारी पर्याप्त हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग १, पृष्ठ ३१९।

१. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे उद्धृत यह पत्र तथा कुछ और पत्र मूल हिन्दी या गुजराती पत्रोंके सरकारी अनुवाद हैं। मूल पत्र उपलब्ध नहीं हैं।

२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको," ७-६-१९३२।

१०९. पत्र : मीराबहनको

२९ जून, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी पहुँचा। उस पत्रका उद्देश्य दामोदरदास और उसकी पत्नीको लिखे मेरे दो पत्र तुम्हें सौंपना है। इन पत्रोंसे शायद उन्हें सान्त्वना मिले।

मैं अच्छा हूँ। दूध, डबलरोटी और फल चल रहे हैं।

शेष फिर।

सप्रेम,

बा

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२७) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९३ से भी।

११०. पत्र : कन्हैयालालको[1]

२९ जून, १९३२

भाई कन्हैयालाल,

(१) जो "मैं" में विश्वास रखता है।
(२) रागद्वेष आदिसे मुक्त होना।
(३) असत्य
(४) अहिंसा
(५) रागद्वेषादिका सर्वथा अभाव
(६) असत्याचरण
(७) अहिंसा।

बापू

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ६५से भी।

१. कन्हैयालालने निम्नलिखित प्रश्न पूछे थे: (१) बन्धनयुक्त कौन है? (२) मुक्ति क्या है? (३) नरकसे क्या अभिप्राय है? (४) मुक्ति प्राप्त करनेके लिए कौन-सी वस्तु है? (५) मुक्त दशा कौन-सी है? (६) नरकका मुख्य द्वारा कौन-सा है? सातवाँ प्रश्न महादेव देसाईको याद नहीं रहा।

१११. पत्र : देवदास गांधीको

२९ जून, १९३२

हम सब बहुत धैर्यवान हैं, इसलिए [सफलता-प्राप्तिमें] यदि दो-चार वर्ष चले जाते हैं तो कोई परवाह नहीं। हम उसे ब्याज समेत वसूल कर लेंगे।[1] . . .

अमेरिकाके लेखकोंके बारेमें राजाजीको कुछ भ्रम हो गया है।[2] हार्डीका साहित्य मैंने पढ़ा नहीं है। जोलाका भी नहीं पढ़ा। इसका मुझे हमेशा दुख रहा है। मगर सिंक्लेयरका बिल्कुल तिरस्कार नहीं किया जा सकता। प्रचारकी दृष्टिसे लिखे हुए उपन्यासोंमें प्रचारका ही दोष मानकर उन्हें हरगिज हलका नहीं बताया जा सकता। प्रचारकके लिए तो उसकी सारी कला उसीमें चली जाती है। अपने उद्देश्यको वह छिपाता नहीं। और फिर भी कहानीमें रसको आँच नहीं आने देता। 'अंकिल टॉम्स केबिन' (टॉम काकाकी कुटिया) साफ तौरपर प्रचारके लिए लिखी गई चीज है। मगर उसकी कलाकी बराबरी कौन कर सकता है? सिंक्लेयर एक जबरदस्त सुधारक है और सुधारके प्रचारके लिए उसने अलग-अलग उपन्यास लिखे हैं, और यह कहा जाता है कि वे सब रससे परिपूर्ण हैं। समय मिला तो मैं उन्हें पढ़ूँगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

११२. पत्र : सुमंगल प्रकाशको

२९ जून, १९३२

प्रिय सुमंगल,

तुम्हारा पत्र मिला। बलात्कारके सम्बन्धमें तुम्हारी दलील उचित जान पड़ती है। जिन परिस्थितियोंमें तुमने आत्महत्या करना स्त्रीका धर्म माना है, वैसी ही परिस्थितियोंमें अपने संरक्षणमें निहित सम्पत्तिको यदि कोई लूटनेके लिए आता है तब आत्महत्या करना संरक्षकका धर्म हो सकता है। लेकिन इसकी प्रतीति हर किसीको स्वयमेव होनी चाहिए। यदि कोई स्त्री बलात्कारको रोकनेके लिए आत्महत्या करना पसन्द नहीं करती तो उसने कोई अधर्म किया है, ऐसा कहनेका तुम्हें या मुझे अधिकार नहीं है। इसके विपरीत यदि कोई संरक्षक अपने संरक्षणमें निहित सम्पत्तिकी

१. ये वाक्य सैमुअल होरके उस भाषणके सम्बन्धमें कहे गये थे जिसमें उन्होंने कहा था कि जबतक कांग्रेस सरकारको चुनौती देना बन्द नहीं करेगी तबतक उसके साथ कोई शान्ति-वार्ता नहीं हो सकती।

२. अमेरिकी लेखक अप्टन सिंक्लेयर लिखित **द वेट परेड** पढ़नेके बाद राजाजीने देवदासके सम्मुख अपने विचार व्यक्त किये थे।

रक्षामें अपने प्राणोंकी बलि देता है तो उसने धर्मका आचरण किया है, ऐसा मान लेनेका भी तुम्हें अथवा मुझे कोई अधिकार नहीं है। यह तो उस समय मनुष्यकी मनोभावना कैसी थी उसको जाननेके बाद ही कहा जा सकता है। इस तरह न्यायकी दृष्टिसे अपना मत व्यक्त करनेके बावजूद मेरी मान्यता यह है कि यदि स्त्रीमें साहस हुआ तो वह अपने साथ किये जानेवाले बलात्कारको रोकनेके लिए अवश्य ही प्राण-त्याग करनेके लिए तैयार रहेगी। इसीसे स्त्रियोंके साथ बातचीत करते हुए मैं प्राण-त्यागकी बातको अवश्य प्रोत्साहन दूँगा और उन्हें समझाऊँगा कि यदि इच्छा हो तो प्राणत्याग करना सहल कार्य है। क्योंकि अनेक स्त्रियोंकी यह मान्यता है कि यदि उनकी रक्षा करनेके लिए कोई अन्य पुरुष न हो अथवा वे स्वयं कटारी अथवा बन्दूक इत्यादिको चलाना नहीं सीखतीं तो उन्हें अत्याचारीके अत्याचारका शिकार होना ही पड़ेगा। ऐसी स्त्रीसे मैं अवश्य यह कहना चाहूँगा कि उसे दूसरोंके अस्त्रोंपर निर्भर रहनेकी कोई जरूरत नहीं है। उसका अपना शील ही उसकी रक्षा करेगा। लेकिन यदि यह सम्भव न हो तो कटारी आदिका उपयोग करनेके बदले वह आत्महत्या कर सकती है। स्वयंको दुर्बल अथवा अबला मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं।

अब काल्पनिक प्रश्नोंके विषयमें। तुम्हारा इन प्रश्नोंको पूछनेमें क्या उद्देश्य है, इसके बारेमें तुमने जैसा लिखा है वैसा ही मैं समझा भी हूँ और ऐसे प्रश्नोंको मैं काल्पनिक कहता हूँ। बेशक ऐसे कोई-कोई प्रश्न पूछे ही जा सकते हैं। लेकिन यदि काल्पनिक प्रश्न बिल्कुल ही न पूछे जायें तो यह ज्यादा अच्छा होगा। ऐसे प्रश्नोंकी आदत कभी नहीं डालनी चाहिए। जिसे ऐसी आदत पड़ जाती है वह व्यक्ति ठीक वैसा ही अपराध करता है जैसे ज्यामिति शास्त्रका विद्यार्थी किसी ज्यामिति-विशारदसे अपने सवालोंको हल करवा कर करता है। ऐसा विद्यार्थी कभी भी ज्यामि-तिका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसी तरह अमुक सिद्धान्तके अन्तर्गत उठनेवाले अनेक प्रश्नोंका अन्य व्यक्तिसे समाधान करानेवाले व्यक्तिका भी यही हाल होता है। लेकिन जहाँ तक नीतिके सिद्धान्तको लेकर उठाये गये प्रश्नोंका सम्बन्ध है, इसके मूलमें एक बहुत बड़ा दोष निहित है। तात्पर्य यह कि जो बात हमने उदाहरणके तौरपर कही हो वह बात हू-ब-हू वास्तविक जीवनमें कदापि घटित नहीं हो सकती। काल्पनिक उदाहरणमें और वास्तविक घटनामें यदि रंचमात्र भी भेद हुआ तो उसका हल भी नितान्त भिन्न होगा और इसी कारण मैंने तुम्हें आगाह किया था कि जबतक स्वयं अपने ही अनुभवमें आनेवाली या आई हुई घटनाके सम्बन्धमें प्रश्न न हो तबतक कहीं कोई ऐसा अवसर न आ पड़े उसके लिए पहले से ही तैयारी कर लेनेकी भावनासे, कल्पित दृष्टान्तोंके आधारपर मुझसे प्रश्न पूछनेकी आदत तुम्हें डालनी ही नहीं चाहिए। ऐसा करनेसे ठीक अवसर पड़नेपर इन काल्पनिक दृष्टान्तोंके उत्तर मददके बजाय बाधा ही उपस्थित करते हैं। ऐसे व्यक्तिकी बुद्धि मौलिक कार्य करनेके लिए अयोग्य सिद्ध होती है। इसकी अपेक्षा बेहतर यह है कि मूल सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लिया जाये, उसे आत्मसात् कर लिया जाये तथा उसे अपने अथवा अपने सगे-सम्बन्धियोंके जीवनपर लागू करनेमें यदि भूलें होती हों तो होने दी जायें।

ऐसी भूलोंसे तुम सीख सकोगे। लेकिन इस सिद्धान्तकी अपनेसे अधिक जानकारी रखनेवाले व्यक्तिके पास, इस बातको ध्यानमें रखकर कि समय आनेपर मुश्किलोंका सामना कैसे किया जाना चाहिए, काल्पनिक समस्याओंको लेकर नहीं जाना चाहिए। इस तरह आत्मविश्वासको क्षति पहुँचती है। लगता है, ऐसा अनुभव होनेके कारण ही गीताकारने १०वें अध्यायके १०वें श्लोककी रचना की है। उसमें तो भगवानने यही कहा है न कि जो व्यक्ति प्रीतिपूर्वक निरन्तर उसका भजन करते हैं उन्हें समय आनेपर मैं सुबुद्धि प्रदान करता हूँ। यहाँ भगवानके स्थानपर सत्य शब्दका प्रयोग करोगे तो अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा। अब तुम मेरे कहनेका अभिप्राय समझ गये होगे। तुम्हारे काल्पनिक प्रश्नोंका मैं बुरा नहीं मानता, लेकिन यदि मैं तुम्हें इसमें प्रोत्साहन देता हूँ तो इसमें तुम्हारा अहित होनेका भय है। लाभ तो नहीं ही है, ऐसी मेरी मान्यता है। उदाहरण स्वरूप तुम्हारे बलात्कार सम्बन्धी प्रश्नको ही लें। इस काल्पनिक प्रश्नका एक उत्तर देनेके बावजूद यदि सचमुच ऐसी कोई घटना घटे तो [सम्भव है] मैं उसका सर्वथा भिन्न उत्तर दूँगा, और निश्चयात्मक स्वरमें उसका समर्थन करूँगा। और यह भी सम्भव है कि काल्पनिक प्रश्न और वास्तविक घटनाके भेदको भी मैं तुम्हें समझा सकूँ। मैं अपने साथियोंके साथ हुए अपने अनुभवके आधारपर ही तुमसे यह सब कह रहा हूँ। अब मैं समाप्त करता हूँ।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि तुम्हारा स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा हो गया है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेन्ट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ७५–९ से भी।

११३. एक पत्र

२९ जून, १९३२

तुम्हें आत्महत्या करनेकी इच्छा क्यों होती है? तुमने कोई चोरी तो नहीं की, ऐसा मैं समझा हूँ। उसमें भी सट्टा फिर न करनेका तुमने निश्चय किया है। इस तरह यह अध्याय पूरा हुआ। और यदि चोरी की भी हो तो भी आत्महत्या करनेका कारण नहीं। चोरी करनेके बाद भी जो व्यक्ति अपने अपराधको स्वीकार कर लेता है वह व्यक्ति उसकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है जो चोरी करते हुए पकड़ा न गया हो अथवा जिसे कभी चोरी करनेका लोभ न हुआ हो। इसलिए तुम्हें आत्महत्या करनेका तो कोई कारण ही नहीं है। और अब रहा कर्ज। तुम्हारे पास जो है उसे तुम लेनदारको सौंप दो, इस तरह तुम्हारी जिम्मेदारी पूरी हो जाती है। लेनदार तुम्हें दिवालिया घोषित करना चाहे तो भले करे। उसमें कोई शर्मकी बात नहीं है। जो हो उसे सहनेमें पुरुषार्थ है। भविष्यके लिए तो मैंने तुम्हें लिखा ही है।

तुम दोनों आश्रममें जाकर रहो। वहाँ जाते हुए तनिक भी संकोच न करना। जहाँ धनवान होकर गये थे वहाँ रंक बनकर कैसे जाया जाये, ऐसे मिथ्या विचारको अपने मनमें न लाना। यह आश्रम साधु-वृत्तिके लोगोंके लिए ही है। मुझे लिखते रहना। मीराबहनकी ओरसे जो सहानुभूति मिले सो लेना। सत्संग पारसमणि है, ऐसा समझकर उसकी संगतिमें रहना।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

११४. पत्र : मीराबहनको

३० जून, १९३२

चि० मीरा,

दामोदरदास और उसकी पत्नीको एक सान्त्वनादायक पत्र भेजनेकी उत्सुकताके कारण मैंने कल तत्काल चिट्ठी लिख डाली थी ताकि उसी डाकसे निकल जाये। मुझे आशा है कि तुम्हें वे दोनों पत्र मिल गये थे और उन्हें तुमने उन मित्रोंको दे दिया होगा। सम्पत्तिकी हानिका लोगोंपर इतना ज्यादा असर पड़े यह दुःखकी बात है।

तुम्हारे उर्दू-अंग्रेजी और अंग्रेजी-उर्दू कोष कहाँ हैं? मुझे उनकी सख्त जरूरत है। मेरा उर्दू अध्ययन बढ़ रहा है। मैं काफी पढ़ता हूँ। इसलिए मुझे अपना उर्दू पुस्तकोंका संग्रह बढ़ाना होगा। आश्रममें कई किताबें हैं। मेरा विचार उन्हें मँगानेका है।

अभी तो मेरे स्वास्थ्यके बारेमें कोई देने लायक खबर नहीं है।

तुम्हें अपने शरीरमें जो सुधार दिखाई देता है, वह बेशक बहुत उत्साहवर्धक है। दूध और फलोंकी मात्रा बढ़ाना आवश्यक था।

मुझे खुशी है कि वेरियर अन्ततः इंग्लैंड जा सकें। वहाँ जाकर उनका जर्जर शरीर फिरसे स्वस्थ हो जायेगा और उनकी माँ तथा बहन उन्हें अपने बीच पाकर अत्यन्त हर्षित होंगी।

तुम्हारे बारेमें लिखे मेरे पत्र[1] का कोई उत्तर नहीं मिला है। शायद कोई जवाब न मिले।

शान्ताबाई कताईमें नियमित रूपसे कुछ समय दे रही हैं, यह अच्छी बात है।

तिलकको जितने आरामकी जरूरत हो, उसे लेना चाहिए। उसे अपना शरीर पुष्ट बनाना चाहिए।

नूरबानू काफी व्यायाम नहीं करतीं। उन्हें दूर तक टहलनेके लिए किसी तरह जरूर राजी करो। और अगर तुम उन्हें एक महीने तक नमक और घी न लेनेके लिए मना सको, तो उनकी काफी चर्बी छँट जायेगी।

१. सम्भवतः १८-६-१९३२ को ई० ई० डॉयलको लिखा पत्र।

रामनामकी धुनके लिए तुम्हें पण्डितजी जब बम्बईसे गुजरें तब उन्हें पकड़ना चाहिए। मेरे खयालसे तुम उन्हें लिखो तो वे गान्धर्व महाविद्यालयके अपने शिक्षक साथियोंमें से किसीसे सिफारिश कर सकते हैं। तुम आध घंटेमें ही सीख लोगी।

इन्टरनेशनल फेलोशिप (अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृमण्डल) के मुख्य सदस्य आजकल कौन-कौन हैं?

यूरोपके सब मित्रोंको और ऑक्सफोर्डवाले चाचा और उनकी पत्नीको मेरा और महादेवका भी सस्नेह वन्दे लिखना, तथा उनके प्यारे बच्चेको प्यार। मैं उस यात्राको, उस शान्त घरको और उससे लगे हुए उस अत्यन्त सुन्दर गिरजेको कभी नहीं भूल सकता।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६९४ से भी।

११५. पत्र : श्रीमती लिण्डसेको[1]

३० जून, १९३२

तुमने मुझे हरा दिया। पिछले चार हफ्तेसे मैं तुम्हें लिखनेकी सोच रहा था, मगर लिख न सका। अन्तमें कुटुम्बके सारे समाचार लिए हुये तुम्हारा अत्यन्त सुखद पत्र आ पहुँचा। उसके लिए धन्यवाद। मैं तुमसे यह कहना चाहता था कि मैंने जो-कुछ किया है उसमें मैं स्वयंसे यह प्रश्न करता रहा हूँ कि वह तुम्हें पसन्द आयेगा या नहीं। जब तुमने प्रो० थॉम्पसनके घर पर मुझसे बात की थी तब तुम्हारी आकर्षक आँखोंने मुझपर इतना ज्यादा असर डाला था। और फिर जब मैं तुम्हारे घर गया और तुमने परिवारके ही आदमीकी तरह मेरा सत्कार किया था, उस वक्तकी बातचीत तो भुलाई ही नहीं जा सकती। महादेव यहाँ मेरे साथ है। ऑक्सफोर्डमें मिले मित्रोंके बारेमें हम अकसर बातें करते हैं। तुम सबको हमारा प्यार।

[अंग्रेजीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. बैलिओल कालेज, ऑक्सफोर्डके डा० ए० डी० लिण्डसेकी पत्नी

११६. पत्र : एडमंड प्रिवा और उनकी पत्नीको[1]

३० जून, १९३२

प्रिय भक्ति और आनन्द,

तुम दोनोंका पत्र पाकर और यह जानकर कि तुम लोग इतने मजेमें हो, बड़ी खुशी हुई। तुम लोग जब यात्रा कर रहे थे उस समय मुझे आनन्दका एक पोस्ट-कार्ड मिला था। इसके सिवा कुछ नहीं। तुम्हें सरदार वल्लभभाईकी याद अवश्य होगी। वह और महादेव मेरे साथ हैं। हम सब मजेमें हैं और कुछ उपयोगी काम करनेकी कोशिश कर रहे हैं। महादेव और मैं कताई और अध्ययनमें काफी समय देते हैं। सरदार रद्दी भूरे कागज आदिसे लिफाफे बना कर धन-उत्पादन करते हैं। यह पत्र ऐसे ही एक लिफाफेमें रखा जायेगा।

मैं हृदयसे आशा करता हूँ कि भारतीय मौसम तुम्हें बहुत कष्टदायक नहीं लगा।

मुझे पता नहीं कि रोलाँ परिवारसे तुम्हारी भेंट अकसर होती है या नहीं। मिलने पर उन्हें हमारा प्रेमाभिवादन कहना। तुम्हें भी हम लोगोंका प्यार।

तुम्हारा,
बापू

प्रोफेसर ई० प्रिवा
ला शामीर ऐवेन्यू
स्विट्जरलैंड

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७९२) से।

१. स्विट्जरलैंड निवासी एक दम्पति; गांधीजी प्रिवाको आनन्द और उनकी पत्नीको भक्ति कहते थे।

११७. पत्र : भाऊ पानसेको

३० जून, १९३२

चि० भाऊ,

विनोबा विरचित 'गीताई'[1] की तीन प्रतियाँ जमनालालजीने मुझे यहाँ भेज दी हैं। कब्जकी शिकायत दूर होनी ही चाहिए। इसके बारेमें जरूरत जान पड़े तो डा० तलवलकरकी सलाह लेना। इस समय यह शिकायत भले ही थोड़ी जान पड़ती हो, लेकिन आगे जाने पर इससे बहुत खराबी हुए बिना नहीं रहेगी। मैं एक उपाय बताता हूँ जो मेरे सम्बन्धमें कारगर सिद्ध हुआ था। यह उपाय दो या तीन दिनके लिए करना और यदि लाभ न हो तो इसे छोड़ देना। चौलाई अथवा पालककी सब्जी पकाकर दिनमें दो-तीन बार खाना — अन्य कुछ नहीं लेना। इससे लाभ होनेकी सम्भावना है। जब दस्त आने शुरू हो जायें तब तुरन्त सामान्य आहार पर आ जाना। आधे सिरके दर्दका तात्कालिक और अचूक इलाज मिट्टीकी पुलटिस तो है ही। रातको माथे पर बाँध कर सो जाना। तथापि यदि दर्द दिनमें भी हो तो तुरन्त पुलटिस बाँधो और जबतक यह रखो हो तब तक लेटे रहो।

शेषशायी भगवानके चित्रके पीछे निश्चय ही गूढ़ अर्थ है, ऐसी मेरी मान्यता है, लेकिन उनके शेषशायी होनेसे अतंद्रित कर्मरत रहनेमें कोई बाधा नहीं आती। उपर्युक्त श्लोकके अतन्द्रित शब्द[2] का अर्थ इतना ही हो सकता है कि प्रत्येक काम करते समय वे सर्वथा और सतत जागरूक रहते हैं। काम करते हुए आलस्य नहीं होता। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह लगातार चौबीस घंटे काम करते हैं। इसके पीछे भगवानकी तुलना प्राकृत मनुष्यके साथ करनेका भाव है और इस श्लोकका उद्देश्य भी यही है। बाकी तो भगवान न सोते हैं न जागते हैं और न कोई काम ही करते हैं; और कुछ भी न करते हों सो भी नहीं। इसलिए उनकी तुलना किसी बातमें किसीसे भी नहीं की जा सकती। इतना कहनेके बाद शेषशायीका मैं स्वयं जो अर्थ करता हूँ वह यह है: भगवान इतने निर्भय हैं कि सर्पकी गोदमें भी वह निश्चिन्त होकर सो सकते हैं। यह अर्थ तो केवल मेरे सन्तोषके लिए है और मुझे इससे बल मिलता है। तात्पर्य यह कि यदि हममें सम्पूर्ण अहिंसा प्रकट हो तो सर्पके निकट रहकर भी हमें तनिक भी भय न हो और विशेष रूपसे यह कि सर्प भी हमसे भयभीत न रहे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३२)से। सी० डब्ल्यू० ४४७५ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१. अर्थात् **गीतामाता**, विनोबा भावे द्वारा किया गया **गीता** का मराठी अनुवाद।

२. सम्भवतः **गीता**, ३, २३।

११८. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

३० जून, १९३२

चि० परसराम,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम लड़कियोंको हिन्दीमें पत्र लिखनेके लिए प्रोत्साहित करते हो और उनकी भाषाको सुधार देते हो, इसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखाई देता। मात्र इतना ध्यान रखना, ऐसा न हो कि जो तुम बोलो लड़कियाँ वही लिखती चली जायें और अपने-आप वाक्य रचना न करें। प्रथम प्रयास उनकी ओरसे होना चाहिए। ऐसा नहीं होगा तो केवल उनकी लिखावट ही सुधरेगी, भाषामें कोई सुधार नहीं होगा। प्रश्न भी उनकी ओरसे ही होने चाहिए। प्रश्न पूछने ही चाहिए, ऐसा कोई निश्चित नियम तो नहीं है। सप्ताहमें जो-कुछ नया सीखा हो अथवा जो घटनाएँ हुई हों अथवा जिनका उनपर प्रभाव पड़ा हो वह सब कुछ अपने पत्रमें वे लिख सकती हैं। इसमें तुम्हें ज्यादा मेहनत करनी होगी, लेकिन यह तुम उन्हें हिन्दीका पाठ पढ़ाते समय सिखा सकते हो। मैं भी देख रहा हूँ कि पुष्पा अपने काममें दिलचस्पी लेने लगी है और उसके मनमें आगे बढ़नेकी उमंग है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५०४)से। सी० डब्ल्यू० ४९८१ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

११९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३० जून, १९३२

चि० प्रेमा,

तू तीन वर्षकी हुई है, ऐसा मैं मानता हूँ।[१] जो तू कहती है वह सच है। जब तुझे बम्बईसे मैंने अपने साथ लिया था तब तू यहाँ टिक सकेगी इस बारेमें मुझे शंका थी — लेकिन जितना तू सोचती है उतनी शंका तो नहीं थी, क्योंकि तू अपने वचन पर दृढ़ रही और जो अपने वचन पर दृढ़ रहता है उसके बारेमें मुझे कोई शंका नहीं होती। मेरे कथनमें व्यंग्यका भाव था ऐसा मैं नहीं समझता। लेकिन तू इतनी दृढ़ रहेगी, इसका मुझे विश्वास न था। मुझे याद है कि उस समय मेरी मनःस्थिति ऐसी थी। मैं तो अवश्य यह चाहता हूँ कि जैसे

१. प्रेमाबहन अपने आपको तीन वर्षकी आयुवाली मानना चाहती थीं, क्योंकि वह आश्रम जीवनको, जहाँ वह तीन वर्ष पूर्व आई थीं, अपना नया जन्म मानती थीं।

तूने यहाँ तीन वर्ष बिताये हैं वैसे सारा जीवन बिता और वह भी निश्चिंतताके साथ, अनायास ही नहीं अपितु निश्चयपूर्वक; तू आश्रमकी है और आश्रम तेरा है ऐसा अपने हृदयमें दृढ़तापूर्वक मानकर और जानकर। लेकिन इसका मेरी ओरसे आग्रह नहीं, यह तो केवल मेरी इच्छा ही हो सकती है। तुझे जबतक यह आश्रम सहज ही अपना नहीं लगता तबतक तू निश्चय नहीं कर सकती। यह तो मैंने तेरे आगे अपनी इच्छा व्यक्त की है।

यह तो हुई तेरे आश्रमके जन्मकी बात। तेरा दूसरा जन्मदिन १३ जुलाईको है और यह पत्र तुझे आठ तारीखके आसपास अवश्य मिलना चाहिए। मेरा तुझे आशीर्वाद तो है ही। भगवान करे तेरी बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा पूर्ण हो। तू उस दिशामें प्रयत्न कर रही है, इस विषयमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। लेकिन इसके लिए उतनी बड़ी उम्र और अच्छा स्वास्थ्य भी होना चाहिए। वह भी होगा ऐसा मैं मानता हूँ। लेकिन अन्ततः इन तीनोंका आधार तुझपर अथवा मुझपर नहीं है। [मैंने]तो सब-कुछ उस [भगवान]को सौंप दिया है। उसे जो अच्छा लगे सो वह करे। और वह जो करेगा सो अच्छा ही होगा।

१३ तारीखका हिसाब-किताब लिख भेजना। उस दिन तूने क्या निश्चय किया सो लिखना। यह तो तू जानती है न, कि जन्मदिनके अवसर पर कोई-न-कोई निश्चय करनेका सुझाव मैं हर किसीको देता हूँ?

ज्योतिष पर तनिक भी विश्वास न कर। उसका विचारमात्र छोड़ दे। ज्योतिषकी बातें यदि सच हों तो भी उन्हें जाननेसे कोई लाभ नहीं। हानि स्पष्ट है।

तुझे वहाँ गर्मी लगती है। यहाँ अच्छी ठंड है। बरसातकी कमी है।

उर्दूकी किताबोंमें पैगम्बरके जितने जीवनचरित्र देखनेमें आयें वे सब, 'अस्वा-ए-सहाबा' के दो भाग और 'खुलफाए राशदीन' तथा अंग्रेजी-उर्दू और उर्दू-अंग्रेजी शब्दकोष जल्दी भेजना। ये सब यदि बम्बईमें डाह्याभाईको भेज दिये जायें तो वे शनिवारको यहाँ ले आयेंगे।

सारे मकान नियमित रूपसे अमुक दिवस पर साफ होने ही चाहिए, सामान उठाया जाना चाहिए। इसके लिए समय निकालना ही होगा।

जिस अंगमें — व्यक्ति, समाज अथवा संस्थामें — हमें अपूर्णता दिखाई दे वहाँ पूर्णता लानेका प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि गुणकी अपेक्षा दोष बढ़ते जायें तो उसका त्याग — असहयोग — करना धर्म है। यह शाश्वत नियम है जो मैंने तुझे लिखा था। इस वाक्यसे मैंने तुझे आश्रम छोड़ने अथवा कोई चीज छोड़नेकी सलाह नहीं दी थी। मैंने तो तुझे अमुक स्थितिमें मनुष्य-मात्रका जो धर्म माना गया है सो बताया था।

बंगालमें, कलकत्तामें तो रोज दिन-दहाड़ेमें बकरे और भेंड़ें काटकर माताको चढ़ाते हैं। मैं भगवानसे इस बातकी याचना कर रहा हूँ कि वह मुझे इसे रोकनेकी सामर्थ्य दे। क्या तू यह बात नहीं जानती थी?[१]

१. प्रेमाबहनने गांधीजीसे पूछा था कि वे रोज विशेष प्रार्थना क्या करते हैं।

मनुष्य स्वयंको गोपीकी उपमा देता है, यह मुझे मालूम है। यदि ऐसा केवल भक्तिभावसे प्रेरित होकर किया जाता है तो मुझे इसमें कोई बुराई नहीं दिखाई देती। ईश्वरके समक्ष सभी अबला ही हैं।

स्वराज्यमें लोग हिमालयकी चोटी पर चढ़ने और उत्तरी ध्रुवकी खोजके लिए अवश्य निकल पड़ेंगे। सामान्य भौतिकशास्त्रके ज्ञानको मैं लाभदायक समझता हूँ।

मेरे खुराकके प्रयोगोंसे मुझे कोई नुकसान नहीं हुआ। मेरे ये प्रयोग आठ वर्ष तक भी चले हैं और सात दिन भी चले हैं।

धुरंधर नासिक गया।

'मोनोडायट' में अवश्य लाभ है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९२) से। सी० डब्ल्यू० ६७४० से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

१२०. पत्र: शामल आर० रावलको

१ जुलाई, १९३२

चि० शामल,

अनसूयाबहन सबसे मिलती हैं। वह तुम्हें सलाह देंगी और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगी। तुम मुझसे पूछते हो, यह ठीक ही है। कौन मजाक करता है? परमेश्वरका ध्यान उसका नाम लेकर ही किया जा सकता है। परमेश्वरको भजनेका उत्तम मार्ग यह है कि सबमें उसके दर्शन किये जायें और सबकी प्रेम-भावसे सेवा की जाये। आश्रममें तुम्हें क्या कष्ट होता है? जो हो सो नारणदासभाईसे कहना। मुझे तो सब-कुछ ब्यौरेवार अवश्य लिखना।

बापू

एस० आर० रावल

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४३) से। सी० डब्ल्यू० २८७८ से भी; सौजन्य: शामल आर० रावल

१२१. पत्र : कुसुम देसाईको

१ जुलाई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरे पत्रोंमें कुछ तो बिल्कुल व्यर्थके होते हैं। जैसे कि इस बारका पत्र है। यदि लिखनेको कोई बात न सूझे तो न लिखना ही बेहतर है। लिखनेको कुछ न मिले यह दोष है, लेकिन कोरा पत्रसा लिख भेजनेसे यह दोष धुल नहीं जाता वरन् उससे यह दोष और भी पक्का हो जाता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४१)से।

१२२. पत्र : वनमाला एन० परीखको

१ जुलाई, १९३२

चि० वनमाला,

इस बारकी तेरी लिखावट खराब है। हमेशा ऐसी लिखावट होनी चाहिए मानो अक्षर छपे हुए हों।

जमीनकी पसन्दगीके बारेमें मंगलाके अथवा शारदाके पत्रमें मैंने लिखा था, उसे देख जाना और बादमें पूछने लायक कुछ हो तो पूछना।

मोहन नियमपूर्वक क्यों नहीं लिखता?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७६)से। सी० डब्ल्यू० २९९९से भी; सौजन्य : वनमाला एम० देसाई

१२३. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१ जुलाई, १९३२

बालको और बालाओ,

प्रेमाबहन सुझाये और तुम प्रश्न पूछो, यह उचित नहीं। प्रश्न उपयोगी होने चाहिए। तुममें उनके उत्तर जाननेकी उत्सुकता होनी चाहिए। और प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनके उत्तर तुम्हें वहाँ न मिल सकते हों। प्रश्न केवल पूछनेकी खातिर ही नहीं पूछे जाने चाहिए। तुम्हारे पत्रमें तुम्हारे कार्यका साप्ताहिक विवरण होना चाहिए। कार्यमें पढ़ाई भी आ जाती है।

अब रहे तुम्हारे प्रश्न :

मेरा जीवन अनेक वर्ष हुए नितान्त सार्वजनिक बन गया है।

शुद्ध आहार वह है जिसमें कमसे-कम हिंसा हो और जो केवल शरीरके पोषणके लिए ही लिया जाता हो।

तीर्थयात्रामें हमेशा धार्मिक वृत्ति ही होनी चाहिए। लेकिन धर्ममें व्यवहारका भी पालन हो ही जाता है। वस्तुतः धर्म शुद्ध व्यवहारका विरोधी नहीं होना चाहिए—न होता ही है।

सदाचारका मुख्य लक्षण सत् अर्थात् सत्य है।

तुम्हारे पत्रका व्याकरण और शब्दावली शुद्ध होनी चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१२४. पत्र : बबलभाई मेहताको

१ जुलाई, १९३२

चि० बबलभाई,

भक्ति अर्थात् हृदयमें ईश्वरको रटना। ईश्वर अर्थात् प्राणीमात्रमें व्याप्त एक ही रूप। इसलिए जो व्यक्ति ईश्वरके प्रेमकी खातिर जीवोंकी सेवा करता है वह भक्त है। 'मेरे निमित्त ही कर्म कर'[1] का तुमने ठीक अर्थ लगाया है। दूसरे श्लोकका अर्थ भी ठीक है। चित्तवृत्तिके निरोधमें यमनियमादिका पालन मुख्य वस्तु है। 'मेरे निमित्त कर्म कर' और 'कर्म फलका त्याग कर' इससे एक ही वस्तुको दो

१. सम्भवतः **गीता** के १२ वें अध्यायके १० वें श्लोककी ओर संकेत है।

प्रकारसे व्यक्त किया गया है। अमुक प्रकृतिके लोग पहले वाक्यको तुरन्त समझ जायेंगे तथा दूसरी प्रकृतिके लोग दूसरे वाक्य को।

मेरे हाथको जैसा तुम समझते हो वैसा कोई कष्ट नहीं है। अमुक ढंगसे काम करनेमें कष्ट होता है, बस केवल इतनी-सी बात है। काकासाहबकी तबीयत अच्छी होती जाती है। तुम्हें यदि अपना जीवन 'गीता' के प्रत्येक श्लोकके विरुद्ध दिखाई दे तो उसकी चिन्ता न करना अपितु दृढ़तापूर्वक और धीरजके साथ उन दोषोंको दूर करते जाना, फिर भले ही दोषोंका पहाड़ हो। प्रयत्न करते-करते एक समय ऐसा आयेगा जब सब दोष दूर हो जायेंगे। लेकिन पहाड़ देखकर यदि प्रयत्न करना छोड़ दोगे तो पहाड़ बढ़ता ही चला जायेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४५०) से।

१२५. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय पण्डितजी,

योगाका[1] नाम मैंने पहले कभी नहीं सुना था। योगाकी क्या वय है? वह कितनी पढ़ी हुई है? विद्यापीठकी किताबोंकी देखरेखका भार ठीक समय पर हाथमें आ गया है। अब उसे अच्छी तरहसे सँभालना। महादेव प्रति घंटा ४५ अंकके २०० से भी अधिक तार कातते हैं। बालकोंकी समस्या हमारी अपनी समस्या है। इसकी मैं नारणदासके पत्रमें चर्चा करनेवाला हूँ, वह पढ़ जाना। सवेरेकी प्रार्थनाके मौनके बारेमें मैंने नारणदासको लिखा है।[2] सवेरेका मौन भी यदि विवेकपूर्वक रखा जाये तो अवश्य लाभदायक है। लेकिन मेरे विचारसे तो साँझका मौन ही ज्यादा अच्छा था। लेकिन चूँकि मैंने नारणदासको लिखा है[3] इसलिए यहाँ ज्यादा नहीं लिखता। उसे देख जाना। मीराबहनको मैंने सुझाव दिया है कि यदि "रघुपति राघव राजा राम" धुनके बदले आरोह-अवरोह स्वरोंमें केवल राम-राम ही गाया जाये तो धुनमें अच्छी गति आ जायेगी और यह नये आनेवालोंके लिए ज्यादा अच्छी चीज होगी।[4] लेकिन यह उसे कौन सिखायेगा? यदि बम्बईमें कोई व्यक्ति तुम्हारे ध्यानमें हो तो उसे लिखना कि वह जाकर सिखाये। मेरा मतलब तो तुम समझ गये हो न?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२८) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे।

१. ना० मो० खरेकी रिश्तेदार।

२. और ३. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", २८ जून/४ जुलाई, १९३२।

४. देखिए "पत्र : मीराबहनको," २२-६-१९३२।

१२६. पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको[1]

१ जुलाई, १९३२

. . . मैंने जो उपाय तुम्हें बताया है तुम ज्यों-ज्यों मनसे उसको उपयोगमें लाओगे त्यों-त्यों तुम्हें अधिकाधिक शान्ति मिलेगी। जो तुम पढ़ चुके हो उसका तुम पर अदृष्ट प्रभाव होगा और यह आश्चर्यजनक होगा। कौन जाने तुमने कभी कुछ पढ़ा ही न हो, इस भावसे तुम रहना। जितना तुमने पचाया और आत्मसात किया होगा वह स्वयमेव कार्य-रूपमें प्रस्फुटित हो उठेगा।

बापू

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५७ से भी।

१२७. पत्र : स्वामी आनन्दको

१ जुलाई, १९३२

भाई आनन्दानन्द,[2]

इस बार तुमने बहुत लम्बी प्रतीक्षा करवाई। सरदारने मुझसे कई बार पूछा कि तुम्हारा पत्र अभी तक क्यों नहीं मिला। हम जानते थे कि वह नहीं मिला है। लेकिन इसमें तुम क्या कर सकते हो? यदि कारण मालूम हो तब भी मनुष्यके मनमें उस वस्तुकी उम्मीद बनी रहती है जिसे प्राप्त करनेकी उसे उत्कट इच्छा होती है। मेरा यह पत्र तुम्हें मिलेगा अथवा लौटकर मेरे पास आ जायेगा।[3] समीप रहते हुए भी वियोगका तुम्हें जो अनुभव हुआ है ऐसा अनुभव मेरे सम्पर्कमें आनेवाले अनेक लोगोंको हुआ है।[4] इससे जो सन्तोष मिल सके सो प्राप्त करना चाहिए। इस बारेमें कैलेनबैकने[5] एक सुन्दर प्रमाण निश्चित किया था।

१. देखिए "पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको", १८-६-१९३२ भी।

२. स्वामी आनन्दानन्द; नवजीवन प्रेसके प्रबन्धक।

३. उपर्युक्त पंक्तियाँ बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे ली गई हैं।

४. आनन्दानन्दने लिखा था कि गांधीजीका समय लेना मैं अपराध मानता हूँ। जब मेरे पास समय था और गांधीजी जेलमें थे तब मुझे गांधीजीके समीप रहनेका सौभाग्य नहीं मिला। इसलिए मैं समझता हूँ कि मैं कभी भी गांधीजीके साथ न तो रह पाऊँगा और न विचार-विमर्श कर सकूँगा।

५. हरमन कैलेनबैक; जर्मन वास्तुकला शास्त्री; दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी और घनिष्ठ मित्र।

उन्हें स्वयं यह अनुभव हुआ था कि वे जब पहले-पहल मेरे सम्पर्कमें आये तब वे मुझसे रोज मिल सकते थे और जब मन हो तब और जितना समय चाहे ले सकते थे। जब वे मेरे अत्यन्त निकट आ गये और हम परस्पर साथ रहने लगे तब एक साथ सोने, खाने और बैठनेके बावजूद बातचीत करनेका समय कदाचित ही मिल पाता था; आफिससे घर जाते समय भी कोई न-कोई बात करनेवाला होता ही था। इसलिए यह हमारा नित्यका झगड़ा हो गया। उससे उन्होंने त्रैराशिक हिसाब बनाया कि जो व्यक्ति जैसे-जैसे तुम्हारे पास आता जाता है वैसे-वैसे वह तुमसे दूर होता जाता है, ऐसा मुझे अनुभव होता गया है। मैंने उनके गणितको स्वीकार किया और साथ ही कहा: "चूँकि तुमने मुझे समझा है इसीसे तो इतने निकट आ पाये हो। मतलब यह कि मेरा समय लेनेका तुम्हें अब कोई अधिकार नहीं रहा और अन्य लोगोंको, जो मुझे [निकटसे] जानना चाहते हैं, छोड़कर तुम्हें समय देनेका मुझे अधिकार नहीं रहा।" इस समझौतेके बादसे ही हमारी गाड़ी आगे चलने लगी। ऐसे अनुभवके मूलमें एक सत्य तो निहित है न? एक दूसरेमें जो ओतप्रोत हो चुके हैं ऐसे साथियोंको एक दूसरेसे पूछने जैसा कुछ रहा? और यदि वे ऐसा करते हैं तो यही कहा जायेगा न कि वे उस हद तक अपने सामान्य कर्तव्यमें चूक गये? और यदि यह बात सच है तो तुम्हारे जैसे साथियोंको, जो पास रहते हुए भी मुझसे दूर हैं, दुख माननेका कोई कारण नहीं।[१] मुझे यह मालूम हो गया था कि तुम्हारा वजन कम हो गया है, लेकिन तुम्हारे स्वास्थ्यको लेकर मैं निरापद हूँ। मगन-चरखा गांडीव चरखेका संशोधित अथवा परिवर्धित रूप नहीं है। यह तो प्रभुदास गांधी[२] द्वारा की गई एक विशिष्ट, उपयोगी और उत्तम खोज है। इसका चक्र हाथके बजाय पाँवके द्वारा घुमाया जा सकता है और इस तरह दोनों हाथोंके मुक्त रहनेके कारण एक साथ दो तकुओं पर सूत काता जा सकता है। इसे चलानेमें दक्ष व्यक्ति तकुए पर जितना काता जा सकता है उससे यदि दो गुणा नहीं तो निश्चय ही डेढ़ गुणा ज्यादा कात सकता है। प्रभुदासके सन्तोषके लिए मैं मगन-चरखा चलाना तो चाहता ही था कि इस बीच डाक्टरोंने मुझे बायें हाथसे धागा खींचने अथवा चक्र घुमानेसे मना कर दिया और इस तरह प्रभुदासके चरखेको चलानेके लिए मेरे पास दो कारण थे। और चूँकि मगनलाल[३]ने इस चरखेके बनानेमें प्रोत्साहन दिया था तथा उसके शास्त्रीय पक्षको सुधारनेमें काफी मदद भी की थी इसलिए इसका नाम 'मगन चरखा' रखा गया है। मैं आजकल इस पर कात रहा हूँ। मेरी गति १४० तार तक पहुँच गई है। इसमें अभी और वृद्धि होगी। मैंने ऊपर जो लिखा है उसपर से, मेरा खयाल है, तुम यह समझ ही गये होगे कि मैं केवल एक ही तकुए पर काम कर रहा हूँ, बायें हाथको पूरा आराम देनेकी खातिर मैं दायें हाथसे ही तार खींचता हूँ।

१. इसके बादका अंश बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध पत्रमें से लिया गया है।

२. प्रभुदास गांधी; छगनलाल गांधीके बड़े पुत्र।

३. मगनलाल गांधी।

सूत १९ अंकका है। हाथके विषयमें चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं। जब किसी विशेष प्रकारके कार्यमें मैं इसका उपयोग करता हूँ तब कुहनीमें दर्द होता है और डाक्टरोंका यह दृढ़ विश्वास है कि बाँहका यह दर्द किसी आन्तरिक वजहसे नहीं है वरन् इसका कारण बाह्य है अर्थात् रोज बहुत ज्यादा सूत निकालनेके कारण ऐसा हुआ है। इसलिए उनका खयाल है कि मांस-पेशियोंको आराम देनेसे यह शिकायत अपने-आप दूर हो जायेगी। इसके अतिरिक्त उस भागका [अल्ट्रा] वायलेट रेजके जरिये उपचार किया जा रहा है। अतएव चिन्ताकी कोई बात नहीं है। मेरा वजन ११२ पौंड नहीं हो पाया है। यह १०६३ से ज्यादा नहीं जा सका है। जेल अधीक्षकके दबावमें आकर मैं पिछले पन्द्रह दिनोंसे दूध ले रहा हूँ। मैं अभी यह कहनेमें असमर्थ हूँ कि इससे मुझे कुछ लाभ हुआ है। इस समय मेरा वजन १०४ पौंड है। सरदार अच्छी तरह हैं। उनका वजन लगभग उतना ही है जितना उस समय था जबकि वे [यहाँ] आये थे। उनकी नाककी तकलीफ को भी कुछ आराम है। महादेवका वजन भी अच्छा है। महादेव परसों तक ४५ से ५० अंकका ८४० गज सूत रोज कातता था। वह रोज करीब पाँच घंटे तक काता करता था। लेकिन चूँकि उसे भी थकावट महसूस होने लगी थी इसलिए पिछले दो दिनोंसे वह इससे आधा सूत कातता है और धुनाईका काम भी करता है। बेशक, यह उसका अतिरिक्त काम है। मैं २०० गज सूत कातता हूँ। मैं उर्दू, खगोल-विज्ञान और मुद्रा-शास्त्र पर पुस्तकें पढ़ता हूँ तथा समय मिलने पर आश्रमका इतिहास लिखता हूँ। महादेव छुटपुट विषयों पर अध्ययन कर रहा है। बेशक इसके अलावा उसे मेरी ओरसे लिखना भी होता है। और अब चूँकि कातना कम हो गया है इसलिए कदाचित वह कुछ लिखना भी शुरू कर दे। सरदार धूलसे धन पैदा कर रहे हैं। अन्य शब्दोंमें वे बादामी और दूसरे रंगके बेकार कागजोंके लिफाफे बनाते हैं। यदि मैं तुम्हें उन कागजोंके बारेमें बताऊँ तो तुम बहुत हँसोगे। हमें जिस किसीको भी पत्र लिखना होता है तो हम इन लिफाफोंको उपयोगमें लाते हैं। चूँकि हम सरकारके और अपने पैसेमें कोई भेद नहीं करते, इसलिए जहाँ सम्भव हो वहाँ कौड़ी-कौड़ी तक बचाते हैं। लिफाफोंके बनानेसे भारतके अथवा संसारके धनमें निश्चय ही अभिवृद्धि होती है फिर चाहे वह राशि कितनी ही अल्प क्यों न हो। इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि सरकारकी सम्पत्ति हमारी सम्पत्ति है, हम इसका उपयोग करते हैं। सरदार इसके अलावा कुछ समय पढ़नेमें भी बिताते हैं और उनका विचार संस्कृतका आवश्यक ज्ञान प्राप्त करनेका है। उन्होंने सातवलेकर[1] द्वारा लिखित 'संस्कृत पाठमाला' भी मँगवाई है और इसके साथ-साथ उनका इरादा हिन्दी सीखनेका भी है। यह है हमारे कामका लेखा-जोखा। हमारे परिवारमें एक बिल्ली और उसके दो बच्चे भी हैं। हालाँकि उनका नाम कैदियोंकी सूचीमें दर्ज नहीं है फिर भी वे हमारा थोड़ा दूध भी पी जाते हैं, वगैरह वगैरह।[2]

१. १८६६-१९६८; प्रसिद्ध विद्वान और संस्कृतकी अनेक पुस्तकोंके लेखक।

२. इसके बादका अनुच्छेद **महादेवभाईनी डायरी** से लिया गया है।

रामकृष्ण और विवेकानन्द-सम्बन्धी रोलाँकी पुस्तकोंको मैंने ध्यानपूर्वक और दिलचस्पीके साथ पढ़ा। रामकृष्णके प्रति मेरे हृदयमें हमेशासे पूज्यभाव तो रहा ही है। उनके बारेमें मैंने पढ़ा तो बहुत कम है लेकिन उनके भक्तोंसे अनेक ऐसी बातें सुनी हैं जिनसे उनके प्रति मनमें आदरभाव उत्पन्न हुआ। रोलाँकी पुस्तक पढ़नेसे इसमें कुछ इजाफा हुआ हो सो नहीं कहा जा सकता। रोलाँकी दोनों पुस्तकें, वस्तुतः देखा जाये तो पश्चिमके लिए लिखी गई हैं। हमारे लिए उसमें कुछ भी नहीं मिलेगा, ऐसा तो मैं नहीं कहूँगा। लेकिन मुझे बहुत कम मिला है। मुझपर जिन वस्तुओंका प्रभाव पड़ा था रोलाँकी पुस्तकमें उनका समावेश भी है। इनके अलावा जो नई बातें कही गई हैं उनके कारण मुझ पर पड़े प्रभावमें कोई वृद्धि नहीं हुई है। जिस हद तक रामकृष्ण भक्त थे उस हद तक विवेकानन्द भी थे, ऐसा मुझे नहीं लगा। विवेकानन्दका प्रेम महान था, भावनापूर्ण था और वे भावनासे प्रेरित भी हो जाते थे। उनकी भावना उनके ज्ञानके लिए हिरण्य पात्र थी।[1] धर्म और राजनीतिमें उन्होंने जो भेद किया था वह उचित न था। लेकिन ऐसे महान व्यक्तिकी टीका करना व्यर्थ है। और यदि हम टीका करने बैठ जायें तो चाहे जिस किसीकी भी टीका की जा सकती है। हमारा कर्तव्य तो ऐसी विभूतियोंसे जो ग्रहण किया जा सके सो ग्रहण करना है। तुलसीदासका जड़ चेतन-सम्बन्धी दोहा[2] मेरे जीवनमें पूरी तरहसे घटित हो गया है, इसलिए मुझे आलोचना करना अच्छा नहीं लगता। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरे मनमें यदि टीका करने जैसी कोई चीज रह गई हो तो तुम उसे भी जानना चाहोगे, इसीसे मैंने इतना सब लिख डाला है। विवेकानन्द महान सेवक थे, इस बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। जिसे उन्होंने सत्य माना उसके लिए उन्होंने अपना देह-विसर्जन कर दिया, यह तो हमने प्रत्यक्ष रूपसे देखा है। १९०१ में जब मैं बेलूर मठ देखने गया था तब विवेकानन्दके दर्शन करनेकी मनमें बड़ी अभिलाषा थी, लेकिन मठमें रहनेवाले स्वामीने समाचार दिया कि वे तो बीमार हैं, शहरमें हैं और उनसे कोई नहीं मिल सकता, इससे मैं निराश हुआ। मुझमें जो पूज्यभाव निहित है उससे मैं अनेक विपत्तियोंसे उबर पाया हूँ। उस समय ऐसा कोई भी प्रसिद्ध व्यक्ति न था जिसे मैं भावसे दौड़कर मिलने न जाऊँ और बहुत स्थानोंपर तो कलकत्ताकी लम्बी सड़कोंपर भी पैदल ही चला जाता था। इसके पीछे भक्तिभाव हुआ करता था, पैसा बचानेकी वृत्ति न थी, हालाँकि सदासे मेरे स्वभावकी यह एक विशेषता तो रही है।[3]

१. **ईशोपनिषद्**, १५।

२. जड़ चेतन गुन दोसमय बिस्व कीन्ह करतार।

३. निम्न अनुच्छेद बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रैक्ट्समेंसे लिया गया है।

अब्दुल्ला सेठ, जबीर अली, सोमान, गोकुलभाई, विश्वनाथ और अन्य सब लोगोंको हम तीनोंका यथायोग्य। आशा है, अब तुम स्वीकार करोगे कि जितनी तुम्हें अपेक्षा थी उससे मैंने कहीं अधिक लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी खण्ड १। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रैक्ट्स; होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १३३-४१ से भी।

१२८. पत्र: किशोरलाल जी० मशरूवालाको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय किशोरलाल,

मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। जब तुम्हारे लिए किसी अन्य व्यक्तिको पत्र लिखना जरूरी हो, तो उस समयका उपयोग तुम मुझे चिट्ठी लिखनेके लिए करो, यह मैं नहीं चाहता। लेकिन आसानीसे लिख सको, तब जरूर लिखो। देवदासको मामूली मियादी बुखार हो गया था। लेकिन अब वह बिल्कुल ठीक है। मुझे उसकी चिट्ठियाँ मिलती रहती हैं। उसकी देखभाल अच्छी तरह की गई थी। उसे पढ़नेके लिए किताबें मिल जाती हैं। रामदास यहाँ है और अच्छी तरह है। छगनलाल, सुरेन्द्रजी, दरबारी और अन्य अनेक लोग उसके साथ हैं। कुरेशी भी वहीं है। रमणीकलाल, कान्ति, सुरेन्द्र, विट्ठल, फूलचन्द, दीवान मास्टर और अन्य अनेक लोग वीसापुर जेलमें हैं। जमनालाल, प्यारेलाल, विनोबा आदि धूलिया जेलमें हैं। वहाँ 'गीता'का अध्ययन बड़े उत्साहपूर्वक किया जा रहा है। नेटालमें जो संक्रामक बुखार फैला था उसका आक्रमण मणिलाल, सीता, प्रागजी, इन सभीपर हुआ था। लेकिन सभी बच गये हैं। प्रागजी जिम्मेवारी लेनेको तैयार नहीं हैं[1], अतः मणिलाल व्यस्त है और लगता है कि वह नहीं आयेगा। गंगाबहन, तारा, महालक्ष्मी, रमा, गंगाबहन झवेरी, नानीबहन, भक्तिबहन, शान्ता, लीलावती आसर आदि यहीं हैं। चूँकि डाक्टरोंके विचारसे मेरे हाथकी शिकायत मेहनतके कारण है, इसलिए मैं उसे आराम देता रहा हूँ। यह शिकायत बराबर नहीं रहती। जब एक खास प्रकारका काम किया जाता है तब यह होने लगती है। प्रयोगके तौरपर इसे बिजलीकी सेंक दी जाती है; लेकिन यहाँके डाक्टरों का विश्वास है कि हाथके उस हिस्सेका एकमात्र इलाज उसे आराम देना है। उसके बारेमें तनिक भी सोचना आवश्यक नहीं है। मैं पिछले करीब दस दिनोंसे दूध लेता रहा हूँ। मेरा वजन १०४ पौंड है। दूध लेनेका कारण यह है कि यहाँके सुपरिटेंडेंट उसके लिए आग्रह करते हैं। मेरी रायमें वह जरूरी नहीं था, लेकिन चूँकि वजन घटता जा रहा था इसलिए मैंने अपना संकल्प तोड़ दिया। मैं प्रभुदासका चरखा पैरसे चलाता हूँ और दाहिने हाथसे सूत निकालता हूँ। चरखा ठीक चल रहा है।

१. प्रेसकी जिम्मेदारी; देखिए "पत्र: मणिलाल गांधीको", १८-६-१९३२।

सरदार और महादेव ठीक-ठाक हैं। सरदारकी नाकमें जो शिकायत थी वह फिलहाल दबी हुई है। महादेवके पैरकी हड्डीमें जो तकलीफ थी वह यहाँ आनेके कुछ दिनके अन्दर ही बिल्कुल ठीक हो गई। महादेव ४०/५० अंकका सूत कातता है। उसे मेरे लिए जो-कुछ लिखना पड़ता है उसके अलावा वह कुछ रुईकी धुनाईका काम और अध्ययन भी करता है। सरदार पुस्तकाध्ययन करते हैं और रद्दी बादामी कागजके लिफाफे तैयार करके संसारकी सम्पदामें वृद्धि कर रहे हैं। चूँकि हम सरकारी सम्पत्ति तथा अन्य सम्पत्तिमें कोई भेद नहीं करते, अतः हम सरकारी सम्पत्तिको अपनी ही सम्पत्ति मानते हैं और हर चीजका सावधानीके साथ उपयोग करते हैं। गाण्डीव चरखा चलानेमें वैसी कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए जैसा तुम बताते हो। उसका चक्का तनिक भी झंझटके बिना चलना चाहिए। उसे हलका-सा धक्का देनेकी जरूरत है। लेकिन यदि तुम ऐसा मानते हो कि जो गाण्डीव चरखा तुम चलाते हो वह बहुत हलका चलता है, और इसके बावजूद तुम्हारी कलाई दर्द करती है, तो अपने मनका शक दूर करनेके लिए ही सही, तुम्हें खड़े चक्केवाला चरखा इस्तेमाल करना चाहिए। तुम्हारा वजन बढ़ रहा है यह सचमुच अच्छी खबर है। दमेके बारेमें डाक्टर का निदान सही हो सकता है और यदि प्रतिदिन दो ग्रेन कुनैन लेनेसे तकलीफ ठीक हो जाये तो इसे बहुत ही अच्छा समझना चाहिए।

मैंने प्रार्थना[1] पर तथा सत्याग्रहीको किन नियमोंका पालन करना चाहिए, इस विषय पर लिखा था;[2] लेकिन इस विषय पर नहीं। तथापि मेरे पास उसकी कोई प्रति नहीं है। लेकिन चूँकि तुमने उसका जिक्र किया है, मैं उसे मँगाऊँगा और उसकी भूलोंको सुधारकर यदि सम्भव हुआ तो तुम्हें भेजूँगा। मुझे यकीन है कि उसे पत्रकी कोटिमें नहीं रखा जायेगा। आश्रममें वस्तुतः कामका दबाव बहुत है। शंकर-भाई[3] अवकाश पाने पर आश्रमकी चिट्ठी लिखते हैं। उसमें अनेक जरूरी चीजें छूट जाती हैं। मेरे मनमें तुम्हारी पुस्तकको ध्यानपूर्वक पढ़नेकी बात बनी हुई है, लेकिन ऐसा मानकर कि मेरे पास काफी समय है, मैं इस समय जो-कुछ पढ़ रहा हूँ, उसे छोड़कर तुम्हारी किताब शुरू नहीं करता। 'गीता'का एक बार फिर पारायण करके तुमने अच्छा किया। अगर तुम उसे यहाँ भेज दो तो वह मुझे मिल जायेगी।[4] मैं तुमसे कोई विशेष चीज पढ़नेको नहीं कहना चाहता।[5] मैं ऐसा नहीं मानता कि तुमने कम पढ़ा है। मेरी अपनी पढ़ाई जिस ढंगकी है, वह काफी-कुछ विचित्र-सी मानी जा सकती है। मैं फिलहाल उर्दू पढ़ता रहा हूँ। मुद्राके विषयमें मेरा अज्ञान चूँकि अक्षम्य है, अतः इस विषयका भी कुछ अध्ययन मैंने किया है। इन दोनोंके पीछे सेवा-भावना है, और हालाँकि ऐसा माना जा सकता है कि मेरे पैर कब्रमें लटके

१. देखिए "प्रार्थना", १९-६-१९३२।

२. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ ३७२-४।

३. शंकरभाई भीखाभाई पटेल।

४. इसके आगेका अंश **महादेवभाईनी डायरी** में प्रकाशित गुजराती अंशसे मिला लिया गया है।

५. किशोरलालने गांधीजीसे सलाह माँगी थी कि जो-कुछ वह पढ़ चुके हैं उसके आगे क्या पढ़ें।

हुए हैं, इसी सेवा-भावना-वश मेरी कामना तमिलका अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेकी है जो अभी अधूरी ही छूट गई है। इसी दृष्टिसे मैंने बंगला और मराठी पढ़ना शुरू किया था, और अगर यहाँ वक्त अच्छा गुजरा तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि मैं उनका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन शुरू कर दूँ। यदि तुम्हारा दिमाग इस दिशामें कुछ चल रहा हो और यदि तुम कोई नई भाषा जानना चाहते हो तो फिर इसमें चूकना मत। जब आश्रमकी स्थापना हुई थी तब भाषाओंके बारेमें हमारी ऐसी इच्छा थी। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, यह इच्छा तनिक भी मन्द नहीं हुई है। लेकिन मैं तुम्हें इस प्रलोभनमें नहीं डालना चाहता। जिस एक चीजकी आवश्यकता मुझे हम सबोंके लिए दिखाई पड़ती है वह यह है कि हमने जो-कुछ पढ़ा है उसपर मनन करें, उसको पचायें और उसे जीवनका एक अंग बना लें। इसी दृष्टिसे मैंने भगवानजीको यह सलाह तक दे डाली है[1] कि वह 'गीता' और रायचन्दभाईकी कृतियोंको पढ़ना छोड़ दे और अपने कार्यमें ही लगा रहे और केवल उसीके बारेमें सोचे। कारण, मैंने देखा कि उसने 'अनासक्तियोग' और रायचन्दभाईकी रचनाओंमें से बहुत कुछ रट डाला है लेकिन इस सबका सही उपयोग नहीं कर पाता। उसका हृदय मेरी रायमें स्वच्छ है, लेकिन उसकी बुद्धि उसके आड़े आती है। वह तरह-तरहके विचारोंमें उलझता है और अन्ततः जहाँ था वहीं रह जाता है। मेरे लेखोंका उसपर गहरा असर पड़ा दीखता है और अब वह सन्तुष्ट है। इस सलाहका जो भी नतीजा हो, लेकिन अनेक अनुभवोंसे मेरे सामने यह स्पष्ट हो गया है कि इसके पीछे जो विचार है वह बिल्कुल सही है। अतः तुम्हारे जैसे व्यक्तियोंको धार्मिक पुस्तकें पढ़नेकी सलाह देनेकी बात मैं नहीं सोच सकता।[2] तुमने अपने जिन दोषोंको पहचाना है, उसमें मैं तुम्हारे साथ कुछ हद तक सहमत हूँ। तथापि मैंने कई बार देखा है कि तुम्हारी आदत बहस में पड़नेकी है। अपने इस पत्रमें भी तुमने अपने इस दोषको बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया है। मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखता। लेकिन मैं यह अवश्य मानता हूँ कि बहसमें काफी कुछ कमी की जा सकती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई तुमसे कुछ पूछे तो उसका जवाब मत दो। यदि तुम्हारे सदृश व्यक्तिसे कोई नहीं पूछेगा, तो फिर पूछेगा किससे? किसी जिज्ञासुको अपने पास जो ज्ञान है उसमेंसे कुछ देना एक बात है, और बहस-मुबाहिसेमें पड़ना दूसरी बात है। मैं जो-कुछ कह रहा हूँ इसका अन्यथा अर्थ निकाल कर परेशान मत होना। सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण करनेके बाद अपने-आपको वृथा ही ताड़ना भी मत दो। मेरे समर्थनका उद्देश्य, तुमने जो दोष देखे हैं उन्हें बड़ा करके बताना नहीं बल्कि यह है कि उनका अनुपात स्पष्ट करूँ। विचित्र प्रकृतिके लोगोंके साथ आसानीसे रहनेके लिए वस्तुतः मौन अत्यन्त आवश्यक है। यह बात हमें समझ लेनी चाहिए कि यदि हम समाजमें रहते हुए भी शान्तचित्त नहीं रह सकते तो हमने धर्मको जाना ही नहीं।

१. देखिए "पत्र: भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको", १८-६-१९३२ और १-७-१९३२।

२. इसके बादका अंश बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध पत्रके अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

[टॉमस ए० केम्पिस लिखित] 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' एक वास्तविक मनुष्यके अनुभवोंका खजाना है। इसलिए उसका प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। मैं तुम्हें बताता हूँ कि मेरे मनमें तारोंका अध्ययन करनेकी इच्छा कैसे पैदा हुई। जब मैंने अकस्मात देखा कि तारोंका अध्ययन मेरे लिए ईश्वरको देखनेका एक साधन बन गया है तो मैं फौरन वैसा करने लगा। काका मेरे साथ थे। उन्होंने मुझे वैसा करनेके लिए काफी प्रोत्साहित किया। लेकिन मेरी बुद्धि मुझे उसकी ओरसे विरत करती थी। मैं सोचता था कि 'जब मुझे फुर्सत होगी तब वैसा करूँगा।' १९२२ में जब मैं यहाँ था तब मैंने इस विषय पर पुस्तकें इकट्ठा की थीं। उस समय भी मैं किसी-न-किसी कारणसे आकाश-अध्ययनको टालता रहा। शंकरलालने धीरे-धीरे इस विषयका स्वयं अध्ययन कर डाला। मुझसे कई बार कैसीओपिया नामक तारा देखनेका आग्रह किया गया, लेकिन थोड़ा बहुत देखनेके बाद मैं फिर अपने काममें लग गया।[1] लेकिन इसी समय मेरे मनमें सहसा यह विचार आया कि आकाश-दर्शन एक मूल्यवान धार्मिक सम्पर्क स्थापित करनेके समान है। तारागण मौनकी भाषामें हमारे साथ बातें करते थे। मैं इन विचारोंको लेकर बहुत विस्तारसे नहीं लिखूँगा। संक्षेपमें, मैं कहना चाहता हूँ कि जब सभी चीजोंमें मुझे धर्मका पाठ मिलने लगे तभी मैं अपने आपको धर्ममें उतरा मानूँगा, और अब हाल यह है कि मैं उससे बाहर ही नहीं निकल सकता।

चूँकि बहुत समय हो चुका है इसलिए मैं पत्रको और लम्बा नहीं कर रहा हूँ। यदि यह पत्र तुम्हारे पास सही-सलामत पहुँच गया तो मैं तुम्हें आगे और लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १२३-३१ तथा **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड – १।

१२९. पत्र : मंगला एस० पटेलको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय मंगला,

नोट-बुकसे फाड़े गये कागज पर पत्र नहीं लिखना चाहिए।[2]

शून्यवत् होकर रहनेका अर्थ है अच्छी वस्तुको पानेके लिए सबसे अन्तमें रहना, सबकी सेवा करना, उपकारके प्रतिफलकी आशा नहीं रखना, कष्ट सहन करनेमें पहल करनी। जो व्यक्ति इस तरह शून्यवत् रहता है वह निश्चय ही अपने कर्तव्यमें लीन रहता है।

१. अगले दो वाक्य **महादेवभाईनी डायरी** में उपलब्ध गुजराती विवरणसे मिला लिये गये हैं।

२. निम्न अनुच्छेद **महादेवभाईनी डायरी** लिया गया है।

हमारे परस्परके व्यवहारमें प्रेमभाव होना चाहिए। यह एक अच्छी बात है कि तुमने अपने सिर पर जिम्मेदारी ली है। उसे पूरी तरहसे निभाना। कमुके साथ कौन रहता है? क्या वह कभी पत्र लिखती है? (मुझे) उसका पता भेजना।

बापू

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड १। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच फाइल नं० (८००) पृष्ठ ५० से भी।

१३०. पत्र : शारदा सी० शाहको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय शारदा,

मंगलाको लिखे पत्रमें शून्यवत्का अर्थ देख जाना।[1] यहाँ बारिश नहीं हुई है। मेरा खयाल है मैं किसीसे पक्षपात नहीं करता। बाबा मूलदासने यदि सचमुच ही वैसा कहा हो जैसा कि उनके बारेमें कहा जाता है, तो निश्चय ही उन्होंने गलत काम किया।[2] उसने विधवाका भी अहित हुआ। किसीके दुखको मिटानेके लिए भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। इस तरह दुख मिट ही नहीं सकता।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९५२) से; सौजन्य: शारदाबहन जी० चोखावाला

१३१. पत्र : जेकोरको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय जेकोर,

जो रिहा कर दिये जाते हैं वे वापस लौट जाते हैं। यह एक व्यर्थ प्रश्न है। जब कोई विशेष बात पूछनेको न हो तो कुछ नहीं पूछना चाहिए। लेकिन अपने कामका विवरण हर हफ्ते लिखो। (तुम्हारी) लिखावट अच्छी है, लेकिन उसमें सुधारकी अभी भी बहुत गुंजाइश है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ५३।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. शारदाने पूछा था: "मूल्दासने विधवाको अपनी विवाहिता स्त्री कहकर बचाया, क्या यह उचित था? विधवाको बचानेके लिए भी क्या झूठ बोला जा सकता है?"

१३२. पत्र : पुष्पा एस० पटेलको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय पुष्पा,

तुम्हारा पत्र मिला। सुलतानका अर्थ है राजा। वह बहुत-कुछ कर सकता है। लेकिन वह सारी उम्र ईश्वरकी आराधना न करे और बुढ़ापेमें करने लगे, तो ऐसा नहीं हो सकता। कोई वजह नहीं है कि तुम हिन्दीमें पत्र क्यों [न] लिखो। यह उचित होगा कि तुम लिखो। लेकिन मेरी हिन्दी शायद शुद्ध न हो, और इसलिए यदि मैं हिन्दीमें लिखूं तो वह गलत सबक होगा।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५३।

१३३. पत्र : आनन्दीको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय आनन्दी,

तुम अपनी लिखावट खराब करते रहे हो। यह ठीक नहीं है। क्या तुम बाईको पत्र लिखते हो? तुम अपना सारा दिन किस प्रकार व्यतीत करते हो?

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५३।

१३४. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय इन्दु,

तुम्हारे वजनके बारेमें कहना पड़ेगा कि वह काफी कम हो गया है। फिलहाल तुम प्रार्थनामें जाना छोड़ दो। प्रातःकाल जितनी देर सो सको, सोओ। दूधकी मात्रा बढ़ा दो और जिस किसी एक चीजकी मात्रा चाहो, उसी अनुपातसे कम कर दो, और तब देखो कि वजन बढ़ता है या नहीं। इतना ही काफी है कि तुम जो-कुछ कर सकती हो उसे मनोयोगसे और रुचिपूर्वक करो। फिलहाल (काम) कम बन पड़े तो उसकी चिन्ता मत करो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५५।

१३५. पत्र : माधवलालको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय माधवलाल,

मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा चल रहा है, यह अच्छी खबर है। कताई सम्बन्धी व्रत भंग करनेके लिए उपवास मत करो। इसका पूरा ध्यान रखो कि पुनः व्रत-भंग न हो और इसीलिए चरखेके साथ तकली का भी प्रयोग चलता रहे। आश्रममें तकली चलानेका जो नया तरीका अपनाया गया है उससे कुछ लोग प्रति घंटे ३०० गज सूत कात रहे हैं। प्रार्थनामें कोई व्याघात नहीं होना चाहिए। (प्रार्थना देरसे की जाये) इसकी चिन्ता नहीं। देरसे न की जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। पर देर भी हो जाये तो ऐसा नहीं होना चाहिए कि प्रार्थना की ही न जाये। खाना छोड़ा जा सकता है लेकिन प्रार्थना नहीं। इन परिस्थितियोंमें दैनन्दिनीका (न होना) मैं क्षम्य मानता हूँ। अहिंसा कड़े अध्यवसाय द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५५।

१३६. पत्र : पूँजाभाई एच० शाहको

१ जुलाई, १९३२

प्रिय पूँजाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। शरीरका मोह छोड़ते जाओ ताकि जब उसके छूटनेका अवसर आये तो तुम्हारे मनमें पूर्ण शान्ति रहे।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५९।

१३७. पत्र : श्रीपाद दा० सातवलेकरको

१ जुलाई, १९३२

भाईश्री सातवलेकरजी,

आप शायद जानते होंगे कि मेरे साथ यहाँ सरदार वल्लभभाई और महादेव हैं। सरदारकी इच्छा संस्कृतका परिचय कर लेनेकी है। महादेव उनकी मदद करेंगे। कृपया आप अपनी संस्कृत पाठावलि (१-२४) भेज दीजिए। आप कुशल होंगे। हम तीनों कुशल हैं।

आपका,
मोहनदास

श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल
औंध
जिला सतारा

मूलकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७६२)से; सौजन्य : श्री० दा० सातवलेकर

१३८. पत्र : दूधीबहन वी० देसाईको

२ जुलाई, १९३२

चि० दूधीबहन,

तुमसे मैं यह अपेक्षा रखता हूँ कि तुम्हारी पसन्द यह हो कि तुम्हारे हाथ बना अच्छेसे-अच्छे सूतका कपड़ा अन्य लोग पहनें और तुम स्वयं खराबसे-खराब खादीका कपड़ा पहनकर निर्वाह करो। लेकिन तुममें यदि इतना साहस न हो तो तुमसे जितना बन सके उतना करना। मेरे दबावमें आकर अथवा मेरा लिहाज करके कुछ नहीं करना चाहिए। मुझे तो जो कर्तव्य दिखाई दिया सो मैंने बताया, लेकिन उसका पालन तो सामर्थ्यानुसार ही हो सकता है और फिर यदि मैं जो चाहूँ वह न हो पाता हो तो उससे दुःखी भी न होना। तुम दुःखी होगी तो मुझे धर्मका निरूपण करनेमें संकोच होगा। वालजीका समाचार मुझे मिलता रहता है। ईश्वर उनकी रक्षा करता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३२) से; सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई

१३९. पत्र : मणिबहन पटेलको

२ जुलाई, १९३२

चि० मणि,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा सन्देश मिला होगा। तुमने पूनी भेजनेका विचार करके पूनी भेजनेका पुण्य प्राप्त कर लिया। नहीं भेजी सो ठीक ही किया। अब यहाँ कोई खराब पूनी नहीं रह गई है। अभी हमारे पास जो पूनियाँ पड़ी हैं वह काफी हैं। सबकी सब महादेवने ही बनाई हैं। लगभग दो माससे इकट्ठी हो रही हैं। महादेव ज्यादातर छक्कड़दासकी भेजी हुई पूनीका इस्तेमाल करता है, क्योंकि उसकी रुई उत्तम है और वह बहुत यत्नसे बनाई गई है। मैं मगन-चरखे पर महादेवके समान महीन सूत कभी नहीं कात सकता। मेरा सदैवसे यह विचार रहा है कि यज्ञके सूतका उपयोग अपने लिए नहीं करना चाहिए और यह ठीक भी है। यदि यज्ञके निमित्त कातनेवाला व्यक्ति कातनेमें लापरवाही करता है तो समझो कि उसकी परीक्षा हो गई और वह असफल रहा। यज्ञका सूत सबसे ज्यादा सावधानीके साथ काता जाना

१. वल्लभभाई पटेलकी पुत्री।

चाहिए। यदि व्यक्ति जितना काते उतना देकर अपने लिए अच्छा-बुरा जो मिले उसका उपयोग करे तो यह बहुत अच्छी चीज है। लेकिन यदि वैसा करनेका मनमें साहस न हो तो अन्तमें यज्ञके लिए एक घंटा अथवा आधा घंटा रखकर सूतके १६० तारको अवश्यमेव कृष्णार्पण कर देना चाहिए।

तुम सामूहिक प्रार्थनाको पसन्द करती हो यह बात बिल्कुल समझमें आती है, क्योंकि तुम्हारी प्रार्थना इसी रूपमें शुरू हुई थी। लेकिन तुम्हें अकेले प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, फिर भले ही वह एक मिनटके लिए हो। अन्तमें हृदयमें निरन्तर ईश्वरकी रटना होनी चाहिए और यह तबतक सम्भव नहीं हो सकता जबतक अकेले प्रार्थना करनेकी आदत न हो। अकेले प्रार्थना तो सोते, स्नान करते और खाते, चाहे कोई भी क्रिया करते समय की जाती है। इसलिए उसका कोई बोझ नहीं होता। इसके विपरीत उससे मन हल्का हो जाता है — होना चाहिए। ऐसा अनुभव न हो तो प्रार्थना कृत्रिम समझनी चाहिए।

डाह्याभाई[1] की समस्या जरा कठिन है। लेकिन वह बहुत समझदार है, इसलिए अपने-आप स्थिर हो जायेगा। इसमें उसका कोई मार्गदर्शन नहीं कर सकता। यदि उसकी फिरसे विवाह करनेकी इच्छा हुई तो उसे कोई रोक नहीं सकता। और यदि वह विवाह न चाहे तो कोई उसे इसके लिए प्रलोभन नहीं दे सकता। जात-बिरादरीके लोग तो इसके लिए उसे परेशान करते ही रहेंगे। लेकिन डाह्याभाई उनसे निपट लेगा और तुम तो निश्चय ही निपट लोगी। मेरा लोगोंसे मिलना बन्द हो गया है। यह बात उस समय बहुत खटकती है जब इस तरहके प्रसंग उठ खड़े होते हैं। लेकिन यह सब सहन करनेमें ही हमारा धर्म है। बायें हाथकी कुहनी विशेष ढंगसे हिलाने पर दर्द होता है। अभी लगभग एक माससे मेरे कपड़े नौकर धोता है। मेरे बर्तन जेलके ही हैं। वे चमकते तो नहीं हैं लेकिन साफ अवश्य रहते हैं। तुम अपनी सेहतका ध्यान रखना। बराबर लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मणिबहन पटेल
मार्फत डा० बलवन्तराय कानूगा
एलिस ब्रिज, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१. मणिबहन पटेलके भाई।

१४०. पत्र : एक मित्रको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय . . .[१],

तुम्हारा पत्र और दैनन्दिनी प्राप्त हुए। यह दैनन्दिनी वापस करनी है या मैं इसे फाड़ कर फेंक दूँ? तुम्हारी बीमारी पुरानी है। लेकिन दिल मत छोटा करो। पवित्र होनेके लिए प्रतिदिन ईश्वरसे प्रार्थना करो और इससे तुम्हारी विषय-लिप्सा शान्त हो जायेगी।

. . .[२] ने (तुमको) आम भेजे, इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। यदि तुम उन्हें नहीं चाहते थे तो तुम्हें चाहिए था कि किसी औरको, किसी मजदूरको दे डालते। तब . . .[३] दुबारा नहीं भेजती। स्त्री अपने पतिकी कमजोरीको निश्चय ही जानती है और मिथ्या स्नेहके वश उस (कमजोरी)को पोषण देती है। यदि पति (अपने प्रति) सच्चा रहे तो वह उस कमजोरीको छोड़ देता है और तब स्त्री उसको प्रलोभन नहीं दे पायेगी।

और फिर, . . .[४] का क्या कसूर है? . . .[५] जो कहती है उसपर मुझे विश्वास है। उसके मनमें शरीर-भोगकी कोई इच्छा नहीं है। उसके मनमें किसी पुरुषके प्रति विषयासक्ति नहीं उत्पन्न होती। अतः उसपर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। लेकिन मान लें कि वह झूठ बोलती है; तो भी उसपर सन्देह करनेका हेतु क्या है? एक पत्नी अपने पति पर सन्देह नहीं कर सकती। पति विषय-भोगका आनन्द लेता है तो पत्नी उसे सहन करती है। फिर पुरुष पत्नी पर क्यों नजर रखे और क्रोध करे? स्त्री जैसा चाहे वैसा करे। यदि स्त्री साध्वी नहीं रहना चाहती तो पति उसे बलपूर्वक साध्वी बना कर नहीं रख सकता। जो शुद्ध रहना चाहते हैं, वे ही शुद्ध रह सकते हैं। इसलिए यह उचित लगता है कि तुम . . .[६] का दोष निकालनेका विचार अपने मनसे भी निकाल बाहर करो। एक-दूसरेका दोष ढूँढ़नेसे तुम दोनोंका ही अहित होता है। इसके अलावा, किसी व्यक्तिपर सन्देहवश दोषारोपण करना पापपूर्ण और अनुचित भी है। यह तो सर्वथा दुर्बलताका लक्षण है। इस कमजोरीको मनसे निकाल फेंको। तुमने ऐसी चीजोंको दैनन्दिनीमें लिखकर अच्छा किया है।

ईश्वर तुम्हें शान्ति और पवित्रता प्रदान करे। विट्ठलदास मजेमें होगा।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४९।

१, २, ३, ४, ५, और ६. नाम नहीं दिये गये हैं।

१४१. पत्र : सिद्धिमतीको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय सिद्धिमती,

तुम्हारा पत्र मिला। हिन्दी भलीभाँति सीख लो। पहले तुम्हारा वजन कितना था? क्या तुम हिन्दी अच्छी तरह समझ लेती हो?

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ट ६१।

१४२. पत्र : धीरूको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय धीरू,

मैं ड्राइंगके बारेमें गजानन[1] को लिख रहा हूँ। इसमें दूसरोंकी कुछ मददकी जरूरत है। अभ्यास और ज्यादा होना चाहिए।

मैं उर्दूकी कापी धीरे-धीरे लिख रहा हूँ। तुम्हें कापी चाहिए या तुम यह देखना चाहते हो कि मैं कापी पर किस प्रकार लिख रहा हूँ? यदि तुम यह देखना चाहते हो, तो मैं जिन पृष्ठों पर लिख चुका हूँ उन्हें फाड़कर तुम्हें भेज दूँ। और यदि तुम एक कापी ही चाहते हो तो वह तो वहाँ भी मिल सकती है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ६१।

१. ना० मो० खरेका रिश्तेदार; देखिए अगला शीर्षक।

१४३. पत्र : गजानन वी० खरेको

२ जुलाई, १९३२

चि० गजानन,

अब तो गुजराती पढ़ना आ गया होगा? धीरूकी ड्राइंग सीखनेकी तीव्र इच्छा है। अन्य लोग भी तैयार हो सकते हैं। यदि हो सकें तो ऐसे लोगोंके लिए थोड़ा समय निकाल लेना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३०७) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन एन० खरे

१४४. पत्र : शान्तिको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय शान्ति,

इस बार तुम्हारी लिखावट अच्छी है। इसी प्रकार लिखो। यह अच्छी बात है कि मौन (प्रार्थना) के समय तुम्हें नींद नहीं आती।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ६३।

१४५. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय लक्ष्मी,[1]

कोई काम करते वक्त मेरा हाथ दर्द करता है। यह लकवा नहीं है। चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आराम ही सबसे बड़ा उपचार है।

विट्ठलदासने मुझे एक्जिमाके बारेमें लिखा था। यह मानना पड़ेगा कि रेडियम प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।

१. विट्ठलदास जेराजाणीकी भतीजी।

अपने दैनिक कामकी सूचना मुझे अवश्य भेजो।

वापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ६३।

१४६. पत्र : लीलाधरको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय लीलाधर,

लड़कियाँ शौचघरके बारेमें जानती हैं। मैंने तो यों ही मजाक किया था। नारणदासने शान्तिके बारेमें लिखा था। फिलहाल उसे अपने साथ रहने दो। उसकी मूर्खताओंको प्रेमसे दूर करो; गुस्सा मत होओ।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ६३।

१४७. पत्र : त्रिवेणी जे० मेहताको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय त्रिवेणी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अच्छा विवरण दिया है। अस्पतालोंमें बहुत दुर्व्यवस्था है और इसीलिए यह आवश्यक है कि वहाँ साध्वी स्त्रियाँ काम करने लगें। हाँ, अनुभव प्राप्त करनेकी दृष्टिसे तो यह ठीक ही है। यदि मन काममें लग जाये तो यह काम निश्चय ही ऐसा है कि इसमें पूरा जीवन लगाया जा सकता है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ६३।

१४८. पत्र : विद्याको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय विद्या,[१]

मुझे बहुत सन्तोष है कि तुम क्वेटा पहुँच गई। वहाँकी आबहवाका पूरा-पूरा फायदा उठाना और जितनी दूर पैदल चल सको, चलना। वहाँकी दृश्यावलि और मौसमका विवरण लिखना। वहाँ रहनेवाले लोग कौन हैं?

तुमने जो लिखा है वह वस्तुतः सही है। यदि मंशा अच्छा हो तो मनको सुख मिलता है। ईश्वर करे तुम्हारा सुख निरन्तर बढ़े और चिरस्थायी हो।

यदि तुम्हें आनन्दकी कोई सूचना है तो कृपया लिखना। तुम वहाँ अपना समय कैसे व्यतीत करती हो?

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०), (३) भाग २, पृष्ठ ७३।

१४९. पत्र : मंजुलाबहन एम० मेहताको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय मंजुला,[२]

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे पता चला है कि तुम फिलहाल आश्रम नहीं जा रही हो। जब जाना मुमकिन हो, तब जाना। अपना दैनिक कार्यक्रम लिखो। देवदास अब स्वास्थ्यलाभ कर रहा है। तुम्हें अब मगनलालके पत्र मिल रहे होंगे।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मंजुलाबहन
सेठ नौतमलाल भगवान मेहताका मकान
जैतपुर, काठियावाड़

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १०७।

१. सम्भवतः विद्या हिंगोरानी, आनन्द हिंगोरानीकी पत्नी।

१५०. पत्र : राधा गांधीको

२ जुलाई, १९३२

प्रिय राधिका,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। चूंकि प्रेमकुँवर बहुत कठिनाईमें है, इसलिए उसका वहाँ जाना सम्भव नहीं है। क्या केवल तुम माँ-बेटी ही वहाँ हो? सौदा-सुलफ आदि कौन करता है? ऐसा नहीं लगता कि परिवारका कोई पुरुष वहाँ हो। उस स्थानकी सुविधाओंको देखते हुए उनकी कोई जरूरत भी शायद न हो। तुम कितना खर्च करती हो? क्या तुमने कोई हिसाब रखा है? क्या वहाँ नलका पानी है? क्या रूपी[2] का फिर कोई हाल मिला? ऐसा लगता है कि तुमने अच्छी प्रगति की है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती राधाबहन गांधी
भाटिया सेनिटोरियम
देवलाली

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग, २, पृष्ठ १११।

१५१. पत्र : छगनलाल जोशीको

[३ जुलाई, १९३२ से पूर्व][3]

जो भोजन पच जाता है वह सबका-सब रुधिर आदिमें परिवर्तित नहीं हो पाता और जब वह शरीरमें अच्छी तरह आत्मसात् हो जाता है तो वह शरीरको बनाने वाले अनेक तत्वोंमें परिवर्तित हो जाता है। इसी तरह हम जो पढ़ें उसे अच्छी तरह आत्मसात् कर लें, ठीक उसी तरह जैसे खाद वृक्षमें रम जाती है और परिणाममें फल पैदा होते हैं।

[गुजरातीसे[

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. मगनलाल गांधीकी पुत्री।

२. अभिप्राय शायद रूखीसे है जो राधाकी बहन थी।

३. साधन-सूत्रमें पत्रपर ३-७-१९३२ तारीख दी गई है।

१५२. पत्र : मगनभाई पटेलको

२/३ जुलाई, १९३२

भाई मगनभाई,

रावजीभाई द्वारा अपनी जमीनके बारेमें भेजा पत्र मिला। उसमें उन्होंने लिखा है कि तुम जमीन बेचना जरूरी समझते हो, और तुम ऐसा भी मानते हो कि रावजीभाईकी उपस्थितिमें जितने दाम मिल सकते हैं उतने उनकी अनुपस्थितिमें नहीं मिल सकते। इस मसले पर स्वयं कोई निर्णय करनेके बजाय रावजीभाईने फैसला मुझपर और सरदार (वल्लभभाई पटेल) पर छोड़ दिया है। आपसमें सलाह करके हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इस मामलेमें तुम्हीं ज्यादा जानते हो। रावजीभाई या हम लोगोंके सामने पर्याप्त जानकारी न होनेके कारण हम कोई निर्णय नहीं कर सकते। कोशिश करके अगर तुम सभी जरूरी जानकारी हमें भेज भी दो, तब भी वह अपर्याप्त ही मानी जायेगी। ऐसे मामलोंमें जबतक आदमी खुद मौके पर न हो तबतक कोई निर्णय नहीं किया जा सकता और न किया ही जाना चाहिए। इसलिए हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि परिस्थितियोंका खयाल करते हुए जो ठीक हो, वैसा तुम्हें करना चाहिए। अगर तुम्हें लगे कि जमीन बेचनी चाहिए तो तुम बिना किसी हिचकके उसे बेच दो। और यदि तुम्हें लगे कि उसे रखा जा सकता है — और रखना जरूरी है — तो रावजीभाईके रिहा होने तक इन्तजार करो। जिस चीजमें ज्यादा फायदा हो, वह निर्भय होकर करो। हम दोनों ही जानते हैं कि रावजीभाईकी तीव्र इच्छा है कि धारालाओंके लिए एक आश्रम बनाने भरकी जमीन अलग रख दी जाये। लेकिन यदि ऐसा करनेसे जमीनके कम दाम मिलते हों या कोई कर्ज फिर भी बच रहता हो तो उस पर आग्रह करनेकी कोई जरूरत नहीं है। यदि आश्रम बनानेकी कोई आवश्यकता हुई तो उसे रावजीभाईके छूटनेके बाद पूरा किया जायेगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४७।

१५३. सत्यका पालन कैसे करें[1]

रविवार, ३ जुलाई, १९३२[2]

जो बात अहिंसा पर लागू होती है[3] वही सत्य पर भी होती है। गायको बचानेके लिए असत्य बोलना चाहिए अथवा नहीं, ऐसी समस्यामें उलझकर हमारी दृष्टिके आगे रोज-बरोज जो बातें होती हैं यदि हम उन्हें भूल जायें तो सत्यकी साधना नहीं हो सकती। इस तरहकी गहन समस्याओंमें उलझना तो सत्य पर आवरण डालना है। आज हमारे सामने जो प्रतिदिनकी समस्याएँ आ खड़ी होती हैं उनके मामलेमें यदि हम सत्यका पालन करते हैं तो कठिन समयमें हमें क्या करना चाहिए, यह बात हमें स्वयं ही स्पष्ट हो जायेगी।

इस बातको ध्यानमें रखते हुए हममें से प्रत्येक व्यक्तिको अपनी तरफ ही देखना चाहिए। अपनी समझसे मैं क्या किसीको छलता हूँ? मैं यदि 'ब'को खराब मानता हूँ और वैसा न कहकर यदि यह कहता हूँ कि वह अच्छा है तो मैं उसे छल करता हूँ। क्या मैं अच्छा अथवा बड़ा कहलानेकी इच्छासे प्रेरित होकर अपनेमें उन गुणोंको बतानेकी चेष्टा करता हूँ जो मुझमें नहीं हैं? क्या मैं बातचीतमें अतिशयोक्तिसे काम लेता हूँ? अपने दोषोंको जिसे बताना चाहिए क्या मैं उससे उन्हें छिपाता हूँ? मुझसे मेरा साथी अथवा मुझसे वरिष्ठ व्यक्ति यदि कुछ पूछे तो उसके उत्तरमें मैं क्या उसे झाँसा देनेका प्रयत्न करता हूँ? कहने लायक किसी बातको क्या मैं छिपाता हूँ? इनमें से यदि मैं कुछ भी करता हूँ तो मैं असत्यका आचरण करता हूँ। इस तरह प्रत्येक व्यक्तिको नित्य अपने कार्योंका लेखा-जोखा करके अपने-आपको सुधारना चाहिए। जो व्यक्ति इस स्थितिको पहुँच गया है कि उसे सत्यकी ही आदत पड़ गई है, और जो अपने मुखसे असत्य वचन बोल ही नहीं सकता, ऐसा व्यक्ति भले ही नित्य अपनेसे हिसाब न माँगे, लेकिन जिसमें लेशमात्र भी असत्य हो अथवा जो प्रयत्न करके ही सत्याचरण कर सकता है उसे तो उपर्युक्त ढंगसे ऐसे अथवा इसी तरहके अन्य प्रश्नोंका उत्तर अपने-आपको अवश्य देना चाहिए। जो व्यक्ति एक माह तक ऐसा करेगा उसे अपने अन्दर हुए परिवर्तनका स्पष्ट दर्शन होगा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", २८ जून/४ जुलाई, १९३२ के साथ ही भेजा गया था।

२. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे।

३. देखिए "अहिंसाका पालन कैसे किया जाये", २५-६-१९३२।

१५४. पत्र : फूलचन्द बापूजी शाहको

३ जुलाई, १९३२

भाईश्री फूलचन्द,

आपका ३१-८-१९३२ का पत्र आज ही मिला; और रावजीभाईका १०-६-१९३२ का पत्र भी आज ही आया। इसमें हम सबको प्रसन्नता हुई। इस बारके आपके पत्रकी १५ पंक्तियाँ पूरी तरहसे काट दी गई हैं। यदि सम्भव हो तो जिस व्यक्तिके हाथमें [सेन्सरके लिए] वह सारे पत्र आते हैं उससे अथवा जेल-अधीक्षकसे आप जाकर कहें कि उन्हें जो अंश निकाल देने लायक लगें वह आपको बतायें और आप दुबारा फिरसे पत्र लिखें। यदि ऐसा हो तो पत्रमें जो तारतम्य टूट जाता है वह न टूटे। वहाँ जितने लोग हैं उन सबसे कहना कि वे मेरी ओरसे स्वतन्त्र रूपसे पत्रकी आशा या इच्छा न रखें। हालाँकि मुझ पर पत्र-संख्याका प्रतिबंध नहीं है फिर भी मुझे स्वयं ही मर्यादाका ध्यान रखना चाहिए, इसलिए जहाँ तक बन सके मैं कम ही पत्र लिखता हूँ। लेकिन जब जेलमें से कोई साथी मुझे पत्र लिखता है तो मैं उसको उत्तर अवश्य देता हूँ अथवा यदि किसी जेलमें बहुत सारे साथी हो गये हों तो उनमें से किसी एकको लिख देता हूँ जो सबके लिए होता है। लेकिन यदि कोई मुझे विशेष रूपमें लिखना चाहे, जैसाकि रावजीभाईने किया है, तो जरूर लिखे।

आत्मनिरीक्षण अथवा अध्ययन करनेका जो अपूर्व अवसर हमें आज मिला है वह कोई हमेशा नहीं मिलता। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको चाहिए कि वह अपने समय को इस तरह व्यतीत करे और उसका व्यवहार ऐसा हो कि वह पल-पलका हिसाब दे सकनेकी स्थितिमें हो; यह स्पृहणीय है।[1] पानीकी एक बूंद भी व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। हमें देशकी हर चीजको, चाहे वह किसीके भी पास क्यों न हो, अपना समझना चाहिए। और अपना समझकर ही हमें उसकी देखभाल तथा उसका उपयोग करना चाहिए। इसमें बहुत-सी बातें आ जाती हैं। यह बात तो दियेके प्रकाशके समान स्पष्ट है। वहाँ जितने बच्चे हैं उन्हें यदि पत्र लिखनेकी अनुमति मिल जाये और यदि वे किसी अन्य व्यक्तिको पत्र न लिखना चाहें तो उनसे कहिएगा कि वे मुझे पत्र लिखें। यह आश्चर्यकी बात है कि यहाँ अभीतक बरसात शुरू नहीं हुई है। बहुत करके इस समय तक तो काफी बारिश हो चुकनी चाहिए। किसान चिन्तित है। साथका पत्र रावजीभाईको देना, क्योंकि नीचेका अंश उनसे सम्बन्धित है।

मैंने सरदारके साथ बातचीत कर ली है और हम दोनों इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मैं अथवा वह यहाँसे कोई सलाह नहीं दे सकते। स्वयं उपस्थित हुए बिना अनेक तथ्योंकी सही जानकारी मिल ही नहीं सकती। इसीसे हमने मगनभाईको लिख

१. इसके बादकी दो पंक्तियाँ बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें से ली गई हैं।

भेजा है[1] कि आसपासके समस्त हालातको देखते हुए उन्हें जो उचित जान पड़े सो वे करें। इस आशयका एक विस्तृत पत्र आज ही उन्हें लिखा है। आपका पत्र आज ही मिला है और मैंने उत्तर भी आज ही लिखवाया है। तात्पर्य यह कि यहाँसे एक क्षणकी भी देरी नहीं की है। रावजीभाईको इस सम्बन्धमें तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४५-बी) से; सौजन्य : चन्द्रकान्त एफ० शाह

१५५. पत्र : दिनकरको

३ जुलाई, १९३२

भाई दिनकर,

तुम्हारा पत्र मिला। चूँकि मीराबहनसे मुलाकात रोक दी गई है, इसलिए मैंने सभीसे मिलना बन्द कर दिया है। वजनको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि तुम्हारे स्वास्थ्यमें काफी सुधार हुआ है। आरोग्यालयके लिए यहाँसे तो कुछ नहीं किया जा सकता है। 'विश्व-शान्ति' नामक एक पुस्तक मुझे यहाँ मिली है। महादेव और मैंने उसे सरसरी तौर पर देख लिया है। उसकी अच्छाई या बुराईके बारेमें मैं कुछ नहीं जान सकता, क्योंकि कविताका मूल्यांकन करना मेरी क्षमताके बाहर है। मैं उस रुचिको विकसित ही नहीं कर पाया। डाक्टरोंका विश्वास है कि केवल मेरे हाथमें थकान बैठ गई है, और कुछ नहीं। इसीलिए मैं उसे आराम दे रहा हूँ। मैंने गलतीसे लिख दिया कि महादेवने भी 'विश्व-शान्ति' को पढ़ लिया है। उसने पढ़ा नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १०९।

१. देखिए "पत्र : मगनभाई पटेलको", २/३-७-१९३२।

१५६. पत्र : नारणदास गांधीको[1]

२८ जून/४ जुलाई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक आज ही मिली है। दूध और फल लेते हुए आज सात दिन हो गये हैं। लेकिन हाथ (के दर्द) पर इसका कोई असर नहीं हुआ है, कदाचित् होगा भी नहीं। दूध और फल मुझे अनुकूल ही बैठे हैं, ऐसा मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। वस्तुतः देखा जाये तो बादाम, रोटी और सब्जियोंका प्रयोग अनुकूल बैठा है, लेकिन फिलहाल तो दूधको चलने दूँगा। कब्जकी थोड़ी बहुत आशंका बनी रहती है। आवश्यकता जान पड़ी तो कदाचित् थोड़ी सब्जियाँ लेना शुरू करूँ। इस बारेमें चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं।

सीतलासहायके बारेमें तुम जो लिखते हो वह ठीक है। उसका पत्र नासमझी-भरा है और क्रोधमें लिखा गया है। यदि उसका खर्च ज्यादा पड़ता हो तो उसे तुम्हें पूरा-पूरा हिसाब लिख भेजना चाहिए और यदि हिसाब सही हो तो ज्यादा पैसे देनेमें कोई हर्ज नहीं। इसलिए ज्यादासे-ज्यादा ६० रुपयेकी सीमा निर्धारित करनेकी अपेक्षा ज्यादा पैसे भेजनेसे पहले हिसाब माँगना मुझे विशेष उचित जान पड़ता है। शेष तो मैंने अपनी पिछली डाकमें विस्तारसे लिखा ही है इसलिए यहाँ ज्यादा नहीं लिखता। गिरि-परिवारके सम्बन्धमें भी यहाँ ज्यादा लिखनेको कुछ नहीं है।

धीरू और कुसुम यदि शारीरिक श्रम करें और दूध बराबर लें तो वजन बढ़ सकता है।

निर्मला जोशीका कोई पत्र आता है क्या? लीलाबहनकी कदाचित् उसे खबर हो। उसका पता तुम्हें मालूम है?

टाइटस[2] के सम्बन्धमें तुम्हें जो उचित लगे सो करना। यदि तुम्हें उसके कार्यसे सन्तोष हो और उसकी माँग उसकी आवश्यकताओंके अनुरूप हो तो उतना देना कदाचित् उचित ही होगा। [दांडी कूचकी] टुकड़ीमें[3] शामिल होनेके बावजूद जो व्यक्ति टुकड़ीमें न होकर इस समय अन्य काम पर लगा हुआ है उसके आश्रित यदि उसपर आशा रखते हैं तो यह स्वाभाविक ही है; इसलिए यदि हम टुकड़ी-वालोंकी प्रतिज्ञाके अक्षरशः पालन पर आग्रह करें तो कदाचित् अन्याय होगा।

१. यह पत्र "सत्यका पालन कैसे करें", ३-७-१९३२ के साथ भेजा गया था।

२. हिगिनबॉटम एग्रीकल्चर कालेजका एक स्नातक तथा आश्रममें पारनेरकर द्वारा प्रशिक्षित एक अन्तेवासी।

३. देखिए खण्ड ४३।

पारनेरकरका कार्य तो बहुत बेहूदा माना जायेगा। बिना अनुमति प्राप्त किये चले जाना और बादमें सन्देश भेजना, यह निश्चय ही ठीक नहीं है। तिस पर भी उसका उद्देश्य अच्छा है, पर मन अत्यन्त दुर्बल हो गया है, इसलिए उसका दोष बतानेकी इच्छा नहीं होती। उसका त्याग तो अवश्य ही सुन्दर है। इसलिए यदि उसकी माँको कुछ पैसा भेजना उचित जान पड़े तो भेजना। न्यायकी रूसे तो ऐसा नहीं किया जा सकता, यह मैं समझ सकता हूँ। अनेक बार शुष्क न्याय अन्यायका रूप धारण कर लेता है। मनुष्यके हृदयमें पैठना अत्यन्त कठिन है। अतएव जहाँ पैसेका सवाल आता है वहाँ मेरा झुकाव इस बातकी ओर होता है कि यदि हम कुछ दे सकनेकी स्थितिमें हैं तो हमें देना चाहिए।

रामराव और प्रताप फिलहाल कहाँ हैं? फादर एल्विनको सन्तोष हो गया, इतना ही काफी है। वे हमसे मीराबहनके जैसी सार-सँभालकी आशा भी नहीं करते होंगे और हमसे उतना किया भी नहीं जा सकता। मीराबहन जिसे चाहती है उसकी सार-सँभाल वह इतने प्रेमभावसे और सूक्ष्म रूपसे करती है जितनी कदाचित् और कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। इसलिए उसके साथ होड़ नहीं की जा सकती। इमाम साहबकी कब्रका काम हाथोंहाथ पूरा हो गया, यह अच्छा हुआ।

अन्नपूर्णाके विषयमें मैंने जीवरामको जो लिखा है वह तुमने देखा होगा। शरतचन्द्र पटनायक, तुम्हारे लिखनेके मुताबिक तो योग्य पुरुष लगता है। यदि वह अन्नपूर्णासे विवाह करता है तो इसके पीछे परोपकारकी भावना ही होनी चाहिए। तथापि इसमें भाई जीवरामकी भी सहमति होनी चाहिए और अन्नपूर्णाकी भी राजी होनी चाहिए। अन्नपूर्णाकी सारी कहानीको जाननेके बावजूद यदि शरतचन्द्र उससे विवाह करता है तो उसे मेरा आशीर्वाद तो है ही, साथ ही वह बधाईका पात्र भी है।

'आत्मकथा' के तुम्हें जो भिन्न-भिन्न अनुवाद प्राप्त हुए हैं उनकी प्राप्तिकी सूचना तो तुम देते ही होगे। केशु ५० अंकका सूत ३५० की गतिसे कातता है, इसे मैं एक अच्छी रफ्तार मानता हूँ। किस प्रकारके चरखे पर कातता है?

जिन कमरोंमें सामान भरा हुआ हो उन्हें भी अमुक समय पर खोला जाना चाहिए। ऐसे बड़े विभागोंमें सामान्यतः यह नियम होता है कि अमुक मकान पिछली बार कब साफ किया गया था और आगे किस दिन किया जायेगा, इन दोनों बातोंकी तारीख उसी मकान पर लिखी रहती है। इसलिए भविष्यके कामोंकी सूचीमें इस बातका उल्लेख हो अथवा न हो, लेकिन चूँकि उन मकानों पर तो लिखा ही होता है अतः इसे देखनेकी आदत पड़ गई हो तो स्मरणशक्ति पर दबाव डाले बिना उस कार्यके लिए नियुक्त व्यक्ति अपना काम करते ही रहेंगे।

बारीक अंकके लिए पूनीके अलावा तकुआ, माल और चमरखका भी अच्छा होना जरूरी है। मगन-चरखे पर जो तकुआ और पेटी लगी हुई है उससे अच्छीसे-अच्छी पूनीसे भी ५० अंकसे ज्यादा सूत नहीं काता जा सकता। आन्ध्रकी स्त्रियाँ जिस चरखे पर ८० अंकका सूत निकालती हैं उसका तकुआ अत्यन्त नाजुक होता

है, छातेकी तीलियोंके समान पतला और छोटा होता है। माल भी बहुत पतला होता है। इसीसे वे स्त्रियाँ अत्यन्त महीन सूत कात सकती हैं। इस दृष्टिसे तुम अपने तकुए और पेटीकी जाँच कर जाना। मेरा निजी अनुभव तो यह है कि गांडीव चरखे पर आसानीसे जितना महीन काता जा सकता है उतना महीन सूत उतनी आसानी से अन्य किसी चरखे पर नहीं काता जा सकता और इसका मुख्य कारण यह है कि गांडीवकी माल अत्यन्त महीन होती है। अपनी आँखोंसे देखनेके बाद मुझे लगता है कि ऐसी महीन माल खड़े चरखे पर नहीं चल सकती। इसके अतिरिक्त हम गांडीव चक्र पर जो नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं वैसा नियन्त्रण हम खड़े चरखे पर कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। और यही कारण है कि गांडीवका मोढ़िया भी हम जितना नाजुक रख सकते हैं उतना किसी और चरखेका नही रख सकते। महीनसे-महीन सूत कातनेकी कला हमें सीख लेनी चाहिए। और इस दृष्टिसे मेरी अपेक्षा जिन लोगोंको बहुत ज्यादा अनुभव है ऐसे लोगोंको भिन्न-भिन्न चरखों पर प्रयोग करके इसकी जाँच करनी चाहिए।

तुमने जो संक्षिप्त विवरण लिख भेजा है वह मैं पढ़ गया हूँ। और चूँकि पिछले पत्रों[1] में इस सम्बन्धमें मैं बहुत कुछ लिख चुका हूँ इसलिए इस समय विशेष लिखनेको नहीं है। अब प्रति सप्ताह इसे भेजनेकी कोई जरूरत नहीं है। आँकड़ोंका अभ्यास करनेके बाद यदि कोई फेर-बदल करो तो वह मुझे लिखना। यदि तुम्हें कोई नई जानकारी प्राप्त हो और यदि तुम अपनी ओरसे कुछ लिखना चाहो तो लिखना। तुम्हारे भेजे हुए रजिस्टरको मैं सँभाल कर रखूँगा ताकि इसका उल्लेख करते हुए यदि तुम कुछ लिखोगे तो उसमें से देखकर समझ लूँगा। मैं स्वयं इसमेंसे बहुत जानकारी हासिल कर रहा हूँ और इनसे सोचनेको भी बहुत मिलता है। प्रत्येक व्यक्तिका परिचय देकर तुमने ठीक किया है।

पंडितजीके पत्र परसे देखता हूँ कि तुम सवेरे भी पाँच मिनटका मौन रखते हो। यदि तुम्हें इसका अच्छा परिणाम दिखाई दिया हो तो इन पाँच मिनटोंको भले ही रहने दो, लेकिन मेरा अपना सुझाव तो साँझकी प्रार्थनाके सम्बन्धमें था। सारा दिन काम करनेके बाद जब लोग आते हैं तब उन्हें ध्यान-मग्न होनेमें समय लगता है। पाँच मिनटकी भी शान्ति हो तो ध्यान-मग्न होनेमें बहुत मदद मिलती है। सवेरेकी प्रार्थनामें इससे विपरीत होता है। इसलिए इस दृष्टिसे मौनकी जरूरत नहीं होती। पंडितजी मानते हैं कि अनेक लोग तो इन पाँच मिनटोंका उपयोग नींदका झोंका लेनेमें करते हैं। यह तो मैंने इन पाँच मिनटोंका बाह्य दृष्टिसे विश्लेषण किया। अन्तर्दृष्टिसे विचार करें तो प्रार्थनामें जितना मौन रखा जाये उतना अच्छा है। लेकिन यह केवल उन्हीं लोगोंके लिए है जो इससे लाभ उठा सकें। इसका अर्थ यह नहीं करना कि तुम सवेरेका पाँच मिनटका मौन अब बन्द कर दो। एक अच्छी चीजको आरम्भ करनेके बाद स्पष्ट ही उसे तुरन्त हटाया नहीं जाना चाहिए। लेकिन

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको," ८/१३-६-१९३२ और २२/२६-६-१९३२।

यदि पंडितजी जैसा अनुभव तुम्हें भी हो और पाँचके बदले एक मिनट करनेकी तुम्हारी अपनी मर्जी हो, और मैंने दोनों समय पाँच-पाँच मिनटका मौन रखनेका सुझाव दिया है,——यदि तुम ऐसा ही समझे हो तो सवेरेके पाँच मिनटके लिए तुम अपने लिए फेर-बदल कर सकते हो। इतनी छूटके लिए ही मैंने इतना लिखा है।

३ जुलाई, १९३२

पंडितजीके पत्रमें इस बातका संकेत है और महादेवने भी सवाल उठाया है कि बालकोंको पूरी नींद नहीं मिलती। उन्हें कमसे-कम अविच्छिन्न आठ घंटे मिलने चाहिए। वे तभी मिल सकते हैं जब वे साढ़े सात बजे सोयें। मतलब यह कि यदि उन्हें सवेरे साढ़े तीन बजे उठाना हो तो उन्हें आठ घंटे मिलने ही चाहिए, यह तो मैं भी मानता हूँ। बड़े लोगोंको भी यदि उतना ही आराम मिले तो यह अभीष्ट है। इसका एक उपाय तो यह है कि साँझकी प्रार्थना सात बजे शुरू करके साढ़े सात बजे बन्द कर देनी चाहिए। वस्तुतः देखा जाये तो ७.२० पर ही। लेकिन कमसे-कम आधा घंटा प्रार्थना अवश्य की जाये। इस दृष्टिसे प्रार्थना ६.५० पर आरम्भ होनी चाहिए अथवा प्रार्थनाकी घंटी सवेरे ४ बजे बजानी चाहिए और प्रार्थना ४.३० पर शुरू करनी चाहिए। दूसरा रास्ता यह है कि बालकोंकी प्रार्थना अलगसे रखी जाये और वह भी तब जब बालकोंकी क्लास शुरू हो। उस समय भी प्रार्थना तो होती ही है। इतनेसे ही हमें सन्तोष कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह कि एक तो उन्हें प्रार्थना करनेकी आदत पड़नी चाहिए। यह प्रार्थना वे जब उठें तब कर लें। सामान्य रूपसे उठना ४ बजेसे देरसे नहीं हो सकता। प्रार्थना ४.३०से देरीसे नहीं होनी चाहिए। बच्चोंको [सोनेके लिए] आठ घंटे तो अवश्य मिलने चाहिए। इन दो चीजोंको अनिवार्य समझकर, सब लोग मिलकर, जो परिवर्तन उचित लगे सो करना। बालक किसे माना जाये, इस बातपर विचार कर लेना। जो बच्चे बाल्यावस्था और युवावस्थाके बीच हों यदि वे अपने-आपको बच्चे कहलाना चाहें तो उन्हें बच्चे मानना। ऐसे बालकोंके लिए यह नियम होना चाहिए कि उन्हें इस तरह ज्यादासे-ज्यादा एक वर्ष तक बालक समझा जाये। जो बीमार हों वे बच्चे सवेरेकी प्रार्थनासे मुक्त रह सकते हैं। इन्दु जैसे बच्चोंको, उनकी इच्छा हो अथवा न हो तो भी, इससे मुक्त रखना चाहिए। मतलब यह कि जिनका वजन हमेशा कम होता रहता है उनपर जल्दी उठनेका बोझ नहीं होना चाहिए। इन्दुको दस बजे तक नींद ही नहीं आती, यह तो अच्छी बात नहीं है। यदि उसकी खाट खुलेमें तुम्हारे समीप ही बिछाई जाये तो उसे नींद आये बिना न रहेगी। सवेरेकी प्रार्थनासे भले ही वह मुक्त रहे, फिर भी जल्दी सोनेकी आदत उसे पड़नी ही चाहिए। इन सब पर सोच-विचार कर जो फेरबदल करना ठीक लगे सो करना।

शामल परेशान दिखाई देता है। मैंने उसे तुमसे बात करनेको लिखा है[1] लेकिन उसके आनेकी प्रतीक्षा न करके तुम ही उसे बुलाकर पूछना।

१. देखिए "पत्र: शामल आर० रावलको", १-७-१९३२।

मंजुलाका पत्र आया है। उसमें वह लिखती है कि फिलहाल आश्रम जाना मुल्तवी हो गया है। कदाचित् उसने तुम्हें भी पत्र लिखा होगा। उसने न आनेका कारण नहीं दिया है।

मेरा बायाँ हाथ वैसा ही है। ऐसा लगता है कि समय आनेपर केवल आराम करनेसे ही वह ठीक होगा। इसकी चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। जेल-अधीक्षकके आग्रहसे दूध लेना तो अवश्य हूँ, लेकिन उससे मुझे अभी कोई विशेष लाभ नहीं दिखाई देता। तथापि फिलहाल दूध लेता रहूँगा। साथमें डबलरोटी नहीं, अपितु चपाती लेता हूँ और एक जून शाक भी लेता हूँ। आजकल कराचीमें अंगूरोंका मौसम है, अतः लालवा[1] भेजते रहते हैं। वह भी लेता हूँ। वजन १०४ पौंड हो गया है।

सूतके सम्बन्धमें यदि तुम शारदाबहन[2] से मिलो तो कदाचित् बहनोंसे यज्ञका सूत मिल सकता है। सूतकी भूखकी पूर्तिके लिए कुछ-न-कुछ उपाय खोजे जाने चाहिए — यदि सम्भव हो तो।

जमना और पुरुषोत्तम राणावावमें किस तरह दिन बिताते हैं? उनकी दैनन्दिनी तुम्हें मालूम हो तो लिखना।

बा से कहना कि उसका एक ही पत्र मुझे मिला था। उसे मेरे पत्र मिलते हैं कि नहीं।

बापू

४ जुलाई, १९३२

आश्रमके लिए थोड़े नियमों[3] और प्रार्थनाके[4] बारेमें मैंने लिखा था वह तुमने लगता है, सबको नहीं भेजा है। उसकी एक प्रति मुझे भेजना। महादेवकी बड़ी फ्रेंच डिक्शनरी उसकी आलमारीमें है। उसे और उर्दू 'आत्मकथा'— ये दोनों पुस्तकें — मैंने प्रेमाको जो उर्दू पुस्तकें भेजनेके लिए लिखा है, उनके साथ भेजना। निर्मला[5] लिखनेसे क्यों हार गई है? महादेव पूछता है कि दुर्गाने पैसेके बारेमें और अपनी तबीयतके बारेमें नहीं लिखा है, वह महादेवके पत्रमें यह सब लिखे। मैं जो रोटी लेता हूँ उसे महादेव बनाता है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

१. छबीलदास रोछीराम लालवाणी; जे० बी० कृपालानीके बहनोई।

२. शारदाबहन मेहता।

३. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ ३७३।

४. देखिए "प्रार्थना", १९-६-१९३२।

५. महादेव देसाईकी सौतेली बहन।

१५७. पत्र : मंगला एस० पटेलको

४ जुलाई, १९३२

प्रिय मंगला,

तुम्हारी छाती और कमरमें दर्द कबसे होने लगा और कितने वर्षोंसे इसे भोग रही हो? अब कैसा लगता है?

सच्चा निष्काम भाव तभी है जब हम यह विश्वास करने लगें कि जो-कुछ हम करते हैं उसका असली कर्ता ईश्वर है। सत्य-सेवीका सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, वह सत्य पर अडिग रहे।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १९७।

१५८. तार : पापाको

[५ जुलाई, १९३२][1]

पापा[2]
गांधी आश्रम, तिरुचेङ्गोडु

तुम्हारे पतिकी[3] मृत्युका समाचार देवदासने तारसे दिया है। हम सभी अत्यधिक दुखी हैं, किन्तु तुम मृत्युपर शोक न करना। यह तो मानवमात्रकी नियति है। याद रहे तुम एक बहादुर बापकी बेटी हो। ईश्वर तुम्हें शान्ति प्रदान करे। हम सबका प्यार।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ११।

१. देखिए "पत्र : देवदास गांधीको", ५-७-१९३२।
२. च० राजगोपालाचारीकी पुत्री।
३. वरदाचारी।

१५९. तार : च० राजगोपालाचारीको

[५ जुलाई, १९३२][1]

च० राजगोपालाचारी
बन्दी, डिस्ट्रिक्ट जेल
वेल्लोर

देवदासके तारसे पापाके शोकका समाचार पाकर हम सब अत्यन्त दुःखी हैं। लेकिन तुम्हें हमारी सान्त्वनाकी जरूरत नहीं है। तुम्हारा तो ईश्वर पर अटल विश्वास है। हम सबका स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐक्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ११।

१६०. पत्र : देवदास गांधीको

५ जुलाई, १९३२

प्रिय देवदास,

अभी-अभी तुम्हारा तार मिला। वरदाचारी नहीं रहे, यह कौन मान सकता है! इस बातका कुछ भय था कि पापा चल बसेंगी, लेकिन वरदाचारी चल बसे। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है। यह अच्छी बात है कि यमराज किसीके भी साथ अपनी मैत्री नहीं छोड़ते। देर-सवेर वे सभीके प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित करते हैं। मैंने पापाको निम्नलिखित तार भेजा है: (तार अंग्रेजीमें है)।[2] यह तार राजाको भेजा है: (तार अंग्रेजीमें है)।[3]

मैंने ऊपर बताये तार दिये हैं।[4]

राजाको आघात लगेगा, लेकिन उनकी सहनशक्ति मजबूत है, अतः चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मृत्युका मृत्युके रूपमें मुझपर कोई असर नहीं

१. देखिए अगला शीर्षक।

२ और ३. यहाँ नहीं दिये गये; देखिए पिछले दो शीर्षक।

४. इसके आगेका अनुच्छेद **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१, के गुजराती अंशसे मिला लिया गया है।

पड़ता। सम्बन्धियोंको जो दुख उठाने पड़ते हैं, उससे मैं अवश्य प्रभावित होता हूँ। मृत्युका दुख माननेसे बड़ा अज्ञान और क्या हो सकता है?

मैंने जो पत्र भेजे हैं वे तुम्हें मिल गये होंगे। जो पत्र खोया हुआ माना जाता था वह तुम्हें दे दिया गया है। यह सूचना तुम्हारे सुपरिंटेंडेंटने यहाँके सुपरिंटेंडेंटको भेजी है। अतः मेरे पत्रोंकी तुम्हारी भूख शान्त हो गई होगी।

हम तीनों खुश हैं। कोई नई बात लिखनेकी नहीं है। मैं तुम्हें पहले ही लिख चुका हूँ कि मैंने रोटी और दूध लेना शुरू कर दिया है।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००, पृष्ठ १६९ तथा **महादेवभाईनी डायरी,** खण्ड–१ ।

१६१. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको[1]

५ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

समाचारपत्रोंमें यह खबर पाकर बहुत दुख हुआ कि तुम्हारी माताजी अब नहीं रहीं। तुम्हारे इस शोकमें मेरी तुम्हारे और दीपक[2] के प्रति हार्दिक सहानुभूति है। सरदार और महादेव भी यह संवेदना-सन्देश भेजनेमें मेरे साथी हैं।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १५९।

१. पण्डित रामभज दत्त चौधरीकी पत्नी।

२. श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके पुत्र।

१६२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

५ जुलाई, १९३२

भाई घनश्यामदास,

आपका २७ जूनका खत आज मिला।[1] मैंने २९ जूनको[2] आपको खत लिखा है उसमें खादी मिल जानेका लिखा है और आपके पुस्तक पढ़ने पर जिन पुस्तकोंकी आवश्यकता प्रतीत हुई वे भी मंगवाये हैं। जो साहित्य मैं पढ रहा हूँ उसपरसे प्रश्न तो काफी उठते हैं। परंतु जो अभ्यास मैं कर रहा हूँ वह करने 'की' बाद ही पूछनेका कुछ बाकी रहे तो इरादा रक्खा है। अब तो हमेशा कुछ न कुछ पढ ही लेता हूँ इसलिए मेरी समजमें थोडीसी भी वृद्धि अवश्य होती है। अब भी शाहका पुस्तक चलता है। इसके बाद आयरकी फॉरिन एक्सचेंज[3] पर जो पुस्तक है जो उसने मुझे भेजी है शुरू करूँगा।

खादीके साथ साथ आज तो मिल चलती ही है और कई अरसे तक तो अवश्य चलेगी। अंतमें तो दोनोंके बीचमें विरोध है ही क्योंकी हमारा आदर्श तो यह है कि हरेक देहातमें खद्दर पैदा हो। और इस तरह हरेक देहातमें होगा तब हिंदुस्थानके लिए मिलकी आवश्यकता नहीं रहेगी। लेकिन आज आप जैसे दोनों बात साथ साथ अवश्य कर सकते हैं। और सत्य प्रदर्शित करनेके लिए आदर्शको भी लोगोंके सामने रखा जाय। टीका करनेवाले टीका करते ही रहेंगे। उसके लिये तो कोई चारा ही नही है।

गुड़के बारेमें मुझको पूरा ज्ञान नहीं है परंतु मेरा ख्याल कुछ ऐसा रहा है सही कि खांड बनानेके लिए मिलकी आवश्यकता हमेशा रहेगी। देहातोंमें खांड आसानीसे नहीं बन सकती है। न उख हर देहातमें पैदा हो सकती है। इस कारण गुड़ बनानेका धंधा सर्वव्यापक नहीं हो सकता है। संभव है कि इसमें मेरी कुछ गलती है। कैसे भी हो। अगर मिल और खादीकी बात एक ही मनुष्य कर सकता है तो गुड़ और मिलकी बात तो अवश्य कर सकता है।

पैसा शास्त्र (?)का जितना अभ्यास मैं करता हूँ उतना मेरा विश्वास दृढ़ होता चला कि लोगोंकी कंगालीअत दूर करनेके लिये इन किताबोंमें जो कुछ लिखा है वह उपाय हरगीज नहीं है। वह उपाय उत्पन्न और व्यय अपने आप साथ साथ चले ऐसी योजना करनेमें ही है और वह योजना देहाती धंधोंका पुनरुद्धार ही है।

१. घनश्यामदास बिड़लाने, जो सूती मिलों तथा चीनीके कारखानोंके मालिक होते हुए भी स्वयं खादी और गुड़के प्रेमी हैं, खादी तथा मिलके कपड़े और गुड़ तथा चीनीके बीच प्रतिद्वन्द्विताका उल्लेख किया था।

२. यहाँ २८ जून होना चाहिए; देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", २८-६-१९३२।

३. मूलमें यह अंग्रेजी लिपिमें है।

यहांके मुखीके आग्रहसे मैंने दूध लेना शुरू कर दिया है। साथमें चपाटी और भाजी। भाजी एक वख्त और चपाटी दो वख्त। जो शरीरशुद्धि रोटी और बादाम और भाजीमें थी वह आज नहीं है ऐसा तो मैं देख रहा हूँ। परंतु अब दूध शुरू कर दिया है उसे शीघ्रतासे नहीं छोडुंगा। देखुंगा क्या परिणाम आता है। आजकल करांचीकी द्राक्ष कृपालानीजीके बहनोई भेज रहे हैं वह भी साथ साथ लेता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ७९०१ से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१६३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

६ जुलाई, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। तूने लिफाफेको सजानेका प्रयत्न करनेकी कोशिशमें उसे बिगाड़ दिया है। निरुपयोगी सजावटके विषयमें ऐसा ही समझना चाहिए। सरदार लिफाफे पर जो सजावट करते हैं वह सजावटकी खातिर नहीं होती अपितु उनकी इस सजावटके पीछे उपयोगिताकी भावना निहित है, इसीसे वह सुन्दर लगती है। लिखे हुए लिफाफेका यदि हम फिरसे उपयोग करना चाहते हैं तो उस पर लिखा हुआ [पता] मिटा होना चाहिए। इसीलिए सरदारने उस पतेको ढँक सकने जितनी कतरनें काटकर लिफाफे पर चिपका दीं और इस तरह उसे सुन्दर रूप प्रदान किया। लेकिन इतनेसे ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए अब वे वहाँसे आये हुए लिफाफे को उलटा देते हैं जिससे उन्हें अलगसे कतरन नहीं चिपकानी पड़ती और कवर भी नया जैसा लगता है। इसे यदि तू ध्यानसे देखेगी तो तुझे मालूम हो जायेगा। तेरी कँगूरेवाली कतरनें आधी उखड़ गई थीं इससे बहुत खराब लगती थीं और उनका कुछ उपयोग तो था नहीं। उसपर की गई मेहनत व्यर्थ गई और समय तथा उतने कागजकी भी बरबादी हुई। उतना ही जनताका नुकसान हुआ। इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं: समझे बिना किसीका अनुसरण नहीं करना चाहिए और सजावटकी खातिर सजावट नहीं होनी चाहिए। यूरोपके बड़े-बड़े गिरजाघरोंके बारेमें कहा जाता है कि उनमें जो सजावट की गई है उसके पीछे उपयोगिताकी भावना निहित है। यह बात सच हो या न हो, लेकिन मैंने जिस नियमकी चर्चा की है उसमें शंकाको अवकाश नहीं।

तेरे इस बारके पत्रमें प्रधानकी आलोचनाके अतिरिक्त और बातें बहुत कम हैं। मुझे तो लगता है कि यह आलोचना व्यर्थ है इसलिए उसके औचित्यके बारेमें विचार करना व्यर्थ है। "जज नॉट लेस्ट यी बि जज्ड" (अर्थात्, किसीकी आलोचना

न करो, क्योंकि कहीं कोई तुम्हारी न कर बैठे) यह वाक्य हृदयंगम करना चाहिए। इसके अनुरूप कोई गुजराती कहावत तो मुझे याद नहीं आती। मराठीमें यदि कोई हो तो भेजना।

मुझे उर्दू पुस्तकोंकी तालिका चाहिए। शिबलीकी पुस्तक तो भेज ही देना और [वहाँ] खलीफाका जीवन-वृत्तान्त भी है।

तुझे मरना स्वीकार है परन्तु मछली खाना नहीं, यह बात मुझे तो निश्चय ही अच्छी लगेगी। इसका अर्थ क्या यह भी है कि तू कॉडलिवर ऑयल [मछलीका तेल] भी नहीं लेगी? मैं क्या चाहता हूँ इसका विचार नहीं करना। मैंने तो तेरी मानसिक स्थिति जाननेके लिए यह प्रश्न पूछा है। तेरी खुराकमें दूध अथवा दही अथवा घीका अनुपात बढ़ना चाहिए। हरी सब्जीके स्थान पर कभी-कभी तो पका फल होना ही चाहिए। क्या [वहाँ] पपीता पकता ही नहीं? टमाटर नहीं होते? किसी प्रकारका शाक नहीं होता? तू स्वयं थोड़ेसे टमाटर क्यों नहीं बो देती? उसी तरह लेटीसकी खेती तुरन्त होती है। कच्चा पपीता बहुत ज्यादा नहीं खाया जाना चाहिए। और न रोज ही खाया जाना चाहिए। खर्चका विचार किये विना इतना फेरबदल अवश्य करना। गर्म पानीमें कटिस्नान करती रहना। जहाँ दर्द होता हो वहाँ मालिश करवाई जानी चाहिए। कोई भी लड़की प्रसन्नतापूर्वक यह काम करनेको तैयार होगी।

विद्याकी[1] मूढ़ता प्रेमसे दूर होगी। रामभाऊका मामला जरा कठिन है, लेकिन इसका एक ही उपाय है। उसपर तीन शक्तियाँ काम करती हैं। इसलिए यदि वे परस्पर एकमत न हों तो मुसीबत होगी। वे तीन शक्तियाँ हैं पण्डितजी, लक्ष्मीबहन और तू, अथवा वह व्यक्ति जिसपर उसकी देखरेखकी जिम्मेदारी हो। तेरे लिए इसमेंसे भी बच निकलना और कोई रास्ता निकालना केवल प्रेम द्वारा ही सम्भव है। तुझमें यह प्रेम जितना विशाल होगा उतना ही तुझमें इन बालकोंको सुधारनेकी शक्तिका विकास होगा।

आश्रमकी बड़ी लड़कियोंके सम्बन्धमें उदारतासे काम लेना। वे आलसी होकर घर नहीं बैठतीं अपितु अपंग होनेकी वजहसे ऐसा करती हैं। उनकी अपंगताके बारेमें तू या मैं कोई निर्णय नहीं दे सकते। यह निर्णय तो वे लड़कियाँ ही दे सकती हैं। वह गलत भी हो सकता है। इतना ही पर्याप्त है कि उनके मनमें खोट नहीं होनी चाहिए। बड़ी लड़कियोंमें आनन्दी, कुसुम[2] और नीमु। ये सब क्या करती हैं? आनन्दी काममे जी नहीं चुराती, कुसुमका सवाल ही नहीं उठता। नीमु पर दो बच्चोंका भार है। बच्चोंका लालन-पालन कैसे किया जाता है, यह उसे कदाचित् ही मालूम हो, तिसपर माँ बन बैठी है। अब उससे कितने कामकी आशा की जा सकती है? कदाचित ऐसी और लड़कियाँ तेरे ध्यानमें हों। इन सबको हम सोना-मोती तोलनेकी तुलासे नहीं तोल सकते और तू अनुभवसे देखेगी कि तुझमें जैसे-जैसे

१. विद्या रावजीभाई पटेल।
२. कुसुम गांधी; नारणदास गांधी उसे अपनी पुत्रीके समान मानते थे।

उदारताका विकास होगा वैसे-वसे लोगोंसे काम लेनेकी तेरी शक्ति भी बढ़ेगी। यह बात सच है अथवा झूठ सो तो भगवान ही जाने, लेकिन मेरे बारेमें यह कहा जाता है कि मनुष्योंसे मैं बहुत ज्यादा काम ले सकता हूँ। यदि यह बात सच है तो इसका कारण यह है कि मुझे इस बातका सन्देह ही नहीं होता कि कोई व्यक्ति कामसे जी चुराता है। वह जितना कर देता है उतनेसे ही मैं सन्तोष कर लेता हूँ और फिर और ज्यादाकी माँग करता हूँ तो वह उसे भी कर देता है। कुछ-एक लोगोंका यह भी कहना है कि मुझे आजतक लोगोंने जितना धोखा दिया है उतना किसीने किसीको कदाचित् ही दिया हो। यह कसौटी यदि खरी भी उतरे तो भी मुझे पश्चात्ताप नहीं होगा। मैंने जगतमें किसीको नहीं छला, लोग यदि मुझे इस बातका प्रमाणपत्र दें तो मेरे लिए यथेष्ट होगा। और यदि कोई मुझे वह प्रमाणपत्र नहीं देता तो मैं स्वयं ही देता हूँ।

मुझे झूठ सबसे ज्यादा खराब लगता है।

'ज्यादासे-ज्यादा लोगोंका ज्यादासे-ज्यादा भला' और 'बलीके दो भाग'के नियमको मैं नहीं मानता। सबका भला, सर्वोदय और 'कमजोर लोग पहले' ये नियम मनुष्य मात्रके लिए हैं। हम द्विपद मनुष्य कहलाते हैं लेकिन चौपद पशुके स्वभावको अभी तक नहीं त्याग सके हैं। इसका त्याग करना हमारा धर्म है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९३)से। सी० डब्ल्यू० ६७४१से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१६४. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

६ जुलाई, १९३२

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जिस याज्ञिक सिलाईकी शोध की थी उसे तुम अब कम महत्त्व देते हो, यह बात ठीक नहीं है। इसका सच्चा मूल्य वस्तुतः खराब से-खराब खादीको भी उपयोगी बनानेमें निहित है। सिलाईका खर्च हम नहीं उठा सकते। लेकिन यदि कोई व्यक्ति परोपकारार्थ सिलाई करनेको तैयार हो तो वह खराबसे-खराब खादीको भी वही मूल्य प्रदान कर सकता है जो भक्त हरसिंगारकी फूलमालाएँ बनाकर फूलोंको प्रदान करता है। उदाहरणके तौर पर याज्ञिक ऐसी खराब खादीके पहननेके वस्त्र न बनाये, लेकिन वह उसकी गद्दी बना सकता है, थैली बना सकता है या तकिया बना सकता है। हम ऐसी अनेक वस्तुओंकी कल्पना कर सकते हैं जिनके बनानेसे इस खादीको धोना नहीं पड़े और उसे एक लम्बे अरसे तक वैसेका वैसा रखा जा सकता है। मेरे पास हाथका कता और बुना हुआ

कम्बल था जो मुझे उपहार-स्वरूप मिला था। इस्तेमाल करते-करते वह इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया था कि वह जिस हालतमें था उसी हालतमें अधिक इस्तेमाल करने पर फट जाता। लेकिन मैं ठहरा फितरती आदमी और मुझे मिली जानकीबहन[1] जैसी परोपकारी देवी। मैंने वह कम्बल उन्हें दे दिया और पुराने कम्बलको नया कम्बल कैसे बनाया जा सकता है, सो उन्हें बताया। यह कम्बल अभी भी मेरे पास पड़ा हुआ है। इंग्लैंडमें जब मैं सम्राटके प्रासादमें गया था[2] तब मैं जानबूझकर इसे भी साथ ले गया था। इसका जीर्णोद्धार कैसे हुआ सो भी मैं बताये देता हूँ। उसके नीचे मोटी खादीका चँदोवा सी दिया और सारे कम्बल पर आड़ा और सीधा बखिया कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप वह जर्जर कम्बल खादीकी चादरके लग जानेसे नया जैसा हो गया और वह मुझे पहलेकी अपेक्षा ज्यादा गर्म लगने लगा। लेकिन उसका यह अर्थ न करना कि तुम सूतकी किस्मको सुधारनेके जो प्रयत्न कर रहे हो वे निरर्थक हैं। इसकी जरूरत मैं पल-पल महसूस करता हूँ। लेकिन यह खोज याज्ञिक-सिलाईके महत्त्वको कम नहीं कर सकती और न उसे अनुपयोगी ही सिद्ध कर सकती है। हिन्दुस्तानमें अभी खादी-प्रेम व्यापक नहीं हो पाया है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो दरिद्रनारायणके प्रति भक्ति भावना अभी सर्वव्यापक नहीं हुई है अथवा जहाँ यह भक्ति विद्यमान है वहाँ अज्ञानवश भक्तजन इस बातको सिद्ध नहीं कर सके हैं कि इस भक्ति का सरल और सीधा मार्ग खादी है। यदि यह बात सिद्ध हो जाये तो तुम्हारी खोजका बहुत बड़ा उपयोग हो सकता है। इसलिए मेरे मनसे यह चीज बिल्कुल भी दूर नहीं हुई है। सूतकी किस्ममें सुधार सम्बन्धी पुस्तक तुम अवश्य लिखना। लेकिन उसमें एक भी वाक्य ऐसा न लिखना जो तुम्हारा अनुभव-सिद्ध न हो। और फिर अकेले अपने अनुभवके आधार पर सिद्धान्त न बनाना। अन्य लोगोंका भी यही अनुभव होना चाहिए। और यदि तुम ऐसा नहीं कर पाये हो तो पुस्तकको रोके रखना। मैं तो यह बात अच्छी तरहसे देख रहा हूँ कि जो पुस्तकें अनुभवके बल पर नहीं लिखी जाती वे लगभग मूल्यहीन होती हैं, ठीक ऐसे जैसे आज यदि कोई व्यक्ति 'चरक'[3] का अनुवाद हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है तो उसका कोई मूल्य नहीं होगा, क्योंकि उसमें वर्णित अधिकांश जड़ी-बूटियाँ आज हमें उपलब्ध नहीं हैं और यदि उपलब्ध हैं भी तो उनके गुणोंको हम सिद्ध नहीं कर सकते। इसलिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि तुम स्वयं अनेक अंकका अच्छेसे-अच्छा सूत कातो और उसमें तकुएका, चरखेका, कपासकी किस्मका, पिंजाईका और खुद अपना अर्थात् कारीगरका कितना-कितना योगदान था, इस सबका वर्गीकरण करो, इसका ब्यौरा रखो; और अपने अनुभवोंको दूसरोंके अनुभवोंसे मिलाओ। इन सबके आधारपर जो पुस्तक तैयार होगी वह पुस्तक धर्मकाँटे पर परखी हुई सोनेकी छड़के समान होगी। तुमने मुझसे पूछा है कि सूतके अंककी मैंने क्या सीमा रखी

१. जमनालाल बजाजकी पत्नी।

२. १९३१में गोलमेज सम्मेलनके समय।

३. चरक संहिता।

है। एक समय मैंने २० तककी सीमा रखी थी, फिर यह संख्या बढ़कर ४० पर पहुँची। अब तो मैं कोई सीमा नहीं आँकता। यदि हमें ऐसी कपास मिले अथवा हम ऐसा कपास पैदा करें जिससे ४०० अंक तकका सूत काता जा सके और हम ऐसी पिंजाई कर सकें जिससे ऐसा महीन सूत कातना सम्भव हो तथा ऐसा कातनेवाला या कातनेवाली हमें मिल जाये जो धैर्यपूर्वक ऐसा कात सके तो मैं अवश्य चाहूँगा कि हमें इस अंक तक पहुँच सकना चाहिए। तात्पर्य यह कि हमारा अनुभव, हमारा उत्साह और हमारी लगन हमें जहाँतक ले जाये वहाँतक पहुँच जाना मैं बहुत अर्थपूर्ण मानता हूँ। क्योंकि इससे हाथ-कताईकी कलाका महत्त्व एकदम बढ़ जानेकी पूरी सम्भावना है। डेढ़ सौ अंक तक तो सतीश बाबूके एक मित्र पहुँच गये थे, यह बात तुम जानते हो होगे। उससे तैयार हुई खादी सतीश बाबूके संग्रहमें आज भी मौजूद है, लेकिन इसके साथ ही मेरा यह आग्रह भी है कि हम जिस-जिस अंकका सूत कातें वह मजबूत और एकतार होना चाहिए। लेकिन इस परीक्षामें सफल होनेके लिए कितने अंक मिलने चाहिए, सो मैं नहीं जानता। यह तो तुम और अन्य अनुभवी कातनेवाले ही बता सकते हैं। मेरे पास इसके लिए एक बड़ी कसौटी तो है ही और वह यह कि यह सूत ऐसा होना चाहिए जिसे कोई भी बुनकर—कारीगर आसानीसे बुन सके। जिसे बुनकर पास नहीं करता वह यदि अपने काँटेमें पास हो भी जाये तो मैं उसे पास नहीं मानूँगा। पानीका प्याला आ जानेके बाद जो प्रयोग तुमने बताया है वह प्रयोग करके मैं अपने सूतके कसकी जाँच करके देखूँगा। जाँच किये बिना भी मेरा अपना सूत मुझे सन्तोष प्रदान नहीं करता। हाथमें कष्ट होनेके कारण [सूत पर] हाथ घुमानेका काम खटाईमें पड़ गया है। गांडीव चरखे पर मेरा हाथ बहुत अच्छा बैठ गया था। इस पर मैं अपना मनचाहा सूत अच्छी तरहसे कात सकता था, हालाँकि गति बहुत कम थी। लेकिन अब चूँकि मुझे दायें हाथसे धागा खींचना पड़ता है, और फिर मगन चरखेको हाथमें लेना पड़ा तो अब जाकर मैं उस पर कुछ काबू पा सका हूँ। इसके अतिरिक्त खराबसे-खराब पूनी कातना भी धर्म है, यह समझकर उसमें लगा। अब थोड़े दिनोंसे ही अच्छी पूनियों पर काम कर रहा हूँ। अतः जब तुम्हारा प्याला आयेगा मैं उसकी आजमायश कर सकूँगा। इस बीच कदाचित् मेरा सूत भी परीक्षा लायक हो जायेगा। मेरे सूतका अंक पहले २५के आसपास हुआ करता था। अब मगन चरखा चलानेपर मैं १९ के आसपास हूँ। अब कदाचित् बढ़ पाऊँगा। मैं समझता हूँ कि अब कोई उत्तर देना बाकी नहीं रह गया है। हिम्मत रखना, दृढ़ बनना। व्यर्थके विचारोंमें न उलझना। मोतीबहन[1] का क्या हाल है?

प्याला मिल गया है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७५५) से।

१. मथुरादास पुरुषोत्तमकी पत्नी।

१६५. पत्र : फिरोजाबाई तलियारखानको

६ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। आप तो ठंडे मौसमका सुख प्राप्त कर रही होंगी। देवदासके बिल्कुल अच्छे हो जानेकी सूचना मिली है, अतः चिन्ताकी कोई बात नहीं है। आप सारी जानकारी रख रही हैं, यह अच्छा है। बा खुश हैं। मुझसे मुलाकातकी अनुमति अभी भी नहीं दी जा रही है। सरदार और महादेवका वन्देमातरम्।

बापूके आशार्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १७३।

१६६. पत्र : परमानन्दको

६ जुलाई, १९३२

भाई,

मुझे समाचार-पत्रमें प्रकाशित खबर पढ़कर आपकी पत्नीके स्वर्गवासकी सूचना मिली। जब आप अंडमानमें बन्दी थे तब मेरा उनसे परिचय हुआ था और उनकी सादगीसे मैं बहुत प्रभावित हुआ था। ईश्वर आपको शान्ति व धैर्य प्रदान करे।

आपका,
मोहनदास गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १६३।

१६७. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

६ जुलाई, १९३२

चि० परसराम,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। हिन्दीके किसी शब्दके व्याकरणको लेकर यदि हमारे मनमें शंका उठे तब हम शब्दकोषकी मदद लें, यही तो सही रास्ता कहा जायेगा न? जिस व्यक्तिको संस्कृतका ज्ञान है वह शब्द प्रयोग करनेमें कम भूल करेगा, परन्तु संस्कृतमें अमुक शब्दका जिस रूपमें प्रयोग किया जाता है उसी रूपमें हिन्दीमें भी किया जायेगा ऐसा नियम नहीं है। इसलिए हमें शब्दकोषको प्रामाणिक मानना चाहिए और जहाँ शब्दकोषकी मदद न मिले वहाँ संस्कृत जाननेवाले व्यक्तिके कथनको प्रामाणिक समझना चाहिए। 'निरुत्साह' शब्द मेरे पास जो हिन्दी शब्दकोष है उसमें मैंने देखा और वहाँ भी वह विशेषणके रूपमें ही आया है। अतएव इसके बारेमें तो संस्कृत जाननेवाले व्यक्ति और शब्दकोष दोनोंका एक ही मत ठहरा। मैं यह सब जो लिख रहा हूँ वह भाषा-मात्रके प्रति प्रेम होनेके कारण लिख रहा हूँ। अमुक भाषाको जानने वाले लोगोंसे मैं उस भाषाकी विशेष जानकारी होनेकी अपेक्षा करता हूँ। मैं यह भी आशा करता हूँ कि वे हमेशा शुद्ध प्रयोग करेंगे। इसीसे मैंने 'निरुत्साह' के बारेमें पिछले पत्रमें[1] पूछा था। मैंने हमेशा यह माना है कि तुम्हारा हिन्दीका ज्ञान अच्छा है। और मेरी इच्छा है कि तुम इसके प्रति सतत जागरूक रहो। किसी-न-किसी व्यक्तिके लिए तो निश्चय ही यह जरूरी है कि वह हिन्दीभाषाके ज्ञानके लिए जीवन समर्पित करे। राजनीति तो हमारे पीछे पड़ी हुई है, लेकिन यह तो किसीका कोई खास विषय नहीं हो सकता और न होना ही चाहिए। हम इच्छा-अनिच्छासे इसमें भाग लें और इस प्रवृत्तिके शान्त होते ही अपने-अपने क्षेत्रोंमें पुनः कार्य करने लगें। और फिर सबको हमेशा राजनीतिमें पड़नेकी जरूरत भी नहीं होती। इसलिए अनेक स्थायी और रचनात्मक प्रवृत्तियोंमें से हमें अपनी सामर्थ्यानुसार और [अपनी] इच्छानुरूप किसी एक प्रवृत्तिका वरण तो करना चाहिए।[2] तुम्हारी, निस्सन्देह, हिन्दीके प्रति अभिरुचि है। अब हिन्दीके इस ज्ञानको जितना बढ़ाया जा सकता है उतना तुम्हें बढ़ाना चाहिए और इस हिन्दीके प्रसार और प्रचारके लिए अपना जीवन समर्पित करनेका विचार तुम कर सको तो मुझे यह बात बहुत अच्छी लगेगी। मेरे कहनेका आशय यह नहीं है कि ऐसा निश्चय तुम्हें अभी ही करना चाहिए। अभी तो जैसे चल रहा है भले ही वैसे ही चलता रहे। मुख्य समय तो हिन्दी लेती ही

१. २३-६-१९३२ को।

२. इसके बादके दो वाक्य बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्टससे लिये गये हैं।

है। जीवन-पर्यन्त तुम्हें हिन्दीके कार्यमें लगे रहना चाहिए अथवा नहीं, यह बात तो ऐसा करते हुए समयके साथ-साथ स्पष्ट होती जायेगी। मैंने तो अभी केवल बीजारोपण किया है।

अब 'रामायण' के सम्बन्धमें इस बारेमें तुमने जो लिखा है वह सही है। राधास्वामी[1] आदि लोगों द्वारा लिखी गई 'रामायण' को मैं संस्कारी ग्रन्थ नहीं मानता हूँ। तुलसीदासजीकी 'रामायण' अत्यन्त संस्कारी ग्रन्थ है। हमारा काम तो उसके प्रति दिलचस्पी पैदा करना है। तुलसीदासकी 'रामायण' से उन्हींकी भाषामें संक्षिप्त 'रामायण' की रचना अवश्य ही की जा सकती है। बालकाण्डको लेकर मैंने यह प्रयत्न किया था।[2] इस पुस्तककी एक प्रति बहुत करके आश्रममें विद्यमान है। इस बातको तो लगभग २० वर्ष हो गये हैं। आज अगर मैं फिरसे इस कार्यको हाथमें लूँ तो कदाचित दूसरी चौपाइयाँ और दूसरे ही दोहे पसन्द करूँ। प्रभुदासने भी इस दिशामें प्रयत्न किया है। और चूँकि तुम वहाँ सिखा ही रहे हो इसलिए इस दिशामें यदि कुछ करोगे तो वह उपयोगी होगा। इसमें तुम्हें बहुत कठिनाई भी नहीं होनी चाहिए। महादेवका कहना है कि ऐसे दो तीन प्रयत्न संयुक्त प्रान्तमें किये भी गये हैं। लेकिन उसकी चिन्ता नहीं। तीनमें यदि चौथा भी सम्मिलित हो जाये तो कोई नुकसान न होगा। भिन्न-भिन्न स्वभावके व्यक्तियों, भिन्न श्रेणीके बालकों अथवा मनुष्यों को ध्यानमें रखकर भी भिन्न-भिन्न लोग अलग-अलग चुनाव करना पसन्द कर सकते हैं। साँझकी प्रार्थनाके लिए यदि फिलहाल समय नहीं मिल पाता तो उसके लिए मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है। और फिर हिन्दी वर्ग तो हैं ही। इन वर्गोंमें जहाँ-जहाँ 'रामायण' के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न की जा सके वहाँ-वहाँ करना। इसके अतिरिक्त भक्तिके विचारसे भी शायद कुछ लोग 'रामायण' का अध्ययन करना चाहते हों और यदि इसके लिए तुम्हारे पास कोई समय हो तो ऐसा वर्ग भी सप्ताहमें एक बार अथवा दो बार रखा जा सकता है। लेकिन इसके सम्बन्धमें मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है। मैं तो केवल अपनी इच्छा ही व्यक्त कर रहा हूँ। इसपर कैसे और किस हद तक अमल किया जा सकता है, यह तो तुम ही बता सकते हो।

मैं यह जो सब लिख रहा हूँ उससे तुम्हें जरा भी परेशान हो उठनेकी जरूरत नहीं है। मुझे लगता है कि तुम्हारा काम अभी बहुत अच्छा चल रहा है। तुम इस समय अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ दिखाई देते हो और इस समय मैं तुम्हारे सम्मुख नये विचार अथवा नई योजनाओंको प्रस्तुत करके तुम्हारे मनको डाँवाँडोल और तुम्हें अस्वस्थ करना कतई नहीं चाहता। तुम्हारा पत्र पढ़कर ये विचार मनमें उठे इसलिए उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया है। इनमें से जिन्हें तुम पूरी तरह समझ पाये हो, आत्मसात् कर सको और जिन्हें व्यवहारमें ला सकते हो उन्हें स्वीकार करना और शेषको फेंक देना। और यदि तुम इन सबको ही फेंक दो तो भी मुझे कोई आघात नहीं

१. सम्भवतः राधेश्याम कथावाचक, जिनकी हिन्दी **रामायण** तबतक लोकप्रिय हो चुकी थी।
२. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ९९-१००।

पहुँचेगा।[1] मेरी तो केवल एक ही प्रबल इच्छा है, और वह यह कि तुम्हें पूरी तरह आराम मिले और कतई परेशानी न हो।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४३) से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २१३–१९ से भी।

१६८. पत्र : माताप्रसाद गुप्तको

[६ जुलाई, १९३२][2]

भाई माताप्रसादजी,

आपका पत्र और किताब मिली। कैदियोंको किसी किताबके सम्बन्धमें अपनी राय देनेकी मनाही है। इसलिए मुझे क्षमा करें। इसके अलावा मैं पाक-कलाकी पुस्तक पर अपने विचार व्यक्त करनेका अधिकारी भी नहीं हूँ, और न मैं विचार व्यक्त ही कर सकता हूँ।

आपका,
मोहनदास गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १७१।

१६९. पत्र : एक अमेरिकी मित्रको

७ जुलाई, १९३२

प्रिय मित्र,

आपके पत्रसे मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ। अगर आप इस देशकी जलवायुको और आश्रमकी कठोर जिन्दगीको सह सकें तो एक सदस्यके रूपमें आपको आश्रम में रखकर मुझे प्रसन्नता होगी। यदि आप सामूहिक रसोईमें भोजन करेंगे तो आपको रहने या खानेका कोई शुल्क नहीं देना होगा। लेकिन यहाँका जीवन कठोर और अत्यन्त सादा है। आश्रममें रहनेवाले सभी लोगोंको खेतोंमें या उद्योगशालामें कुछ

१. इसके बादका अंश बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्ससे लिया गया है।

२. साधन-सूत्रमें यह पत्र इस तारीखके अन्य पत्रोंके साथ ही रखा हुआ है। "डायरी"में यह ४ जुलाईके अन्तर्गत दिया गया है।

घंटे प्रतिदिन काम करना पड़ता है। सभी काम, जिसमें मैलेकी सफाईका काम भी शामिल है, आश्रमवासियोंको स्वयं करने पड़ते हैं। जो पोशाक हम पहनते हैं वह भी बहुत सादा होती है और आश्रममें ही काती, बुनी और सिली होती है। इस पर भी यदि आप बाहर निकलनेका साहस करते हैं तो, आपके आगमनका स्वागत करते हुए मैं आपको यह चेतावनी भी देना चाहूँगा कि जलवायु अथवा आश्रमका जीवन माफिक नहीं आनेकी स्थितिमें अमेरिका लौटने लायक पैसा यदि आपके पास न हो तो यहाँ न आयें। इस पत्रके बावजूद यदि आप भारत आनें और आश्रममें रहनेके इच्छुक हैं तो मैं चाहूँगा कि आप श्री रिचर्ड ग्रेगसे मिल लें जो काफी समय आश्रममें रह चुके हैं और उसके बारेमें सब-कुछ जानते हैं। यदि वे आपको यहाँ आनेके लिए प्रोत्साहित न करें तो आप यहाँ आनेका विचार न करें। उनका पता है: श्री रिचर्ड हर्स्ट हिल, विशेष सहायक, अध्यक्ष हॉवर्ड विश्वविद्यालय, वाशिंग्टन, सं० रा० अ०।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९३१९) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

१७०. पत्र: मणिबहन एन० परीखको

७ जुलाई, १९३२

चि० मणिबहन (परीख),

तुमने महादेवको जो पत्र लिखा है उसके बारेमें महादेवने मुझे बताया है। तुम्हारा शरीर साथ नहीं देता इसमें तुम क्या कर सकती हो? जिनके शरीर नहीं चलते ऐसे आश्रमवासियोंको यदि हम निकाल दें तो हमें अनेकको निकालना पड़ेगा। तुम्हें लज्जित होनेका तनिक भी कारण नहीं है। लज्जित तो उन लोगोंको होना चाहिए जो शरीरमे स्वस्थ होते हुए भी कामचोर हैं और काम नहीं करते। तुम्हारे जैसे लोगोंको यदि आश्रम नहीं रख सकता तो आश्रमका होना निरर्थक है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७०) से। सी० डब्ल्यू० ३२८७ से भी; सौजन्य: वनमाला एम० देसाई

१७१. पत्र : रेहाना तैयबजीको

७ जुलाई, १९३२

प्यारी बेटी रेहाना,

इस हफ्तामें अब तक तुम्हारा खत नहीं आया। तुमने जो भजन और गजल भेजे हैं इसे मैंने पेट भरकर पढ़ लीये। दोनों अच्छे लगे और दोनों अब बराबर समझा। भजन समझनेमें आसान हैं। गजलमें नये लफ्ज होनेके कारण समझना दुश्वार था। लेकिन दो-तीन बार पढ़नेसे अच्छी तरह समझ लीया। बहुत अच्छी गजल है। जफर तो बहादुरशाह बादशाहका शायरी नाम है ना? ऐसी गजल और भी भेजती रहो। तुमने एक खतमें लीखा था कि मेरे लायककी कुछ किताब ढूंढ़कर भेज देगी। अगर भूल गई हो तो अब याद करो। और कोई किताब मिले तो भेज दो। आज-कल मैं जामा-मिलियाकी कुछ किताबें पढ़ रहा हूँ। सब अच्छे भावसे लिखी गई हैं। दो तो ड्रामा थे। अब जो पढ़ रहा हूँ वह किमियागर वगैराह कहानियाँ हैं। तुमने ये किताबें देखी हैं? अब्बाजान, अम्माजानको हम सबकी तरफसे आदाब। तुम्हारे लिये मेरी तरफसे थोड़ी-बहुत कान-पकड़। यह काम कमालको सुपुर्द किया जाये। हमीदाके खतकी इंतेजारी कर रहा हूँ। सरदार, काका अभीतक अमीर अलीकी किताब पढ़ रहे हैं। यहाँ अब बारीश शुरू हो गया है। किसान लोग फीकरमें थे। हवामें खासी ठंडी आ गई है। पशाभाईकी बहन अच्छी होगी।[1]

इसमें तुम्हें न केवल शब्द-सम्बन्धी भूलोंमें सुधार करना होगा, बल्कि व्याकरण की भूलोंको भी सुधारना होगा। जो उर्दू किताब मुझे चाहिए उसमें सामान्य शब्द, व्याकरण, वाक्य-रचनाके नियम आदि हों तो अच्छा होगा। ऐसी किताब न हो तो उसे ढूंढ़नेकी मेहनत न करना।

बापूके आशीर्वाद
दुआ आदि, आदि

उर्दू/गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४७) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १५१ से भी।

१. यह अनुच्छेद उर्दूमें है।

१७२. पत्र : जोहराबानू अंसारीको

७ जुलाई, १९३२

मेरी प्यारी बेटी जोहरा,

तुम्हें यह खत पढ़कर हैरत होगी। इस खतको लिखनेकी जरूरत इसलिए हुई कि अब चूँकि पापाको[1] रिहा कर दिया गया है अतः तुम उनकी सेहतके बारेमें खत लिख सकती हो। यह भी लिखना कि उनका वजन कितना कम हुआ है? इन दिनों तुम क्या करती रहीं? सरदार वल्लभभाई और महादेव देसाई मेरे साथ हैं। हम सबका स्वास्थ्य ठीक है। अपने पिता और माताको हमारा सलाम देना। ईश्वर तुम्हें लम्बी जिन्दगी बख्शे और तुम्हें देशका एक बड़ा खिदमतगार बनाये। मुझे जल्दी लिखना। तुम खुशखत लिखोगी तभी मैं उसे पढ़ पाऊँगा।

मोहनदास गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १५३।

१७३. पत्र : रतिलाल पी० मेहताको

७ जुलाई, १९३२

प्रिय रतिलाल,

क्या तुमने मुझे पूरी तरह भुला नहीं दिया है? शशिको[2] शारदा मन्दिरसे बिल्कुल न हटाना। उसे सही ढंगकी शिक्षा मिल रही है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९१।

१. डा० मु० अ० अंसारी।

२. रतिलालका पुत्र।

१७४. पत्र : कुसुमको

७ जुलाई, १९३२

प्रिय कुसुम (छोटी),

तुमने मुझसे जो सवाल पूछा था वह क्या था? मैं बिल्कुल भूल गया हूँ। तुम उसे फिर लिख दो तो मैं उसका जवाब लिखूँगा। मेरा खयाल था कि मैं सारे प्रश्नोंके उत्तर पहले ही दे चुका हूँ। नीमके पेड़के नीचे बैठकर धूपका सेवन करना निश्चय ही अच्छी चीज है। तुम्हें कटि-स्नान शुरू करना चाहिए। उससे बुखार अवश्य ही उतर जायेगा। मुख्य चीज तो निश्चय ही आराम है। टहलने जाने पर थकावटका अनुभव तुम्हें बिल्कुल नहीं होना चाहिए। जब तुम पढ़ती हो और सितार बजाती हो, तो फिर तुम थकावट कैसे अनुभव करती हो? अन्य चीजें तो लेटे-लेटे की जा सकती हैं। गुजरातीमें तुम 'रायचन्दभाईना लेखो' या रायचन्दभाईके लेख, 'काव्य-दोहन' के सभी भाग, 'नवल ग्रन्थावली', 'अष्टोदय', 'शकुन्तला' का गुजराती अनुवाद, गुजराती पाठमालाके चुने हुए लेख, काका साहबकी रचनाएँ, किशोरलालभाई लिखित पुस्तकें आदि पढ़ सकती हो। ये सब काफी होंगे। और भी बहुत-सी चीजें गिनाई जा सकती हैं।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १९१।

१७५. पत्र : सीतला सहायको

७ जुलाई, १९३२

भाई सीतला सहाय,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा। तुम प्रभुदाससे होड़ करो यह तुम्हारे लिए उचित नहीं। सम्भव है कि प्रभुदासका खर्च कुछ कम हो, क्योंकि उसे कुछ और सुविधाएँ भी मिलती हैं। प्रभुदास जो खर्च करता है उससे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। लेकिन तथ्य तो यह है कि केवल उन्हीं खर्चोंको ध्यानमें रखना होगा जिन्हें टाला नहीं जा सकता। रसिकके[1] ऊपर अचानक ही काफी खर्च करना पड़ गया। मगनलाल बीमार होकर पटनामें ऐसी जगह मरा कि कुछ खर्च नहीं हुआ। किसी समय कृष्णदासका भी कोई खर्च नहीं था। मगर ज्यों ही उसे

१. हरिलाल गांधीका पुत्र, जिसकी मृत्यु १९२९ में हो गई थी।

देहरादून ले जाया गया, खर्च एकदम बढ़ गया। इसलिए अन्ततोगत्वा प्रत्येक मामले पर अलगसे विचार किया जाना चाहिए। हम केवल यही आशा रख सकते हैं और माँग कर सकते हैं कि जो-कुछ वे खर्च करें सोच-विचार कर करें और खर्चका हिसाब रखें। आश्रम तो उतना ही खर्च कर सकता है जितना खर्च करना उसकी सामर्थ्यमें है। जब आश्रमकी सामर्थ्य न रहे तो हम सबको आश्रममें इकट्ठे होकर उसका परिणाम भुगतना चाहिए और ऐसा करते हुए हमें हँसना चाहिए और सुख मानना चाहिए। मैंने नारणदासको यही बात सुझाई है। पद्माका[१] बिल देखकर यदि कुछ लिखनेकी जरूरत पड़ी तो तुम्हारे वहाँ रहनेपर तुम्हें अथवा पद्माको सूचित किया जाना चाहिए। क्या यह ठीक नहीं है?

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ २११।

१७६. पत्र : लक्ष्मीको

७ जुलाई, १९३२

बेटी लक्ष्मी,[२]

अगर देवदासने मुझे तार न दिया होता तो मुझे पापाकी स्थितिके बारेमें जानकारी कहाँसे मिलती? मैं आशा करता हूँ कि तुम इस समय एक बहादुर स्त्रीकी तरह काम कर रही हो। पापाके बारेमें पूरी जानकारी मुझे भेजती रहना। मैंने पापाके लिए भी एक पत्र लिखा है जिसे इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। अण्णा अब आश्रममें आ गये होंगे। उनसे कहना कि वे मुझे पत्र लिखें।

चिन्ता करके अपना स्वास्थ्य न बिगाड़ लेना। मृत्युका भय और शोक तो बिल्कुल छोड़ देना चाहिए। जो बात मानवमात्रके लिए अवश्यम्भावी है उसके लिए कष्ट या भय कैसा? मृत्युको ईश्वरीय दण्ड मानना भूल है। मृत्यु तो मानवके लिए ईश्वरका प्रसाद है।

मैं तुम्हारे विस्तृत पत्रकी प्रतीक्षामें हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ १४९।

१. सीतला सहायकी पुत्री।

२. राजगोपालाचारीकी पुत्री, जिनका बादमें देवदास गांधीसे विवाह हुआ।

१७७. पत्र : शामल आर० रावलको

८ जुलाई, १९३२

चि० शामल,

मिलमें काम करनेवाले ऐसे अनेक मजदूर हैं जो शराबको हाथ तक नहीं लगाते। यदि भाई तुम्हारी बात न मानें तो उसका साथ छोड़ देना और ईश्वरसे प्रार्थना करना कि वह उसे सन्मति दे। पहले तो उसे विनयपूर्वक खूब समझाना। जो व्यक्ति बीमार हो उसके लिए यज्ञकी छूट है। यज्ञके समयका पालन करना अच्छा है। लेकिन यदि उसका पालन न हो सके तो यज्ञ किसी और समय किया जा सकता है।

शराब किसी रोगका निवारण नहीं कर सकती।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४४) से। सी० डब्ल्यू० २८७९ से भी; सौजन्य : शामल आर० रावल

१७८. पत्र : वनमाला एन० परीखको

८ जुलाई, १९३२

चि० वनमाला,

फूल भी हमारी ही तरह है। वह अमुक समय पर ही खिलता है। तभी वह पूर्ण रूपसे विकसित हुआ माना जाता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७७)से। सी० डब्ल्यू० ३००० से भी; सौजन्य : वनमाला एम० देसाई

१७९. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

८ जुलाई, १९३२

बालक और बालाओ,

प्रार्थनाके समय जिसे नींद आती है वह खड़ा हो जाता है, यह एक अच्छी बात है। खड़े होनेसे जिनके पैर दर्द करते हैं उसका कारण यह है कि उन्हें खड़ा होना नहीं आता। जो लोग अपने पाँवोंको जमीन पर अंग्रेजी भाषाके 'वी' शब्दके समान रखते हैं — और जो बराबर सीधे खड़े होते हैं वे लोग बिना थके काफी लम्बे समय तक खड़े रह सकते हैं। जिन्हें खड़े रहनेकी आदत न हो उन्हें एक-दो दिन थकावट अवश्य महसूस होगी। लेकिन आदत पड़ जानेपर थकावट महसूस नहीं होती। हमें गलत मार्ग पर जानेवाले व्यक्तिके प्रति स्नेहभाव रखना चाहिए। उसकी सेवा करनी चाहिए और हमें सही मार्गका ही अनुसरण करना चाहिए। इस तरह गलत रास्ते पर जानेवाला व्यक्ति भी किसी-न-किसी दिन सही रास्ते पर लौट आयेगा। जो मनुष्य घूमते-फिरते भी भक्तिमें लीन रहता है वह अन्य लोगोंको भी इसकी ओर प्रेरित करता है। जीवनमें सत्यका आचरण करनेसे सब कार्य सफल होते हैं।

तुम्हारे प्रश्न ऐसे लगते हैं मानो तुमने केवल प्रश्न करनेके विचारसे ही प्रश्न किये हैं।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१८०. पत्र : नथुराम त्रिकमदासको

८ जुलाई, १९३२

चि० नथुराम,

जो काममें हिस्सा नहीं लेता उसे भागीदार नहीं माना जा सकता।

बैलोंको बधिया करवानेमें निश्चय ही हिंसा है।

पहने हुए जनेऊका उपयोग चरखेकी मालके रूपमें नहीं किया जा सकता।

जो मनुष्य दूसरोंसे पूछे बिना उन पर अधिकार जताता है वह निरंकुश शासक है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१८१. पत्र : गोकीबहनको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

पिछले एक महीनेसे तुम्हें पत्र लिखनेका मन कर रहा था। इसीसे मैंने तुम्हारा पता मँगवाया था। अभी-अभी मिला है। उम्मीद है, तुम्हारा मन शान्त होगा। तुममें ज्ञान है उसका उपयोग करना। वहाँ तुम्हारे साथ कोई रहता है क्या? पत्र लिखा करना।

मोहनदासके जयश्रीकृष्ण

श्रीमती गोकीबहन[1]
करसनदास धरमसिंहका बँगला
कृष्ण-भुवन
बोरीवली

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८१३) से।

१८२. पत्र : महेन्द्र वी० देसाईको

८ जुलाई, १९३२

चि० मनु,[2]

बालकोंको दूध अच्छा न लगे तो काम कैसे चले? जब भूख लगे तब दूध ही पिया जाये तो अच्छा लगने लगेगा। प्रार्थनाके ५ मिनटके मौनके समय रामनाम जपना चाहिए, जिस बच्चेको खीझनेकी आदत हो उसे नहीं खिझाना चाहिए। दैनन्दिनी लिखनेसे हमने कब क्या किया, इसकी खबर रहती है और इस तरह आलस्य भी दूर हो जाता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३३) से; सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. शान्तिकुमार मोरारजीकी बुआ।
२. वा० गो० देसाईके पुत्र।

१८३. पत्र : पूँजाभाई एच० शाहको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय पूंजाभाई,

निष्पाप व्यक्तिके लिए मृत्यु सुखकी सेजके समान है। यह पाठ हृदयंगम कर लेनेके बाद कि जन्म और मृत्यु एक ही वस्तु है, हम मान सकते हैं कि हम जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त हो गये हैं।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २०१।

१८४. पत्र : पुष्पा एस० पटेलको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय पुष्पा,

तुमने अपनी लिखावट काफी सुधार ली है।

जीवनचरित्र लिखनेका मतलब है किसी व्यक्तिके बारेमें छपने योग्य वे सभी बातें लिखना जो हमें मालूम हैं। अगर प्रार्थनाके समय किसीको नींद जैसी लगने लगे तो उसे खड़ा हो जाना चाहिए।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९७।

१८५. पत्र : बलभद्रको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय बलभद्र,[1]

तुम्हारे पत्रसे मुझे संतोष नहीं है। तुम्हें प्रश्न नहीं सूझते इसका अर्थ यह है कि तुम प्रश्न पूछना ही नहीं चाहते। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जिन्हें प्रश्न पूछना है वे पत्र लिखें ही। तुम साफ-साफ अक्षरोंमें लिखो कि तुम क्या कर रहे हो, क्या देख रहे हो और क्या सोच रहे हो। अगर तुम मेरे लेख पढ़ो तो तुमने जो प्रश्न पूछे हैं उनके उत्तर तुम्हें मिल जायेंगे। क्या तुम्हें याद है तुमने क्या पूछा था? अगर कोई गलती करता है तो उसके गुरुजन उसे वैसा करनेसे रोकते हैं। यज्ञके समय किसीको बोलना नहीं चाहिए।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ २०१।

१८६. पत्र : शान्तिको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय शान्ति,

वर्षाके दिनोंमें असंख्य कीड़े पैदा हो जाते हैं। तुम्हें घोंघे नहीं पकड़ने चाहिए। इन कीड़ोंको भगवानने बनाया है। हम सभी प्राणियोंकी उपादेयताको नहीं जानते।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९३।

१. आश्रमकी पाठशालाका एक विद्यार्थी।

१८७. पत्र : जयाको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय जया,

अगर हममें साहस है और उसके प्रति प्रेम है तो जब भी हम किसी चोरसे मिलें, हमें उससे चोरी न करनेका अनुरोध करना चाहिए। अगर वह हमें मारता है तो उसकी मारको सहन करना चाहिए।

सोते समय सपने नहीं आने चाहिए। अगर तुम गलती पर हो और गुरुजन तुम्हें सजा नहीं देते तो यह दया है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९३।

१८८. पत्र : आनन्दीको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय आनन्द,

देखूंगा कि तुम अपने चिड़चिड़ेपनको कब तक याद रखती हो। यह अच्छी बात है कि तुम नियमित रूपसे दूध पीती हो। सायंकाल घूमने जाते समय मैं लाठी ले जाना कैसे भूल सकता हूँ? तुम्हारी जैसी लड़कियोंको अध्यापकों द्वारा चुनी हुई पुस्तकें पढ़नी चाहिए। तभी तुम भी किताबें चुनना सीख जाओगी।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९५।

१८९. पत्र : महावीर गिरिको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय महावीर,

तुम्हें अबतक पैसे मिल गये होंगे। सभीको अपनी डायरी पूरी तरह लिखनी चाहिए। तुम सब एक या दो दिनका अपना पूरा कार्यक्रम मुझे लिख भेजो। आशा है दुर्गा[1] अब अच्छी होगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १९९।

१९०. पत्र : इन्दु एन० परीखको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय इन्दु,

यह बहुत अच्छा है कि तुम नारणदास पर विश्वास करती हो। जैसा वह कहता है, सम्भव है कि भोजनमें संयम बरतने और पर्याप्त निद्रा लेने पर तुम्हें लाभ पहुँचेगा। क्या तुम्हें टट्टी साफ हो जाती है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स : होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ २०१।

१. महावीर गिरिकी बहन।

१९१. पत्र : शारदा सी० शाहको

८ जुलाई, १९३२

प्रिय शारदा,

मेरा विश्वास है कि भरतखण्ड नाम कैसे पड़ गया इसकी जानकारी वास्तवमें किसीको नहीं है। लेकिन कहा जाता है कि यह नाम शकुन्तलाके पुत्र, भरतसे पड़ा है। लेकिन रोगोंको हिलाने आदिसे सम्बन्धित कथाओं पर विश्वास मत करो। पुराने जमानेमें हमें कुछ विषयोंका ज्ञान था, तो कुछ विषयोंका कोई ज्ञान नहीं था।

अपने भाईके साथ रहनेवाली बहनको 'सहधर्मचारिणी' कहा जा सकता है। लेकिन इस शब्दका प्रयोग केवल पत्नीके लिए ही करनेका चलन है। मैं पत्रोंको फाड़ रहा हूँ

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९५३) से; सौजन्य: शारदाबहन जी० चोखावाला

१९२. पत्र : ई० ई० डॉयलको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

मेजर भण्डारीसे यह दरयाफ्त करने पर कि मेरी डाकमें इधर हालमें गड़बड़ी क्यों होती रही है, मुझे पता चला है कि अधिकारियोंको मेरी आने-जानेवाली सारी डाकको सरकारके पास भेजनेके आदेश हैं। पत्राचारको मैं एक स्वस्थ मानसिक भोजन मानता हूँ, और यदि इस प्रक्रियाके फलस्वरूप मेरी चिट्ठियोंको रवाना करने और मेरे नाम आई चिट्ठियोंको मुझे देनेमें बहुत ज्यादा विलम्ब होगा, तो पत्राचारमें मुझे कोई रुचि नहीं रह जायेगी। मैं व्यर्थ ही चिट्ठी नहीं लिखता, और जहाँ तक मैं जानता हूँ, मै अपने मित्रोंको पत्र लिखते समय उचित मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता हूँ। अगर सरकार चाहती हो कि अभीतक मैं जिस प्रकार पत्र लिखता रहा हूँ उसी प्रकार लिखता रहूँ तो मैं चाहूँगा कि मेरी चिट्ठियाँ मुझे नियमित रूपसे मिलते रहनेका आश्वासन हो। आश्रमको भेजी जानेवाली और आश्रमसे आनेवाली चिट्ठियाँ नियमित रूपसे लिखी जाती हैं। मैं इस पत्र-व्यवहारको, जिसमें श्रीमती मीराबहन

द्वारा लिखे गये और उनको भेजे गये पत्र शामिल हैं, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। मैं जल्दीसे-जल्दी जानना चाहूँगा कि डाकके मामलेमें मेरी स्थिति क्या है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) भाग १, पृष्ठ २३९।

१९३. पत्र : पी० जी० मैथ्यूको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय मैथ्यू,

'गॉड इज ट्रुथ' (ईश्वर ही सत्य है), इस वाक्यमें 'इज' शब्द तुल्यता प्रकट नहीं करता, और न इसका अर्थ केवल 'इज ट्रुथफुल' (सत्यनिष्ठ है) ही है। सत्य ईश्वरका एक गुणमात्र नहीं है, बल्कि ईश्वर ही सत्यरूप है। ईश्वर यदि सत्य नहीं है तो फिर कुछ नहीं है। 'ट्रुथ' का संस्कृतमें अर्थ होता है 'सत्'। 'सत्' का अर्थ है 'है'। इसलिए 'है' में सत् अन्तर्निहित है। ईश्वर है, ईश्वरके सिवा कुछ नहीं है। अतः हम जितना ही सत्यनिष्ठ होंगे, ईश्वरके उतना ही निकट होंगे। हम जिस हद तक सत्यनिष्ठ हैं, केवल उसी हद तक हम हैं।

मुर्गी और उसके चूजोंका दृष्टान्त अच्छा है। लेकिन इससे भी बेहतर दृष्टान्त 'ईश्वर और उसके दासों' का है। ये दोनों एक दूसरेसे बहुत दूर हैं, क्योंकि शारीरिक रूपसे निकट होते हुए भी दोनों मानसिक रूपसे एक दूसरेसे बहुत दूर हैं। अस्तु मिल्टनकी यह पंक्ति कि 'माइन्ड इज इट्स ओन प्लेस'[1] (मन चाहे तो स्वर्गमें नरक या नरकमें स्वर्गकी रचना कर सकता है) और 'गीता' का यह वचन कि "मनुष्य अपनी मुक्ति या दासताका रचयिता स्वयं है।"[2]

इसी मुक्तिको प्राप्त करनेके लिए तो मैं चाहता हूँ कि हम पर्‍या और मजदूरों-जैसा परिश्रम करें।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५५५) से। **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड – १ से भी।

१. **पैरेडाइज़ लॉस्ट** से।

२. "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः", वास्तवमें यह उद्धरण **गीता** का नहीं अपितु **महाबिन्दु उपनिषद्** का है।

१९४. पत्र : भाऊ पानसेको

९ जुलाई, १९३२

चि० भाऊ,

हमारी प्रार्थनाका पहला श्लोक मुझे भी खटकता था। लेकिन गम्भीरतापूर्वक सोचने पर यह महसूस हुआ कि विवेकपूर्वक इस श्लोकका पाठ समुचित है। हमारी बुद्धि तो अवश्य यह कहती है कि हम मिट्टीके पुतले नहीं हैं अपितु इस शरीरमें निवास करनेवाले साक्षी रूप आत्मा हैं। उपर्युक्त श्लोकमें इसी साक्षी स्वरूप आत्माका वर्णन है और फिर उपासक प्रतिज्ञा करता है कि "मैं वही साक्षी ब्रह्म हूँ।" ऐसी प्रतिज्ञा वही मनुष्य कर सकता है जो वैसा बननेके लिए सतत प्रयत्नशील है और शारीरिक बन्धनोंको ढीला करनेमें कृतसंकल्प है। जब-जब मूर्छा, भय, रागद्वेष उत्पन्न हो वह ब्रह्मके गुणोंको याद करके रागद्वेषादिसे रहित होनेका प्रयत्न करता है। ऐसा करते-करते जो मनुष्य नित्य ब्रह्मका चिन्तन करता है अन्तत: वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए हम विनम्रभावसे लेकिन दृढ़तापूर्वक भले नित्य इस श्लोकका पाठ करें और अपने प्रत्येक कार्यमें उस प्रतिज्ञाको साक्षी रूप मानें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३३) से। सी० डब्ल्यू० ४४७६ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१९५. पत्र : जमनाबहन गांधीको

९ जुलाई, १९३२

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि चौमासेमें राणावावमें रहा ही नहीं जा सकता तो तुम भले ही आश्रममें वापस चली आना। लेकिन यदि तुम्हारी तबीयत वहाँ भी ठीक न रहे तो किसी और जगहकी तलाश करनी होगी। मुझे ऐसी आशंका भी है कि आश्रममें तुम्हारी मानसिक स्थिति वैसी नहीं रहती जैसी आश्रमसे बाहर रहती है। तुम आश्रमके बाहर जो खुराक जिस प्रकार लेती हो वैसी ही और उसी प्रकार आश्रममें भी लेना। स्वास्थ्यके विचारसे ही यदि उसमें कुछ परिवर्तन करना पड़े तो यह एक अलग बात है। मेरी इच्छा है कि तुम्हें आश्रमकी आबोहवा अनुकूल पड़ जाये। किसी-न-किसी दिन तो अनुकूल होगी ही।

पुरुषोत्तमसे लिखनेको कहना। उससे कहना कि वह राणावावका चित्रण करे।

अपने पड़ोसियोंके साथ तुमने बड़े अच्छे सम्बन्ध बनाये हैं। कुल मिलाकर वहाँ कितने दिन रहीं और कितना खर्च हुआ, सो सब बताना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५६) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

१९६. पत्र : अमतुस्सलामको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय अमतुल,

यदि तुम घर्षण-स्नान (सिट्ज बाथ) लेती रहीं तो मासिक-धर्ममें होनेवाली अनियमितता दूर हो जायेगी। इस उपचारके साथ सादा आहार लेनेसे हजारों स्त्रियों को लाभ पहुँचा है।

डॉ० शर्माको मैंने लिखा[1] तो था, लेकिन उनका कोई जवाब मुझे नहीं मिला है।

मैं यह नहीं चाहता कि तुम अपनी दैनन्दिनी मुझे भेजो। मैं तो सिर्फ तुम्हारी दिनचर्या जानना चाहता था, सो तुमने बहुत अच्छे ढंगसे दे दी है।

तुम्हारी उर्दूकी लिखावट इस बार काफी साफ है। मैं हर शब्दको स्पष्ट पढ़ सका हूँ। तुम्हारी अंग्रेजीसे तो यह असंदिग्ध रूपसे बेहतर है। ज्यादासे-ज्यादा उर्दूमें ही लिखनेकी कोशिश करो। और जब तुम इजाजत दे दोगी तो मैं भी तुम्हें उर्दूमें लिखूँगा।

सरकारने मीराबहनको मुझसे मिलनेकी अनुमति अभी तक नहीं दी है। और यदि यह नहीं दी जाती तो मुझे भय है कि मुझे अन्य लोगोंसे भेंट करनेके सुखसे भी स्वयंको वंचित करना पड़ेगा।

लेकिन तुम चिन्ता मत करना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २४८) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २०७ से भी।

१. देखिए "पत्र: डा० हीरालाल शर्माको", १८-६-१९३२।

१९७. पत्र : निर्मलाबहन गांधीको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय नीमु,

रामदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ा। तुम भी कितनी बेवकूफ हो! तुम अपनी कठिनाइयोंके बारेमें मुझे नहीं लिखती और न ही नारणदासको बताती हो, लेकिन बेचारे रामदासको उनके बारेमें लिखती हो! क्या इसीलिए मैंने तुम्हारा ब्याह रामदाससे किया था? और फिर आश्रमकी शिक्षा ही यह है कि स्त्रीको अपने आपको परावलम्बी, निर्बल नही समझना चाहिए, अपने पतिका ही आसरा नहीं लेना चाहिए बल्कि (जीवनमें) स्वयं अपना पथ-निर्माण करना चाहिए। गंगादेवीका उदाहरण लो। तोतारामजी जब कंगाल हो गये तब गंगादेवीने ही उनको हिम्मत बँधाई। तुम्हारी कठिनाई तो कुछ भी नहीं है। अगर किसी लड़केकी जरूरत है तो नारणदास ढूंढ़ देगा। तुम्हें नारणदासको पिता-तुल्य समझकर अपनी सारी कठिनाइयाँ उसे बतानी चाहिए। निश्चय ही उसमें तुम्हारा विश्वास है। मेरी इतनी ही सलाह है। आश्रमका काम करनेके लिए किसी लड़केको मत रखो। बच्चोंकी उचित देख-भाल करनेको मैं आश्रमका ही काम मानता हूँ। बच्चोंकी देखभालकी जिम्मेदारी आश्रमकी है। तुम आश्रमकी ओरसे अपने कर्तव्यका पालन कर रही हो। अतः ऐसा मानो कि तुमने सारा समय आश्रमको दिया है। इसके बावजूद यदि तुम्हें कोई लड़का रखनेकी जरूरत हो तो अलग बात है। तुम मुझे अच्छी तरह लिखा करो, अन्यथा मुझे तुम्हारा इलाज करना पड़ेगा।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ २०५।

१९८. पत्र : छगनलाल जोशीको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय छगनलाल,

ईश्वरने चाहा तो हम २१ तारीखको मिलेंगे। तुम अच्छी तरह जानते हो कि जैसा हमारा इरादा हो या जैसा हम चाहें ठीक वैसा ही हमेशा नहीं होता। देखो, पापा मृत्यु-शय्या पर पड़ी नजर आती थी, लेकिन वह ठीक हो गई। उसका पति, वरदाचारी, हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ था, लेकिन थोड़ीसी बीमारीके बाद ही वह राजाके जिम्मे एक विधवा पुत्री छोड़ कर चल बसा। पापा उनकी सबसे प्रिय सन्तान है। वह बड़े दृढ़ मनवाली लड़की है और इस धक्केको साहसके साथ सहेगी। यदि मनुष्यके हृदयमें ज्ञान गहरा उतर जाये तो फिर वह उतना ही दुःख अनुभव करता है जितना वह सहन कर सके, क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति जन्म और मृत्यु दोनोंमें समान रूपसे अप्रभावित रहता है। चूँकि जीवनकी अनिश्चितताका यह उदाहरण मेरे मनमें ताजा था इसलिए मैंने पत्रका आरम्भ 'ईश्वरने चाहा तो' से किया है। यदि २१ तारीखको मिलनेकी हमारी इच्छा ईश्वरकी इच्छाके अनुकूल हुई तो हम उस तारीख को मिलेंगे। और यदि हम नहीं मिल सके तो भी हम उसके प्रति उतने ही आभारी होंगे।[1]

आश्रमको लिखा पत्र साथ ही संलग्न कर रहा हूँ।

अब जहाँ तक रामदासकी बात है, नीमूका पत्र और पृष्ठके खाली हिस्से पर तुमने जो-कुछ लिखा है वह मुझे मिल गया। तुमने खाली हिस्से पर लिखा, इसमें अशिष्टता जैसा कुछ नहीं है, बल्कि मेरी रायमें उस हिस्सेका उपयोग न करना अशिष्टता होगी। फिर, जेलमें तो हमें प्रत्येक चीजका लोभ होता है और हमें जीवन भर यह लालच बनाये रखना चाहिए। यह भी एक जेल ही है, क्योंकि शरीर भी तो जेल स्वरूप ही है। अतः यदि हम अपने जीवन-भर इस छोटेसे जेलके सभी अच्छे नियमोंका पालन कर सकें तो अच्छा ही होगा। यदि हम उनका पालन न कर सकें तो उस हद तक हमें अपनी कमजोरीको स्वीकार करना चाहिए और जहाँतक सम्भव हो, उनका पालन करना चाहिए।

मैंने नारणदासको लिखा है कि नीमूसे बात करनेके बाद जो उचित हो सो करे।[2] मैंने हँसी-हँसीमें नीमूको हल्की-सी टकार भी बताई है।[3] वह तुम्हें

१. इस अनुच्छेदको **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड-१ के गुजराती अंशसे मिला लिया गया है।

२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ६/१०-७-१९३२।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

तकलीफ क्यों देती है? उसने मुझे सीधे क्यों नहीं लिखा? उसने नारणदाससे सारी बातें स्पष्ट क्यों नहीं कर लीं? क्या उसकी शादी तुमसे इसलिए हुई है कि वह यहाँ भी तुम्हें तकलीफ दे? फिर, आश्रममें पली हुई कोई लड़की अपनेको निर्बल या पराश्रित नहीं मानेगी। वह अपना रास्ता निकाल ही लेगी। वह अपने पतिका मुँह देखती बैठी नहीं रहेगी। गंगादेवीने कितना अच्छा उदाहरण रखा है? तोताराम कंगाल हो गये तो भी उसने उनकी हिम्मत कायम रखी और उनकी कंगालीको महसूस नहीं होने दिया। यदि वह आगेसे मुझे पत्र नहीं लिखती तो उसे ठीक करना होगा। मैंने उसे यह बात लिख दी है और अपना यह मत व्यक्त कर दिया है कि आश्रमका काम करनेके लिए उसे कोई लड़का नहीं रखना चाहिए। जो माता अपने बच्चोंकी उचित देखभाल करती है वह आश्रमका ही काम करती है, क्योंकि नीमू जबतक आश्रममें है तबतक बच्चोंकी देखभालका दायित्व भी आश्रमका है। बच्चोंकी देखभाल करके नीमू आश्रमके प्रति अपने कर्तव्यका निर्वाह करती है, अतः उसका यह काम आश्रमके काम जैसा ही है। तुम्हें इस बारेमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। इस चिन्ताका भार मुझपर डालकर तुमने ठीक ही किया है। आजकल मेरे पत्रोंकी जाँच-पड़ताल की जाती है। यों, ऐसा करनेका कोई कारण तो नहीं है। लेकिन क्या हम लोग बन्दी नहीं हैं? अतः मेरा पत्र आश्रम पहुँचनेमें शायद देर हो। ऐसी स्थितिमें भी चिन्ताकी कोई बात नहीं है। तुम्हारा वजन बढ़ना चाहिए। डाक्टरका कहना है कि रामदास अपनी रुचिके अनुसार जो चाहे खा सकता है और उसकी माँग कर सकता है। यदि दूध जरूरी हो तो लेना चाहिए। तुम्हें शरीर दुर्बल नहीं होने देना चाहिए। मैं तुम्हारा स्वभाव जानता हूँ। मैं भी वैसे ही विचार रखता हूँ। लेकिन यदि मुझे विश्वास हो कि मेरे शरीरको अमुक चीजोंकी जरूरत है तो मैं उन चीजोंको भी लेने में नहीं हिचकूँगा जो मेरे अन्य साथियोंको नहीं मिलतीं। यह अलग बात है कि हमें यह पता हो कि अन्य साथियोंको भी उन चीजोंकी जरूरत है।

सुरेन्द्रके स्वास्थ्यके बारेमें कुछ विचार करनेकी जरूरत है। क्या वह इस समय गेहूँ लेता है? उसका वजन बढ़ना चाहिए। यदि शक्ति बनी रहे तो वजन बढ़ानेकी कोई जरूरत नहीं है।

मैंने श्री दरबारीके लिए एक पारसी पुस्तक भेजी है। मैंने उसका मूल्य नहीं दिया है। पढ़ चुकने पर वह उसे वापस कर देंगे। यह किताब बहुत अच्छी है। इसमें जरथुस्ती नीति-शास्त्रका पूरा निचोड़ दिया गया है। अब श्री दरबारी पूरी तरह स्वस्थ होंगे।

देवदास पूर्णतः स्वस्थ हो गया है। उसके तबादलेके बारेमें कुछ भी निश्चित नहीं है। ऐसा लगता है कि अन्य कैदी जहाँ रखे गये थे वहीं बने हुए हैं।

प्रो० त्रिवेदीने मुझे (स्वामी) विवेकानन्दकी रचनाएँ भेजी हैं। मैंने उन्हें मँगाया नहीं था। अगर तुम्हारे यहाँसे किसीने इन किताबोंकी माँग की हो तो कृपया मुझे सूचित करना ताकि मैं उन्हें उनके पास भेज दूँ।

हम लोगोंकी गतिविधिका समाचार यह है कि सरदारने संस्कृतका अध्ययन शुरू कर दिया है। उन्होंने सातवलेकर रचित 'गाइड टु संस्कृत' के २४ भाग मँगाये हैं। पहला भाग लगभग तीन दिनमें समाप्त हो जायेगा। वह कताई शुरू करनेकी कोशिश कर रहे हैं। वह लिफाफे बनानेका काम भी कर रहे हैं। यह तो तुम्हें पहले ही पता है कि हम तीनोंका वजन बढ़ गया है।

हमें पढ़ने योग्य कोई नई किताबें नहीं मिली हैं। चन्दूलालने मुझे गोंडल रीडिंग सीरीज भेजी है।

यदि रामदास नीमुको पत्र लिखे तो मैंने ऊपर जो-कुछ लिखा है उसका सार-संक्षेप लिख दे ताकि मेरा पत्र यदि उस तक देरसे पहुँचे या बिल्कुल भी न पहुँचे तो भी उसे मेरे विचार मालूम हो जायें।

आश्चर्यकी बात है कि इस बार तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया है।

हम तीनों तुम सबोंकी याद करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मेरी डाककी कड़ी जाँच की जाती है। परिणामस्वरूप इस बातकी हर चन्द सम्भावना है कि मगनभाईकी 'मीमांसा' बीच ही में खो जाये। अतः यदि यह पुस्तक डाह्याभाईको भेजी जाये तो वह उसे लेता आये। वह उसे खुद सुपरिंटेंडेंटको दे देगा तो उसके खोनेका कोई डर नहीं रहेगा।

तथापि उसे अपने पास उसकी एक प्रति रखनी चाहिए।

बापू

[पुनश्च :]

मैं तुम्हारे पढ़नेके लिए श्री भणसालीका पत्र साथ भेज रहा हूँ। तुम उसे पसन्द करोगे। इसे वापस भेजना जरूरी नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २७५-८३, तथा **महादेवभाईनी डायरी,** खण्ड – १।

१९९. पत्र : धीरूको

९ जुलाई, १९३२

प्रिय धीरू,

मुझे तुम्हारा पत्र स्पष्ट नहीं लगता। तुम कहते हो कि १५ अंकका सूत कातने में कोई कठिनाई नहीं होती और ३० अंक तक पहुँच कर बस हो जाती है, लेकिन १५ और ३० अंकमें तो बहुत अन्तर होता है। क्या तुम कहना चाहते हो कि ३० अंकका सूत कातनेमें कोई कठिनाई नहीं है? अगर तुम्हारा यही कहना है तो ३० अंकका सूत कातनेकी रफ्तार क्या है? एक तोला सूत कातनेमें कितना फुचड़ा निकलता है? ४० अंकका सूत कातनेकी रफ्तार क्या है? इसके बाद कितना फुचड़ा निकलता है? इससे ज्यादा बारीक सूत कातनेमें क्या कठिनाई है? प्रभुदासको तुममें बहुत भरोसा है। अगर तुम उसकी आशाओंको फलीभूत करना चाहते हो तो तुम चरखेमें पूरी तरह मन लगाओ और उसमें यदि कोई खराबी हो तो उसका पता चलाओ और उसकी सूत निकालनेकी क्षमताका पता करो। एक ही तकुए पर कातनेसे शायद ज्यादा बारीक सूत निकाला जा सके। यह भी पता चलाओ कि क्या तुम मगन चरखे पर एक तकुएसे उतना ही सूत निकाल सकते हो जितना साधारण चरखे पर एक तकुएसे निकाल सकते हो?

बहुतसे मुसलमान पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं। एक बार मिथ्या भाषण करनेवाले व्यक्तिमें और आदतन झूठ बोलनेवाले व्यक्तिमें बहुत अन्तर है।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २०९।

२००. शिक्षा[1]

१० जुलाई, १९३२

आश्रमका इतिहास लिखते हुए शिक्षाके सम्बन्धमें जो विचार मुख्य रूपसे मेरे मनको आलोड़ित कर रहा है उसका सार मैं यहाँ देता हूँ। आश्रमके कई लोगोंको यहाँ शिक्षाकी, पढ़ने-लिखनेकी कमी खटकती है और मैं भी इस कमीको महसूस कर सकता हूँ। लेकिन कदाचित् यह कमी आश्रमके साथ हमेशा बनी रहेगी। उसके कारणोंमें मैं अभी नहीं पड़ूँगा।

हमें यह कमी महसूस होती है, क्योंकि हम शिक्षाका अर्थ और उस अर्थके अनुरूप शिक्षा प्राप्त करनेके सही ढंगको नहीं समझ पाये हैं, अथवा वर्तमान पद्धति ठीक है, ऐसा अपने मनमें मानकर कार्य कर रहे हैं। मेरे विचारसे वर्तमान शिक्षा और उसके आदान-प्रदानका ढंग, ये दोनों ही दोषपूर्ण हैं।

सच्ची शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा हम अपनेको, आत्माको, ईश्वरको, सत्य को पहचान सकें। इसके लिए किसीको भले ही साहित्यके ज्ञानकी जरूरत होती है, किसीको भौतिक शास्त्रकी, किसीको कलाकी, आदि-आदि। लेकिन शिक्षा मात्रका उद्देश्य आत्मदर्शन होना चाहिए। आश्रममें यही चीज है। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर हम अनेक प्रवृत्तियोंको चलाते हैं। ये सब प्रवृत्तियाँ, मेरे विचारानुसार, शुद्ध शिक्षा हैं। आत्मदर्शनके उद्देश्यके बिना भी यही प्रवृत्तियाँ चल सकती हैं। जब यह बात हो तब ये प्रवृत्तियाँ भले ही आजीविकाका अथवा किसी और चीजका साधन हों, लेकिन वह शिक्षा कदापि नहीं है। सच्ची शिक्षाके लिए समझ, कर्तव्यपरायणता, सेवाभाव आवश्यक होते हैं। जहाँ समझ होती है वहाँ बुद्धिका विकास भी होता ही है। छोटे-से-छोटा काम करते हुए हममें शिवसंकल्प होना चाहिए। उसे करते हुए उसका कारण और उसके शास्त्रको समझनेका हमारा प्रयास होना चाहिए। शास्त्र प्रत्येक प्रवृत्तिका होता है — रसोई बनानेका, सफाईका, बढ़ईगिरीका और कताईका होता है। जो व्यक्ति विद्यार्थीकी दृष्टिसे प्रत्येक प्रवृत्तिको चलाता है वह उसके शास्त्रको जानता है अथवा उसकी रचना करता है।

ऐसा यदि प्रत्येक आश्रमवासी समझ ले तो वह जान जायेगा कि आश्रम एक महान पाठशाला है जिसमें अमुक समय ही शिक्षाके लिए निर्धारित है, ऐसी बात नहीं है, अपितु वहाँ हर समय शिक्षाका समय है। प्रत्येक व्यक्ति जो आत्मदर्शनके — सत्यदर्शन — के भावसे आश्रममें रहता है वह शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही है। जिसमें वह निपुण है उस विषयमें वह शिक्षक है और जो चीज उसे अभी सीखनी है उसके आधार पर वह विद्यार्थी है। जिस विषयका हमें अपने पड़ोसीकी अपेक्षा

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", ६/१०-७-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

अधिक ज्ञान है वह ज्ञान हम उसे निःसंकोच होकर देते हैं और जिस विषयका हमारे पड़ोसीको ज्यादा ज्ञान है उसका लाभ भी निःसंकोच हो लेते हैं। यदि हम निरन्तर ऐसा ही करें तो हमें शिक्षकका अभाव नहीं रहेगा और शिक्षा भी सहल और स्वाभाविक हो जायेगी। सबसे बड़ी शिक्षा तो चरित्रका विकास है। हम जैसे-जैसे यम-नियमों आदिका पालन करनेकी दिशामें आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे हमारी विद्याका — सत्यदर्शनकी शक्तिका — भी विकास होता जायेगा।

अक्षर-ज्ञानका फिर क्या होगा? यह प्रश्न अब उठता ही नहीं है। जो बात अन्य प्रवृत्ति पर लागू होती है वही अक्षर-ज्ञान पर भी होती है। ऊपर जो बात कही गई है उसके अनुसार एक वहमका — जिसका मतलब यह कि पढ़नेके लिए पाठशालाके रूपमें एक मकान-विशेषकी तथा शिक्षककी आवश्यकता होती है — भी निराकरण हो जाता है। हममें जब अक्षर-ज्ञानकी जिज्ञासा उत्पन्न हो तब हमें जान लेना चाहिए कि अक्षर-ज्ञान हमें अपने प्रयत्नसे प्राप्त करना होगा। उसके लिए आश्रममें अवकाश है ही। मैंने जो ऊपर लिखा है यदि मैं उसे अच्छी तरह समझ सका हूँ तो अक्षर-ज्ञान-सम्बन्धी समस्याका समाधान हो जाता है। जिसके पास यह है उसे चाहिए कि वह यथासमय दूसरोंको भी अक्षर-ज्ञान देता जाये और दूसरे लोग उसे ग्रहण करते जायें।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२०१. पत्र : नारणदास गांधीको

६/१० जुलाई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र और अन्य डाक मिली। आजकल तो डाक नियमित रूपसे मिलती है। मैंने अपना पुलिन्दा तो सोमवारकी डाकमें डालनेके लिए दिया था। वह तुम्हें शनिवार तक कैसे नहीं मिला, मेरी समझमें नहीं आता। अबसे पुलिन्दे पर डाककी मुहर देखा करना। वहाँसे तुम जो डाक भेजते हो वह पत्र मुझे दूसरे ही दिन मिल जाता है और जो मैं भेजता हूँ वह छः दिनमें मिलता है, यह ऐसी बात है जो समझमें नहीं बैठती।

समयके हिसाबका रजिस्टर भेजनेकी कोई जरूरत नहीं। इसमें यदि तुम्हें कुछ विशेष बात दिखाई दे तो भेजना अथवा प्रति माह एक बार भेजा करोगे तो भी यथेष्ट होगा। कुछ तो मैं जानता हूँ कि जब सब-कुछ नियमित हो जायेगा तब सब कोई दिल लगाकर अपना-अपना काम करेंगे, और तब किसीको कोई भार महसूस नहीं होगा। और कुछ हद तक यदि कोई व्यक्ति चिन्तित होगा तो उसकी चिन्ता दूर हो जायेगी; और होनी भी चाहिए। सच्चे मनुष्यके लिए तो एक ही वस्तु

पर्याप्त है। उसे अपनी सामर्थ्यसे बाहर कोई काम हाथमें नहीं लेना चाहिए और अपनी सामर्थ्यसे कम काम करनेका लोभ मनमें नहीं रखना चाहिए। जो अपनी सामर्थ्यसे बाहर काम करनेका प्रयत्न करता है वह अभिमानी है, आसक्त है। और जो अपनी सामर्थ्यसे कम काम करता है वह चोरी करता है। समय-रजिस्टर रखकर हम सहज ही इस दोषसे बच सकते हैं। बच जाते हैं, ऐसा नहीं कहता, क्योंकि यदि हम विवेकपूर्वक और उत्साहके साथ समय-रजिस्टर नहीं रखते तो हम इसका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकते।

सीतला सहायका पत्र तुमने पढ़ लिया था ना? मुझे यह पत्र निर्दोष लगा है। इसमें मुझे रोष नहीं दिखाई देता। प्रभुदासके बारेमें जो वह लिखते हैं वह यदि सच है तो उनकी माँग अनुचित नहीं कही जा सकती। लेकिन इसके बारेमें न्याय उस ढंगसे ही हो सकता है जैसा मैं लिख चुका हूँ। अर्थात् उनके खर्चके आँकड़े देखकर। ऐसे मामलोंमें एक दूसरेके उदाहरण काम नहीं आ सकते। हाँ, मार्ग-दर्शकका काम अवश्य दे सकते हैं। लेकिन यदि कोई व्यक्ति हमारे हाथमें हिसाब देता है और यदि हम उसमें कोई भूल नहीं निकाल सकते तो हमें उसके अनुसार उसे पैसे दे देने चाहिए। और बहुत करके है कि भविष्यमें ऐसे उदाहरण हमें परेशानीमें डाल सकते हैं। तथापि हम आशा करते हैं कि चूँकि हमारी नीयत साफ है इसलिए हम भविष्यमें ऐसी परेशानियोंसे बच जायेंगे।

आजतक जिसने हमें निभाया है वह आगे भी निभा लेगा। जबतक हमारे पास पैसा होगा तबतक हम देते रहेंगे। यदि उसके नामको हमने कलंकित किया होगा तो हमारे पास जो पैसा होगा भी उसे वह छीन लेगा। फिर किसे देंगे? सीतला सहायने लिखा है कि पद्माने तुम्हें हिसाब भेजा है; यह तो ठीक है न? प्रभुदासके खर्चके बारेमें जो वह लिखते हैं वह भी सही है, ऐसा मैं माने लेता हूँ। लेकिन सीतला सहायके पत्रमें जो तथ्य दिये गये हैं वे यदि समुचित न हों तब निश्चय ही इस विषय पर अधिक विचार करना होगा। मैंने जो राय व्यक्त की है उसका आधार सीतला सहायके पत्रमें दी गई हकीकतकी सचाई पर निर्भर करता है। मैं जहाँतक राय दे सकता हूँ वहाँ तक राय देता रहूँगा जिससे कि तुम्हारा बोझ हलका हो।

नीमूने रामदासको जो पत्र लिखा है वह रामदासने मुझे भेजा है। उसमें उसने एक लड़केको रखनेकी बात लिखी है। एक लड़केकी आवश्यकता है, ऐसा वह मानती है। उसे सन्देह है कि कदाचित् यह बात तुम्हें पसन्द न आई हो। वह यह भी कहती है कि इस बारेमें तुमने कुछ नहीं कहा है। रामदासने लिखा है कि मुझे जो ठीक लगे वह मैं करूँ। इस सम्बन्धमें मैं कोई स्वतन्त्र निर्णय नहीं दे सकता। मैं नीमूको पत्र लिख रहा हूँ।[1] उसे तुम पढ़ जाना और जो उचित जान पड़े सो करना। नीमूके पूछनेकी राह न देखकर, उससे मिलकर तुम स्वयं ही उसे सन्तोष देना।

शशीको तो जहाँ तक तुमसे बन सके, बचा ही लेना। इस सम्बन्धमें रतिलालको यदि दृढ़ताके साथ कुछ कहना पड़े तो कहना।

१. देखिए "पत्र: निर्मलाबहन गांधीको", ९-७-१९३२।

१० जुलाई, १९३२

मेरी डाकको लेकर खूब झमेला उठ खड़ा हुआ है। इसलिए पिछली डाक तुम्हें कब मिली होगी अथवा मिली होगी भी कि नहीं सो दैव ही जाने। यह डाक भी कब मिलेगी, यह भी नहीं जानता। इस बारेमें मैंने स्पष्टीकरण माँगा है।[1] क्या परिणाम निकलेगा, सो नहीं मालूम। "न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।"[2]

आजका लेख[3] शिक्षा पर है। उसे खूब अच्छी तरहसे पढ़ना और उसपर विचार करना। यदि तुमने उसे अच्छी तरह समझ लिया हो तो तुम पर और भी जिम्मेदारी आ जाती है। यह जिम्मेदारी मानसिक है। अपने मनमें प्रत्येक व्यक्तिकी अच्छी तरह जाँच कर जाओ। वे सब लोग अपने कार्यको सोच-समझकर करते हैं या नहीं, यह मालूम करो। आश्रमकी समस्त प्रवृत्तियोंके शास्त्रको समझ लो और दूसरोंको समझाओ, और उनमें जो समझ न आये, मुझसे पूछ लो। जिन प्रवृत्तियोंके बारेमें मुझे जानकारी है उनको लेकर यदि तुम मुझसे कुछ पूछोगे तो मैं उत्तर दूँगा। यह देख लेना कि प्रत्येक व्यक्तिको पढ़नेका समय मिलता है या नहीं। इस जिम्मेदारीको उठानेके लिए तुम्हारे मनको थोड़ा अवकाश चाहिए। यों शिक्षकका काम तो तुम सदासे ही करते आये हो, इसलिए तुम्हारे लिए यह नई बात नहीं है। मैंने तो केवल तुम्हारे क्षेत्रका विस्तार किया है। लेकिन शिक्षा देनेका मेरा तरीका सहल है। रटनेकी बात तो इसमें नाममात्रको है। चूँकि हमारी प्रवृत्ति ग्रामीण जीवनसे सम्बद्ध है इसलिए उसका शास्त्र भी हमारी शक्तिसे बाहर नहीं है। जहाँ तक साहित्यका प्रश्न है, हर किसीको अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार लाइब्रेरीसे पुस्तकें लेनी चाहिए और जिसके पास साहित्यिक ज्ञान है वह दूसरोंको भी जितना दिया जा सके दे। मुख्य बात तो बुद्धिके विकासकी है और सत्यदर्शनके हेतुको समझना है। यह समझमें आ जाये तो अन्य सब सहज हो जाता है। फिर तो सन्तोषका पार नहीं रहता। धैर्य तो स्वयमेव आ जाता है। और ज्ञान प्राप्त करनेकी कुंजी हमारे हाथ आती है। तब केवल उतना ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रह जायेगी जितना आत्मविकास और आत्मदर्शनके लिए आवश्यक होता है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२३८ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

१. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", ९-७-१९३२।

२. भगवद्गीता, ५, २०।

३. देखिए "शिक्षा", १०-७-१९३२।

२०२. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

१० जुलाई, १९३२

चि० पण्डितजी,

पिछले सप्ताह आपको एक बात लिखना[1] भूल गया अर्थात् प्रार्थनामें जो समय खर्च होता है उसकी बाबत। न तो उसके लिए कोई शिकायत होनी चाहिए और न उससे ऊबना ही चाहिए। इस्लाममें पाँच बार नमाज पढ़नेका विधान है, और प्रत्येक नमाजमें कुछ नहीं तो पन्द्रह मिनट अवश्य लगते हैं और पारायण भी वहीका वही होता है। ईसाई-धर्मकी प्रार्थनामें भी एक बात तो स्थायी है। उसमें भी हर बार पन्द्रह मिनट तो अवश्य ही जाते हैं। रोमन कैथॉलिक सम्प्रदायमें और आजके प्रचलित गिरजाघरोंमें भी आधे घंटेसे कम नहीं लगता और वह सवेरे, साँझ और दोपहर इस प्रकार चलती हैं। भक्तको वह विषम नहीं जान पड़ती। और अन्तमें हमको [आश्रमके] क्रम-परिवर्तन करनेका कोई अधिकार नहीं रहा, क्योंकि हम सब लोग अपूर्ण हैं और क्रम-परिवर्तन पर हम पहले ही बहुत चर्चा कर चुके हैं। अब उसमें हमें रस पैदा करना है और उसके जरिये ईश्वरका साक्षात्कार करना है। इसीके द्वारा दैनिक जीवनका पाथेय भी प्राप्त करना है। अतएव तब्दीली आदिका विचार छोड़कर हम उसे अलंकृत करें तथा उसमें प्राण उँडेलें। मैं तो इस विषयपर जितना विचार करता हूँ उतना ही मुझे ऐसा लगा करता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२९) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

२०३. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१० जुलाई, १९३२

पत्रोंमें अव्यवस्था है इससे उनमें देर हो जाती है। और इस तरह हमें समय-समय पर कैदी होनेके अनुभव हुआ करते हैं, होने भी चाहिए। 'गीताबोध' पर अमल करनेका अवसर भी मिल रहा है। इच्छित वस्तु जब प्राप्त नहीं होती तब मनको आघात पहुँचता है या नहीं, यह जाना जा सकता है। और यदि आघात पहुँचता है तो यह माना जायेगा कि हममें उतनी कमी है। यही सोचकर मैं आघातकी इस भावनाको आगे नहीं जाने देता। हमें जो मिल सकता हो उसीकी माँग करनी चाहिए। यदि वह मिल जाये तो अच्छी बात है। सरोजिनी देवी वैद्यराज होंगी, इसके लिए उन्हें मेरी ओरसे बधाई देना। उनसे यह भी कहना कि उनकी मिठाइयोंका

१. देखिए "पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको", १-७-१९३२।

उपभोग यहाँ अनेक लोगोंने किया। लेकिन इसका अर्थ वह यह न लगा बैठें कि और मिठाई भेजनी होगी। रसके घूँट नहीं होते, चन्द कतरे ही होते हैं। मैंने तो अपने पहले पत्रमें भी विनोद ही किया था। ऐसी वस्तुएँ हमें यहाँ शोभा नहीं देतीं। उन्हें तो सब-कुछ शोभा देता है और यदि मेरे जैसे लोग उनका अनुसरण करने लगें तो पछाड़ खा जायें। यहाँ तो एक सेवक है, एक किसान है और एक मजदूर। ऐसी मूर्तियाँ यदि सुनहले साज धारण करने लगें तो गाँवके छोकरे उन्हें कंकड़ मारेंगे और यह उचित ही होगा। यह सब सरोजिनी देवीको यदि हँसी-हँसीमें कहा जा सके तो कह देना। अन्यथा अन्य बहनें इससे जो शिक्षा ग्रहण करना चाहें, कर लें। देखा, मैंने तो विनोदमें इतनी सीख भी दे डाली है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२०४. पत्र : कन्हैयालालको

१० जुलाई, १९३२

भाई कन्हैयालाल,

यदि ईश्वरको सत्य रूप माना जाये तो उसका प्रत्यक्ष दर्शन करना सम्भव है। ध्रुव तथा अन्य लोगों द्वारा ईश्वरको देखनेकी कहानियोंको अक्षरशः मानना ठीक नहीं है। कवियों द्वारा किया गया ईश्वरका वर्णन तो एक प्रकारका रूपक-अलंकार है।[1]

(२) वानर [बन्दर]का अर्थ ऐसे मनुष्यसे लगाना चाहिए जिसका स्वभाव बानरों जैसा हो।

(३) वेदोंका मुख्य ध्येय ब्रह्म-ज्ञान है।

(४) मन, वचन और कर्मसे सत्यका पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। वर्तमान कालमें परोपकारकी भावनासे चरखा कातना ही उसका व्यावहारिक स्वरूप है।[2]

(५) धर्मका सच्चा पालन यम-नियमके पालनमें ही निहित है।[3]

(६) स्थितप्रज्ञकी विशिष्टताओंको 'गीता'के अध्याय २ में देखो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं ८००।
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ से भी।

१, २ और ३. इन अनुच्छेदोंको **महादेवभाईनी डायरी** के गुजराती अंशसे मिला लिया गया है।

२०५. एक पत्र

१० जुलाई, १९३२

एक ऐसा वर्ग है, और जिसमें हममें से अधिकांश व्यक्ति आ जाते हैं, जो इतना ज्यादा पढ़ लेता है कि विचार करनेकी शक्तिको ही अवरुद्ध कर बैठता है। उनको तो यह सुझाव दिया जाना चाहिए कि वे लोग पढ़ना बन्द कर दें और उन्होंने पहले जो पढ़ा है उसी पर अच्छी तरहसे विचार करें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२०६. सत्याग्रह आश्रमका इतिहास[1]

[११ जुलाई, १९३२]

प्रारम्भिक

आश्रमका अर्थ यहाँ सामुदायिक धार्मिक जीवन है। आजकी दृष्टिसे भूतकालका अवलोकन करते हुए मुझे ऐसा लगता है कि इस तरहका आश्रम मेरे स्वभावमें ही था। जबसे मैंने अलग घर बसाया, तभीसे मेरा घर ऊपरकी व्याख्याकी दो शर्तोंके अनुसार आश्रम जैसा बन गया था; क्योंकि यह कहा जा सकता है कि गृहस्थाश्रम भोगके लिए नहीं, बल्कि धर्मके लिए बना है। फिर उसमें कुटुम्बियोंके सिवा कोई-न-कोई मित्र तो होते ही हैं। और वह या तो धार्मिक सम्बन्धके कारण आया होता था, या उसके आनेके बाद उस सम्बन्धको मैं धार्मिक बनानेकी कोशिश

१. गांधीजीने यह इतिहास ५ अप्रैल, १९३२ को यरवडा सेंट्रल जेलमें गुजरातीमें लिखना आरम्भ किया था। उन्होंने इसपर रुक-रुक कर कार्य किया और अन्तिम उपलब्ध अंश ११ जुलाई, १९३२ को लिखा। जेलसे रिहा होने पर उन्होंने काकासाहब कालेलकरको पाण्डुलिपि दिखाई और कहा : "यह कार्य मैं पूरा नहीं कर सका। इसका संशोधन बहुत जरूरी है। मुझे नहीं मालूम, मैं इसे कभी पूरा भी कर पाऊँगा या नहीं। यह जिस रूपमें है, उस रूपमें इसका प्रकाशन उचित नहीं है। इसका संशोधन कर लेनेके बाद ही मैं इसे दूँगा।" काकासाहबने कहा कि जो-कुछ भी लिखा जा चुका है उसकी मैं प्रतियाँ बना लूँगा और उन्होंने गांधीजीके हाथोंमें से पाण्डुलिपि लगभग छीन ली। चूँकि मूल उपलब्ध नहीं हो सका, इसलिए नवजीवन प्रकाशन मन्दिरने काकासाहबके पास उपलब्ध प्रतिके आधार पर ही मई, १९४८ में गुजरातीमें **सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास** प्रकाशित किया। अंग्रेजीमें इसका अनुवाद वा० गो० देसाईने किया और इसका प्रकाशन नवजीवन प्रकाशन मन्दिर द्वारा १९५५ में **आश्रम ऑब्जरवेंसेज इन ऐक्शन** शीर्षकसे हुआ। यहाँ अनुवाद मूल गुजरातीसे किया गया है जैसाकि वह नवजीवन प्रकाशन मन्दिरके प्रथम संस्करणमें उपलब्ध है। गुजराती पुस्तकके अन्तमें दिया गया परिशिष्ट यहाँ नहीं दिया गया है; उसके लिए देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४३९-४०।

करता था। इस तरह सन् १९०४ तक यह अनजाने ही चलता रहा। १९०४ में मैंने रस्किनका 'सर्वोदय'[1] पढ़ा और उसका मुझपर बिजलीका-सा असर हुआ। 'इंडियन ओपिनियन' का कारखाना जंगलमें ले जाकर वहाँ मजदूरोंके साथ सामुदायिक या कौटुम्बिक जीवन बितानेका मैंने निश्चय किया। मैंने सौ बीघा जमीन ली और आश्रम बसाया। उस वक्त हमारी इस संस्थाको मैंने अपने भीतर या बाहर आश्रमके रूपमें पहचानना नहीं सीखा था। धर्म इसका अंग जरूर था, लेकिन प्रत्यक्ष हेतु भीतरी और बाहरी स्वच्छता और आर्थिक समानता वगैरह हासिल करना था। उस वक्त ब्रह्मचर्यकी जरूरत न तो मानी ही गई थी और न समझी ही गई थी। इतना ही नहीं, बल्कि इसके विपरीत यह मान्यता थी कि सब साथी गृहस्थ जीवन बितायेंगे और प्रजाकी वृद्धि होगी। फीनिक्सका यह संक्षिप्त इतिहास 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' में आ जाता है।[2]

इसे हम पहला कदम समझें।

यह कहा जा सकता है कि दूसरा कदम सन् १९०६ में उठाया गया। सेवाका जीवन बितानेके लिए ब्रह्मचर्यकी जरूरत अनुभवसे साबित हुई, ऐसा कह सकते हैं। और तबसे फीनिक्सको मैं जानबूझकर धार्मिक संस्थाके रूपमें मानने लगा और मेरे मनमें उसका धार्मिक ढाँचा बनने लगा। राजनीतिक सत्याग्रहकी शुरुआत इसी साल हुई। उसकी जड़में तो धर्म ही था। सत्यस्वरूप परमात्मा पर अविचल श्रद्धा ही उसका आधार था। यहाँ धर्मका कोई संकीर्ण अर्थ न करे। 'धर्म' का अर्थ है अलग-अलग नामोंसे पहचाने जानेवाले सब धर्मोंको एक साथ जोड़नेवाला और उन्हें एकरूप देखनेवाला परमधर्म।

१९११ तक इस तरह चलता रहा। इतने बरसोंमें फीनिक्स संस्थाकी, उसे आश्रमके रूपमें जाने बिना ही, आश्रमके रूपमें प्रगति हो रही थी, ऐसा मैं मानता हूँ।

१९११ में तीसरा कदम उठाया गया। आज तक फीनिक्समें जो लोग स्थायी रूपसे रह सकते थे, वे वही थे जो छापेखानेके काममें आ सकते थे। मगर अब सत्याग्रहके कामके लिए एक ऐसे आश्रमकी जरूरत जान पड़ी, जहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब रह सकें और धार्मिक जीवन बिता सकें। इस वक्त में जर्मन मित्र कैलनबैकके सम्पर्कमें आ चुका था। हम दोनों एक तरहका आश्रम-जीवन बिताते थे। मैं वकालत करता था और कैलनबैक अपना स्थापत्यका धंधा करते थे। फिर भी हम एक दूर और बिरली बस्तीमें ऐसा जीवन बिताते थे जिसे तुलनामें बहुत सादा कहा जा सकता था, और यथाशक्ति हमारा मन धर्ममें लगा रहता था। अनजानमें भूलें बहुत हुई होंगी, मगर हर कामकी जड़ हम धर्ममें ढूँढ़नेकी कोशिश करते थे। बादमें जब सत्याग्रही कुटुम्बोंकी संख्या ज्यादा बढ़ी, तब सबको एक साथ रखनेकी जरूरत जान पड़ी। इसलिए कैलनबैकने ग्यारह सौ बीघा चौरस जमीन ली और वहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब

१. **अनटु दिस लास्ट,** देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २२९।

२. देखिए खण्ड २९।

रहने लगे। यहाँ पग-पग पर धार्मिक सवाल खड़े हुए और सारी संस्था धार्मिक दृष्टिसे चलने लगी। इसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी सब रहते थे। इस कारणसे किसी भी दिन क्लेश या झगड़ा हुआ हो, ऐसा मुझे बिल्कुल याद नहीं आता। इसी तरह यह बात भी न थी कि वहाँ रहनेवाले अपने-अपने धर्मके प्रति शिथिल थे। हममें एक दूसरेके धर्मके प्रति आदर था और हम एक दूसरेको अपने धर्मके अनुसार चलने और आत्म-विकास करनेकी प्रेरणा देते थे।

लेकिन यह संस्था सत्याग्रह आश्रमके रूपमें नहीं जानी जाती थी। इसका नाम 'टॉल्स्टॉय फार्म' रखा गया था। कैलनबैक और मैं टॉल्स्टॉयके पुजारी थे, और उनके बहुतसे विचारोंपर अमल करनेकी खूब कोशिश करते थे। सन १९१२ में यह संस्था सत्याग्रही निवास न रही और जिन-जिन लोगोंको एक साथ रहना था वे सब फीनिक्स चले गये। टॉल्स्टॉय फार्मका इतिहास भी जिन्हें जानना हो वे 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' देख सकते हैं।[१]

फीनिक्स अब सिर्फ 'इंडियन ओपिनियन' के सिलसिलेमें कायम हुई संस्था न रही। अब वह सत्याग्रहकी संस्था बनने लगी। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि 'इंडियन ओपिनियन' की हस्तीके लिए भी वही जिम्मेदार थी। परन्तु वह फेरबदल ऐसा-वैसा नहीं था। फीनिक्सवासियोंका जीवन अस्थिर बन गया और इस अस्थिरतामें सत्याग्रहियोंकी तरह उन्हें भी स्थिरता खोजनेकी नौबत आई। इससे वे हारे नहीं। यहाँ भी मैंने टॉल्स्टॉय फार्मकी तरह मिलेजुले रसोईघरकी जरूरत महसूस की। कुछ उसमें शरीक हुए, कुछ नहीं हुए। शामकी सामूहिक प्रार्थनाको दिनोंदिन ज्यादा स्थान मिलता गया और सत्याग्रहकी आखिरी लड़ाईकी शुरुआत तो फीनिक्सवासियोंके हाथों ही हुई। यह घटना १९१३ में[२] हुई। १९१४ में लड़ाई पूरी हुई।[३] मैंने जुलाईके महीनेमें दक्षिण आफ्रिका छोड़ा। हिन्दुस्तान जानेकी जिन-जिन लोगोंकी इच्छा थी, लगभग उन सभीका हिन्दुस्तान जाना तय हुआ। मुझे विलायत होकर गोखलेसे मिलकर जाना था। हिन्दुस्तानमें अलग संस्था कायम करके सबको साथ रखना था और दक्षिण आफ्रिकामें मैंने जिस सामाजिक जीवनकी शुरुआत की थी उसे जारी रखना था। इसलिए आश्रमके नामके बिना आश्रम कायम करनेका निश्चय करके मैं १९१४ के अन्तमें[४] हिन्दुस्तान पहुँचा।

हिन्दुस्तानमें एक बरस तक तो मैं खूब घूमा; कितनी ही संस्थाएँ[५] देखीं, और उनसे बहुत कुछ सीखनेको मिला। कितनी ही जगहोंसे वहाँ आश्रम स्थापित करनेके निमन्त्रण मिले और कई तरहकी मददके वचन मिले। अन्तमें अहमदाबादमें आश्रम खोलने

१. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ १७६-९५।

२. १५ सितम्बरको; देखिए खण्ड २९, पृष्ठ २०८-११।

३. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ २११-१४।

४. यह तिथि गलत है। गांधीजी ९ जनवरी १९१५ को हिन्दुस्तान पहुँचे थे; देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १।

५. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी, शान्तिनिकेतन, गुरुकुल कांगड़ी।

का निश्चय किया। इसे मैं चौथा और आखिरी कदम मानता हूँ। यह कदम आखिरी रहेगा या नहीं यह तो भविष्यकी बात है।[1] इस संस्थाको क्या नाम दिया जाये, इसके नियम क्या हों, इस बारेमें मैंने मित्रोंके साथ अच्छी तरह चर्चा की, पत्र-व्यवहार किया, नियमोंका मसविदा मित्रोंको भेजा और अन्तमें संस्थाका नाम 'सत्याग्रह आश्रम' रखा गया। उद्देश्यको ध्यानमें रखनेसे ऐसा लगता है कि यह नाम ठीक ही था। मेरा जीवन सत्यकी खोजमें अर्पण किया हुआ है। उसीकी खोजके लिए जीने, और जरूरत पड़ने पर मरनेका मेरा आग्रह है। इस खोजमें जितने साथी मिलें उनको साथ लेनेकी मेरी इच्छा है।

२५ मई, १९१५को कोचरबमें किरायेके मकानमें यह आश्रम खुला। उसके खर्चकी व्यवस्थाका जिम्मा अहमदाबादके कुछ नागरिकोंने लिया। जब आश्रम खुला तब लगभग बीस आदमी[2] थे और उनमें से ज्यादातर लोग दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए ही थे। उस समय अधिकांश लोग दक्षिणके यानी तमिल या तेलुगु बोलनेवाले हिन्दुस्तानी थे। उन दिनों आश्रममें छोटे-बड़े सबके लिए खास काम भाषाएँ सीखने का यानी संस्कृत, हिन्दी और तमिल सीखनेका था। बच्चोंके लिए दूसरी साधारण पढ़ाई थी। हाथ-बुनाई मुख्य उद्योग था और उसीके सिलसिलेमें बढ़ईगिरीका काम होता था। नौकर न रखनेका हमारा आग्रह था। इसलिए खाना बनाने, सफाई करने, पानी भरने आदिका सारा काम आश्रमवासी ही करते थे। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह वगैरह व्रत सारे आश्रमवासियोंके लिए अनिवार्य थे।[3] जात-पाँतका भेद बिल्कुल नहीं माना जाता था। अस्पृश्यताके लिए आश्रममें बिल्कुल गुंजाइश नहीं थी। इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दू जातिमें से अस्पृश्यता दूर करनेके प्रयत्नको आश्रमकी प्रवृत्तियोंमें महत्त्वका स्थान दिया गया था, और अस्पृश्यताकी तरह ही हिन्दू जातिमें से स्त्रियोंके कुछ बन्धन तोड़नेके बारेमें भी आश्रममें शुरूसे ही आग्रह रखा गया था। इसलिए आश्रममें स्त्रियोंको पूरी आजादी रही है। साथ ही हिन्दू, मुसलमान वगैरा अलग-अलग धर्मके लोगोंमें जितना भाईचारा आपसमें हो सकता है, उतना ही भाईचारा आश्रममें भी रखनेका नियम हो गया।

लेकिन एक चीजके लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ, और इसके लिए मैं पश्चिमका आभारी हूँ। ये हैं मेरे भोजन-सम्बन्धी प्रयोग। इन प्रयोगोंकी शरुआत हुई १८८८ में, जब मैं विलायत गया था। अपने प्रयोगोंमें मैं सदा अपने कुटुम्बियों और दूसरे साथियोंको घसीटता रहा हूँ। इसकी जड़में तीन कारण मुख्य थे: (१) स्वादेन्द्रिय यानी जीभ पर और उसीके जरिये दूसरी इन्द्रियों पर काबू पाना; (२) सादीसे

१. गांधीजीने १९३३ में सत्याग्रह आश्रम भंग कर दिया। जब अप्रैल, १९३६ में गांधीजी सेगाँव गये तो उनका इरादा वहाँ आश्रम स्थापित करनेका नहीं था, फिर भी वह धीरे-धीरे सेवाग्राम आश्रमके रूपमें बदल गया।

२. खण्ड १३, पृष्ठ १०१ पर गांधीजीने यह संख्या ३५ बताई है।

३. आश्रम-संविधानके मसाविदेके पाठके लिए देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ९५-१०१; और अन्तिम संविधानके लिए देखिए खण्ड ३६, पृष्ठ ४१९-३१।

सादी और सस्तीसे-सस्ती खुराक ढूँढ़ निकालना, ताकि इस बारेमें गरीबोंके साथ होड़की जा सके; (३) खुराकके साथ तन्दुरुस्तीका गहरा सम्बन्ध है, इस विचारके आधारपर पूर्ण स्वास्थ्यकी रक्षाके लिए कौन-सी खुराक ठीक है, यह खोज निकालना।

कहनेका मतलब यह नहीं है कि इन तीन कारणोंकी वजहसे मैं खुराकके प्रयोग करनेके लिए ललचाया। अगर मैं निरामिष भोजन करने की प्रतिज्ञा लेकर विलायत न गया होता, तो शायद खुराकके प्रयोग करनेकी बात मुझे सूझी ही न होती। लेकिन जब मुझे ये प्रयोग करने पड़े, तो ये तीन कारण मुझे बहुत गहरे पानीमें ले गये और मुझे कई तरहके प्रयोग करनेकी प्रेरणा हुई। इस तरह आश्रम भी मेरे खुराकके प्रयोगोंमें शामिल हुआ। मगर ये प्रयोग आश्रमके अंग नहीं हैं।

इसके आधार पर देखा जा सकता है कि आश्रमने देश और समाज सम्बन्धी जिन-जिन बातोंको दोषपूर्ण माना, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न आश्रमनें किया जाये यही इच्छा थी। इनमें धार्मिक, आर्थिक या राजनीतिक सभी दोष शामिल हैं। जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त होते गये और प्रसंग आता गया, वैसे-वैसे नई-नई प्रवृत्तियाँ शुरू होती गईं। आज यह लिखाते वक्त भी मेरे मनमें जितने काम हैं, उन सबको आश्रममें दाखिल किया जा सका है यह नहीं कहा जा सकता। शुरूसे ही एक दो निश्चयोंका अनुसरण करते हुए आश्रमका कामकाज चला है: (१) 'चादर देखकर ही पाँव पसारे जायें' यानी आश्रमको सहज ही मित्रोंसे जितनी आर्थिक मदद मिलती रहे उसीपर गुजर करना; (२) किसी भी कार्यके पीछे न दौड़ना; परन्तु जो योग्य कार्य अपने-आप आ पड़े उसे बिना संकोच और जरूरत हो तो हर खतरा उठाकर भी हाथमें लेना।

मैं मानता हूँ कि इन दोनों निश्चयोंके पीछे सिर्फ धार्मिक वृत्ति रही है। धार्मिक वृत्तिका अर्थ है ईश्वर पर श्रद्धा—इसलिए सब-कुछ उसके आधार पर और उसकी प्रेरणासे करना। इस तरह चलनेवाला आदमी ईश्वरके भेजे हुए धन (साधनों) के जरिये उसीका बताया हुआ कार्य करता है। ईश्वर स्वयं कुछ करता है, ऐसा तो वह हमें देखने या जानने नहीं देता। वह मनुष्यको प्रेरणा देकर उसीके जरिये अपना कार्य कराता है। और जब हमने ख्याल भी न किया हो ऐसी जगहसे मदद आ जाये या बिना माँगे ही हमें मित्रोंसे मदद मिल जाये, तब तो मेरी श्रद्धा यह मानेगी कि वह ईश्वर द्वारा ही भेजी गई मदद है। और इसी तरह जो कार्य आ पड़े और जिसे हाथमें न लेनेमें कायरता, आलस्य या ऐसा ही कोई दूषित कारण मालूम हो, उस कार्यको मेरी श्रद्धा ईश्वरका भेजा हुआ कार्य ही मानेगी।

और जो बात रुपये-पैसे और कार्यके बारेमें सच है वही साथियोंके बारेमें भी सच है। रुपया हो, कार्य भी आ जाये, परन्तु साथी-रूपी साधन न हो, तो भी वह कार्य हाथमें नहीं लिया जा सकता। यह साधन भी सहज ही मिलना चाहिए। आश्रम ईश्वरका है जहाँ यह कल्पना ही नहीं बल्कि विश्वास है, ऐसी समर्पण बुद्धि है, वहाँ जिस-जिस कार्यके लिए ईश्वर आश्रमको साधन बनाना चाहता है, उस कार्यके लिए सारी सामग्री भी वही भेज देता है। पिछले सोलह सालसे ही नहीं,

बल्कि जबसे फीनिक्सकी स्थापना हुई तभीसे जाने-अनजाने, थोड़े या बहुत प्रमाणमें, इन्हीं नियमोंके अनुसार संस्था चलती जा रही है। जो नियम शुरूमें नरम थे बादमें कड़े होते गये हैं; और मेरी रायमें अब भी होते जा रहे हैं।

थोड़े ही दिनोंमें आश्रमकी आबादी दुगुनी हो गई। और कोचरबके बँगलेकी रचना आश्रमके अनुकूल तो हो ही नहीं सकती थी। बंगला तो बंगला ही ठहरा। उसमें एक धनिक परिवार पश्चिम और पूर्वके रहन-सहनको मिलाकर रह सकता था। ऐसी जगहमें स्त्री, पुरुष और बच्चे—कुल मिलाकर साठ आदमी—कई प्रवृत्तियाँ चलाते हुए और ब्रह्मचर्यादि व्रतोंको पालते हुए मुश्किलसे ही रह सकते थे। लेकिन जो मकान मिला उसीमें गुजर करना था। फिर भी थोड़े ही समयमें कई कारणोंसे वहाँ रहना लगभग असम्भव हो गया। इसलिए मानो ईश्वरने हमें वहाँसे निकाल बाहर किया हो इस तरह अचानक नई जमीनकी तलाश करनी पड़ी और बँगला खाली करना पड़ा। इन घटनाओंका वर्णन 'आत्मकथा' में आ जाता है[१], इसलिए उन्हें मैं यहाँ दुहराता नहीं हूँ। कोचरबमें एक कमी पहलेसे मालूम होती थी। वह साबरमती आने पर दूर हुई। फलोंके पेड़, खेती और पशुओंके बिना आश्रम अधूरा ही कहा जा सकता है। साबरमतीमें खेती करने जितनी जमीन है, इसलिए वहाँ खेती तुरन्त शुरू हो सकी।

यहाँ तक आश्रमके इतिहासका सिंहावलोकन किया गया। अब व्रतों और प्रवृत्तियोंके बारेमें जो-जो प्रयत्न हुए, उनमें से जो मुझे याद हैं उनका उल्लेख करना चाहता हूँ। मेरी डायरी मेरे पास नहीं है, और फिर उसमें आश्रमवासियोंके जीवनकी नाजुक घटनाओंका उल्लेख हमेशा नहीं किया गया है। इसलिए सिर्फ स्मरण-शक्तिके सहारे ही यह इतिहास लिखा जा रहा है। मेरे लिए यह प्रयोग नया नहीं है। 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' इस तरह लिखा गया, 'सत्यके प्रयोग' भी इसी तरह लिखे गये। इस इतिहासमें भी पाठकको इस दोषका ध्यान रखना चाहिए।

सत्य

जब-जब आश्रममें झूठ बोला गया, तब-तब उसे महारोग समझकर दूर करनेके कड़े उपाय किये गये। आश्रममें दोष करनेवालेको सजा देनेकी नीति बिल्कुल नहीं रखी गई—यहाँ तक कि दोष करनेवालेको आश्रममें से अलग कर देनेमें भी संकोच रहता था। दोष न होने देनेके लिए तीन उपाय किये जाते थे और किये जाते हैं। पहला था मुख्य कार्यकर्ताओंकी शुद्धि। इसके पीछे यह मान्यता रही है कि अगर कार्यकर्तामें कहीं भी दोष न हो, तो आसपासका वायुमण्डल शुद्ध ही रहेगा। जैसे सूर्यके सामने अँधेरा नहीं टिकता, वैसे ही सत्यके सामने असत्य नहीं टिकता।

दूसरा उपाय बुराईको प्रकट करना था। कोई असत्य आचरण करता पाया जाता, तो उसे समाजके सामने प्रगट कर दिया जाता। इस उपायको विवेकके साथ

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ३००-३ और ३२४-५।

काममें लाया जाये, तो परिणाम बहुत अच्छा होता है। इसमें दो सावधानियाँ रखने की जरूरत रहती है। एक तो भूल करनेवाला खुलेआम दोष स्वीकार करे, उसमें जबरदस्तीकी गंध भी नहीं होनी चाहिए। दूसरे, दोष प्रकट करनेका असर दोष करने-वाले पर ऐसा न होना चाहिए कि फिर उसे शर्म ही न महसूस हो। दोष प्रकट हुआ कि पाप धुल गया, ऐसा खयाल पैदा हो जाये, तो फिर दोषमें रहनेवाली शर्म नहींके बराबर हो जाती है। जरासा असत्य भी महारोग है, इस बातका भान सदा ही रहना चाहिए।

तीसरा उपाय मुख्य कार्यकर्त्ताका और असत्य आचरण करनेवालेका प्रायश्चित्तके रूपमें उपवास करना है। असत्य आचरण करनेवाला उपवास करे या न करे, यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है, पर मुख्य कार्यकर्त्ता तो जाने-अनजाने अपनी संस्थामें होनेवाले दोषके लिए जिम्मेदार है ही। असत्य जहरीली हवासे भी ज्यादा जहरीला और ज्यादा सूक्ष्म है। जहाँ मुखियामें आध्यात्मिक दृष्टि है, जहाँ वह जाग्रत है, वहाँ यह सूक्ष्म जहर घुस ही नहीं सकता। इसलिए अगर जहर घुसता नजर आये, तो वह मुखियाके लिए चेतावनी जैसा है। उसे समझना चाहिए कि इस जहरके घुसनेमें कहीं-न-कहीं उसका अपना भी हाथ है। मेरा खयाल है कि जितना स्पष्ट असर रसायन शास्त्रमें अमुक मिश्रणों या क्रियाओंका हम देखते हैं, उतना ही बल्कि उससे भी ज्यादा स्पष्ट असर आध्यात्मिक क्रियाओंका होता है। बात इतनी ही है कि हमारे पास उसे नापनेके यन्त्र नहीं हैं। इसलिए ऐसे असरोंके बारेमें हमें जल्दी विश्वास नहीं होता, या होता है तो वह पक्का नहीं होता। फिर, बहुधा हम अपने साथ बहुत उदारतासे काम लेते हैं। इसका फल यह होता है कि हमारे प्रयोगोंमें कामयाबी हासिल नहीं होती और हम कोल्हूके बैलकी तरह एक ही दायरेमें चक्कर काटा करते हैं। इस तरह असत्यकी गाड़ी चलती रहती है और अन्तमें हम ऐसे निर्णयपर आते हैं कि असत्य अनिवार्य है। और जो अनिवार्य माना जाता है, वह सहज ही जरूरी बन जाता है। यही कारण है कि सत्यके बदले असत्यकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगती है।

इसलिए जब-जब आश्रममें असत्य देखनेमें आया है, तब-तब उसमें मैंने अपना दोष तो स्वीकार किया ही है। मतलब यह कि मैं अपनी व्याख्याके सत्य तक नहीं पहुँच पाया हूँ। भले अज्ञानके कारण ही सही, पर मैं सत्यको पूरी तरह समझ नहीं पाया, सोच भी नहीं पाया और न उसका कथन ही कर पाया। फिर आचरण तो कहाँसे करता? मगर इस तरह दोष स्वीकार करनेके बाद क्या पलायन कर जाऊँ, गुफामें जा बसूँ, या मौन ले लूँ? इसे तो मैं कायरता मानता हूँ। गुफामें बैठकर सत्यकी खोज नहीं होती। जहाँ बोलना जरूरी हो वहाँ मौन कैसा? खास परिस्थितियोंमें गुफाका महत्त्व है। मगर सामान्य मनुष्यकी कसौटी तो समाजमें रहते हुए ही हो सकती है।

तो फिर असत्यको निकालनेके लिए मैं क्या उपाय करूँ? यह सोचनेपर मुझे देह-दमनके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं सूझा। देह-दमनका अर्थ है उपवास आदि। देह-दमनके तीन असर होते हैं: एक अपने पर, दूसरा असत्यका आचरण करनेवाले

पर और तीसरा समाज पर। देह-दमनसे मनुष्य खुद ज्यादा सावधान होता है, दिलकी गहराईमें उतरकर आत्म-निरीक्षण करता है और अपनी कमजोरी पहचान लेनेपर उसे दूर करनेके उपाय करता है। असत्य आचरण करनेवालेमें दयाभाव हो तो उसे अपने दोषका भान होता है, वह खुद शर्माता है और दुबारा दोष न करनेका निश्चय करता है। आसपासका समाज अपनी कमियों और ज्यादतियोंकी जाँच करने लग जाता है।

मगर देह-दमन सिर्फ एक साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसमें मनुष्यको सुधारने की शक्ति बिल्कुल नहीं है। उसके पीछे जो विचारसरणी रहती है वह हो तभी उससे लाभ उठाया जा सकता है। वह विचारसरणी यह है: मनुष्य देहका दास होकर रहता है, देहके भोगके लिए कई धन्धोंमें पड़ता है और अनेक पाप करता है। इसलिए जब-जब पाप हो तब-तब देहको दण्ड दिया जाये। देहके भोगोंमें फँसे हुए मनुष्य मूर्च्छामें होते हैं। भोजन रूपी भोगका थोड़ा-बहुत त्याग भी उसकी मूर्च्छाको हलकी करनेमें मददगार हो सकता है। उपवासके इस असरको ध्यानमें रखते हुए उसकी विस्तृत व्याख्या करनेकी जरूरत है। उपवासका अर्थ है अपनी या दूसरेकी आत्माकी शुद्धिके लिए किया हुआ सभी इन्द्रियोंका दमन। केवल आहार-त्याग भी उपवास नहीं माना जाता और रोगके निवारणके लिए किया हुआ आहार-त्याग तो उपवासमें गिना ही नहीं जा सकता।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि उठते-बैठते उपवास हो तो उसका असर कम पड़ता है। इसका कारण यह मालूम होता है कि बार-बार किये जानेवाले उपवास यांत्रिक क्रिया जैसे हो जाते हैं। उनके पीछे उपरोक्त विचारसरणी नहीं होती। इसलिए हर उपवासके पीछे चौतरफा जागृतिकी आवश्यकता होती है।

मैंने खुद अपने लिए एक खास परिणामका भी अनुभव किया है; मैंने बहुत बार उपवास किये हैं, इससे मेरे साथी घबराये हुए रहते हैं। उन्हें यह डर रहता है कि उपवाससे मेरा शरीर खतरेमें पड़ता है। इसलिए साथियोंमें से कुछ इस डरके मारे संयम-नियम पालते दिखाई देते हैं। मैं इसे उपवासका उलटा नतीजा मानता हूँ। फिर भी, ऐसे डरसे पाला हुआ संयम हानिकारक है, मैं यह नहीं मानता। यह डर प्रेमका डर है। ऐसे डरके मारे भी मनुष्य अनीति न करे तो वह अच्छा ही है। बुद्धिपूर्वक और स्वेच्छासे जो सुधार होता है वह उत्तम है। मगर बड़ोंकी शर्मके कारण या उन्हें दुख होनेके डरसे पाप न करना भी उपेक्षा करने लायक नहीं है। इसमें पाशविक बलात्कार नहीं है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनमें शुरू-शुरूमें सिर्फ अपने प्रियजनोंको खुश करनेके लिए हुए सुधार बादमें स्थायी हो गये।

उपवास वगैरासे एक दुखदायी परिणाम भी होता है, यह ध्यानमें रखना चाहिए। उपवास आदिके डरसे पाप न करनेके बदले पापके असरमें आये हुए लोग पाप छिपानेकी कोशिश करते पाये जाते हैं।

गुणदोषका विचार करनेके बाद मेरी यह राय बनी है कि कुछ स्थितियोंमें उपवास आदि प्रायश्चित्त जरूरी हैं। मैं मानता हूँ कि इससे कुल मिलाकर आश्रमको

लाभ ही हुआ है। मगर इतना याद रखनेकी जरूरत है कि उपवास आदि प्रायश्चित्तके लिए अधिकारकी जरूरत है। हर किसीको किसी भी समय प्रायश्चित्तके तौरपर उपवास करनेका अधिकार हो ही नहीं सकता। प्रसंग और पात्रको देखकर ही इस अधिकारका निर्णय हो सकता है। आम तौरपर अधिकार-निर्णयकी जो शर्तें पाई गई हैं वे इस प्रकार हैं:

(१) दोष करनेवालेके मनमें प्रायश्चित्त करनेवालेके प्रति प्रेम होना चाहिए। प्रायश्चित्त करनेवालेके मनमें दोषीके प्रति प्रेम हो, पर दोषी इस प्रेमको न पहचाने या खुद दुश्मन बनकर रहे, तो उसके लिए प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। जो अपनेको दुश्मन मानता है, वह प्रायश्चित्त करनेवालेके लिए तिरस्कारका भाव रखता है। इस-लिए उसपर प्रायश्चित्तका उलटा असर पड़ सकता है, या उपवास उस पर पाशविक बलात्कारका रूप धारण कर सकता है और दुराग्रह माना जा सकता है। इसके सिवा, जिसके साथ विशेष और प्रेम-सम्बन्ध न हो और उसके दोषके लिए प्राय-श्चित्तका अधिकार सभीको हो, तो मनुष्यको प्रायश्चित्तसे फुरसत ही न मिले। सारी दुनियाके लिए प्रायश्चित्त किसी महात्माको भले ही शोभा दे, पर यहाँ तो हम साधारण मनुष्योंका ही विचार कर रहे हैं।

(२) दोषका सम्बन्ध प्रायश्चित्त करनेवालेके साथ भी होना चाहिए। यहाँ कहनेका मतलब यह है कि दोषके साथ जिसका कोई सम्बन्ध न हो, वह उसके लिए प्रायश्चित्त न करे। जैसे, 'अ' की 'ब' के साथ मित्रता है। पर 'ब' आश्रमवासी है और 'अ' का आश्रमके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। 'ब' का दोष आश्रमके प्रति है। यहाँ 'अ' का न तो प्रायश्चित करनेका धर्म है और न अधिकार ही। अगर 'अ' बीचमें पड़ने जाये, तो आश्रमकी विषम स्थिति हो जाये और 'ब' की भी विषम स्थिति हो सकती है। 'अ' के पास 'ब' के दोषका निर्णय करनेका साधन भी नहीं हो सकता। 'ब' का आश्रममें रहना स्वीकार करके 'ब' की नीतिके लिए और प्रायश्चित्त के लिए अपनी जिम्मेदारी 'अ' ने आश्रमको सौंप दी है।

(३) प्रायश्चित्त करनेवाला खुद ऐसे दोषसे मुक्त होना चाहिए। 'कठौता कूंडेको क्या हँसे' वाली व्यावहारिक कहावत यहाँ ठीक लागू होती है।

(४) प्रायश्चित्त करनेवाला और तरहसे भी शुद्ध होना चाहिए, जिससे दोषीके दिलमें उसके लिए आदर हो। प्रायश्चितके गर्भमें ही पवित्रता समाई हुई है। और यदि दोषीके मनमें प्रायश्चित करनेवालेके लिए आदर न हो, तो उस पर उपवासका बुरा असर पड़ना स्वाभाविक हो जाता है।

(५) प्रायश्चित्त करनेवालेका निजी स्वार्थ नहीं होना चाहिए। जैसे, 'अ' ने 'ब' को दस रुपये देनेका वादा किया है। इसे पूरा न करना दोष है। मगर 'अ' पूरा न करे तो इसके लिए 'ब' को प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए।

(६) प्रायश्चित्त करनेवालेको रोषके वशीभूत न होना चाहिए। लड़केने कोई अपराध किया हो और पिता गुस्सेमें आकर उपवास कर बैठे तो वह प्रायश्चित्त नहीं है। प्रायश्चित्तमें सिर्फ दया होनी चाहिए, क्योंकि उसका हेतु स्वयं शुद्ध होना और दोष करनेवालेको शुद्ध बनाना है।

(७) दोष प्रत्यक्ष, सर्वमान्य और आत्माका हनन करनेवाला होना चाहिए और दोष करनेवालेको उसका भान होना चाहिए। अनुमानसे ही किसीको दोषी मानकर प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता। ऐसा करनेसे कई बार खतरनाक नतीजे होते हैं। दोषके बारेमें शंका नहीं होनी चाहिए। साथ ही, अपना माना हुआ दोष प्रायश्चित्तका कारण नहीं होना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि मनुष्य आज जिसे दोषपूर्ण मानता हो वही कल उसे दोषरहित लगे। इसलिए जो बात दोषरूप मानी जाये वह ऐसी होनी चाहिए, जिसे समाज दोषरूप मानता हो। खादी न पहनना मेरे खयालसे बड़ा भारी दोष भले हो, मगर मेरे साथीको इसमें कोई दोष न लगता हो या उसे महत्त्व न देकर वह खादी पहने या बिना पहने काम चलाता हो और ऐसे बरतावको दोष मानकर मैं उपवास कर बैठूँ, तो वह प्रायश्चित्त नहीं बल्कि अनुचित दबाव माना जायेगा। फिर, दोषीको दोष करनेका भान न हो, तो भी उसके लिए प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं।

जिसे एक संस्था चलानी है, जिसमें दण्ड वगैराकी गुंजाइश नहीं है और जहाँ हर काम धर्मके सहारे करनेकी कोशिश की जाती है, वहाँ ऐसी चर्चा जरूरी है, क्योंकि वहाँ दण्ड वगैराका स्थान संचालकोंका प्रायश्चित्त ले लेता है। अन्य किसी तरहसे संस्थाको सुवासित बनाये रखना असम्भव है। दण्डसे भले ही बाहरी दिखावा कायम रखा जा सके, बाहरी व्यवस्था बनी रहे और संस्थाका काम प्रगति करता दीखे, लेकिन दण्ड इससे आगे नहीं जा सकता। प्रायश्चित्तसे भीतर और बाहरसे दोनोंकी रक्षा होती है और संस्था दिनोंदिन मजबूत होती जाती है। इसलिए ऊपर बताये हुए कुछ नियमोंके पालनकी आवश्यकता है।

उपवास वगैरा प्रायश्चित्त होनेपर भी आदर्श सत्यसे आश्रम अभी दूर ही है और इसलिए, जैसा हम आगे देखेंगे, उसे अभी तो हम उद्योगमन्दिरके नामसे ही पहचानते हैं। इतना जरूर कहा जा सकता है कि उसके कार्यकर्ता सावधान हैं, अपनी अपूर्णताका उन्हें भान है और उनकी यह कोशिश रहती है कि कहीं भी असत्य न घुस जाये। लेकिन जहाँ समय-समय पर नये आदमी भरती होते रहें, जहाँ बहुतोंको विश्वासपर ही दाखिल किया जाता हो, जहाँ सब प्रान्तों और सब देशोंसे मनुष्योंका आना-जाना होता रहता हो, वहाँ सत्यका सभीमें बना रहना आसान बात नहीं। वहाँ तो मानो सत्यकी ही परीक्षा होती है। लेकिन यदि कार्यकर्ता सच्चे होंगे तो परीक्षा कितनी ही कठिन होनेपर भी आश्रमको उसमें उत्तीर्ण होना ही चाहिए। सत्यार्थीकी शक्तिका माप भले ही हो किन्तु सत्यकी शक्ति असीम है। लेकिन यदि सत्यार्थी जागरूक साधक हो, तो उसकी शक्तिका भी अन्त नहीं है।

प्रार्थना

यदि सत्यका आग्रह आश्रमके मूलमें ही है, तो उस मूलका मुख्य निर्वाह प्रार्थनासे होता है। जबसे आश्रम स्थापित हुआ तभीसे रोज प्रार्थनाके साथ ही आश्रमका काम शुरू हुआ है और प्रार्थनासे ही समाप्त हुआ है। मेरी जानकारीमें एक दिन भी प्रार्थनाके बिना खाली नहीं गया। मुझे ऐसे मौकोंकी याद है जब प्रार्थनाके स्थानपर

बरसात या ऐसे ही किसी कारणसे एक ही जिम्मेदार आदमी हाजिर हुआ है। शुरूसे नियम तो ऐसा ही रहा कि जो बीमार न हों या बीमारी जैसा ही दूसरा सबल कारण जिनके पास न हो, ऐसे सभी समझदार व्यक्ति प्रार्थनामें शरीक हों। शामकी प्रार्थनाके समय तो इस नियमका पालन ठीक-ठीक हुआ माना जायेगा। मगर सुबहकी प्रार्थनाके बारेमें ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सुबहकी प्रार्थनाका समय शुरू-शुरूमें अनिश्चित था। उसके बारेमें मैंने प्रयोग किये। क्रमशः चार, पाँच, छः और सात बजेकी प्रार्थना रखी गई थी। मगर समय-समय पर किये गये मेरे आग्रहके कारण आखिर ४–१० या ४–२० का समय तय हुआ है। यानी जागनेकी घंटी ४ पर बजे तो उसके बाद मुँह-हाथ धोकर और दतौन करके सब लोग ४–२० तक आ जायें।

मैंने माना है कि हिन्दुस्तान जैसे समशीतोष्ण प्रदेशमें मनुष्य जितना जल्दी उठे उतना ही अच्छा है। करोड़ों आदमियोंको जल्दी उठना ही पड़ता है। किसान देरसे उठे तो उसकी खेती बिगड़ जाये। पशुओंकी सँभाल बड़े सवेरे ही होती है। गाय सवेरे-सवेरे ही दुही जाती है। जिस देशमें यह हालत हो वहाँ सत्यार्थी, मुमुक्षु, सेवक या संन्यासी सुबह दो-तीन बजे उठे, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह कोई बड़ी बात कर रहा है। हाँ, न उठना ही आश्चर्यकी बात होगी। सभी देशोंमें धार्मिक मनुष्य, प्रभुके भक्त और गरीब किसान जल्दी ही उठते हैं। भक्त भगवानके ध्यानमें लीन होते हैं और किसान अपनी खेतीके कामोंमें लगकर अपनी और दुनियाकी सेवा करते हैं। मेरे खयालसे दोनों ही भक्त हैं। पहले ज्ञानपूर्वक भक्त हैं। किसान अनजानमें अपनी मेहनतसे प्रभुको भजते हैं, क्योंकि उनपर सारा जगत निर्भर करता है। वे मेहनत करनेके बदले ध्यान लगाकर बैठ जायें तो धर्मभ्रष्ट हो जायें और अपने नाशके साथ-साथ संसारका भी नाश कर दें।

मगर किसानको हम भक्त मानें या न मानें? जब किसानको, मजदूरको या दूसरे गरीबोंको इच्छासे या अनिच्छासे बड़ी सुबह उठना पड़ता है, तब जिसने सेवाको धर्म माना है, जो सत्यनारायणका पुजारी है, वह कैसे सोता रह सकता है? फिर आश्रममें तो भक्ति और सेवाके लिए उद्योगका मेल बैठानेकी कोशिश की जाती है। इसलिए कितनी ही अड़चनें महसूस हों, तो भी आश्रममें सभी सशक्त लोगोंको जल्दी उठना ही चाहिए, यह मुझे हमेशा दीपककी तरह साफ दिखाई दिया है और चार बजेका समय मैंने जल्दीका नहीं, बल्कि उठनेकी दृष्टिसे देरसे-देरका समय माना है।

कई प्रयोगोंके बाद अब बरसोंसे आश्रममें उठनेका घंटा चार बजे बजता है और प्रार्थना ठीक ४–१० या ४–२० पर शुरू होती है।

प्रार्थना कहाँ की जाये? कोई मन्दिर बनाकर या बाहर आकाशके नीचे? वहाँ भी कोई चबूतरा बनाकर या रेत और धूलपर ही? कोई मूर्ति खड़ी की जाये या नहीं, वगैरा सवाल भी तय करने थे। अन्तमें आकाशके नीचे, धूल या रेत पर ही बैठकर, मूर्तिके बिना प्रार्थना करनेका निश्चय हुआ। आश्रमका आदर्श गरीबी धारण करना है, भूखों मरते करोड़ोंकी सेवा करना है। आश्रममें कंगालके लिए जगह

है। यह कहा जा सकता है कि जो नियमका पालन करनेको तैयार हैं, वे सभी आश्रममें भरती हो सकते हैं। ऐसे आश्रममें प्रार्थना-मन्दिर ईंट-चूनेका नहीं हो सकता। उसके लिए आकाशका छप्पर, और दिशाओंके खम्भे तथा दीवारें ही काफी होनी चाहिए। चबूतरा बनवानेका जो विचार था वह भी छोड़ दिया गया। संख्याकी हद जब नहीं बाँधी जा सकती, तो फिर चबूतरेकी हद कौन बाँधे? बहुत बड़ा चबूतरा बनवानेमें खर्च बहुत होता है। अनुभवसे पाया गया कि मकान या चबूतरा न बनाने का विचार ठीक ही था। आश्रमसे बाहरके लोग भी प्रार्थनामें आ सकते हैं। इससे कई बार लोगोंकी संख्या इतनी ज्यादा हो जाती है कि कितना ही बड़ा चबूतरा बनवाया गया होता तो भी कभी-कभी वह छोटा पड़ जाता।

फिर, आश्रमकी प्रार्थनाका अनुकरण दिन-दिन बढ़ते जानेके कारण भी आकाश-मन्दिर ही ठीक साबित हुआ है। जहाँ कहीं मैं जाता हूँ वहाँ सुबह-शाम प्रार्थना होती ही है। खासकर शामको इतनी भीड़ होती है कि प्रार्थना खुले मैदानमें ही हो सकती है। और मुझे मन्दिरमें ही प्रार्थना करनेकी आदत पड़ी हुई होती तो शायद सफरमें सार्वजनिक प्रार्थना करनेका विचार भी नहीं उठता।

इसके सिवा, आश्रममें सब धर्मोंके लिए समान आदर है। सब धर्मोंके लोगोंको भरती होनेकी छूट है। उनमें मूर्तिपूजक भी हो सकते हैं और मूर्तिपूजाको न माननेवाले भी हो सकते हैं। किसीको आघात न पहुँचे, इस खयालसे आश्रमकी सामूहिक प्रार्थनामें मूर्ति नहीं रखी जाती। जो अपने कमरेमें मूर्ति रखना चाहें उन्हें कोई मनाही नहीं है।

प्रार्थनामें क्या होता है?

सुबहकी प्रार्थनामें 'आश्रम-भजनावलि'[1] में छपे हुए श्लोक, एकाध भजन, रामधुन और गीतापाठ होता है। शामको 'गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम उन्नीस श्लोक, भजन, रामधुन और अक्सर कोई पाठ होता है। आरम्भसे ही ऐसा नहीं था। श्लोकोंका चुनाव काकासाहब कालेलकरने किया है। काकासाहब आश्रममें शुरूसे ही शरीक हैं। काकासाहबसे जान-पहचान मगनलालने शान्तिनिकेतनमें की। जब मैं विलायतमें था तब मगनलालने बालकोंके साथ शान्तिनिकेतनका आसरा लिया था। दीनबन्धु एन्ड्रयूज और स्व० पियर्सन उस वक्त शान्तिनिकेतनमें थे। मैंने मगनलालको सलाह दी थी कि जहाँ एन्ड्रयूज कहें वहाँ ठहरे। एन्ड्रयूजने शान्तिनिकेतन पसन्द किया। काकासाहब उन दिनों शान्तिनिकेतनमें थे। वहाँ वे शिक्षकका काम करते थे। मगनलाल और काकासाहबके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। मगनलालको संस्कृत जाननेवाले अध्यापककी कमी महसूस हुआ करती थी, वह काकासाहबने पूरी कर दी। उसमें वहाँके चिन्तामणि शास्त्री भी शरीक हो गये। काकासाहबने प्रार्थनाके श्लोक सिखाये। शान्तिनिकेतनमें जो श्लोक सबने सीखे थे वे आजसे ज्यादा थे। उनमें से कुछ श्लोक काकासाहबसे सलाह करके समय बचानेकी खातिर निकाल दिये

१. देखिए खण्ड ४४।

गये। जो बाकी रहे वे आज चलते हैं। इस तरह प्रातःकाल गाये जानेवाले श्लोक आश्रमके आरम्भ-कालसे आज तक चले आ रहे हैं, और शायद एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब ये श्लोक आश्रममें न गाये गये हों।

इन श्लोकों पर काफी हमले हुए हैं — कई बार समय बचानेके खयालसे, किसी समय इस खयालसे कि कुछ श्लोक ऐसे हैं जिन्हें सत्यका पुजारी नहीं गा सकता और कभी-कभी इस मान्यतासे कि उन श्लोकोंको हिन्दुओंके अलावा और लोग नहीं गा सकते। यह तो निर्विवाद है कि ये श्लोक हिन्दू समाजमें ही गाये जाते हैं, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगा कि इनमें कोई ऐसी बात है जिससे दूसरे धर्मवालोंको इन्हें गानेमें या गाते समय मौजूद रहनेमें कोई चोट पहुँचे। जिन मुसलमान और ईसाई मित्रोंने ये श्लोक सुने हैं, उन्होंने भी विरोध नहीं किया। जिनके मनमें दूसरे धर्मके लिए आदर है, उन्हें चोट नहीं लगनी चाहिए, और यहाँ ऐसे लोगोंका ही उल्लेख हो सकता है। इन श्लोकोंमें किसीकी निन्दा या उपेक्षा ऐसी कोई बात है ही नहीं। आश्रममें हिन्दू धर्मवालोंकी बहुत बड़ी संख्या होनेके कारण पसन्दगी तो हिन्दू धर्मके श्लोकोंकी ही हो सकती है। लेकिन दूसरोंका कुछ भी गाया या पढ़ा न जाये, ऐसा कोई नियम नहीं है। बल्कि प्रार्थनामें प्रसंग आनेपर इमाम साहब कुरानकी आयतें पढ़ते थे। मुसलमानी भजन या गजलें तो बार-बार गाई जाती हैं। यही बात ईसाई भजनोंके बारेमें भी है।

मगर बहुत आग्रहके साथ जो विरोध हुआ वह सत्यकी दृष्टिसे हुआ। सरस्वती, गणेश वगैराकी पूजा सत्यका हनन करनेवाली है। कमलके आसन पर बैठी वीणा आदि हाथमें धारण करनेवाली सरस्वती नामकी किसी देवीकी हस्ती ही नहीं है। मोटे पेटवाला और सूँड़वाला गणेश नामका कोई देवता ही नहीं है। एक आश्रम-वासीने यह दलील बड़ी नम्रताके साथ मगर उतने ही जोरसे दी कि ऐसे काल्पनिक देवताओंकी प्रार्थना करनेमें और उसे बच्चोंको सिखानेमें सत्यका हनन होता है। उन्हें दूसरे आश्रमवासियोंका समर्थन भी प्राप्त था। इस बारेमें मैंने अपनी राय इस प्रकार दी :

'मैं अपनेको सत्यका पुजारी मानता हूँ, फिर भी मुझे ये श्लोक बोलनेमें या बच्चोंको सिखानेमें जरा भी चोट नहीं पहुँचती। अगर ऊपरकी दलीलसे कुछ श्लोक रद कर दिये जायें, तो उनके गर्भमें हिन्दू धर्मकी जो सारी रचना भरी है उसपर हमला होता है। मैं यह नहीं कहता कि हिन्दू धर्ममें आक्रमण करनेके लायक जो चीज हो उसपर आक्रमण न किया जाये, भले ही वह कितनी ही पुरानी क्यों न हो। मगर इसे मैं हिन्दू धर्मका कमजोर या हमला करने लायक अंग नहीं मानता। इसके विपरीत, मेरा विश्वास है कि हिन्दू धर्ममें यह जो अंग रहा है वह शायद उसकी विशेषता है। मैं खुद सरस्वती या गणेश जैसी किसी अलग हस्तीको नहीं मानता। ये सब वर्णन एक ही ईश्वरकी स्तुतियाँ हैं। उसके असंख्य गुणोंको भक्त-कवियोंने मूर्तिमान रूप दिया है। यह कोई बुरी बात नहीं हुई। ऐसे श्लोकोंमें अपनेको या और किसीको धोखा देनेकी कोई बात नहीं है। देहधारी जब ईश्वरकी स्तुति

करने बैठता है, तब वह उसके बारेमें अपनी रुचिकी कल्पना कर लेता है। उसकी कल्पनाका ईश्वर उसके लिए तो है ही। निर्गुण निराकार ईश्वरकी प्रार्थना बोलते ही उसमें गुणोंका आरोपण होता है। गुण भी आकार ही हैं। असलमें तो ईश्वर वर्णनातीत है। वह वाणीकी सीमासे परे है। मगर क्षुद्र मानवको तो उसकी कल्पनाका ही आधार है। उसीसे वह पार लगता है और उसीसे डूबता भी है। ईश्वरके लिए जो भी विशेषण शुद्ध हेतुसे विश्वासके साथ गाओ वह तुम्हारे लिए सच्चा है। और मूलमें तो वह झूठा ही है, क्योंकि ईश्वरके लिए कोई भी विशेषण काफी नहीं होता। मैं खुद बुद्धिसे यह बात जानता हूँ, फिर भी उसके गुणोंका बखान किये बिना, उसका चिन्तन किये बिना नहीं रह सकता। मेरी बुद्धि जो कहती है उसका हृदयपर कोई असर नहीं होता। मैं यह स्वीकार करनेको तैयार हूँ कि मेरे निर्बल हृदयको गुणोंवाले ईश्वरका आसरा चाहिए। जो श्लोक मैं पिछले पन्द्रह सालसे गाता आया हूँ, वे मुझे शान्ति देते हैं, अपनी दृष्टिसे मुझे वे सच्चे मालूम होते हैं। उनमें मुझे सौन्दर्य, काव्य और शान्तिके दर्शन होते हैं। सरस्वती, गणेश वगैराके लिए विद्वान लोग कई कथाएँ कहते हैं। वे सब सारहीन नहीं हैं। उनके रहस्यका मुझे पता नहीं। उनमें मैं गहरा उतरा भी नहीं। अपनी शान्तिके लिए मुझे गहरा उतरनेकी जरूरत भी नहीं जान पड़ी। इसलिए सम्भव है मेरा अज्ञान ही मुझे बचा लेता हो। सत्यकी खोज करते हुए इस चीजकी गहराईमें जानेकी जरूरत मुझे महसूस नहीं हुई। अपने ईश्वरको मैं जानता हूँ। उस तक मैं पहुँचा नहीं हूँ, मगर मैं उस दिशामें जा रहा हूँ। मेरे लिए इतना काफी है।'

मैं यह आग्रह नहीं रख सकता कि इस दलीलसे साथियोंको सन्तोष होगा ही। मुझे पता नहीं कि इससे किसको कहाँ तक सन्तोष हुआ। इस बारेमें एक बार एक समिति कायम की गई थी और खूब चर्चा होनेके बाद यह फैसला हुआ कि जो भी चुनाव किया जायेगा, उसमें किसी-न-किसीको कोई दोष तो दिखेगा ही। इसलिए जो है उसीको रहने दिया जाये। इन श्लोकोंका अर्थ सब अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार करेंगे। मैं जिन बातोंका बयान कर गया हूँ, वे सब एक साथ नहीं घटीं। अलग-अलग मौकोंपर अलग-अलग विरोध हुए। मैंने उन सबको एक जगह इकट्ठा करके दे दिया है।

श्लोकोंके साथ भजन तो होते ही थे। प्रार्थनाकी शुरुआत दक्षिण आफ्रिकामें भजनोंसे ही हुई थी। श्लोक तो हिन्दुस्तानमें आनेके बाद उसमें जोड़े गये। भजन गाने-गवानेमें मगनलाल ही मुखिया थे। इससे हम दोनोंको असन्तोष था। जो-कुछ करना हो अच्छी तरह, यानी सच्चे ढंगसे करनेका लोभ था। इसलिए कोई संगीत-शास्त्री मिल जाये तो उससे सब तालीम लें और भजन रसके साथ गाये जायें। भजनमें एक-सा स्वर न निकले तो उसमें तल्लीन होना असम्भव भले ही न हो पर कठिन तो था ही। मगर शास्त्री ऐसा होना चाहिए, जो आश्रमके नियमोंका पालन करे। ऐसा लगा कि इस तरहका संगीत-शास्त्री मिलना कठिन है। तलाश करते-करते मगनलालको स्व० संगीताचार्य विष्णु दिगम्बर शास्त्रीने अपने पहले शिष्य नारायण

खरेको प्रेमपूर्वक सौंप दिया। उन्होंने आश्रमके खयालसे पूरा सन्तोष दिया और वे अब आश्रमके पूरे सदस्य बनकर रहते हैं। उन्होंने भजनोंमें रस उँड़ेला। जो 'आश्रम-भजनावलि' आज हजारों लोग आनन्दके साथ पढ़ते हैं वह मुख्यतः उन्हींकी कृति है। भजनके साथ उन्होंने रामधुन भी जारी की।

अभी प्रार्थनाका चौथा अंग बाकी है। यह है गीता-पाठ। समय-समय पर 'गीता' तो पढ़ी ही जाया करती थी। बरसोंसे आश्रमवासी 'गीता'को आचार-विचारके लिए प्रमाण-ग्रन्थ मानते रहे हैं। कोई आचार या विचार शुद्ध है या नहीं, यह देखनेके लिए आश्रम 'गीता'को वैसा ही समझता है, जैसे हिज्जे या अर्थको समझनेके लिए विद्यार्थीके पास शब्दकोष या अर्थकोष होना है। 'गीता'के अर्थ हर आश्रमवासी जाने तो अच्छा, वह सबको मुखाग्र हो जाये तो और भी अच्छा, और ऐसा न हो सके तो भी मूलको शुद्ध उच्चारणके साथ पढ़ सके तो ठीक — इस तरहके विचारोंको लेकर रोज गीतापाठ करना शुरू किया गया। पहले थोड़े श्लोक थे और याद हो जाने तक उन्हीं श्लोकोंका रोज पाठ होता था। इसमेंसे पारायण [की कल्पना] पैदा हुई और अब 'गीता'के अध्याय इस ढंगसे जमा लिये गये हैं कि चौदह दिनोंमें पूरी 'गीता' पढ़ी जा सके। इस तरह हर आश्रमवासी जान सकता है कि किस दिन कौनसे श्लोक पढ़े जाते हैं। हर दूसरे शुक्रवारको पहला अध्याय शुरू होता है। जिस दिन यह लिखा जा रहा है उसके बादका शुक्रवार (१० जून, १९३२) पहले अध्यायका है। अठारह अध्याय चौदह दिनमें पूरे करनेके लिए ७-८, १२-१३, १४-१५, १६-१७ अध्याय एक ही दिन एक साथ गाये जाते हैं।[1]

मैं कह चुका हूँ कि शामकी प्रार्थनामें भजन और रामधुनके सिवा 'गीता'के दूसरे अध्यायके पिछले उन्नीस श्लोक बोले जाते हैं। इन श्लोकोंमें स्थितप्रज्ञके लक्षण कहे गये हैं। सत्याग्रहीके भी यही लक्षण होने चाहिए। जो चीज स्थितप्रज्ञ साधता है, वही सत्याग्रहीको साधनी है। यह बात हमेशा याद रहे, इसीलिए ये श्लोक गाये जाते हैं।

रोज एक ही प्रार्थना करना उचित है या नहीं इसके बारेमें यह शंका उठाई गई है कि 'रोज एक ही प्रार्थना करनेसे वह यंत्रवत् हो जाती है; इससे उसका असर जाता रहता है।' यह सही है कि प्रार्थना यंत्रवत् हो जाती है। हम खुद भी तो यंत्र हैं। अगर हम ईश्वरको यंत्र चलानेवाला मानते हैं, तो हमें यंत्रकी तरह चलना ही चाहिए। सूर्य, चन्द्र वगैरा अपना काम यंत्रोंकी तरह न करें, तो जगत एक क्षण भी नहीं चल सकता। पर यंत्रवत्का अर्थ जड़वत् नहीं है। हम चेतन हैं। चेतनको शोभा दे उतना ही वह यंत्र की तरह आचरण करे, चले। प्रार्थना

१. बादमें गीतापाठ हर चौदहवें दिनके बजाय हर सातवें दिन ही समाप्त होने लगा था। दिन और अध्यायका ब्यौरा इस प्रकार रहा: शुक्रवार, १ और २; शनिवार, ३, ४ और ५; रविवार, ६, ७ और ८; सोमवार, ९, १०, ११ और १२; मंगलवार, १३, १४ और १५; बुधवार, १६ और १७; बृहस्पतिवार, १८।

एक-सी ही हो या विविध, ये दो सवाल नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि अनेक प्रार्थनाएँ रखनेपर भी उनका असर न पड़े। हिन्दुओंकी वही गायत्री, इस्लामका वही कलमा, ईसाईकी वही प्रार्थना इन धर्मोंके लाखों आदमी सदियोंसे रोज पढ़ते आये हैं। लेकिन इससे उनका चमत्कार कुछ कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। अगर उनके पीछे मनुष्यकी भावना रहेगी, तो उनका चमत्कार और भी बढ़ेगा। यही गायत्री, यही कलमा, यही ईसाकी प्रार्थना नास्तिक पढ़े या तोता पढ़े, तो उसका कुछ भी असर न होगा। मगर जब यही प्रार्थना आस्तिकके मुँहसे रोज निकलती है, तब उसकी भव्य शक्ति रोज बढ़ती जाती है। हमारी मुख्य खुराक रोज वही-की-वही होती है। गेहूँ खानेवाले दूसरी चीजें भले ही लें, उनमें फेरबदल करें, परन्तु गेहूँकी रोटी तो रोज खायेंगे ही। इससे उनका शरीर बनेगा। वे ऊबेंगे नहीं। ऊब जायें तो शरीरका अन्त नजदीक आ जाये। यही बात प्रार्थना की है। मुख्य प्रार्थना तो एक ही होगी। आत्माको यदि उसकी भूख होगी, तो वह एक प्रार्थनासे भी ऊबेगी नहीं, बल्कि पुष्ट होगी। जिस दिन प्रार्थना नहीं होगी, उस दिन उसे उसकी भूख रहेगी। वह उपवासीसे भी ज्यादा शिथिल होगी। शरीरके लिए किसी दिन उपवास जरूरी होता है, लेकिन आत्माको प्रार्थनाकी बदहजमी हुई हो ऐसा कभी सुना नहीं गया।

असल बात यह है: हममें से बहुतेरे आत्माकी भूखके बिना प्रार्थना करते हैं। आत्मा है, यह मानना एक 'फैशन' है, एक रिवाज-सा है, इसलिए 'आत्मा है' ऐसा मानते हैं। इस तरहकी हीन दशा बहुतोंकी होती है। कुछके लिए 'आत्मा है' यह उनकी बुद्धि निश्चित कर देती है। ऐसोंके लिए यह विचार हृदयगत नहीं होता, इसलिए उन्हें प्रार्थनाकी जरूरत नहीं प्रतीत होती। बहुतेरे प्रार्थनामें यह मानकर शरीक होते हैं कि समाजमें रहकर वही करना चाहिए जो समाज करता है। ऐसोंको विविधताकी जरूरत जान पड़ती है। मगर असलमें वे प्रार्थनामें समरस होते ही नहीं। वे संगीत सुनने आते हैं, कुतूहल-वश आते हैं, प्रवचन सुनने आते हैं। वे ईश्वरके साथ एकता साधने नहीं आते।

प्रार्थनाका अर्थ क्या है?

प्रार्थनाका मूल अर्थ तो माँगना होता है। ईश्वरसे या बड़ोंसे नम्रताके साथ की गई माँग ही प्रार्थना है। यहाँ इस अर्थमें प्रार्थना शब्द नहीं लिया गया है। यहाँ प्रार्थनाका अर्थ है ईश्वरकी स्तुति, भजन-कीर्तन, उपासना, सत्संग, अन्तर्ध्यान, अन्तर-शुद्धि।

परन्तु ईश्वर कौन है? वह कोई हमारे शरीरसे या संसारसे बाहर रहनेवाला व्यक्ति नहीं है। वह तो सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है। उसे स्तुतिकी क्या गरज? सर्वव्यापक होकर वह सब-कुछ सुनता है, हमारे विचार जानता है; ऊँचे स्वरसे बोलकर उसे क्या सुनाया जाये? वह हमारे दिलमें बसा हुआ है। नाखून अँगुलीके जितना पास है उससे भी ज्यादा ईश्वर हमारे नजदीक है। यहाँ प्रार्थना क्या करेगी?

चूँकि ऐसी उलझन है, इसीलिए प्रार्थनाका अर्थ अन्तर-शुद्धि भी किया गया है। बोलकर ईश्वरको नहीं सुनाना है। बोलकर या गाकर हम अपनेको ही सुनाते हैं, नींदसे जगाते हैं। हममें से कुछ लोग ईश्वरको बुद्धिसे पहचानते हैं। कुछको तो उसके बारेमें भी शंका है। किसीने ईश्वरको आँखोंसे देखा नहीं है। हमें उसे दिलसे पहचानना है, उसका साक्षात्कार करना है, उसके स्वरूपमें मिल जाना है। इसीके लिए हम प्रार्थना करते हैं।

यह ईश्वर, जिसका हम साक्षात्कार करना चाहते हैं, सत्य है। या यों कहिए कि सत्य ही ईश्वर है। पर सत्यका अर्थ इतना ही नहीं है कि सच बोला जाये। सत्यका अर्थ है वह तत्व जो इस जगतमें अपने रूपमें हमेशासे था, है और रहेगा — उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है; वह तत्व जो अपनी शक्तिसे विद्यमान है, जिसे किसीका सहारा नहीं चाहिए, बल्कि जगतमें जो-कुछ है, सब उसीके सहारे टिका हुआ है। सत्य ही शाश्वत है, बाकी सब क्षणिक है। उसे किसी आकारकी जरूरत नहीं। वही शुद्ध चेतन है, वही शुद्ध आनन्द है। उसे ईश्वर कहें, क्योंकि उसीकी सत्तासे सब-कुछ चलता है। वह और उसका कानून एक ही है, इसलिए वह कानून चेतन-रूप है। उसी कानूनके सहारे सारा तन्त्र चलता है। उसी सत्यकी आराधना ही प्रार्थना है, यानी हमारी सत्यमय होनेकी तीव्र इच्छा है। यह इच्छा चौबीसों घंटे होनी चाहिए। मगर हममें इतनी जागृति नहीं है; इसीलिए हमें नियत समय पर प्रार्थना, आराधना या उपासना करनी ही चाहिए और ऐसा करते-करते हमें चौबीसों घंटे सत्यका चिन्तन हो।

आश्रम इस तरहकी प्रार्थनाको सिद्ध करना चाहता है। अभी तो वह उससे बहुत दूर है। ऊपर बताये हुए उपचार तो सब बाह्योपचार हैं। मगर किसी भी तरह प्रार्थनाको हृदयमें उतारनेकी धारणा है। और अगर आश्रमकी प्रार्थना अबतक आकर्षक नहीं बनी, अभी भी आश्रमवासियों तकको प्रार्थनामें हाजिर रहनेके लिए टोकना पड़ता है, तो उसका अर्थ यह है कि आश्रममें हममें से किसीमें भी उस अर्थमें प्रार्थना मूर्तिमान नहीं हुई है।

हार्दिक प्रार्थनामें तो भक्तको इतना ध्यानस्थ रहना चाहिए कि उस समय उसे किसी दूसरी चीजका भान ही न हो। भक्तको विषयीकी उपमा ठीक ही दी गई है। विषयीको जब उसका विषय मिल जाता है, तब वह अपना भान भूलकर विषय-रूप बन जाता है। उसकी सारी इन्द्रियाँ तदाकार हो जाती हैं, क्योंकि उसे अपने विषयके अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। इससे भी ज्यादा तदाकारता उपासकमें होनी चाहिए। यह तदाकारता बड़े प्रयाससे, तपसे, संयमसे ही समय पाकर आती है। जहाँ ऐसा कोई भक्त होता है वहाँ प्रार्थनामें जानेके लिए किसीको ललचाना नहीं पड़ता। उसकी भक्ति औरोंको जबरदस्ती खींच लाती है।

यहाँ तक सामूहिक प्रार्थनाके बारेमें लिखा गया। मगर आश्रममें व्यक्तिगत, एकान्त प्रार्थना पर भी जोर दिया जाता है। जो अकेला प्रार्थना करता ही नहीं, वह भले सामूहिक प्रार्थनामें शरीक हो, मगर उसमें से वह बहुत लेता नहीं। समाजके

लिए सामूहिक प्रार्थना बहुत जरूरी है। लेकिन जैसे व्यक्तिके बिना समाज हो ही नहीं सकता, उसी तरह व्यक्तिगत प्रार्थनाके बिना सामूहिक प्रार्थना भी सम्भव नहीं। इसलिए हर आश्रमवासीको बार-बार चेतावनी दी जाती है कि उसे सोते-जागते अनेक बार अपने-आप ही तल्लीन होना चाहिए। इसके लिए कोई पहरा नहीं लगा सकता और न इसका कोई हिसाब ही हो सकता है। मैं नहीं कह सकता कि आश्रममें ऐसी प्रार्थना कहाँ तक होती है। मैं मानता हूँ कि थोड़ी-बहुत मात्रामें सभी इस दिशामें प्रयत्न कर रहे हैं।

अहिंसा

कहा जा सकता है कि ज्यादा-से-ज्यादा परेशानी शायद अहिंसा-पालनके बारेमें हुई है। सत्यकी पहेलियाँ बनी ही रहती हैं। प्रार्थना हृदयमें नहीं उतरती। मगर ये दोनों (सत्य और प्रार्थना) क्या हैं यह समझनेमें बहुत मुश्किल नहीं पड़ती। अहिंसाको समझनेमें ही दम निकल जाता है। जितनी चर्चा अहिंसाकी हुई है, उतनी आश्रममें और किसी विषयकी नहीं हुई होगी। जो अमुक काम किया गया वह हिंसा है या अहिंसा, यह सवाल आश्रममें उठा ही करता है। और बहुत बार हिंसा-अहिंसा का भेद जानते हुए भी अहिंसाका पालन नहीं किया जा सकता। पालन करनेमें अक्सर हमारी कमजोरी आड़े आती है। यह कमजोरी भी ऐसी नहीं होती, जो आसानीसे दूर की जा सके। मन, वचन और शरीरसे किसीको भी दुख न देना, अपना या दूसरेका भला मानकर भी किसी जीवको दुख न देना अहिंसा है। इसपर पूरी तरह अमल करना देहधारीके लिए असम्भव है। वह एक साँस लेनेमें ही अनेक सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा करता है। जो जीव आँख पर बैठना चाहते हैं आँख झपकानेमें उनकी हिंसा होती है। खेती करनेमें अनेक छोटे-बड़े जीवोंकी हिंसा होती है। साँप-बिच्छू काटेंगे इस डरसे उन्हें हम मारते नहीं पर पकड़कर दूर तो जरूर छोड़ आते हैं। पकड़नेमें उन्हें थोड़ा दुख तो होता ही है। भले उसे अनिवार्य समझा जाये, मगर ऊपरकी व्याख्याके अनुसार वह हिंसा तो है ही।

मैं जो खाता हूँ, जो जगह रोकता हूँ, जो कपड़े पहनता हूँ, उसमें से यदि कुछ बचा लेता हूँ, तो यह स्पष्ट है कि मुझसे जिन्हें ज्यादा जरूरत है उन गरीबोंके वे काम आयें। मेरे स्वार्थके कारण उन्हें ये चीजें नहीं मिल पातीं। इसलिए मेरे भोगसे मेरे कंगाल पड़ोसीकी हिंसा होती है। जीनेके लिए मैं कई तरहकी वनस्पति खाता हूँ। उसमें वनस्पति-जीवनकी हिंसा है।

इस व्यापक हिंसामें पड़ा हुआ मैं किस तरह अहिंसाका पालन करूँ? पग-पग पर नई समस्याएँ खड़ी होनेवाली ही हैं।

ऊपर बताई हुई हिंसा तो ऐसी है जो समझमें आ सकती है। मगर हम एक-दूसरेसे जो सूक्ष्म द्वेष करते हैं, उसका क्या हो? शिक्षक लड़कोंको मारे, माँ बच्चोंको डाँटे, बराबरीवाले लोग कभी-कभी एक दूसरेको लाल आँखें दिखायें, यह सब हिंसा ही है और बहुत बुरी हिंसा है। इसका ठीक उपाय नहीं मिलता। जहाँ रागद्वेष हैं वहाँ हिंसा है ही। यह हिंसा कैसे मिटे?

इसलिए पहले तो हम आश्रममें यह सीख लेते हैं कि देश और कुटुम्ब या अपने लिए किसीका सिर धड़से उड़ा देना तो हिंसा है ही, मगर क्रोधादिसे रोज होनेवाली सूक्ष्म हिंसा इस स्थूल हिंसासे शायद अधिक खराब है। अलग हिसाब लगायें तो दुनियामें जो रोज खून होते हैं उनकी संख्या काफी जान पड़ेगी। पर दुनियाकी आबादीके प्रमाणमें जो मौतें और तरहसे होती हैं, उनसे तुलना करनेपर इन खूनोंकी संख्या नाममात्रकी मालूम होगी। मगर क्रोध वगैरासे रोज होनेवाली सूक्ष्म हिंसाका तो अन्दाजा ही नहीं लग सकता।

इन सब तरहकी हिंसासे निपट पानेकी कोशिश आश्रममें रोज होती है। सब अपनी कमजोरीको समझते हैं। साँप-बिच्छूका डर मुझसे लेकर सब आश्रमवासियों तकको है। इसलिए उन्हें पकड़कर किसीको नुकसान न हो ऐसी जगह छोड़ आनेका आम रिवाज है। और कोई डरके मारे उसे मार डाले तो वह उलाहनाका पात्र नहीं माना जाता। एक बार गोशालामें एक भयंकर नाग ऐसी जगह घुस कर बैठ गया था, जहाँसे उसे पकड़ा नहीं जा सकता था। ऐसी हालतमें वहाँ ढोर बाँधनेमें खतरा था। आदमी काम करनेमें भी डरते थे। मजबूर होकर मगनलालने उसे मार डालनेकी मंजूरी दे दी। मुझसे जब उसने यह बात कही तो मैंने उसका काम पसन्द किया। मैं मानता हूँ कि मैं खुद उस समय आश्रममें होता तो और कोई उपाय नहीं कर सकता था। मेरी अपनी बुद्धि कहती है कि साँपको भी अपना सगा समझकर उसके साथ वैसा ही बरताव करना चाहिए। उसके काटनेसे मौत हो जाये तो वह खतरा उठाकर भी मुझे साँपको हाथसे पकड़कर डरनेवालोंके पाससे हटाना चाहिए। मगर मेरे दिलमें न तो इतनी मित्र-भावना है, न इतनी निर्भयता है और न साँप वगैराके काटनेसे होनेवाली मौतके प्रति उपेक्षा-भाव ही है। इन तीनों बातोंको हृदयमें पैदा करनेकी मेरी कोशिश है, पर मैं सफल नहीं हो पाया हूँ। यह सम्भव है कि मुझपर साँप हमला करे तो मैं उसका हमला सह लूँ और उसे मारनेको तैयार न होऊँ, पर दूसरेके शरीरको खतरेमें डालनेके लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

एक समय आश्रममें बन्दरोंका उपद्रव इतना बढ़ गया कि वे फसलको बेहद नुकसान पहुँचाने लगे। रखवाले उन्हें गोफनसे डराते, पर वे क्यों डरने लगे? अन्तमें वे बन्दरोंको घायल करने लगे। एक बन्दर लँगड़ा हो गया। मुझे इसमें शरीर-दंडसे ज्यादा हिंसा दिखाई दी। इस बारेमें साथियोंसे चर्चा करनेके बाद यह फैसला हुआ कि बन्दर न जायें, तो गोफनसे या दूसरी तरहसे घायल करनेके अलावा दूसरे हलके उपायोंसे यदि वे न भगाये जा सकें तो एक-दोकी जान ली जाये और उपद्रवको शान्त किया जाये। यह आखिरी फैसला करनेसे पहले मैंने 'नवजीवन' के द्वारा तथा मित्रोंको लिखकर इसकी खुली चर्चा की थी। इसलिए यहाँ सारी दलीलोंमें मैं नहीं उतरता। जिन्हें इस विषयमें ज्यादा जाननेकी इच्छा हो वे 'नवजीवन' पढ़ लें।[1]

मनुष्येतर प्राणी यदि हिंसक हों तो भी उन्हें न मारा जाये, ऐसी धर्मभावना हिन्दुस्तानके बाहर भी मानी गयी हो यह मैं नहीं जानता। मालूम हुआ है कि ऐसा

१. देखिए खण्ड ३७, पृष्ठ ३४-५ तथा खण्ड ३८, पृष्ठ ७६-७।

धर्म संत फ्रांसिस जैसे व्यक्तिने पाला था। लेकिन आम लोगोंने उस धर्मको पाला हो यह मैं नहीं जानता। आश्रम इस धर्मको मानता है। फिर भी दुखकी बात है कि इसे अमलमें लानेमें आश्रम बहुत कच्चा है। इस धर्मको पालनेकी कला अभी हाथ नहीं लगी है। सम्भव है उसके पालनमें बहुतसे लोग अपने प्राण गँवायें तभी यह हाथ लगे। अभी तो यह सिर्फ मनोरथके रूपमें है। बहुत समयसे इसे धर्म मान लिया जानेपर भी उसका पालन बहुत कम होता है। इसका मुख्य कारण मैं यह मानता हूँ कि इसे धर्म रूपमें स्वीकार करनेवाले आलस्यवश या दूसरे कारणोंसे अपने-आपको धोखा ही देते हैं।

पागल कुत्तेको मार डालनेका आश्रममें रिवाज है। ऐसा अवसर मेरी जानकारीमें एक ही बार आया है। ऐसा करनेमें खयाल यह रहा है कि पागल कुत्ता तकलीफ पा-पाकर अन्तमें मर ही जाता है। यह अच्छा नहीं हो सकता। वह दूसरी जगह जहाँ भी पहुँचता है, वहाँ लोग उसे मार डालनेके बजाय पीड़ा पहुँचाते हैं और यह मानकर अपनेको धोखा देते हैं कि ऐसा करके वे अहिंसा-धर्मका पालन करते हैं और यों मेरे खयालसे तो वे ज्यादा हिंसा करते हैं। ऐसा समझकर आश्रममें पागल कुत्तोंको मार डालनेमें ही धर्म माना है।

किसी प्राणीको देहमुक्त करनेमें भी कभी-कभी अहिंसा हो सकती है, ऐसी स्पष्ट मान्यतासे आश्रममें एक बछड़ेका देहान्त किया गया। यह एक प्रसिद्ध उदाहरण है। उस बछड़ेका पैर टूट गया था। उसमें घाव हो गये थे, कीड़े पड़ गये थे। न उसे उठाया जा सकता था और न कोई दूसरी राहत पहुँचाई जा सकती थी। वह इतना बड़ा जानवर था कि मनुष्यसे न उसकी करवट बदली जा सकती थी और न उसे गोदमें बैठाया जा सकता था। उसका शरीरान्त न किया जाता तो यही होता कि वह छटपटाता रहता और हम देखा करते। यह आशा भी नहीं थी कि वह बछड़ा बहुत दिन जियेगा। ऐसी हालतमें मुझे लगा कि उसकी जान ले लेनेमें ही दया है। ऐसे छटपटाते प्राणीकी पीड़ाको लम्बानेमें मुझे धर्म न जान पड़ा। जहाँ अपना स्वार्थ न हो, जहाँ प्राणीका ही स्वार्थ देखा जाये, वहाँ प्राण-हरण धर्म हो सकता है, ऐसा मुझे स्पष्ट लगा। इसकी लम्बी चर्चा आश्रमवासियोंसे की। कइयोंने विरोध भी प्रगट किया। मगर अन्तमें मारनेका निश्चय किया गया। मैंने प्रसिद्ध सेठ अम्बालाल साराभाईकी मदद माँगी। उनके यहाँ जो बन्दूकवाले सिपाही थे उन्हें भेजनेको कहा। उन्होंने जहरकी पिचकारी लगाकर बछड़ेके प्राण लेनेका उपाय ज्यादा पसन्द किया। मैंने इसका समर्थन किया। उनके डाक्टरने आकर जहर देकर थोड़े ही पलोंमें बछड़ेका काम तमाम कर दिया।[1] मैं सारे समय वहाँ मौजूद था। यह लिखते वक्त भी इस घटनाका विचार करते हुए मुझे किसी तरहका पश्चात्ताप नहीं है, बल्कि वह पुण्यका काम था ऐसा मेरा विश्वास है। बहुत-से हिन्दुओंके दिलको इससे चोट पहुँची थी। सम्भव है, इसे पढ़कर भी चोट पहुँचे। मुझे लगता है कि ऐसे आघातके पीछे अहिंसाके स्वरूपके विषयमें हमारा अज्ञान ही कारण है। आज

१. देखिए खण्ड ३७, पृष्ठ ३२३-२७ और खण्ड ३८, पृष्ठ १४७-८।

तो यह जीता-जागता धर्म नहीं रहा। अहिंसाका रिवाज-सा पड़ गया है। उसीके अनुसार बगैर सोचे-समझे, जहाँ तक खुदको बहुत असुविधा महसूस न हो वहाँ तक हिन्दुस्तानके हिन्दू अपना आचरण करते हैं। इस बछड़ेकी घटनाकी और उससे पैदा होनेवाले कई सवालोंकी पूरी चर्चा 'नवजीवन' में हो चुकी है।

इतना कहकर मैं मनुष्यके सिवा दूसरे जीवोंके सम्बन्धमें अहिंसाके जो प्रयोग आश्रममें हुए उनकी चर्चा पूरी करता हूँ।

आश्रमकी दृष्टिमें इस जीवदयामें समाहित अहिंसा इस व्यापक धर्मका बड़ा किन्तु एक अंगमात्र है। उससे भी बड़ा अंग मनुष्योंका एक दूसरेके साथका व्यवहार है। मामूलीसे-मामूली व्यवहार या तो हिंसक होगा या अहिंसक। सौभाग्यसे अहिंसा व्यापक धर्म है और इसलिए मनुष्य उसका पालन सहज ही करता है। अगर एक-दूसरेको निभा न लिया जाये, तो मनुष्य-जातिका कभीका नाश हो गया होता। ऐसे महान् अवलोकनोंसे हम अहिंसा-धर्मको साबित कर सकते हैं, मगर इससे उसका पालन करनेका यश हम नहीं ले सकते।

जहाँ-जहाँ हमारा क्षणिक स्वार्थ बाधक होता है, वहाँ-वहाँ हम अक्सर जान-बूझकर हिंसाका रास्ता अपनाते हैं। और यह कुटुम्बमें, गाँवमें, देशमें और अलग-अलग धर्मोंके सम्बन्धमें समय-समय पर देखा जाता है। अहिंसाका ज्ञानपूर्वक पालन मनुष्यको नवजीवन प्रदान करता है, उसे बदल डालता है। इस कठिन धर्मको जान-बूझकर पालनेकी आश्रममें कोशिश की जाती है। इसमें सैकड़ों रुकावटें आती हैं, निराशाएँ पैदा होती हैं और कई बार श्रद्धाकी परीक्षा होती है। आपसके बरतावमें आचार-शुद्धिसे ही सन्तोष नहीं रहता। किसीके लिए खराब विचार न करना, किसीने हमारा बहुत नुकसान किया हो तो भी उसका बुरा न चाहना, विचारमें भी उसे दुख न देना — यह बड़ा मुश्किल है, मगर अहिंसा-पालनकी कसौटी इसीमें निहित है।

आश्रममें चोर आये हैं, चोर पैदा हुए हैं। उन्हें सजा देनेकी नीति यहाँ नहीं रखी गई; पुलिसको खबर नहीं दी जाती; उनके उत्पातोंको यथाशक्ति बरदाश्त किया जाता है। इस नियमका सदा पूरी तरहसे पालन नहीं किया गया। एक बार दिनमें चोरी करते हुए एक चोर पकड़ा गया था। जिसने उसे पकड़ा उसने उसे बाँध दिया, उसका अपमान तो किया ही। मैं उस दिन आश्रममें था। मैं चोरके पास गया, उसे उलाहना दिया और उसे बंधनमुक्त किया। मगर असलमें देखा जाये तो इससे अहिंसावादीका धर्म पूरा नहीं होता। ऐसे उत्पातोंको रोकनेके लिए काफी उपाय खोजे और किये जाने चाहिए। एक उपाय तो यह है कि आश्रमके परिग्रह और भोग-विलासको कम किया जाये, ताकि किसीको वहाँसे कुछ लेनेका प्रलोभन ही न उठे। दूसरा उपाय यह है कि आसपासके गाँवोंमें शुद्ध आचरणका प्रचार किया जाये। और तीसरा यह कि आश्रमकी सेवा इतनी व्यापक हो जाये कि भले-बुरे सभीमें यह भावना पैदा हो जाये कि आश्रम हमारा अपना है।

इस परसे देखा जा सकता है कि परिग्रहीके लिए स्थूल अहिंसाका भी पूरा पालन असम्भव-सा है। जो अपनी जायदाद रखता है, वह उसकी रक्षा का उपाय

करेगा ही। अतः ऐसा करनेमें कहीं-न-कहीं दण्डका स्थान भी होगा ही। जो सब चीजोंसे ममत्व हटाकर उदासीन होकर व्यवहार करता है, वही स्थूल अहिंसाका पूरा पालन कर सकता है। जिस समाजमें ऐसे आदमी या ऐसी संस्थाएँ ज्यादा होंगी, वहाँ हिंसक उपाय कमसे-कम काममें लाये जानेकी सम्भावना रहेगी। जैसे हिंसा पर रचे हुए समाजमें गोला-बारूदका बड़ा स्थान होता है और उसका उपयोग जाननेवाला अच्छा सिपाही समझा जाता है तथा इनामोंका हकदार होता है, वैसे ही जहाँ समाज-रचना अहिंसा पर आधारित होती है वहाँ गोला-बारूदकी जगह तप और संयम लेते हैं और उनसे काम लेनेवाला सिपाही समाजकी रक्षा करता है। ऐसे धर्मको दुनियाने अभी तक स्वीकार नहीं किया है। हिन्दुस्तानमें वह थोड़ा-बहुत स्वीकार किया गया है, मगर वह व्यापक रूपमें स्वीकार किया गया है, यह नहीं कहा जा सकता। आश्रममें यह विश्वास प्रतिष्ठित है कि ऐसी अहिंसा व्यापक होनी चाहिए, व्यापक हो सकती है, और समाजकी रचना भी उस पर आधारित की जा सकती है। इसी विश्वासके आधार पर प्रयोग हो रहे हैं। अभी तो यही कहा जायेगा कि सफलता थोड़ी मिली है। इस प्रकरणमें मैं ऐसी मिसालें नहीं दे सका हूँ, जिनसे अहिंसाके पुजारीको आश्वासन मिले। राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसाका जो प्रयोग हुआ है, उसे मैं इसमें नहीं गिनता। उस प्रयोगके लिए एक अलग प्रकरण होगा।[1]

ब्रह्मचर्य

अहिंसाकी तरह यह व्रत कई तरहके धर्म-संकट और पहेलियाँ पैदा करनेवाला नहीं है। आमतौर पर इसका अर्थ सब समझते हैं; मगर अर्थ जानते हुए भी इसका अमल करनेमें बहुतोंका खून पानी हुआ है, और बहुतेरे कोशिश करने पर भी आगे नहीं बढ़ सके हैं। कुछ पीछे भी हटे हैं। पूर्णताको कोई नहीं पहुँचा है। सबको इसका महत्त्व साफ मालूम हो गया है। मेरा प्रयत्न १९०६ के पहले शुरू हुआ। मैंने व्रत १९०६ में लिया। बहुत उतार-चढ़ाव आये। ब्रह्मचर्यका सूक्ष्म अर्थ मैं अनुभवसे, ठोकरें खाकर ही जान सका। इसका अर्थ समझनेपर मैंने देखा कि पुस्तकमें पढ़ा हुआ अर्थ भी अनुभव किये बिना न समझनेके बराबर ही है। अनुभव होनेके बाद भी वही अर्थ भिन्न प्रकारसे समझमें आता है। चरखे जैसा निहायत सादा यंत्र चलानेकी रीति पढ़ लेना एक बात है, और उस पर अमल करना दूसरी बात है। अमल शुरू करते ही नई रोशनी पड़ती है। और चरखे जैसी सादी और आँखोंको दीखनेवाली चीजके बारेमें यदि यह बात सही है, तो अप्रत्यक्ष भावोंके बारेमें कितनी ज्यादा सही होनी चाहिए!

जो मन, वचन और कायासे इन्द्रियोंको बसमें रखता है वही ब्रह्मचारी है। इसका अर्थ अमल करने पर ही मुझे कुछ-कुछ स्पष्ट हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। पूरी तरह स्पष्ट तो आज भी नहीं हुआ है, क्योंकि मैं अपनेको सोलह आने

१. यह प्रकरण लिखा नहीं गया।

पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं मानता। मनके विकार काबूमें रह सकते हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुए हैं। जिसके मनोविकार नष्ट नहीं हुए, वह पूरा ब्रह्मचारी नहीं माना जा सकता। जब मैं उस स्थितिमें पहुँच जाऊँगा, तब इसी व्याख्याको मैं नई आँखोंसे देखूँगा। मामूली ब्रह्मचर्य जितना कठिन दीखता है, उतना है नहीं। हमने उसका अनर्थ करके उसे कठिन बना दिया है। ब्रह्मचर्यका खेल खेलनेवाले बहुत लोग आगमें हाथ डाल कर भी जलने न पायें ऐसी कोशिश करते हैं, और जलते हैं तब व्रतकी कठिनताकी शिकायत करते हैं। यह तो बहुत थोड़े ही समझते हैं कि [ब्रह्मचर्यके लिए] एक इन्द्रियका ही नहीं, बल्कि सभी इन्द्रियोंका संयम करना जरूरी है। स्त्री-संग न करनेमें जो ब्रह्मचर्यका आदि और अन्त मानते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हैं; और इसलिए उनका यह कहना कि ब्रह्मचर्य बड़ा कठिन है, एक सामान्य कथन ही है। जो पुरुष दूसरे सब भोग भोगते हुए केवल स्त्री-संगसे दूर रहनेकी इच्छा रखता हो, या ऐसी कोई स्त्री पुरुष-संगसे दूर रहना चाहती हो तो उनका प्रयत्न निष्फल है। उनका यह प्रयत्न तो जान-बूझकर कुएँमें उतरकर भी पानीसे अछूता रहनेके प्रयत्न जैसा ही है। जो स्त्री-पुरुष संग-त्यागको सहज-साध्य बनाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे उसे उत्तेजन देनेवाली सभी जरूरी चीजें छोड़ दें। उन्हें जीभके स्वाद छोड़ने चाहिए, शृंगार-रस छोड़ना चाहिए और विलास-मात्र छोड़ना चाहिए। ऐसे लोगोंके लिए ब्रह्मचर्य आसान है, इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अपनी या पराई स्त्रीके प्रति विकारवश होनेमें, विकारी बनकर उन्हें छूनेमें ब्रह्मचर्यका भंग नहीं होता। यह भयंकर भूल है। इसमें स्थूल ब्रह्मचर्यका सीधा भंग है। इस तरहके खेल करनेवाले स्त्री-पुरुष अपनेको और दुनियाको धोखा देते हैं और दिनोंदिन शक्तिहीन होते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुष कई बीमारियोंके शिकार बनते हैं। ऐसे लोगोंका चरम सीमा तक जाना बाकी रह जाये, तो उसका श्रेय उन्हें नहीं परन्तु परिस्थितियोंको है। वे पहले ही मौके पर फिसलनेवाले हैं। यह मैं अपने और बहुतसे साथियोंके अनुभवके आधार पर लिख रहा हूँ।

आश्रमके ब्रह्मचर्यमें तो अपनी पत्नीसे भी संग करना त्याज्य है। पर अपनी स्त्रीके साथ संग चालू रखकर भी जो परस्त्री-संग छोड़ता है वह ठीक ही करता है। उसका ब्रह्मचर्य सीमित भले ही माना जाये, मगर उसे ब्रह्मचारी मानना इस महाशब्दकी हत्या करना ही है।

इस तरह ब्रह्मचर्यकी व्याख्या तो पूर्ण ही रखी गई है। फिर भी, आश्रममें स्त्री-पुरुष दोनों रहते हैं और उन्हें एक-दूसरेके साथ मिलनेकी काफी आजादी है। यानी, आदर्श यह है कि जितनी स्वतन्त्रता माँ-बेटे या बहन-भाई भोगते हैं, वही परस्पर व्यवहारमें आश्रमवासियोंको मिल सके। यानी ब्रह्मचर्यके लिए जिन मर्यादाओंकी आम तौर पर कल्पना की जाती है वे सब यहाँ नहीं रखी जातीं। इसके विपरीत, यह माना जाता है कि जिस ब्रह्मचर्यको इन सब दीवारोंकी हमेशा जरूरत हो वह ब्रह्मचर्य ही नहीं है। ब्रह्मचर्यके प्रयत्नके लिए उस दीवारकी भले ही आवश्यकता मानी जाये, मगर अन्तमें तो वह दीवार टूटनी ही चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं

कि दीवार टूटते ही ब्रह्मचारी स्त्रियोंका साथ ढूंढ़ने लगें; परन्तु इसका अर्थ यह है कि स्त्री-सेवाका प्रसंग आये, तब ब्रह्मचारी यह मानकर कि उसके लिए इसका निषेध है उस सेवासे भाग नहीं सकता।

ब्रह्मचारीके लिए स्त्री नरककी खान नहीं है। उसके लिए वह अम्बा-माता है, वह जगत-जननी है। स्त्रीपर नजर पड़ते ही अथवा सेवाके लिए उसे अचानक या इच्छापूर्वक छूते ही जिसे विकार हो जाता है वह ब्रह्मचारी नहीं है। उसके लिए सजीव हो या काठकी निश्चेष्ट पुतली हो, दोनों एकसी होनी चाहिए। मगर जो स्त्रीका नाम सुनते ही विकारवश होता है और फिर भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेको उत्सुक है, उसे तो काठकी पुतलीसे भी दूर भागना पड़ेगा।

ऊपर बताये अनुसार स्त्री-पुरुष एक ही आश्रममें रहें, साथ-साथ काम करें, एक-दूसरेकी सेवा करें और ब्रह्मचर्य पालनेकी कोशिश करें, तो इसमें अनेक भय हैं। इसमें एक हद तक जान-बूझकर की जानेवाली पश्चिमकी नकल है। इस तरहके प्रयोग करनेकी अपनी योग्यतामें भी मुझे शक है। मगर यह तो मेरे सारे ही प्रयोगोंके बारेमें कहा जा सकता है। यह शंका बहुत प्रबल है, इसीलिए मैं किसीको अपना शिष्य नहीं मानता। समझ-बूझकर जो आश्रममें आये हैं, वे सब इन खतरोंको जानते हुए ही साथियोंके रूपमें यहाँ आये हैं। लड़कों और लड़कियोंको मैं अपने बच्चे मानता हूँ, इसलिए वे सहज ही मेरे प्रयोगोंमें घसीटे जाते हैं। मेरे तो सारे प्रयोग सत्यरूपी परमेश्वरके नाम पर चलते हैं। वह कुम्हार है और हम उसके हाथमें मिट्टीकी भाँति हैं।

आश्रमके अपने आज तकके अनुभवसे मैं कह सकता हूँ कि जो खतरा उठाकर यहाँ ब्रह्मचर्य पालनेकी कोशिश जारी है, उसमें निराशाका कारण नहीं मिला है। कुल मिलाकर स्त्री-पुरुष दोनोंको उससे लाभ ही हुआ है। मगर मेरा विश्वास है कि सबसे ज्यादा लाभ स्त्रियोंको हुआ है। प्रयोग करनेमें कुछ स्त्री-पुरुष असफल रहे हैं, कुछ गिरकर उठे हैं। प्रयोग-मात्रमें ठोकर, ठेस तो खानी ही होती है। जिसमें सोलहों आने सफलता मिल जाये वह प्रयोग ही नहीं है; वह तो सर्वज्ञका स्वभाव ही कहा जायेगा।

जिसका स्थान पहला है उसकी चर्चा मैंने आखिरके लिए रखी है। 'गीता' के दूसरे अध्यायमें कहा गया है कि "निराहारीके विषय तबतक भले ही दब गये दीखें जब तक निराहार जारी रहे, मगर उसका रस नहीं मिटता। वह तो तभी मिटेगा जब 'परं' के यानी सत्य अर्थात् ब्रह्मके दर्शन हो जायेंगे।" इसमें निराहारीके बजाय संयमी शब्द समझना चाहिए तब वह सब इन्द्रियोंके लिए लागू होगा। इस श्लोकमें अनुभवी कृष्णने पूर्ण सत्य कह दिया है। उपवाससे लेकर जितने संयमोंकी कल्पना की जा सकती हो, वे सब ईश्वरकी कृपाके बिना बेकार हैं। सत्य या ब्रह्मके दर्शनका क्या अर्थ है? इसमें इन आँखोंसे दर्शन करनेकी बात नहीं है। कोई चमत्कार देखनेकी बात भी नहीं। ब्रह्मका दर्शन यानी ब्रह्म हृदयमें निवास करता है, ऐसा अनुभव-ज्ञान। जबतक यह न आये तबतक रस कभी नहीं छूटता। इसके आते

ही रसमात्र उसी समय सूख जाते हैं। इस ज्ञानकी खातिर ही सारे व्रत हैं, सारी साधना है, आश्रमोंकी रचना है। यह ज्ञान मनन अभ्याससे ही होता है। प्रेमी प्रेमिकाकी खातिर तबाह होता देखा गया है। मगर चूँकि यह सारा कष्ट वह क्षणभंगुर भोगके लिए उठाता है, इसलिए अन्तमें उसके भाग्यमें धूल-की-धूल ही रहती है। मगर जिस लगनके साथ प्रेमी मेहनत करता है, उससे भी ज्यादा लगन सत्य-दर्शनके लिए चाहिए। और सत्यके दर्शनके अन्तमें ही परमानन्द प्राप्त होता है। फिर भी, प्रेमी जैसी लगन थोड़े ही जिज्ञासुओंमें पाई जाती है। तब अगर वह दर्शन दुर्लभ हो तो शिकायत क्यों? प्रेमिका तो हजारों कोस दूर भी हो सकती है, पर ब्रह्म तो हृदयमें ही है। अँगुलीसे नाखून जितना दूर है, ब्रह्म तो उतना भी दूर नहीं है। मगर जहाँ 'बगलमें लड़का शहरमें ढिंढोरा' हो वहाँ क्या कहा जाये?

निराहारीका ब्रह्मचर्य उपेक्षा करने जैसा नहीं है। उसके अन्तमें भी रस क्षीण हो सकते हैं। उपवास करके, उलटे सिर लटककर, हाथ और पैर सुखाकर — किसी भी तरह विषयोंकी निवृत्ति करनी ही है। ऐसा करते-करते सम्भव है रस लगभग क्षीण हो जायें। इतनेमें ब्रह्मके दर्शन होंगे और रसमात्र हमेशाके लिए चले जायेंगे, और जिसे हमने खोया हुआ रत्न मान लिया है वह मिल सकेगा। जिसने मृत्यु पर्यन्त कोशिश ही न की हो, उसे ब्रह्मको न देखनेकी शिकायत करनेका कोई अधिकार ही नहीं है। ब्रह्मचर्यका पालन भी ब्रह्मको ढूँढ़नेका एक साधन है। ब्रह्मचर्यके बिना ब्रह्म नहीं मिलता और ब्रह्मके बिना ब्रह्मचर्यका पूरा पालन ही असम्भव है। इसलिए यहाँ निराहारका निषेध नहीं किया गया है, केवल उसकी मर्यादा बताई गई है।

ब्रह्मचर्यके पालनका प्रयत्न आश्रममें छोटे-बड़े, पति-पत्नी सभी करते हैं, फिर भी जीवनभर सभी उसका पालन करनेवाले नहीं हैं। ऐसे तो थोड़े ही हैं। लड़के और लड़कियाँ विवाहके योग्य हो जाते हैं, तब उन्हें चेता दिया जाता है कि कोई भी जबरन ब्रह्मचर्य-पालनके लिए बँधे हुए नहीं हैं; जो उसका तेज सहन न कर सकें उन्हें शादी करनेका अधिकार है, और यदि वे माँग करेंगे तो ठीक साथी खोज देनेमें आश्रम उनकी मदद करेगा। यह बात इतनी ज्यादा और इतनी बार साफ की गई है कि उसे सब अच्छी तरह समझते हैं। इसका नतीजा भी बहुत अच्छा निकला है। नवयुवक ज्यादा मात्रामें ब्रह्मचर्यका निर्वाह कर रहे हैं। कन्याएँ काफी उम्र तक इसका पालन करती हैं। कोई भी कन्या पन्द्रह सालसे नीचे तो ब्याही ही नहीं गई है। ज्यादातर कन्याओंकी शादी उन्नीसके आसपास ही हुई है।

जो आश्रमकी मददसे शादी करना चाहते हैं, उन्हें निहायत सादगीसे सन्तोष करना पड़ता है। भोज वगैरा नहीं होते। बरातियोंके तौर पर कोई आ नहीं सकते। ढोल-नगाड़ोंकी गुंजाइश नहीं होती। सिर्फ धार्मिक विधि ही होती है। वर-कन्याको खादीमय होना पड़ता है। गहना एक भी नहीं होता। वरकी तरफसे कन्याको कुछ देना नहीं पड़ता। कन्याको माता-पिता या संरक्षककी तरफसे पहननेके कपड़ों व चरखे वगैराके सिवा कुछ नहीं दिया जाता। विवाहमें दस रुपयेका भी खर्च नहीं होता।

विधिमें एक घंटेसे ज्यादा समय नहीं लगता। सप्तपदीके वचन[1] वर-कन्या मातृभाषा में बोलते हैं, जिन्हें पहलेसे ही समझ लिया जाता है। विवाहके दिन विवाहकी विधिसे पहले दोनों उपवास रखते हैं, पेड़ोंको पानी पिलाते हैं, गोशालाकी सफाई करते हैं, जलाशय साफ करते हैं और गीतापाठ करते हैं। कन्यादान करनेवाला भी दान करनेके समय तक उपवास रखता है। अब यह भी आग्रह रखा जाता है कि आश्रमकी मारफत एक ही जातिवालोंके बीच विवाह नहीं कराया जायेगा। उप-जातियोंका बन्धन ढीला करनेकी गरजसे आश्रम उपजातिके विवाहको प्रोत्साहन नहीं देता और आश्रममें जो शादी करते हैं उन्हें उपजातियोंके बाहर सम्बन्ध करनेका प्रोत्साहन दिया जाता है।[2]

अस्तेय और अपरिग्रह

इन व्रतों पर ज्यादा लिखनेकी जरूरत नहीं। पाँच महाव्रतोंमें से ये हैं। जो आत्मदर्शन करना चाहते हैं उनके लिए ये जरूरी हैं। इसलिए उन्हें आश्रमके व्रतोंमें स्थान दिया गया है।

अस्तेय: इस व्रतके पालनके लिए सिर्फ इतना ही काफी नहीं है कि दूसरेकी चीज उसकी इजाजतके बिना न ली जाये। जो चीज हमें जिस कामके लिए मिली हो उसके सिवा दूसरे काममें उसे लेना या जितने समयके लिए मिली हो उससे ज्यादा समय तक उसे काममें लेना यह भी चोरी ही है। इस व्रतकी बुनियादमें यह सूक्ष्म सत्य निहित है कि परमात्मा प्राणियोंके लिए दैनिक जरूरतकी चीजें नित्य पैदा करता है और उन्हें देता है। उससे अधिक वह पैदा ही नहीं करता। इसका अर्थ यह हुआ कि अपनी कमसे-कम जरूरतसे अधिक जितना भी मनुष्य लेता है वह चोरी है।

अपरिग्रह: अपरिग्रह अस्तेयमें ही समाया हुआ है। अनावश्यक चीजें जैसे ली नहीं जानी चाहिए, वैसे ही उनका संग्रह भी नहीं होना चाहिए। अतः जिस खुराक या साज-सामानकी हमें जरूरत न हो, उसका संग्रह करना इस व्रतका भंग करना है। जिसका काम कुर्सीके बिना चल सकता है उसे कुर्सी रखनी ही नहीं चाहिए। अपरि-ग्रही मनुष्यको चाहिए कि वह अपना जीवन हमेशा सादेसे-सादा बनाता जाये।

अपरिग्रह और अस्तेय मनकी स्थितियाँ ही हैं। देहधारीके लिए उनका पूरा अमल असम्भव है। शरीर खुद ही एक परिग्रह है। और जबतक शरीर है तबतक वह दूसरे परिग्रहोंकी आशा रखता ही है। कुछ परिग्रह तो अनिवार्य हैं। 'कुछ' की तादाद भी हर मानसिक स्थितिके अनुसार होगी। जैसे-जैसे वह इन व्रतोंकी तरफ मुड़ती जायेगी, वैसे-वैसे मनुष्य शरीरका मोह छोड़ता जायेगा और अपनी जरूरतें घटाता जायेगा। सबके लिए एक ही प्रमाण निश्चित नहीं किया जा सकता।

१. वचनों और उनके अर्थोंके लिए देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ९२-३।

२. १९४८ में गांधीजीने कहा था कि मैं उसी विवाहमें उपस्थिति हो सकता हूँ जहाँ एक पक्षवाले हरिजन हों और दूसरे सवर्ण हिन्दू।

चींटींका परिग्रह दूसरा ही होगा। कणमें ज्यादा जमा करनेवाली चींटी परिग्रही है, पर हजारों कण समा जायें इतनी घास जिस हाथीके सामने पड़ी हो, उसे परिग्रही नहीं माना जा सकता।

ऐसी परेशानियोंसे संन्यासकी प्रचलित कल्पना पैदा हुई मालूम होती है। आश्रमका ध्येय ऐसे संन्यासका पालन करना नहीं है। और किसीके लिए ऐसा संन्यास जरूरी भले ही हो, भले किसीमें दिगम्बर बनकर, समाधि लगाकर, गुफामें बैठकर विचारमात्रसे जगतका कल्याण करनेकी शक्ति हो, पर सभी गुफामें बैठ जायें तो नतीजा खराब ही होगा। साधारण स्त्री-पुरुषोंके लिए तो मानसिक संन्यास ही सम्भव है। दुनियामें रहते हुए भी जो सेवाभावसे और सेवाके लिए ही जीता है, वह संन्यासी है।

ऐसा संन्यास सिद्ध करनेकी आश्रमको आशा है। वह उसी दिशामें जा रहा है। इस मानसिक संन्यासमें यद्यपि जरूरी चीजोंका संग्रह रहता है, फिर भी परि-ग्रहमात्रके (शरीर तकके) त्यागकी तैयारी होनी चाहिए। यानी एक भी वस्तुके जानेसे चोट न लगनी चाहिए। और जब तक शरीर है तबतक सेवाका जो भी काम सामने आये वह किया जाये। खाने-पहननेको मिले तो ठीक, न मिले तो भी ठीक। परीक्षाका ऐसा समय आये तब भी कोई आश्रमवासी हारे नहीं — इस तरह मनको तैयार करनेकी कोशिश चल रही है।

शारीरिक श्रम

हर स्त्री-पुरुष शरीरसे मेहनत करे, इसे आश्रम धर्म मानता है। इस उसूलकी जानकारी या सूझ मुझे टॉल्स्टॉयके एक लेखसे हुई। उन्होंने रूसके लेखक बोन्डारेफके बारेमें लिखते हुए बताया कि रोटी-श्रमकी जरूरत इस लेखककी इस युगकी बड़ी खोजोंमें से एक थी। उसका मतलब यह है कि हर तन्दुरुस्त आदमीको अपने पेटके लायक शरीर-श्रम करना ही चाहिए। मनुष्यको अपनी बुद्धिकी शक्तिका उपयोग आजीविकाके लिए या उससे भी ज्यादा प्राप्त करनेके लिए नहीं, बल्कि सेवाके लिए, परोपकारके लिए करना चाहिए। इस नियमका पालन सारी दुनिया करने लगे तो सहज ही लोग समान हो जायें, कोई भूखों न मरे और जगत बहुतसे पापोंसे बच जाये।

यह सम्भव है कि इस स्वर्ण-नियमका अमल सारी दुनिया कभी न कर सके। नियमको जाने-बूझे बिना तो करोड़ों उसका पालन जबरदस्ती करते हैं। उनके मन उसके विरुद्ध चलते हैं, और इसीलिए वे दुख पाते हैं और उनकी मेहनतका जितना लाभ दुनियाको होना चाहिए उतना नहीं होता। जो लोग इस नियमको समझते हैं, उन्हें इस ज्ञानसे इसका पालन करनेका प्रोत्साहन मिलता है। इस नियमका पालन करनेवाले पर उसका चमत्कारी प्रभाव होता है, क्योंकि इससे उसे परम शान्ति मिलती है, उसकी सेवाशक्ति और उसकी तन्दुरुस्ती बढ़ती है।

मुझपर टॉल्स्टॉयका बहुत असर हुआ। और उनकी बातों पर यथासम्भव अमल करना तो मैंने दक्षिण आफ्रिकामें ही शुरू कर दिया था। आश्रम कायम हुआ तभीसे रोटी-श्रमको उसमें मुख्य स्थान मिला।

'गीता'का अध्ययन करनेपर 'गीता'के तीसरे अध्यायमें इसी नियमको यज्ञके रूपमें देखता हूँ। मैं यह नहीं कहना चाहता कि यज्ञका अर्थ वहाँ शरीरश्रम ही है। परन्तु यज्ञसे पर्जन्य[1] होता है, इस भावमें मुझे शरीर-श्रमका धर्म दीखता है। यज्ञसे बचा हुआ अन्न वही है, जो मेहनत करनेके बाद प्राप्त होता है।[2] आजीविकाके लिए पर्याप्त श्रमको 'गीता'ने यज्ञ कहा है। अपने पोषणके लिए जितना चाहिए उससे जो ज्यादा खाता है वह चोरी करता है; क्योंकि मनुष्य आजीविकाके लिए आवश्यक श्रम भी मुश्किलसे ही करता है। मेरी मान्यता है कि मनुष्यको आजीविकासे ज्यादा लेनेका अधिकार ही नहीं है। और जो शरीरश्रम करते हैं उन सबको उतना लेनेका अधिकार तो है ही जितना शरीर-निर्वाहके लिए आवश्यक है।

इससे कोई यह न कहे कि इसमें श्रमके बँटवारेकी गुंजाइश ही नहीं है। मनुष्यकी आवश्यकताओंके लिए जो भी चीज तैयार होती है, उसमें शरीर-श्रम तो लगता ही है। इसलिए श्रम चाहे जिस जरूरी क्षेत्रमें किया जाये वह रोटी-श्रम ही है। पर सब लोग इतना श्रम भी नहीं करते, इसलिए तन्दुरुस्ती बनाये रखनेके लिए व्यायामके नामसे खास तौर पर शरीर-श्रम करना पड़ता है। जो प्रतिदिन खेतीमें श्रम करता है, उसे अलग व्यायामकी जरूरत नहीं रहती। किसान यदि तन्दुरुस्तीके दूसरे नियमोंका पालन करता रहे तो वह बीमार ही न पड़े।

यह देखा जाता है कि इस दुनियामें मनुष्यको रोज जितना चाहिए उतना कुदरत रोज पैदा करती है। उसमेंसे अगर कोई अपनी आवश्यकतासे अधिकका उपयोग कर लेता है, तो उसके पड़ोसीको भूखा रहना ही पड़ेगा। बहुत लोग अपनी आवश्यकतासे अधिक लेते हैं, यही कारण है कि हम दुनियामें भुखमरी देखते हैं। हम कुदरतकी देनको किसी भी तरह काममें लें, फिर भी कुदरत तो अपने जमाखर्चके दोनों बाजू बराबर ही रखती है। उसके बहीखातेमें न जमामें बाकी रहता है न नामेमें। वहाँ तो आमद-खर्चका हिसाब रोज बराबर हो जाता है और शून्य बाकी रहता है। और इस शून्यमें हमें भी शून्यवत् होकर समा जाना है।

ऊपरके नियममें यह बात बाधक नहीं है कि विविध रसायनों और यन्त्रोंके जरिये मनुष्य जमीनसे ज्यादा फसल पैदा करता है, अपनी मेहनत से अन्य प्रकारसे अनेक वस्तुएँ उत्पन्न करता है। यह तो कुदरतकी शक्तियोंका रूपान्तर है। सबका आखिरी परिणाम तो शून्य ही होनेवाला है। रोजके इन आँकड़ोंको पानेके लिए हमारे पास काफी साधन नहीं हैं। मगर हमें रोज जो-कुछ अनुभव होता है उसका पृथक्करण किया जाये, तो उससे यही अनुमान होता है कि जमा और खर्चके दोनों बाजू बराबर रहते हैं।

कुदरत ऐसा करती हो या न करती हो, मेरी दूसरी दलीलोंमें सार हो या न हो, पर आश्रममें रोटी-श्रमके नियमका अधिकसे-अधिक अच्छे ढंगसे पालन किया गया है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। इसे पालन करनेका साधारण आग्रह

१ और २. देखिए खण्ड ३२, पृष्ठ १५७।

हो तो पालन आसान है। यदि कुछ निश्चित घंटोंमें शरीर-श्रमके सिवा दूसरा काम ही न हो तो मजदूरी होगी ही। भले ही उसमें फिर आलस्य हो, कार्य-दक्षता न हो, मन न हो, मगर कुछ घंटे पूरे तो होंगे ही। फिर, कुछ मेहनत तुरन्त फल देनेवाली होती है, इसलिए उसमें बहुत आलस्यकी गुंजाइश भी नहीं रहती। श्रम-प्रधान संस्थाओंमें नौकर नहीं होते या थोड़े ही होते हैं। पानी भरना, लकड़ी चीरना, दियाबत्ती तैयार करना, पाखाने और रास्ते साफ करना, मकानोंकी सफाई करना, अपने-अपने कपड़े धोना, रसोई करना वगैरा अनेक काम ऐसे हैं जो होने ही चाहिए।

इनके सिवा खेती, बुनाईका काम, इनसे सम्बन्धित और दूसरी तरहसे जरूरी बढ़ईका काम, गोशाला, चमड़ेका काम वगैरा काम आश्रमके साथ जुड़ी हुई प्रवृत्तियाँ हैं। उनमें थोड़े या सारे आश्रमवासियोंके लगे बिना काम ही नहीं चल सकता।

ये सब काम रोटी-श्रमके नियम-पालनके लिए काफी माने जायेंगे। मगर यज्ञका दूसरा अंग परमार्थ या सेवाकी वृत्ति है। इन कामोंमें उसका समावेश करें तो आश्रमकी खामी जरूर मालूम होगी। आश्रमका आदर्श सेवाके लिए ही जीना है। इस ढंगसे चलनेवाली संस्थामें आलस्य और काम-चोरीको स्थान नहीं है। वहाँ सब काम तन-मनसे होने चाहिए। सभी लोग ऐसा करते तो आज आश्रमकी सेवाकी योग्यता बहुत बढ़ गई होती। लेकिन ऐसी सुन्दर स्थितिसे आश्रम अब भी बहुत दूर है। इसलिए यद्यपि आश्रमका हर काम यज्ञरूप है, फिर भी आदर्शका विचार करके दरिद्रनारायणके लिए कमसे-कम एक घंटेकी कताईको आवश्यक स्थान दिया गया है। जिनका शरीर काम कर सकता है उन सबके लिए यह कताई अनिवार्य है। इस स्थिति तक पहुँचनेमें काफी मेहनत करनी पड़ी है। लेकिन इसका वर्णन खादी-कार्यका विचार करते समय ज्यादा ठीक रहेगा।

यह आरोप समय-समय पर सुना गया है और आज भी सुना करता हूँ कि श्रम-प्रधान संस्थामें बुद्धिके विकासकी गुंजाइश नहीं रहती, इसलिए वह जड़ बन जाती है। मेरा अनुभव इससे उलटा है। आश्रममें जितने भी लोग आये हैं, सभी की बुद्धि कुछ तेज हुई है; किसीकी मन्द हुई हो ऐसा जाननेमें नहीं आया।

बहुत बार यह अर्थ किया जाता है कि जगतकी अनेक घटनाओंका माना हुआ बाह्य ज्ञान ही बुद्धि है। मुझे यह कबूल करना पड़ेगा कि ऐसी बुद्धि आश्रममें कम विकसित होती है। लेकिन अगर बुद्धिका अर्थ समझ, विवेक वगैरा हो, तो वह आश्रममें काफी विकसित होती है। जहाँ शरीर-श्रम केवल मजदूरीके तौर पर और सिर्फ गुजारेकी खातिर होता है, वहाँ मनुष्यका जड़ बन जाना सम्भव है। अमुक चीज किसलिए या किस तरह होती है, इसका ज्ञान उसे कोई नहीं देता और उसे खुद इस विषयमें जिज्ञासा नहीं होती। उसे अपने काममें दिलचस्पी भी नहीं होती। आश्रममें इससे उलटा होता है। हर काम — पाखाना-सफाई तक — समझकर करना पड़ता है। उसमें दिलचस्पी ली जाती है। वह कार्य परमेश्वरको प्रसन्न करनेके लिए होता है, इसलिए उसे करते हुए भी बुद्धिके विकासकी गुंजाइश रहती है।

सबको अपने-अपने विषयका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेका प्रोत्साहन दिया जाता है। जो यह ज्ञान पानेकी कोशिश नहीं करते, उनके लिए वह दोष माना जाता है। आश्रममें सभी मजदूर हैं या कोई भी मजदूर नहीं है।

यह मानना कि किताबोंसे ही, मेज-कुर्सी पर बैठनेसे ही ज्ञान मिलता है, बुद्धिका विकास होता है, घोर अज्ञान है, भारी भ्रम है। इसमें से हमें तो निकल ही जाना चाहिए। जीवनमें वाचनके लिए स्थान जरूर है, मगर वह अपनी जगह पर ही शोभा देता है। शरीर-श्रमको हानि पहुँचाकर उसे बढ़ाया जाये तो उसके खिलाफ विद्रोह करना फर्ज हो जाता है। शरीर-श्रमके लिए दिनका ज्यादा समय देना चाहिए और वाचन वगैराके लिए थोड़ा। आजकल इस देशमें, जहाँ अमीर लोग या ऊँचे वर्णके माने जानेवाले लोग शरीर-श्रमका अनादर करते है, शरीर-श्रमको ऊँचा दर्जा देनेकी बड़ी जरूरत है। और बुद्धिशक्तिको सच्चा वेग देनेके लिए भी शरीर-श्रमकी यानी किसी भी उपयोगी शारीरिक धन्धेमें शरीरको लगानेकी जरूरत है।

अगर वाचनको आश्रम कुछ ज्यादा समय दे सके तो देने जैसा है। जो आश्रम-वासी निरक्षर हैं उनको शिक्षककी मदद मिल सके तो वह भी दी जानी चाहिए। फिर भी ऐसा लगता रहा है कि जो-जो कार्य आश्रममें हो रहे हैं उनको नुकसान पहुँचाकर वाचन वगैरामें समय न लगाया जाये। शिक्षक वैतनिक तो रखे नहीं जाते। और जबतक वर्तमान शिक्षा देनेवाले ज्यादा शिक्षकोंको आश्रम अपनी तरफ खींच न सके, तबतक जितने हैं उन्हींसे काम चलाया जाता है। स्कूलों और कालेजोंमें पढ़े हुए जो लोग आश्रममें हैं, वे श्रमके साथ शिक्षाका समन्वय करनेकी कलामें पूरी तरह दक्ष नहीं हैं। हम सबके लिए यह नया प्रयोग है। मगर अनुभवसे कामकी समझ बढ़ती जा रही है और जैसे-जैसे व्यवस्था-शक्ति बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे जो लोग साधारण शिक्षा पाये हुए हैं उन्हें इस बातकी सूझ अधिकाधिक होती जायेगी कि वे अपना ज्ञान दूसरोंको कैसे सिखायें।

स्वदेशी

स्वदेशीको आश्रम सार्वभौम धर्म मानता है। हर मनुष्यका पहला फर्ज अपने पड़ोसियोंके प्रति है। इसमें परदेशीके प्रति द्वेष नहीं है, और स्वदेशीके लिए पक्षपात नहीं है। शरीरधारीकी सेवा करनेकी शक्तिकी मर्यादा होती है। वह अपने पड़ोसियोंके प्रति भी मुश्किलसे अपना धर्म पूरा कर पाता है। अगर पड़ोसीके प्रति सब कोई अपना धर्म ठीक-ठीक पाल सकें, तो दुनियामें मददके अभावमें कोई भी दुखी न हो। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पड़ोसीकी सेवा करके सारी दुनियाकी सेवा करता है। असलमें देखा जाये तो इस स्वदेशी-धर्ममें अपने-परायेका भेद ही नहीं है। पड़ोसीके प्रति धर्म-पालन करनेका अर्थ है जगत्‌के प्रति धर्म-पालन। और किसी तरहसे दुनियाकी सेवा हो ही नहीं सकती। जिसकी दृष्टिमें सारा जगत ही कुटुम्ब है, उसमें अपनी जगह पर रह कर भी सबकी सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिए; और वह तो पड़ोसीकी सेवाके जरिये ही हो सकती है। टॉल्स्टॉय तो इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि अभी तो हम एक-दूसरेके कन्धे पर चढ़े बैठे हैं।

हम दूसरेके कन्धेसे उतर जायें तो बस है। यह कथन उसी बातको दूसरी तरह पेश करता है। अपनी सेवा किये बिना कोई दूसरेकी सेवा करता ही नहीं। और दूसरेकी सेवा किये बिना जो अपनी ही सेवा करनेके इरादेसे कोई काम शुरू करता है, वह अपनी और संसारकी हानि करता है। कारण स्पष्ट है। हम सभी जीव एक-दूसरेके साथ इतने ज्यादा ओतप्रोत हैं कि जो-कुछ एक आदमी करता है उसका अच्छा-बुरा असर सारे जगत पर पड़ता ही है। हमारी अतिमर्यादित दृष्टिके कारण भले ही हम न देख सकें, भले ही एक व्यक्तिके कामका असर इस संसार-सागरमें नहींके बराबर हो, मगर वह होता जरूर है। अपनी जिम्मेदारी समझनेके लिए इतना ज्ञान हमारे लिए काफी होना चाहिए।

इसलिए शुद्ध स्वदेशी-धर्म विदेशीके विरुद्ध नहीं है। फिर भी स्वदेशी सर्वदेशी नहीं है, इसलिए कि ऐसा होना असम्भव है। 'सबका' करने जायें तो वह होता नहीं, और 'अपना' भी चला जाता है। 'अपना' करते रहनेमें 'सबका' होता ही रहता है। 'सबका' करनेका यही एक उपाय है। 'मेरे लिए सब बराबर हैं' यह कहनेका अधिकार उसीको है, जिसने पड़ोसीके प्रति अपना धर्म पाला हो। 'मेरे लिए सब बराबर हैं', यह कह कर जो पड़ोसीका तिरस्कार करता है और अपने शौक पूरे करता है, वह स्वेच्छाचारी है, स्वच्छन्द है। वह केवल अपने ही लिए जीता है।

हम कुछ साधु पुरुषोंको अपना स्थान छोड़कर सारी दुनियाका भ्रमण करते और 'परदेशियों' की सेवा करते देखते हैं। वे बुरा करते हैं या स्वदेशी-धर्मकी दृष्टिसे अपवाद हैं सो बात नहीं। उनकी शक्ति उनके हाथसे ज्यादा सेवा कराती है। किसी मनुष्यके लिए उसके पास रहनेवाला पड़ोसी ही होता है। दूसरेकी मर्यादा अपने गाँव तक होती है। तीसरेकी अपने आसपासके दस गाँवों तक जा सकती है। इस तरह सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करेंगे। साधारण मनुष्यकी पहुँच साधारण ही होती है। व्याख्या ऐसी ही रची जानी चाहिए जो साधारण मनुष्यपर लागू की जा सके। इस व्याख्याके भावार्थमें वे सब बातें समा सकती हैं, जो उसके शब्दार्थके विपरीत न हों। साधारण मनुष्य यह नहीं मानता कि वह स्वदेशीका पालन करके किसीकी सेवा करता है। अपने पड़ोसीके साथ वह व्यापार इसलिए करता है कि उसमें उसे सुविधा रहती है। यह मानना ठीक ही है। परन्तु इस सुविधामें कभी-कभी असुविधा भी देखी जाती है। जो स्वदेशीको धर्म समझता है, वह वैसे समयमें भी उसका पालन करेगा। आजकल बहुतोंको अपने देशमें ही बनी हुई चीजोंसे सन्तोष नहीं होता। कई तरहके प्रलोभन दिखाई देते हैं, इसलिए बहुत लोग विदेशी चीजें लेनेमें अपनी सुविधा देखते हैं। ऐसे समय यह बताना पड़ता है कि स्वदेशी केवल सुविधा ही नहीं, धर्म भी है। आज हिन्दुस्तानमें ऐसी ही स्थिति है इसीलिए यहाँ स्वदेशी-धर्म जाननेकी जरूरत पैदा हुई है। स्वदेशीका हिंसक अर्थ, दूसरे देशोंकी जनताके प्रति द्वेषका अर्थ तो सर्वथा त्याज्य ही है। किसीका बुरा करना या चाहना तो धर्म हो ही नहीं सकता।

इस स्वदेशी-धर्मका पालन आश्रमके व्रतोंमें से एक व्रत है।

इस स्वदेशीका साकार रूप मैंने खादीको माना है, क्योंकि इसे छोड़कर हिन्दुस्तानने घोर पाप किया है और अपना स्वाभाविक धर्म छोड़ दिया है। खादीकी आवश्यकताके बारेमें अन्य स्थानों और अन्य प्रसंगों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ तो इतना ही बतलानेके लिए उसका उल्लेख किया है कि उसका आश्रमके साथ कैसे सम्बन्ध हुआ। लेकिन इसका उल्लेख करनेमें खादी-कार्यके आरम्भका इतिहास आ जाता है।

सन् १९०८ में मुझे खादी-धर्म और चरखा-धर्म सूझा।[1] उस समय मुझे खयाल भी न था कि चरखा कैसा होता है। मैं चरखे और करघेका फर्क भी नहीं जानता था। हिन्दुस्तानके गाँवोंकी हालतका मुझे थोड़ा ही ज्ञान था। मगर यह मैं साफ देख सका था कि हिन्दुस्तानके गाँवोंके कंगाल होनेका मुख्य कारण चरखेका नाश है। मैंने मनमें गाँठ बाँध ली थी कि हिन्दुस्तान जाऊँगा तब चरखेका प्रचार करूँगा।

१९१५ में जब मैं देशमें आया तब मनमें यह विचार भरा ही था। आश्रमकी स्थापनाके साथ ही स्वदेशी-व्रत शुरू हुआ। पर हममें कोई यह न जानता था कि सूत कैसे कातते हैं। इसलिए हाथ-करघा लगाकर ही हमने सन्तोष माना। सबके दिलोंसे बारीक कपड़ेका मोह मिटा नहीं था। स्त्रियोंकी साड़ी बुनने लायक स्वदेशी सूत तो मिलता ही न था। इसलिए बहुत थोड़े समय तक विदेशी सूतसे बुनाईका काम किया। बादमें कुछ बारीक सूत देशी मिलका लिया और विदेशीको विदा दी।

आश्रममें करघा बैठानेमें भी मुश्किल तो काफी थी। हममें से किसीको बुननेका ज्ञान नहीं था। मित्रोंके जरिये करघा जुटाया और सिखानेवाला जुलाहा खोजा और बुनाई सीखनेका भार मगनलाल पर लादा।

जैसे-जैसे आश्रममें मैं प्रयोग करता गया, वैसे-वैसे देशमें स्वदेशीका प्रचार भी करता गया। लेकिन जबतक सूत न कते तबतक सारी बात बिना दूल्हेकी बरात जैसी ही लगी। अन्तमें चरखा मिला, कातनेवाली मिलीं और चरखेका आश्रममें प्रवेश हुआ। यह हकीकत 'सत्य प्रयोगो'[2] में आ गई है।

कोई यह न समझे कि चरखा मिलते ही सब कठिनाइयाँ दूर हो गई। कठिनाइयोंका सूक्ष्म ज्ञान हुआ, और यह भी कहा जा सकता है कि इससे छिपी हुई कठिनाइयाँ सामने आईं यानी वे बढ़ीं।

देशमें दौरा करते हुए मैंने देखा कि चरखेकी बात करते ही लोग उसे अपना लें सो बात नहीं। यह मालूम था कि उससे कमाई थोड़ी ही होती है, मगर यह पता न था कि कितनी कम होगी। उसमें से एकसार और बारीक सूत तुरन्त नहीं निकलता। बहुत-सी स्त्रियाँ तो मोटा-पतला ही निकालेंगी। फिर यह भी देखा कि यह सूत कच्चा होता है। चाहे जैसी रुईसे काम नहीं चलता। उसे पींजना पड़ता

१. गांधीजीने इस विषयपर **हिन्द स्वराज्य** में लिखा था; देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ५७-६०।
२. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ३६६-८।

है, पूनियाँ बनानी पड़ती हैं। मगर पींजनेमें भी दारोमदार इस बात पर है कि रुई कैसी स्थितिमें मिली है। चरखे भी चाहे जैसे हों तो काम नहीं चलता। इसलिए चरखेका पुनरुद्धार होना चाहिए, यानी एक बड़ी योजना बनानी चाहिए। केवल धन काम नहीं देगा। एक दो आदमियोंके बसका भी यह काम नहीं। सैकड़ों सेवक मिलें तभी यह काम बने। सेवक भी मामूली दर्जेके नहीं चाहिए। वे ऐसे होने चाहिए जो नया शास्त्र सीखनेको तैयार हों, थोड़ी कमाईमें सन्तोष करें और देहातका जीवन बितायें। इतना भी काफी नहीं है। देहातियोंमें आलस्य, निराशा और अविश्वास छा गया है। ये दुर्गुण न मिटें तो चरखा गाँवोंमें दाखिल नहीं हो सकता। इसलिए चरखेको सफल बनानेके लिए सेवकों और सेविकाओं दोनोंकी पूरी शक्तिकी जरूरत है। और इसके साथ ही अटूट धीरज और अटल श्रद्धा न हो तो चरखा नहीं चल सकता।

कहना चाहिए कि इस श्रद्धामें पहले तो मैं अकेला ही था। मगर श्रद्धाके सिवा मेरे पास दूसरी कोई सम्पत्ति नहीं थी। मैंने देखा कि जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ दूसरी सामग्री अपने-आप आ जाती है। श्रद्धाके अनुसार ही बुद्धि सूझती है, श्रम करना आता है। यह तो साफ ही था कि तमाम प्रयोग आश्रममें और आश्रमके द्वारा ही होंगे। आश्रमकी हस्ती ही इसलिए थी। मैंने देखा कि आश्रमकी मुख्य बाहरी प्रवृत्ति चरखा ही हो सकता था। चरखेके शास्त्रकी रचना करनेका दूसरा उपाय ही नहीं था। इसलिए अन्तमें कातनेकी क्रियाको महायज्ञ माना गया। अतः जो आश्रममें प्रवेश करे उसे कातना सीखकर यह यज्ञ तो करना ही पड़ता था।

लेकिन यज्ञका अर्थ है काम करनेमें कुशलता प्राप्त करना।[1] जैसे-तैसे कात लेनेका नाम यज्ञ नहीं है। इसलिए पहले तो कमसे-कम आधे घंटे तक कातनेका निश्चय हुआ। लेकिन जल्दी ही मालूम हुआ कि चरखा बिगड़ जाये तो आध घंटेमें तीन तार भी नहीं निकल सकते। इसलिए यह तय हुआ कि कमसे-कम १६० तार तो कातना ही चाहिए। एक तार यानी ४ फुट सूत। लेकिन सूत मोटा-पतला हो तो किस कामका? इसलिए सूतकी समानता, मजबूती वगैरा पर जोर दिया जाने लगा। और अब तो इस हद तक पहुँच गये हैं कि २० नम्बरसे कमका सूत हो तो उसकी यज्ञमें गिनती नहीं हो सकती।

मगर अच्छेसे-अच्छे सूतका उपयोग कौन करे? मैं तो पहलेसे ही समझता था कि इस सूतका उपयोग यज्ञके लिए कातनेवाले तो कर ही नहीं सकते। मगर यह बात मैं सबके गले नहीं उतार सका। कोई सूतकी मजदूरी खुद चुका दे और सूत खरीद ले तो क्या हर्ज है? ऐसा करनेसे अच्छेसे-अच्छा सूत कतेगा, इस लालचसे मैंने मनको यों समझा लिया कि मजदूरी चुकाकर जो अपना काता हुआ सूत खरीद ले उसने भी यज्ञ किया, ऐसा माना जायेगा। इन पंक्तियोंको लिखते समय भी यह दोष बिल्कुल दूर नहीं हो सका है। जो दोष शुरूमें ही नहीं मिटा दिया जाता वह घर कर लेता है। और फिर जैसे घर किये हुए रोगको दूर करनेमें कठिनाई होती है, वैसी ही ऐसे दोषको निकालनेमें भी होती है।

१. भगवद्गीता २, ५०।

यह कहा जा सकता है कि इस यज्ञके फलस्वरूप ही चरखेकी प्रवृत्ति लगभग हिन्दुस्तान-भरमें फैल गई है। मगर यह नहीं कहा जा सकता कि उसने गाँव-गाँवमें घर कर लिया है। इसका कारण मैं तो अच्छी तरह देख सकता हूँ। मेरी श्रद्धाके साथ ज्ञान बिल्कुल नहीं था। भूलें करते-करते, ठोकरें खाते-खाते थोड़ा-सा ज्ञान मिला। साथी भी मिले हैं मगर यह नहीं कहा जा सकता कि इस महान कार्यके लिए वे काफी हैं। सैकड़ों सेवक तैयार हुए हैं, मगर यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनमें अटूट श्रद्धा या ज्ञान है। जहाँ मूल ही अभी कमजोर है, वहाँ पूरे फलकी आशा नहीं रखी जा सकती।

लेकिन इसमें मेरे खयालसे किसीका दोष नहीं है। यह नया काम है, महा-सागर जैसा विशाल है और कठिनाइयोंका तो इसमें पार ही नहीं है। इसलिए जितना हुआ उससे सन्तोष तो नहीं माना जा सकता; फिर भी वह श्रद्धा कायम रखनेके लिए तो काफी है ही। सफलताकी आशा पूरी तरह रखी जा सकती है। इतना ज्ञान मिला है और इतने श्रद्धालु सेवक-सेविकाएँ पैदा हो गई हैं कि यह काम अब नष्ट तो नहीं होगा, ऐसा जरूर कहा जा सकता है।

इस एक प्रवृत्तिके साथ दूसरे छोटे काम आश्रममें और देशमें इतने ज्यादा पैदा हुए हैं कि उनका इतिहास लिखूँ, तो इस इतिहासकी सीमा भंग हो जाये। मैंने यह नहीं सोचा है कि आश्रमका इतिहास देते हुए उसके सब विभागोंका भी इतिहास देनेका साहस करूँ। लेकिन थोड़े में यहाँ बता दूँ कि उसके सिलसिलेमें कपासकी खेती होती है, बढ़ईका काम चलता है, रंगाईका काम होता है और ओटाईसे लेकर बुनाई तकके औजार बनते हैं — उनमें सुधार हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। चरखेका प्रकार सुधारनेमें जो प्रगति हुई है, वह तो मुझे एक काव्य जैसी लगती है।

अस्पृश्यता

सत्यका आग्रह रखनेके लिए और उसकी खातिर मरना पड़े तो मरनेकी कला सीखनेके लिए जो आश्रम स्थापित हुआ, उसमें अस्पृश्यताको कलंक मानते हुए भी उसे दूर करनेकी रचनात्मक प्रवृत्ति न की जाये, तो फिर वह सत्याग्रह-आश्रम कैसे कहला सकता है? अस्पृश्यताको पाप मानना मैं और मेरे साथी लोग दक्षिण आफ्रिका में ही सीख गये थे। इसलिए यहाँ आश्रम स्थापित होते ही अस्पृश्यताको मिटाना आश्रमका एक बड़ा कार्य हो गया।

आश्रम स्थापित होनेके बाद एक महीनेके भीतर ही दूदाभाईने कुटुम्ब-सहित आश्रममें रहनेकी माँग की। मैं नहीं मानता था कि इतनी जल्दी आश्रमकी परीक्षा होगी। दूदाभाईको भरती करनेकी सिफारिश श्री अमृतलाल ठक्करने की थी। उनकी सिफारिशवाले परिवारका मुझे स्वागत करना ही चाहिए। इसलिए मैंने उसे आनेका पत्र लिख दिया। इस कुटुम्बके आते ही आश्रममें खलबली मच गई।[1] पहले तो

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ३०१-३ भी।

मैंने देखा कि आश्रममें जो परिवार रहते थे उन्हींमें कहीं-न-कहीं अछूतोंके साथ परहेज और घृणा थी। मेरी ही पत्नीमें, हालाँकि इस बारेमें उसे दक्षिण आफ्रिकामें बहुत कष्ट सहना पड़ा था, छुआछूतकी भावना बाकी थी। मगनलाल जैसे बहादुर आदमीने देखा कि उसमें भी गहराईमें यह दोष रह गया है। उसकी पत्नीमें तो और भी ज्यादा था। यहाँ तक नौबत आई कि मेरी पत्नी या तो आश्रम छोड़ दे या आश्रमके कड़े नियमका पालन करे। छुआछूत रखनेवाले सम्बन्धियोंने उसे समझाया कि पतिके पीछे चलनेवाली स्त्रीको पाप लगता ही नहीं, पर न चलनेसे जरूर पाप लगता है। इस मान्यताने पत्नी पर असर किया और वह शान्त हो गई। मैं खुद यह नहीं मानता कि पत्नीका पतिके पापमें साथ देना किसी भी तरह धर्म है। मगर यहाँ मैंने पत्नीके सहयोगका स्वागत किया, क्योंकि मैं अछूतपन मिटाना पुण्यका काम समझता था। अस्पृश्यता-निवारण आश्रममें रहनेकी एक अनिवार्य शर्त थी। इसलिए अगर मेरी पत्नी इस शर्तका पालन न करती, तो उसे आश्रमके बाहर रहना ही पड़ता। यह मेरे लिए दुखद तो था ही। जिसने आज तक मेरे सुख-दुःखमें बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर मेरा साथ दिया था, उसका वियोग सहन करना भारी कष्ट था। मगर धर्म-पालनके लिए कैसे भी संकट आयें, उन्हें सहन तो करना ही था। इसलिए स्वतन्त्र रूपमें नहीं, परन्तु पत्नीधर्मके नाते पत्नीने जब छुआछूतको छोड़ दिया, तो इसे स्वीकार करनेमें मुझे संकोच नहीं हुआ।

मगनलालकी परीक्षा मुझसे कड़ी थी। उन्होंने तो क्षणभरमें आश्रम छोड़नेकी हिम्मत करनेका विचार कर लिया। सामान बाँधकर वे मुझसे इजाजत लेने आये। मैं इजाजत कैसे देता? मैंने मगनलालको सावधान किया। आश्रम खड़ा करनेमें जितना मेरा हाथ था उतना ही उसका था। अपना रचा हुआ वह खुद ही कैसे छोड़ सकता था? छोड़नेका अर्थ आश्रमका नाश करना ही था। मगनलाल यह नहीं चाहता था। अपनी बनाई चीजको छोड़नेकी इजाजत मुझसे तो लेनी ही क्या थी? यों उससे आश्रम छोड़ा ही नहीं जा सकता था। इतना कहना मगनलालके लिए बहुत हो गया। यह लिखते समय मुझे ऐसा लगता है कि उसने तो मेरा रास्ता साफ करनेके खयालसे ही यह कदम उठाना ठीक समझा होगा। सबका वियोग सहन हो सकता था, मगर मगनलालका वियोग सहन करना मेरे लिए कठिन था। इसलिए मैंने मगनलालको कुटुम्बसहित मद्रास जानेकी बात कही। वहाँ जाकर दोनों शान्त हों और बुनाईकी कलाका ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें। आश्रममें जो मददगार आया था उसने एक हदसे आगे बुनाई सिखानेसे इनकार कर दिया। उसे यह निरर्थक डर लगा कि ऐसा करनेसे उसका धन्धा खत्म हो जायेगा। मद्रासमें स्व० त्यागराज चेट्टीने अपने हाथ-बुनाईके कारखानेमें मणिलाल गांधीको काम सीखनेके लिए रख लिया था। मगर मद्रासके कारीगरोंको भी अहमदाबादके कारीगरोंकी ही तरह डर था। इसलिए कारीगर दिल खोलकर अपनी कारीगरी नहीं सिखाते थे। मगनलालमें वशीकरण-शक्ति ज्यादा थी, उसका ज्ञान भी अधिक था। मैं मानता था कि वह देख-देखकर भी बहुत सीख लेगा। इसके सिवा, दक्षिणके साथ सीधा सम्बन्ध भी जोड़ना ही था। अतः

मगनलालको मद्रास भेजनेके लिए उसके धर्म-संकटका बहाना मुझे मिल गया और मैंने उसे पकड़ लिया। मगनलालको और उसकी पत्नीको मेरी बात पसन्द आई। वे मद्रास गये और वहाँ कोई छः मास रहे। दोनोंने बुननेकी कला अच्छी तरह सीख ली और गहरा विचार करके अछूतपनका मैल पूरी तरह धो डाला। दोनों अपनेमें घुसी हुई कमजोरीको देख सके। वे मद्रासमें ही अछूतोंसे आजादीके साथ मिलने लगे; दूसरे सम्बन्ध भी उन्होंने जोड़े और काम पूरा होने पर वे दोनों और मणिलाल आश्रम लौट आये।

इस तरह आश्रमवासियोंमें पैदा हुई खलबली शान्त हुई। बाहर भी कम खलबली नहीं मची थी। जिन्होंने आश्रमको मदद देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उनमें से मुख्य सहायकने तुरन्त मदद बन्द कर दी। कुएँका पानी न मिलने तकका भय खड़ा हो गया। मगर उसमें से हम बिना बाधाके पार हो गये। और रुपये-पैसेकी मददके बारेमें 'नरसिंह मेहताकी हुंडी' स्वीकारने-जैसी घटनाएँ हुई। अनपेक्षित स्थानसे अचानक तेरह हजारके नोट आ पड़े। इस तरह यह माना जा सकता है कि आश्रमवासियोंने दूदाभाईको सब संकट सहकर भी निभा लेनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, वह भारी संकट उठाये बिना ही पूरी हुई। इस तरह अछूतपन मिटानेकी परीक्षामें आश्रम उत्तीर्ण हुआ। अब अछूत परिवार आजादीसे आते-जाते हैं और आश्रममें रहते हैं। दूदाभाईकी लड़की लक्ष्मी तो ऐसी हो गई है, जैसे परिवारकी ही लड़की हो।

अछूतोंसे सम्बन्धित तीन धन्धे आश्रममें चलते हैं और उनमें सुधार हो रहे हैं। आश्रममें रहनेवाले सभीको भंगीका काम तो करना ही पड़ता है। दरअसल उसे धन्धा नहीं माना जाता, बल्कि वह तो हरएकका फर्ज समझा जाता है। इसलिए पाखाना-सफाई सब मिलकर कर लेते हैं। वह डॉ० पूरके बताये हुए तरीके पर होती है। मैला आश्रमकी जमीनमें छिछला गाड़ा जाता है जिससे थोड़े ही दिनमें उसकी खाद बन जाती है। डॉ० पूरका कहना है कि १२ इंच तक गहरी जमीन सजीव होती है। उसमें बेशुमार जीव रहते हैं। उनका काम मैली जमीनको साफ करना है। वहाँ तक हवा और सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं। इसलिए उतनी गहराईमें मैला गाड़नेसे वह मिट्टीमें जल्दी मिल जाता है।

पाखाने भी इस ढंगसे बनाये गये हैं कि उनमें बदबू न आये और सफाई करने में जरा भी कठिनाई न हो। उपयोग करनेके बाद हर आदमी उसमें काफी सूखी मिट्टी डालता है—इतनी कि जब देखो तब ऊपरकी सतह सूखी ही नजर आये।

दूसरा धन्धा बुनाईका है। मोटी खादी गुजरातमें तो अछूत जुलाहे ही बुनते थे। उनका धन्धा लगभग नष्ट हो गया था और बहुतेरे भंगीका काम करने लग गये थे। अब उस धन्धेका जीर्णोद्धार हुआ है।

तीसरा चमारका धन्धा है। यह भी आश्रममें जारी हो गया है। इसके बारेमें ज्यादा बातें 'गोसेवा'के प्रकरणमें आयेंगी।

आश्रममें उपजातियोंके बंधन नहीं माने जाते। एक-दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती, इसलिए आश्रममें सभी एक पंगतमें खाने बैठते हैं। इस

व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता। अस्पृश्यता मिटानेके लिए इस प्रकारकी जरूरत नहीं मानी गई है। अस्पृश्यता मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जाने पर जो रुकावटें लगाई जाती हैं उन्हें दूर किया जाये, और उन्हें स्पर्श करनेमें जो छुआछूत मानी जाती है उसे मिटाया जाये। ये पाबन्दियाँ कानूनसे भी हटाई जा सकती हैं। रोटी-बेटीका व्यवहार इससे भिन्न सुधार है। इसमें कानून या समाज दखल नहीं दे सकता। इस मान्यताके आधार पर आश्रमवासी अपने लिए सबके साथ खाद्य-पदार्थ खानेकी स्वतन्त्रता तो रखते हैं, मगर ऐसा करनेका प्रचार नहीं करते।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिए पाठशालाएँ खोलने और कुएँ खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है। इसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है। अस्पृश्यताको लेकर आश्रमकी सच्ची प्रवृत्ति तो आश्रमवासीका अपना आचरण सुधारनेकी है। आश्रममें ऊँच-नीचपनको कोई स्थान ही नहीं है।

इतने पर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू-धर्मका अंग मानता है। मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ सामान्य अर्थसे भिन्न मानता है। चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दूधर्मकी ही व्यवस्था हो सो बात नहीं है, बल्कि यह चीज मनुष्यमात्रमें है। यह सार्वजनिक नियम है। उसका भंग करनेसे दुनियामें कई आपत्तियाँ पैदा हुई हैं। जैसे वर्ण चार हैं वैसे ही आश्रम भी चार हैं — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है विद्याभ्यास-काल। इस समयमें विद्यार्थी — स्त्री या पुरुष — ब्रह्मचर्यका पालन करे इतना ही काफी नहीं, बल्कि इस कालमें उसपर विद्या-सम्पादनके सिवा दूसरा कोई भार नहीं होना चाहिए। यह अवस्था कमसे-कम २५ वर्ष तककी मानी गई है। उसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ-जीवनमें प्रवेश करना हो तो वह कर सकता है। ९९·७५ प्रतिशत लोग तो इस जीवनमें प्रवेश करेंगे ही। मगर यह जीवन ५० वर्षकी उम्र तक ही चलना चाहिए। इस कालमें गृहस्थ अपनी विषय-तृप्ति करे — धन कमाये, धन्धा करे, सन्तान पैदा करे। बाकीके २५ वर्ष पति-पत्नी अलग रहकर सिर्फ भलाईके काम करें, जनताकी सेवा करें, परिवारसे दूर रहकर सारे संसारको अपना परिवार माननेकी कोशिश करें। आखिरी २५ वर्ष दोनों संन्यासमें बितायें। इसमें कोई खास व्यवसायके बजाय दोनों अलग-अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखाएँ और स्वयं केवल लोगोंकी दयापर गुजर करें। यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस तरहका व्यवहार बहुत लोग करें तो समाजका जीवन बहुत ऊँचे दर्जेका हो जाये।

मगर इस बारेमें अलग-अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा मैंने ऊपर बताई है वही आज भी होनी चाहिए या दूसरी। मुझे मालूम नहीं कि आश्रम-व्यवस्थाकी खोज हिन्दू धर्मके बाहर भी हुई है। आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दूधर्ममें वह लगभग नष्ट हो गई है। ब्रह्मचर्य-आश्रम जैसी चीज तो कोई है ही नहीं, यद्यपि यह आश्रम तो जीवनका आधार है। दूसरे आश्रमोंमें संन्यास-

आश्रम नामके लिए जरूर पाया जाता है, परन्तु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ वेषधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं, और कुछ, जिन्होंने अच्छी विद्या प्राप्तकी है, ब्रह्मज्ञानी तो नहीं केवल धर्मान्ध हैं। इनमें कहीं-कहीं कोई चरित्रवान संन्यासी भी जरूर देखनेमें आते हैं। मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नजर आते हैं। सम्भव है ऐसे लोग छिपे हुए रहते हों। मगर यह तो स्वयंसिद्ध है कि संन्यास-आश्रमका भी लोप हो रहा है। जिस समाजमें प्रौढ़ संन्यासी विचरते हों, उस समाजमें धर्मकी और अर्थकी कंगाली नहीं होती, वह पराधीन नहीं होता। आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है। इस बारेमें दूसरी राय मैंने नहीं सुनी। मेरी राय तो यहाँ तक जाती है कि संन्यास-आश्रम जीवित होता, तो दूसरे समीपके धर्मोंपर भी इन संन्यासियोंका असर पड़े बिना न रहता। संन्यासी केवल हिन्दू-धर्मका ही नहीं होता, वह तो सभी धर्मोंका होता है।

मगर ऐसे संन्यासी ब्रह्मचर्य-आश्रमके बिना पैदा ही नहीं हो सकते; वानप्रस्थ तो नामको भी नहीं है। बाकी रहा गृहस्थ-आश्रम। जो गृहस्थ-जीवन आश्रमके रूपमें नहीं रहा, वह तो सिर्फ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है। उसमें मर्यादा नहीं रही। दूसरे आश्रमोंकी ढालके बिना गृहस्थ-जीवन पशु-जीवन है। गृहस्थ-जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका एक बड़ा भेद है। वह भेद न रहे तो मेरी रायमें यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गृहस्थ-जीवनमें पशु-जीवनके सिवा और कुछ नहीं रहेगा।

इस आश्रम-जीवनका पुनरुद्धार करनेका महान प्रयत्न आश्रममें जारी है। मुझे खुद यह प्रयत्न वैसा ही हास्यजनक लगता है, जैसे चींटा गुड़से भरे घड़ेको उठानेकी कोशिश करे। मगर कितना ही हास्यजनक लगे तो भी यह एक सत्यनिष्ठासे प्रेरित प्रयत्न है। और इसीलिए आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है; आश्रमवासियोंको उसे मरते दम तक पालना है। इस दृष्टिसे आश्रममें रहनेवाले सभी लोगोंको आश्रमवासी नहीं माना जाता। जिसने उम्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया है, वही आश्रमवासी माना जा सकता है। ऐसे तो थोड़े ही हैं। बाकी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायेंगे। अगर यह प्रयत्न सफल हो तो शायद उसमें से आश्रम-व्यवस्था पैदा हो जाये। मेरा खयाल है कि इस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज लगानेके लिए आश्रमका सोलह वर्षका जीवन काफी नहीं है। मैं नहीं जानता कि यह अन्दाजा कब लगाया जा सकेगा। इतना ही कह सकता हूँ कि सोलह वर्षकी कोशिशके बाद मुझे निराशा जरा भी नहीं है।

अगर आश्रम-व्यवस्था इस तरह बिगड़ गई है, तो वर्ण-व्यवस्थाकी हालत भी इससे कुछ कम खराब नहीं है। मूलतः चार वर्ण थे। अब अनगिनत हैं अथवा एक ही है। यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें तो जातियोंका पार ही नहीं है। और यदि यह मानें कि जातियोंका वर्णसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है (मेरी रायसे यही मानना भी चाहिए), तो एक ही वर्ण रहा है और वह है शूद्र। यहाँ शूद्र शब्द दोषसूचक नहीं है, लेकिन वस्तुस्थितिका सूचक है। जो वर्ग नौकरी करता है वह पराधीन है

यानी शूद्र है। आज तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, इसलिए वह शूद्र है। किसान अपनी जमीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं।

जब वर्ण-व्यवस्थाकी खोज हुई थी, तब मेरे खयालमें समाजमें ऊँच-नीचकी भावना नहीं थी। इस संसारमें न तो कोई ऊँचा है, न नीचा, इसलिए जो अपनेको ऊँचा मानता है वह कभी ऊँचा नहीं हो सकता। जो अपनेको नीचा मानता है वह सिर्फ अज्ञानके कारण ही मानता है। उसे नीचा होनेका पाठ उसके सहारे ऊँचापन भोगनेवालोंने सिखाया है। ब्राह्मणमें ज्ञान हो तो ज्ञानहीन लोग उसका आदर करेंगे ही। पर जो ब्राह्मण उस आदरके कारण अभिमानी बनेगा या अपनेको ऊँचा मानेगा, वह उसी क्षणसे ब्राह्मण नहीं रहेगा। गुणकी पूजा सदा ही होगी, मगर गुणवान आदमी यदि अपनेको गुणोंके कारण ऊँचा मानेगा तुरन्त उसके गुण निकम्मे हो जाते हैं। जिसमें कोई भी गुण या शक्ति है, वह उसका रक्षक है और उसे समाजके लिए उसका उपयोग करना चाहिए। किसी भी व्यक्तिको अपने लिए जीनेका अधिकार नहीं है। कोई अपनी शक्तिका उपयोग अपने ही लिए नहीं कर सकता। सब अपनी शक्तिका उपयोग समाजके लिए पूरी तरह कर सकते हैं।

इस कल्पनासे वर्ण-व्यवस्थाकी स्थापना हुई हो या न हुई हो, आज तो कोई भी अपनेको ऊँचा कहलाकर जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। उसका यह दावा समाज अपनी इच्छासे नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि समाज मजबूरीसे अपना सिर झुका ले। दुनियामें जो जागृति हुई है उसमें स्वेच्छाचार भले बहुत आ गया हो, मगर लोकमत ऊँच-नीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं है। दिन-दिन इस भेदके प्रति इनकार बढ़ता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं। यह भावना भी ऊँच-नीचका भेद मिटाती है कि हम सब एक ही ईश्वरके बनाये हुए हैं। इसका यह मतलब नहीं कि यह भेद नहीं है या नहीं होना चाहिए अर्थात् सबकी शक्ति आज बराबर है या होनी चाहिए। सबकी शक्ति एक-सी नहीं है, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको अवसर समान नहीं हैं; फिर भी सब समान हैं, इसीका नाम तो भ्रातृभाव है। भाई-बहन सब भिन्न प्रकृतिके, भिन्न शक्तिवाले, भिन्न उम्रके होते हुए भी सब समान हैं। यही बात जीवमात्रके बारेमें सच है।

इस तरह अगर वर्ण-व्यवस्था परमार्थके लिए हो, धार्मिक हो, तो उसमें ऊँच-नीचके लिए गुंजाइश ही नहीं होती।

इस तरहके एक-दूसरेको समान समझनेवाले चार विभाग वर्ण-व्यवस्थामें हैं और वे जन्मके आधार पर हैं। कर्मसे वे बदल भले ही जायें, पर वर्ण-व्यवस्थाका मूल आधार जन्म न हो, तो ऐसा ही लगता है कि फिर उसका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

वर्ण-व्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है। उसमें पिछले जन्मका और माता-पिताका असर मान लिया गया है। सभी एक-सी शक्ति और एक-सी वृत्ति लेकर

पैदा नहीं होते। यह भी नहीं हो सकता कि असंख्य बच्चोंकी शक्तिका माता-पिता या सरकार अन्दाजा लगा सके। लेकिन अगर इस मान्यतासे बच्चेको अपने धन्धेके लिए तैयार किया जाये कि बच्चेमें उसके माता-पिताका, आसपासके वायुमण्डलका और पूर्व संस्कारोंका असर होगा ही, तो किसी तरहकी परेशानी न हो। इससे निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला समय बच जाये, नीति-नाशक होड़ न हो, समाजमें सन्तोष रहे और आजीविकाके लिए कशमकश न हो।

इस व्यवस्थाके गर्भमें ही ऊँच-नीचपनका भेद मिट जाता है। अगर मोचीसे बढ़ई बड़ा और बढ़ईसे वकील-डाक्टर और भी बड़े माने जायें, तो अपनी मरजीसे कोई मोची या बढ़ई न रहे, बल्कि सब वकील-डाक्टर बननेकी कोशिश करें। और ऐसा करनेका उन्हें अधिकार होना चाहिए, वह बात प्रशंसनीय समझी जानी चाहिए। यानी वर्ण-व्यवस्थाको बुराई मानकर उसके नाशकी इच्छा और कोशिश करना ठीक है।

सब अपने-अपने पैतृक धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करें, ऐसा कहनेमें यह मान्यता भी आ जाती है या होनी चाहिए कि सब धन्धोंका मूल्य इतना ही हो जिसमें आजीविका चल जाये। अगर मोचीसे बढ़ईकी दैनिक मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील और डाक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील-डाक्टर बननेकी कोशिश करेंगे। आज ऐसा ही होता है। उससे द्वेष बढ़ा है और वकील-डाक्टरोंकी संख्या जितनी चाहिए उससे ज्यादा हो गई है। समाजको जैसे बढ़ई और मोची वगैराकी जरूरत है, वैसे ही वकील-डाक्टरकी जरूरत भी भले ही हो। यहाँ ये चार धन्धे उदाहरणके लिए और एक-दूसरेके साथ तुलना करनेकी दृष्टिसे ही लिये गये हैं। कौन-से धन्धोंकी समाजको ज्यादा जरूरत है या बिल्कुल जरूरत नहीं है, यह विचार यहाँ अप्रासंगिक होगा।

लेकिन वर्ण-व्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिए कि विद्वत्ता कोई धन्धा नहीं है और रुपया जमा करनेके लिए उसका उपयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए वकील या डाक्टरके कामको जिस हद तक धन्धा माना जाये, उस हद तक उसमेंसे भी उतना ही लिया जाना चाहिए जितना आजीविकाके लिए पर्याप्त हो। पहले ऐसा ही था। देहाती वैद्य बढ़ईसे ज्यादा नहीं कमाते थे। उन्हें भी जीविकाके लायक ही मिलता था। मतलब यह कि सब धन्धोंकी कीमत बराबर और जीविकाके लिए पर्याप्त-भर होनी चाहिए। वर्णोंकी विशेषता उनकी संख्याका निश्चय करनेमें नहीं है; उनकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमें है। वर्णोंकी संख्या भले एक हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण जरूरी मानकर बताये हैं। सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद उन्हें चार मानें या उनकी संख्या बिल्कुल उड़ा दी जाये, उससे बहुत फर्क नहीं पड़ता।

इस अर्थको सामने रखकर आश्रममें वर्णोंका पुनरुद्धार करनेका प्रयत्न चल रहा है, भले वह कोशिश समुद्रकी लहरोंको रोकने जैसी हो। दो बुनियादी बातोंका उल्लेख मैंने कर दिया है: ऊँच-नीचका भेद मिटाना और सबको जीविका कमानेका

अधिकार देकर सबकी कमाई एक-सी रखना। यह ध्येय पूरा करनेमें जितनी सफलता मिलेगी उतना ही समाजको लाभ ही होगा।

कोई कहेगा कि मैं इस स्पष्ट हानिको कैसे भूल जाता हूँ कि इस व्यवस्थासे विद्योपार्जन करनेकी उमंग मन्द पड़ जायेगी। विद्याकी उमंग आज जिस कारणसे होती है वह उसे कलंकित करती है, और उस हद तक वह मन्द पड़ जाये तो उसमें समाजका भला ही है। विद्या मुक्तिके लिए यानी सेवाके लिए होनी चाहिए। जिसमें सेवाकी लगन होगी वह विद्या प्राप्त करनेकी कोशिश करेगा ही; और उसकी विद्या उसके और समाजके लिए शोभास्पद होगी। जब विद्याके जरिये रुपया पैदा करनेका लालच दूर हो जायेगा, तब विद्याभ्यासका क्रम बदल जायेगा और विद्या पाने तथा प्रदान करनेका तरीका भी बदल जायेगा। आज तो उसका काफी दुरुपयोग होता है। इस नये दृष्टिकोणको मान्यता मिल जाये तो विद्याका दुरुपयोग कमसे-कम हो।

इसके बाद भी होड़की गुंजाइश तो रहेगी ही, पर वह होड़ अच्छा बननेकी, सेवावृत्ति बढ़ानेकी होगी। और सबको जीविकाके लायक मिलता रहेगा, तो असन्तोष और अन्धाधुन्धी मिट जायेगी।

इस विचारसरणीके अनुसार वर्णका जो गलत अर्थ आज होता है वह दूर होना चाहिए। छुआछूत मिटनी चाहिए और रोटी-बेटी व्यवहारके साथ वर्णका जो निकट सम्बन्ध आज है, वह टूटना चाहिए। किसके साथ खाया जाये और कौन किसके साथ विवाह करे, इसका वर्णके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य जहाँ खाना चाहेगा, जहाँ खाना उसे पसन्द होगा, जहाँ उसे प्रेमसे निमन्त्रण मिलेगा वहीं वह खायेगा। स्त्री-पुरुषको जहाँ अपना श्रेय दिखेगा वहाँ वे विवाह करेंगे। आमतौरपर विवाह एक ही वर्णमें होना सम्भव है, मगर दूसरे वर्णमें हो तो वह पाप नहीं माना जा सकता। पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा। मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नहीं, समाजसे होगा। समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा। उसमें जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायेंगे।

खेती

कहना चाहिए कि आश्रममें जो खेती होती है, वह मगनलालके कारण है। खेतीके बिना आश्रम बिना दूल्हेकी बरात जैसा माना जायेगा। फिर भी खेतीमें पड़नेकी मेरी हिम्मत बिल्कुल न थी। मेरा खयाल था कि उसके लिए आश्रम न तो कुशल है, न वैसी परिस्थितियाँ हैं। खेतीका काम एक बहुत बड़ा साहस है और उसके लिए काफी जमीन, रुपया और आदमी चाहिए। उसपर ध्यान दिया जाये तो दूसरे जो काम जरूरी माने गये थे, जिनको पूरा करनेकी हममें हिम्मत थी और जो रुकने जैसे नहीं थे, उन्हें धक्का पहुँचनेका भी डर था। मगर मगनलालके आग्रहके सामने मैं लाचार हो गया। उसने कहा — "कुछ नहीं तो मेरे मनबहलावके लिए ही खेती होने दीजिए।" मगनलाल मेरे साथ शायद ही कभी दलील करता था। मैं जो कहता

था उसपर अमल करनेका धर्म उसने पूरी तरह सीख लिया था। जहाँ वह समझ न पाता या अपना मतभेद देखता वहाँ मुझे बता देता। इतने पर भी यदि मैं अपने विचार पर दृढ़ रहता तो यह मानकर कि मेरा विचार ही ठीक होगा, वह उसमें जुट जाता। सच पूछा जाये तो उसका यह खयाल था कि खेतीके बिना आश्रमका अस्तित्व हो ही नहीं सकता। मगर उसके लिए उसे बहस करनी पड़ती। वैसा न करके उसने प्रेमकी सबसे बड़ी दलील पेश कर दी और खेती शुरू हुई। आश्रममें जो पेड़ हैं वे ज्यादातर मगनलालके लगाये हुए या लगवाये हुए हैं। खेतीके बारेमें मेरी शंकाएँ आज भी बनी हुई हैं। आज भी मैं यह दावा नहीं करूँगा कि आश्रम खेती करता है। परन्तु जो खेती आश्रममें चलती है उसके लिए मुझे दुःख नहीं है। उसमें रुपया भी काफी खर्च हुआ है, लेकिन आज भी हिसाब लगाकर यह नहीं बताया जा सकता कि खेती स्वावलम्बी हो गई है। इतने पर भी मैं देखता हूँ कि जितनी खेती होती है उतनी खेती आश्रमके अस्तित्वके लिए जरूरी ही थी। खेतीके बिना आश्रम बन ही नहीं सकता। आश्रमको अपनी साग-भाजी तो पैदा करनी ही चाहिए। मगनलालने अपने लिए तो पिछले वर्षोंमें यह व्रत ही ले लिया था कि आश्रममें जो साग-तरकारी मिलेगी उसी पर गुजर करूँगा। आश्रममें अपनी जरूरतका अनाज और घास भी पैदा करनेकी शक्ति होनी चाहिए। खेतीके सुधारका लोभ भले न रहे, मगर मैं देख सकता हूँ कि खेती के बिना आश्रम वैसा ही लगेगा जैसे नाकके बिना शरीर।

यह खेती अभी तो प्रयोगके रूपमें ही है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि उसके जरिये किसीको बहुत शिक्षा दी जा सकती है। मगर खेतीकी साधारण जानकारी हासिल करनेके लिए तो उसका उपयोग होता ही है। आश्रमकी जमीन पर जहाँ एक भी पेड़ नहीं था वहाँ अब अनेक पेड़ हैं, और हर पेड़ उपयोगकी दृष्टिसे लगाया गया है। साग-भाजी होती है, थोड़े फल होते हैं, घास-चारा होता है। जैसा मैं पहले बता चुका हूँ, मनुष्यके मैलेको खादके काममें लिया जाता है, और यह कहा जा सकता है कि इसका नतीजा बहुत अच्छा निकला है।

खेती करनेमें पुराने और नये हलोंका प्रयोग किया गया है। पानी खींचनेके लिए वे ही योजनाएँ काममें ली गईं जो गाँवोंमें चल सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि मुख्यतः पुराने औजारोंकी तरफ हमारा झुकाव रहा है। गरीब किसानके लिए ये औजार आदर्श मालूम हुए हैं। यह दूसरी बात है कि उनमें थोड़ा फेरबदल किया जा सकता है। मगर इस बारेमें निश्चयपूर्वक कहने लायक परिणाम अभीतक नहीं निकाला जा सका, क्योंकि उसे मुख्य काम समझकर उसके लिए जितना चाहिए उतना समय और बुद्धिका उपयोग नहीं किया गया। आश्रम इस काममें दूसरोंका नेतृत्व कर सके, ऐसी स्थिति तो है ही नहीं।

गोसेवा

आश्रमका आदर्श तो दूधके बिना गुजर करना है। आश्रमका जैसे यह खयाल है कि मांस मनुष्यकी खुराक नहीं, वैसे ही पशुओंके दूधके सम्बन्धमें भी है। एक

साल तक बहुत आग्रहके साथ आश्रममें दूध-घीके त्यागका पालन करनेके बाद यह प्रयोग बन्द करना पड़ा। आश्रममें परवरिश पानेवाले बच्चोंके शरीर उससे कमजोर होने लगे। बड़े लोग भी दुर्बल होने लगे। इसलिए धीरे-धीरे घी और बादमें दूध शुरू हो गया। इनके शुरू होते ही यह निश्चय स्वाभाविक था कि पशु रखे बिना आश्रमका काम नहीं चलेगा।

आश्रम 'गोरक्षा' धर्मको मानता है। 'गोरक्षा' शब्दमें अभिमान है, और आडम्बर है। मनुष्य जानवरका रक्षक बननेमें असमर्थ है। जो खुद रक्षा चाहता है वह दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता। जीवमात्रका रक्षक एक परमेश्वर ही है। ऐसी मान्यता होनेके कारण आश्रमने 'गोरक्षा'के बजाय 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग पसन्द किया। लेकिन खुद दूध-घी छोड़कर सिर्फ परमार्थकी दृष्टिसे गोसेवा करनेकी आश्रमकी इच्छा सफल न हुई, इसलिए ढोर पाले गये। शुरू-शुरूमें यह स्पष्ट नहीं था कि सिर्फ गाय-बैल ही रखना धर्म है। इसलिए गाय, बैल और भैंसें रखी गईं।

पर दिनोंदिन यह साफ होता गया कि आज तो गोसेवा करनेसे ही सब मनुष्येतर प्राणियोंकी सेवा हो जाती है। गोसेवा तो मनुष्यके लिए मार्ग-दर्शकभर है। इससे आगे जानेके उसके पास साधन नहीं हैं। और फिर हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेका एकमात्र कारण गोवध ही बन जाता है। आश्रमकी मान्यता है कि मुसलमानसे गाय जबरन छीन लेनेका हिन्दूको अधिकार नहीं है और न यह उसका धर्म ही है। दूसरेके साथ जबरदस्ती करके उससे गाय छुड़ानेमें गोसेवा या गोरक्षा नहीं है; बल्कि इसके कारण गायकी हत्या जल्दी हो सकती है। गायके प्रति स्वयं अपना धर्मपालन करके और इस तरह गायका मूल्य बढ़ाकर ही हिन्दू गायकी और उसकी सन्तानकी सेवा या रक्षा कर सकते हैं। यह काम आजकल हिन्दू समाजने छोड़ दिया है। गायकी जरूरत कम ही पड़ती है। गायसे भैंस ज्यादा दूध देती है, उसके दूधमें घीका प्रमाण ज्यादा होता है, उसे पालनेमें खर्च थोड़ा होता है। फिर भैंसकी औलाद अगर पाड़ा हो तो बहुतोंको उसकी सार-सँभालकी चिन्ता नहीं रहती या बहुत कम चिन्ता रहती है; क्योंकि भैंसकी रक्षा या सेवा करना उनका धर्म ही नहीं है। इस तरहका ओछा हिसाब लगाकर हिन्दू समाजने कायरता, अज्ञान और स्वार्थसे गायकी उपेक्षाकी है और भैंसको जगह दी है, और ऐसा करके दोनोंका नुकसान किया है। भैंसको पालनेमें भैंसका स्वार्थ भी नहीं सधता। भैंसका भला उसके स्वतन्त्र रहनेमें है। भैंस पालनेका अर्थ है पाड़ेको दुःख देकर मारना। यह बात सब प्रान्तोंपर लागू नहीं होती। लेकिन गुजरातमें पाड़ेका उपयोग खेतीमें नहीं होता, इसलिए वहाँ उसके नसीबमें बुरी मौत मरना ही लिखा होता है।

इस विचारसे आश्रममें से भैंसको निकाल दिया गया और सिर्फ गाय-बैल पालनेका ही आग्रह रखा गया है। गायकी नस्ल सुधारना, अलग-अलग खुराक देकर उसका दूध बढ़ाने और सुधारनेकी सम्भावनाओंकी खोज करना, दूधको अधिक काल तक टिकाये रखनेकी कला सीखना, उसमें से आसानीसे मक्खन निकालना, बछड़ोंको कमसे-कम कष्ट देकर खस्सी करना — आदि बातोंपर ध्यान दिया जाता है। फिलहाल तो

यह सब प्रयोगके रूपमें चल रहा है। मगर आश्रमकी मान्यता यह है कि गायका उपयोग पूरा हो और दयाके साथ हो, तो गाय भार-रूप बन ही नहीं सकती।

आज शायद बहुतोंको पता न हो कि गाय महँगी पड़ती है। वह महँगी पड़ती है इसलिए उसकी हत्या होगी ही। मनुष्य इतना परोपकारी नहीं होता कि खुद मरकर गायको बचाये, यानी गायको अपना ही भक्षक बनने दे। आजके हिसाबके अनुसार पशुओंकी संख्या इतनी है कि उन्हें अच्छी तरह पालें, तो मनुष्यको अपने ही लिए काफी खुराक न मिले। यह बात सही नहीं है ऐसा साबित करनेके लिए यह बताना चाहिए कि गाय-बैलको ज्यादा अच्छी तरह पालनेसे उनकी उत्पादक शक्ति बढ़ सकती है। आश्रमकी राय है कि यह साबित करके बताया जा सकता है।

लेकिन यह बात साबित करनेके लिए हिन्दू समाजमें धर्मके नामसे जो वहम घुस गये हैं, उन्हें मिटाना चाहिए। हिन्दू समाज गायकी हड्डियों, अँतड़ियों वगैराका उपयोग नहीं करता। मरनेके बाद गायका क्या होता है, इसकी परवाह नहीं की जाती। चमारके धन्धेको पवित्र माननेके बजाय अपवित्र माना जाता है। दूसरे जानवरोंकी हड्डियाँ काममें ली जायेंगी, मगर गायकी नहीं; और ली भी जायेंगी तो वे हिन्दू समाजकी तैयार की हुई नहीं होंगी। गाय अस्थि-पिंजर होकर आस्ट्रेलिया जाकर वहाँ कतल की जाये, वहाँसे उसकी हड्डीकी खाद बनकर यहाँ आये, उसके चमड़ेके जूते वगैरा बनकर आयें, तो उन सबका उपयोग किया जायेगा! उसके मांसका अर्क दवाके रूपमें आयेगा तो उसे भी पी लिया जायेगा!

ऐसा करनेमें गायका नाश होता है, रुपयेकी बरबादी होती है और धर्मके नामपर लूट चलती है। इसलिए आश्रममें बड़ी कोशिशसे चमारका धन्धा शुरू किया गया है। उसमें अभी तक कोई कुशल नहीं हो सके हैं। बाहरसे कोई ऐसा चमार नहीं मिला, जो शिक्षा पाया हुआ हो और आश्रमके नियमोंका पालन कर सके। एक आया था मगर उसे हम रख न सके। मामूली चमारोंको बसानेकी कोशिश भी असफल रही। फिर भी चमार का काम आश्रमका अंग बना हुआ है; और चरखेकी ही तरह इस कलापर भी अधिकार पाकर आश्रम उसका प्रचार करनेकी आशा रखता है। क्योंकि मरी हुई गायके सारे अवशेषोंका उपयोग किया जायेगा, तभी गायका भार-रूप होना बन्द होगा। उससे नफा तो कभी होगा ही नहीं। धर्म, अर्थका विरोधी कभी नहीं है, लेकिन नफेका विरोधी वह हमेशा है। लेकिन अगर गायसे उसका अपना खर्च निकलवाना हो तो आज जिस ढंगसे उसके मृत शरीरका दुरुपयोग होता है या जिस तरह वह व्यापारियोंका व्यापार बढ़ानेके काम आता है, वह बन्द होना चाहिए। यह जबरन बन्द नहीं किया जा सकता। लेकिन हिन्दू समाज गायको अपने पास रखे, जीते-जी उसे और उसकी सन्तानको अच्छी तरह पाले, बुढ़ापेमें उसकी रक्षा करे और मरने पर उसके शरीरका पूरा उपयोग करे, तो ही गायकी रक्षा हो सकेगी और उसकी रक्षासे जीवमात्रकी रक्षा करना शायद हम सीखेंगे। आज तो हमारे अज्ञान, आलस्य और द्वेषके कारण गायकी बरबादी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। फिर दूसरे पशुओंकी तो बात ही क्या?

आश्रमकी मान्यता यह है कि जितनी गोशालाएँ और पिंजरापोल हैं, उनका धार्मिक और शास्त्रीय उपयोग हो, वर्ना लोग अपने यहाँ गोशाला चलायें और गायके दूध-घीके उपयोगका ही आग्रह रखें तथा गायके दूधका व्यापार निषिद्ध मानकर सार्वजनिक गोशालाएँ इस तरह चलायें कि उनका आय-व्यय बराबर रहे, तो जल्दी ही गायकी रक्षा हो सकती है।

अभी तो आश्रमका उद्देश्य छोटा ही है — आश्रममें आदर्श गोशाला चलाना, गाय-बैलका विकास करना, मरने पर उनके हर अंगका उपयोग करके यह साबित करना कि उनका खर्च सिरपर नहीं पड़ता, गोशाला चलाते हुए गोसेवक तैयार करना और तैयार होनेपर उनकी सेवाओंका उपयोग करना। यह काम इस समय हो रहा है। इसमें रुकावटें बहुत आती हैं, मगर पूरा भरोसा है कि इसमें सफलता मिलेगी।

शिक्षा

यहाँ शिक्षा शब्दका विशेष और साधारण दोनों अर्थोंमें उपयोग किया गया है। इस शिक्षाके प्रयोगमें आश्रमकी जितनी परीक्षा हुई है, उतनी और किसी प्रयोगमें नहीं हुई।

आश्रमकी स्थापना होते ही मैंने देख लिया कि आश्रममें रहनेवाले स्त्री-बच्चोंको पढ़ाना-लिखाना आश्रमका धर्म है। और आगे चलकर तो यह भी देखा कि जो अपढ़ पुरुष आश्रममें आते हैं, उनके लिए भी ऐसा बन्दोबस्त होना चाहिए। जो लोग आश्रममें थे उनसे शिक्षाका काम पूरा नहीं हो सकेगा, यह भी साफ मालूम हो गया। शिक्षा दे सकनेवाले लोगोंको आश्रममें खींचनेकी जरा भी आशा रखनी हो तो शिक्षकवर्गके लिए ब्रह्मचर्यका नियम कड़ा नहीं रखा जा सकता — इस खयालसे आश्रमके दो भाग कर दिये गये: एक शिक्षक-विभाग और दूसरा आश्रम-विभाग। मकान भी अलग-अलग बनाये गये।

मनुष्य-जाति अपना स्वभाव एकाएक कैसे छोड़ सकती है? बहुत कोशिश करने पर भी ये विभाग करते ही ऊँच-नीचकी भावनाका जहर फैलने लगा। 'आश्रम-विभाग'के लोगोंमें अभिमान पैदा हुआ। शिक्षक-विभाग इसे कैसे सहता? यह अभिमान आश्रमके उद्देश्यके विरुद्ध था, इसलिए असत्य भी था। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन जरूरी था तो ये विभाग भी स्वाभाविक थे। मगर पूर्ण ब्रह्मचर्यकी छापवालोंके लिए अपनेको ऊँचा माननेका तो कोई कारण ही नहीं था। यह भी तो हो सकता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनेका दावा और प्रयत्न करनेवालोंका मनसे यानी विचारोंसे रोज पतन होता हो और ब्रह्मचर्यका दावा न करनेवाले परन्तु उसे पसन्द करनेवाले अपने प्रयत्नमें रोज ऊँचे उठते हों। बुद्धिसे यह सब समझ पड़ता था, मगर उसपर अमल करना सबके लिए कठिन हो गया था।

गड़गड़ीका एक कारण यह तो था ही। दूसरा कारण और पैदा हो गया। शिक्षाकी पद्धतिके विषयमें मतभेद हो गया और उससे आश्रमकी व्यवस्थामें मुश्किलें आने

लगी। अनेक वाद-विवाद हुए, अनेक झंझटें पैदा हुईं, जहर पैदा हुआ, लोगोंके मन खट्टे हो गये। इतना होने पर भी अन्तमें सब शान्त हो गये, या एक-दूसरेको सहन करने लगे। इसमें मुझे आश्रमके मूल हेतु यानी सत्यकी जीत मालूम हुई। मतभेदवालोंके मनमें मैल नहीं था। कोई भी व्यक्ति गन्दी निकृष्टतामें नहीं पड़ता था। जो मतभेद होते थे उनके लिए उन्हें दुःख होता था। जो सत्य हो उसीपर चलनेकी सबकी इच्छा थी। अपनी-अपनी रायके आग्रहके कारण सामनेवालेकी दलीलें समझनेमें रुकावट होती थी, इसलिए मनमें क्लेश और उद्वेग होता था। इससे इस बातकी परीक्षा हो सकी कि आश्रमवासियोंमें एक-दूसरेके प्रति कितनी उदारता है।

आश्रममें इस बारेमें खूब चर्चा हुई कि शिक्षा किस प्रकारकी दी जाये और कितने समय तक दी जाये। अब भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि हम आखिरी फैसले पर पहुँच गये हैं। इस विषयमें मेरे अपने विचार भिन्न ही हैं। मैं नहीं कह सकता कि इस मामलेमें मैं अपने सब साथियोंको अपनी रायका बना सका हूँ। इस-लिए आश्रमका शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श क्या है, इसे ठीक निश्चयपूर्वक बताना कठिन है। मेरी मान्यता इस तरहकी है:

१. लड़कों और लड़कियोंको एक साथ शिक्षा देनी चाहिए। यह बाल्यावस्था आठ वर्ष तक मानी जाये।

२. उनका समय मुख्यतः शारीरिक कार्यमें लगना चाहिए और यह कार्य भी शिक्षककी देखरेखमें होना चाहिए। इस शारीरिक कार्यको भी शिक्षाका अंग माना जाये।

३. हर लड़के और लड़कीकी रुचि पहचानकर उसे काम सौंपना चाहिए।

४. हरएक काम लेते समय उसके कारण की जानकारी करानी चाहिए।

५. लड़का या लड़की समझने लगे तभीसे उसे सामान्य-ज्ञान देना चाहिए। उसका यह ज्ञान अक्षर-ज्ञानसे पहले शुरू होना चाहिए।

६. अक्षर-ज्ञानको सुन्दर लेखन-कलाका अंग समझकर पहले बच्चेको ज्यामितिकी आकृतियाँ खींचना सिखाया जाये और उसकी अँगुलियाँ जब अभ्यस्त हो जायें तब उसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाये अर्थात् शुरूसे ही उसे शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाये।

७. लिखनेसे पहले बच्चा पढ़ना सीखे। यानी अक्षरोंको चित्र समझकर उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।

८. इस ढंगसे जो बच्चा सीखेगा और मुँहसे ज्ञान पायेगा, उसे तो आठ वर्षके भीतर अपनी शक्तिके अनुसार बहुत ज्ञान पा जाना चाहिए।

९. बालकोंको जबरदस्ती कुछ न सिखाया जाये।

१०. वे जो पढ़ें उसमें उन्हें रस आना ही चाहिए।

११. बच्चोंको शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिए। खेल भी शिक्षाका जरूरी अंग है।

१२. बच्चोंकी सारी शिक्षा मातृभाषाके जरिये होनी चाहिए।

१३. बच्चोंको हिन्दी-उर्दूका ज्ञान राष्ट्रभाषाके तौरपर दिया जाये। उसकी शुरुआत अक्षर-ज्ञानसे पहले होनी चाहिए।

१४. धार्मिक शिक्षा जरूरी मानी जाये। वह पुस्तकसे नहीं, बल्कि शिक्षकके व्यवहारसे और उसीके मुँहसे मिलनी चाहिए।

१५. नौ से सोलह वर्षका दूसरा काल है।

१६. दूसरे कालमें भी जहाँ तक सम्भव हो लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।

१७. दूसरे कालमें हिन्दू बालकको संस्कृतका ज्ञान मिलना चाहिए और मुसलमान बालकको अरबीका।

१८. इस कालमें भी शारीरिक कार्य तो चलना ही चाहिए। अक्षर-ज्ञानका समय जरूरतके अनुसार बढ़ाना चाहिए।

१९. इस कालमें माता-पिताका धन्धा अगर निश्चित हुआ जान पड़े, तो बालकको वह सिखाया जाये और उसे इस तरह तैयार किया जाये कि वह बाप-दादाके धन्धेसे अपनी गुजर करना पसन्द करे। यह नियम लड़कीपर लागू नहीं होता।

२०. सोलह वर्ष तक लड़के-लड़कियोंको दुनियाके इतिहास-भूगोलका और वनस्पति-शास्त्र, खगोल-शास्त्र, गणित, ज्यामिति और बीजगणितका सामान्य ज्ञान हो जाना चाहिए।

२१. सोलह वर्षके लड़के-लड़कीको सीना-पिरोना और रसोई बनाना आ जाना चाहिए।

२२. सोलहसे पच्चीस वर्ष तक मैं तीसरा काल मानता हूँ। इस कालमें हर-एक युवक और युवतीको उसकी इच्छा और परिस्थितिके अनुसार शिक्षा मिले।

२३. नौ वर्षके बादसे शुरू होनेवाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। यानी विद्यार्थी पढ़ते समय ऐसे उद्योगोंमें लगें जिनकी आयसे पाठशालाका खर्च निकल सके।

२४. पाठशालामें आमदनी तो शुरूसे ही होनी चाहिए। मगर शुरूके वर्षोंमें खर्चके बराबर आमदनी नहीं होगी।

२५. शिक्षकोंके वेतन ऊँचे नहीं हो सकते, लेकिन उन्हें जीविकाके लायक तो जरूर मिलना चाहिए। उनमें सेवावृत्ति होनी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षाके लिए हर किसी शिक्षकसे काम चला लेनेकी प्रथा बुरी है। शिक्षकमात्रको चरित्रवान होना चाहिए।

२६. शिक्षाके लिए बड़े और खर्चवाले मकानोंकी जरूरत नहीं।

२७. अंग्रेजीकी पढ़ाई भाषाके रूपमें ही हो सकती है और उसे पाठ्यक्रममें जगह मिलनी चाहिए। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है, वैसे ही अंग्रेजीका उपयोग दूसरे राष्ट्रोंके साथ व्यवहार और व्यापारके लिए है।

इसमें साधारण शिक्षाके बारेमें मेरे ज्यादातर विचार आ जाते हैं। स्त्रियोंकी विशेष शिक्षा कैसी और कहाँसे शुरू हो, इस बारेमें मैं खुद निश्चय नहीं कर पाया

हूँ, पर मेरा यह दृढ़ मत है कि जितनी सुविधा पुरुषको मिलती है उतनी ही स्त्रीको मिलनी चाहिए; और जहाँ खास सुविधाकी जरूरत हो, वहाँ खास सुविधा भी मिलनी चाहिए।

बालिग उम्रवाले निरक्षर स्त्री-पुरुषोंके लिए रात्रिवर्गोंकी जरूरत तो है ही। लेकिन मेरी मान्यता ऐसी नहीं है कि उन्हें अक्षर-ज्ञान होना ही चाहिए। उनके लिए व्याख्यानों आदिके जरिये साधारण ज्ञान मिलनेकी सुविधा होनी चाहिए, और जिन्हें अक्षर-ज्ञान पानेकी इच्छा हो उनके लिए पर्याप्त सुविधा होनी चाहिए।

इन सारी बातोंमें मेरे और साथियोंके बीच मतभेद हैं, ऊपरके बचनोंसे मेरा कहनेका मतलब यह नहीं है। लेकिन कुछ बातोंमें सूक्ष्म मतभेद हैं, इसलिए मैंने उपर्युक्त विचारोंको अपना कहकर प्रस्तुत किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि आश्रममें आज तक जितने प्रयोग हमने किये हैं, उन परसे हम दृढ़ निश्चयों पर पहुँच सके हैं। हाँ, एक बातमें हम सब लोग एकमत हैं और वह यह कि शिक्षामें उद्योगको और खासकर कताईको बड़ा स्थान मिलना चाहिए, शिक्षा ज्यादातर स्वावलम्बी होनी चाहिए और देहाती जीवनकी पोषक और उस जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली होनी चाहिए।

मेरा खयाल यह है कि शिक्षाके प्रयोगोंमें आश्रमको ज्यादासे-ज्यादा सफलता स्त्रियोंके बारेमें मिली है। वह इस तरह कि जो स्वतन्त्रता और आत्म-विश्वास आश्रमकी स्त्रियोंमें आया है, वह उतने ही अरसेमें और उसी वर्गकी स्त्रियोंमें अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आया। इसका कारण आश्रमका वातावरण है। आश्रममें स्त्री पर ऐसा कोई अंकुश नहीं रखा गया है जो पुरुष पर न रखा गया हो। स्त्रियोंके मनमें समानताका विचार शुरूसे ही भर दिया जाता है। कामोंमें सबको एक-सा भाग लेना पड़ता है। ऐसा फर्क नहीं रखा गया है कि अमुक काम स्त्रीका ही है और पुरुष उसे करे ही नहीं। रसोईके काममें स्त्री-पुरुष दोनोंने भाग लिया है और आज भी लेते हैं। शरीरका जो श्रम स्त्री कर ही नहीं सकती उससे उसे मुक्त रखा जाता है। इससे सिवा, एक भी ऐसा उद्योग नहीं जिसमें स्त्री-पुरुष साथ-साथ काम न करते हों। पर्दा और घूँघट जैसी चीज आश्रममें है ही नहीं। इस तरह आश्रमका वातावरण कुछ ऐसा बन गया है कि स्त्री कहींसे भी आई हो, आश्रममें आते ही उसे अलग प्रकारका और स्वतन्त्र वातावरण मालूम होता है और वह अपनेको निर्भय मानने लगती है। मेरा विश्वास है कि इसमें ब्रह्मचर्य-व्रतका बहुत बड़ा हाथ रहा है। बड़ी उम्रकी लड़कियाँ भी कुँवारी हैं। आश्रममें रहनेवाले हम सब जानते हैं कि आश्रमका यह प्रयोग खतरोंसे भरा हुआ है। लेकिन इस तरहके खतरे उठाये बिना स्त्रियोंकी उन्नति और उनकी जागृति असम्भव-सी जान पड़ती है।

जिस तरह अस्पृश्यता मिटानेकी जरूरत है, उसी तरह स्त्रियोंके बारेमें कुछ वहम, मान्यताओं और रिवाजोंको भी दूर करनेकी आवश्यकता है। बाल-विवाह, हर लड़कीके लिए विवाहको आवश्यक माननेवाला धर्म, मासिक धर्म शुरू होनेसे पहले विवाह करनेकी आवश्यकता, विधवाका पुनर्विवाह न करनेका समाज द्वारा लगाया

हुआ प्रतिबन्ध वगैरा प्रथाएँ जबतक बन्द नहीं होंगी तबतक स्त्री जाति आगे नहीं बढ़ सकती। इस दृष्टिसे आश्रम स्त्रियोंको आते ही यह सीख देने लगता है कि ऊपरकी प्रथाएँ खोटी और धर्म-विरुद्ध हैं। वे इस शिक्षा पर अमल होते देखती हैं, इसलिए उनके दिलको चोट नहीं पहुँचती और उन्हें ऐसा नहीं लगता कि ये सब बातें केवल दूसरोंको उपदेश देनेकी खातिर ही कही जाती हैं।

जिसे हम आमतौर पर शिक्षा मानते हैं, आश्रममें वैसी शिक्षा कम ही दिखाई देगी। इतने पर भी मेरी राय यह है कि बच्चेसे बूढ़े तक सारे स्त्री-पुरुषोंमें शिक्षा की लगन पैदा हुई है, ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा बढ़ती जा रही है और इसके लिए समय न मिलनेकी शिकायत भी बनी रहती है। यह मुझे शुभ चिह्न मालूम होता है। आश्रममें आनेवाले लोग शिक्षामें रस लेनेवाले या शिक्षा पाये हुए नहीं होते। बहुतोंको तो मुश्किलसे लिखना-पढ़ना आता है। बाहर तो उनमें इससे आगे बढ़नेकी उमंग तक न थी। आश्रममें थोड़ा समय बीतने पर अक्षर-ज्ञानमें वृद्धि करनेकी उमंग पैदा होती है। जो संस्था इतना कर सकती है, उसका रास्ता आसान हो जाता है; क्योंकि पहली सीढ़ी तो अक्सर सीखनेकी उत्कण्ठा पैदा करना ही है। आश्रममें आने-वालोंमें यह उत्कण्ठा तुरन्त पैदा होती जाती है। आश्रम इस उत्कण्ठाको पूरा करनेके लिए जितनी चाहिए उतनी सुविधा नहीं दे पाता, इसका मुझे बहुत दुःख नहीं है। आश्रमकी पाबन्दियोंके कारण शायद यथेष्ट संख्यामें ऐसे आदमी कभी नहीं आयेंगे जो शिक्षाका काम कर सकें और इसलिए आश्रममें ही इस कामके लिए जो तैयार हो सकते हैं उन्हींसे सन्तोष मानना पड़े। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि आश्रमकी प्रवृत्तिके कारण ऐसे शिक्षक तैयार न हो सकें या उनके तैयार होनेमें बहुत समय लग जाये। ऐसा हो तो भी जिनमें ज्ञान प्राप्त करनेकी सच्ची लगन पैदा हो चुकी है वे बादमें भी ज्ञान प्राप्त करेंगे। शिक्षाके लिए समयकी कोई मर्यादा ही नहीं है। सच्ची शिक्षा तो शाला छोड़नेके बाद ही शुरू होती है। जिसने उसका महत्त्व समझा है, वह तो सदा ही विद्यार्थी है। अपना कर्तव्य-पालन करते हुए और उस कर्तव्यके पालनके लिए मनुष्यके ज्ञानमें रोज बढ़ती होनी ही चाहिए। जो सब काम समझकर करता है, उसका ज्ञान रोज बढ़ना ही चाहिए और यह बात आश्रममें अच्छी तरह समझ ली गई है।

शिक्षाकी प्रगतिमें एक चीज रुकावट डालनेवाली है। शिक्षकके बिना शिक्षा ली ही नहीं जा सकती, यह भ्रम समाजकी बुद्धिको कुंठित करता है। मनुष्यका सच्चा शिक्षक तो वह स्वयं ही है। आजकल तो अपने-आप शिक्षा प्राप्त करनेके साधन खूब बढ़ गये हैं। बहुत-सी बातोंका ज्ञान परिश्रमपूर्वक सबको मिल सकता है और जहाँ शिक्षककी ही जरूरत होती है वहाँ मनुष्य खुद शिक्षक ढूँढ़ लेता है। अनुभव सबसे बड़ी पाठशाला है। कई धन्धे ऐसे हैं जो शालामें नहीं सीखे जाते, बल्कि उन धन्धोंकी दुकानों पर या कारखानोंमें सीखे जा सकते हैं। पाठशालाका ज्ञान तो अक्सर तोतेका-सा होता है। पुस्तकोंमें तो धन्धेसे बाहरका ज्ञान मिल सकता है। इसलिए बड़ी उम्रवालोंके लिए शालाके बजाय इच्छाकी, लगनकी और आत्म-विश्वासकी जरूरत है।

बच्चोंकी शिक्षा माता-पिताका धर्म है, ऐसे सोचें तो असंख्य पाठशालाओंकी जरूरतके बजाय सच्ची शिक्षाका वायुमण्डल पैदा करनेकी ज्यादा जरूरत है। ऐसा वायुमण्डल पैदा होते ही जहाँ शालाकी जरूरत होगी वहाँ वह जरूर खड़ी हो जायेगी।

आश्रममें इस दृष्टिसे शिक्षा चल रही है, और इस दृष्टिसे सोचने पर सफलता भी एक हद तक अच्छी मिली है। आश्रमका तो हर विभाग ही एक शाला है।

सत्याग्रह

आश्रमकी विभिन्न प्रवृत्तियोंका वर्णन बहुतांशमें यहाँ आ ही चुका है। आश्रम का अस्तित्व सत्यके आग्रहके द्वारा सत्यकी खोज करनेके लिए है। और ऐसा आग्रह रखते हुए जब सत्याग्रह-शस्त्रका प्रयोग करना पड़े तब आश्रम उसका प्रयोग करे और इस सत्याग्रहके नियमों और मर्यादाओंकी खोज करे। आमतौर पर उसके नियम क्या होने चाहिए, इसकी चर्चा भी यहाँ हो चुकी है।

मगर सत्याग्रहकी मर्यादा क्या है? इस शस्त्रका तीव्र उपयोग कब किया जा सकता है? मनुष्य हमेशा सत्य पर डटा रहता है, उसका नाम भी सत्याग्रह है। यहाँ इस सत्याग्रहकी चर्चा नहीं है, चर्चा उस सत्याग्रहकी है जिसका वह शस्त्रके रूपमें दूसरेके प्रति प्रयोग करता है।

ऐसा सत्याग्रह साथियोंके विरुद्ध, सम्बन्धियोंके विरुद्ध, समाजके विरुद्ध, राज्यके विरुद्ध और सारी दुनियाके विरुद्ध हो सकता है। इसकी जड़में . . .[1]

[यह इतिहास इसके आगे नहीं लिखा जा सका।]

[गुजरातीसे]

सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास

२०७. पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्याको

१२ जुलाई, १९३२

चि० भगवानजी,

तुमने लक्ष्मीदेवीसे क्षमा माँग ली, इतना ही पर्याप्त है। इसको लेकर ज्यादा चख-चख करनेकी जरूरत नहीं। तुम आना चाहो तो अनुमति मिलने पर चले आना। जिस फकीरीका हम गान करते हैं वह फकीरी वनकी नहीं, मनकी है। इसके बिना सब कुछ अधूरा है। अभी वर्धा नहीं जाना है। जब विनोबा छूटेंगे तब इस पर विचार किया जा सकता है। 'कदी नहीं हारना भावे (भले) साडी जान जावे।'

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ३५०)से; सौजन्य : भगवानजी पुरुषोत्तम पण्ड्या

१. यहाँ धाराका क्रम अकस्मात् टूट गया।

२०८. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१३ जुलाई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

अपनी परेशानियोंके लिए आपको फिरसे कष्ट दे रहा हूँ; कृपया क्षमा करें। मेजर भंडारीने मुझे कल बताया कि मेरे इसी ९ तारीखके पत्रके उत्तरमें उन्हें मुझे यह सूचित करनेको कहा गया है कि सरकारके पाससे मेरी डाकके प्राप्त होनेके बाद आपके या मेजर भंडारीके आफिसमें उसपर कार्रवाई करनेमें कोई विलम्ब नहीं किया जाता। यह मुझे मालूम था। मेरा प्रश्न तो सरकारी कार्य-पद्धतिके बारेमें था। मुझे अपने बाहरके मित्रों तथा साथी कैदियोंको, चाहे वे पुरुष हों या महिलाएँ, पत्र लिखनेकी अनुमति दी गई है। इनमें यरवडा जेलके साथी भी शामिल हैं। अपने आश्रमके पुरुषोंकी ही तरह मैं महिलाओंको भी नियमित रूपसे पत्र लिखता रहा हूँ। अगर इस जेलके साथियोंको लिखे मेरे पत्र और उनके पत्र शीघ्र एक-दूसरेको नहीं दिये जाते तो उन्हें मेरा लिखना बेकार है। स्वभावतः इन पत्रोंमें एक-दूसरेकी कुशल-क्षेम तथा उन लोगोंकी कुशल-क्षेमकी बातें होती हैं जिनमें मेरी और उन लोगोंकी दिलचस्पी है।

यही बात आश्रमके पत्रों पर भी लागू होती है।

दूसरे लोगोंके जो पत्र मुझे मिलते हैं उनमें से कुछ पत्र मेरी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होते हैं। अधिकारी लोग उन्हें महत्त्वपूर्ण मानें या न मानें, लेकिन मैं उनसे वंचित होना नहीं चाहूँगा।

मेरा पिछली बारका जेल-अनुभव यह है कि जब पत्र सरकारके पास भेजे जाते हैं, तो उनपर विचार करनेमें समय लगता है। १९३० में शुरू-शुरूमें मेरे पत्र सरकारको भेजे जाते थे और मैं जानता हूँ कि पत्रोंका पहला बण्डल मुझे मिलनेमें लगभग छः सप्ताह लगे थे, और सो भी बारम्बार अनुरोध करनेके बाद। बादमें तत्कालीन सुपरिटेंडेंट मेजर मार्टिनको मेरे पत्रोंसे निपटनेका अधिकार दे दिया गया, और स्वभावतः फिर कोई विलम्ब नहीं होता था। मेरे पत्र-व्यवहारकी जाँच कौन करता है इस विषयमें बेशक मुझे कुछ नहीं कहना है। मेरा जिन बातोंसे मतलब है वे हैं :

१. मेरे पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें संशोधित निर्देश ठीक-ठीक क्या हैं?

२. मुझे अपनी डाक प्राप्त करने, और मेरे लिखे पत्र डाकमें छोड़े जायें, इसके लिए मुझे कितनी देर प्रतीक्षा करनी होगी?

३. मेरे जो पत्र रद कर दिये जायेंगे क्या वे मुझे हमेशाकी तरह लौटाये जाते रहेंगे और हमेशाकी तरह उन्हें रद करनेकी वजह मुझे सूचित की जायेगी?

४. जो पत्र और पार्सल मुझे नहीं दिये जायेंगे क्या उन्हें मेरी सम्पत्ति माना जायेगा, उनकी सार-सँभाल की जायेगी और मेरे रिहा होने पर वे मुझे सौंप दिये जायेंगे?

यदि आप इस पत्रको सरकारके पास अग्रेषित कर देंगे और इसका शीघ्र उत्तर मँगा देंगे तो मैं आभार मानूंगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०), भाग १, पृष्ठ २५७।

२०९. पत्र : मीराबहनको

१४ जुलाई, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारा ७ तारीखका पत्र मुझे आज सुबह (१४ तारीखको) ही प्राप्त हुआ। जहाँ तक मेरे पत्र-व्यवहारका सम्बन्ध है, अभी तो सब बातें अस्तव्यस्त हैं। सारे पत्र सरकारके पास जाते हैं। बादमें क्या होता है, सो मुझे मालूम नहीं। मैं जाँच कर रहा हूँ। जेल-जीवन ऐसा ही होता है। इसमें धीरजकी अच्छी तालीम मिलती है।

मुझे खुशी है कि मेरे पत्रोंसे दामोदरदास और उसकी पत्नीको कुछ सान्त्वना मिली है। मुझे उम्मीद है कि वे अब संकटसे पार हो चुके हैं। किस प्रकारकी स्त्री है यह प्रेमकुँवर? क्या उसमें इन जबर्दस्त क्षतियोंको सह पानेका साहस है?

मेरी तन्दुरुस्ती बिल्कुल अच्छी रहती है। वजन आजकल १०५½ पौंड पर स्थिर है। कुहनीका दर्द ज्योंका त्यों है। बहुत सम्भव है कि जो मरहम लगाया जा रहा है, उससे कुहनीको आराम हो जाये। लेकिन हो या न हो, चिन्ताकी कोई बात नहीं।

हाँ, प्यारेलालको थोड़े दिन नमक छोड़ देनेसे अवश्य लाभ होगा। तुम्हारे प्रयोगके अच्छे परिणाम निकलते रहे तो उसे बहुत लोग करेंगे। प्यारेलाल तो अवश्य आजमायेगा। परन्तु जबतक तुम उसे कमसे-कम साल भर न चला लोगी, तबतक उसके बारेमें कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती।

अखबार कहते हैं तुम बम्बईसे जा रही हो। आश्चर्य है कि तुम्हें ऐसा करनेका आदेश उस समय मिला जब पुलिसको अवश्य मालूम हो गया होगा कि तुम बम्बईसे रवाना होनेवाली हो।[1] अवश्य ही उन्हें तुम्हारी प्रस्तावित रवानगीका हाल मालूम होनेसे पहले आदेश मिल गये होंगे।

१. **बापूज लेटर्स टु मीरा**में मीराबहनने लिखा है: "जब मैं राजेन्द्रबाबूसे मिलनेके लिए छपरा जानेको सामान बाँध रही थी, ठीक उसी समय मुझे बम्बई छोड़ देनेका नोटिस मिला। मैंने अपनी योजना नहीं बदली, बल्कि पूर्व-निर्धारित दिन ही रवाना हुई।"

वल्लभभाईने अब लिफाफे बनानेके कामके अलावा संस्कृतका अध्ययन और कताईका काम भी शुरू कर दिया है। संस्कृतकी पढ़ाईके लिए वे बहुत ही परिश्रम कर रहे हैं और यद्यपि गांडीव चरखा उनके लिए नया है, तो भी वे २० अंकके १८० तार आसानीसे कात रहे हैं।

हम सबकी ओरसे प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३१) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९७ से भी।

२१०. पत्र: एम० ए० खाँको[1]

१४ जुलाई, १९३२

प्रिय मित्र,

आपकी भर्त्सनाके लिए धन्यवाद। आप यह उम्मीद तो नहीं रखते होंगे कि मैं आपसे बहस करूँ। मुझे भय है कि कैदी होनेके नाते राजनीतिक मामलोंकी चर्चा करनेकी मुझे इजाजत भी नहीं मिलेगी। लेकिन आपसे इतना कह दूँ कि जेलके कोनेमें बैठकर गहराईके साथ विचार करनेके बाद भी मेरे खयालोंमें कोई तब्दीली नहीं हुई है।

आपका,

मो० क० गांधी

मौलवी साहब एम० ए० खाँ
कोतवाल स्ट्रीट बाजार ३
फिरोजपुर छावनी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) भाग २, पृष्ठ १८५।

१. एम० ए० खाँने लिखा था: "आप राजनीति नहीं समझते। इसे आगा खाँ और शास्त्री तथा सप्रू जैसे लोगोंके हाथमें छोड़ दीजिए। आप हिमालयपर चले जाइए और अपनी भूल स्वीकार कीजिए।" गांधीजीने इसका उत्तर अपने हाथसे लिखा था। महादेव देसाईने इस पत्रके सम्बन्धमें सरदार पटेल और गांधीजीके बीच हुई बातचीतकी निम्न रिपोर्ट लिखी है:

सरदार: इस अपमानजनक पत्रका जवाब आपने अपने हाथसे क्यों लिखा?

बापू: क्योंकि मुझे लिखना ही चाहिए था।

सरदार: क्या यह गाली देनेका पुरस्कार है? इससे वह अपने आपको बहुत बड़ा मानने लगेगा।

बापू: मैं नहीं समझता कि इससे हमें कोई नुकसान है। (महादेवभाईनी डायरी, खण्ड-१)

२११. पत्र : ए० वेलुसामीको

१४ जुलाई, १९३२

प्रिय मित्र,

मुझे तुम्हारा इसी ७ तारीखका पत्र मिला। गत १२ मार्चका पत्र मुझे मिला ही नहीं।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह चेतन-जगत एक नियम द्वारा संचालित होता है। यदि तुम किसी नियामकके बिना किसी नियमकी कल्पना कर सकते हो, तो मैं कहूँगा कि नियम ही नियामक अर्थात् ईश्वर है। जब हम नियमकी प्रार्थना करते हैं, तो इसमें हमारा हेतु नियमको जानने और उसका पालन करनेका होता है। हम जिस चीजकी लालसा करते हैं ठीक वैसे ही बन जाते हैं, इसीलिए प्रार्थना जरूरी है। हालाँकि हमारा वर्तमान जीवन पूर्वजन्मके कर्मोंसे संचालित है, तो भी कार्य-कारणके उसी नियमके अनुसार हम इस जीवनमें जो-कुछ करेंगे, हमारा भावी जीवन वैसा ही होगा। अतः जब हमारे सामने दो या दोसे अधिक विकल्प हों तब हम अपना वैसा ही चुनाव करना चाहिए।

बुराईका अस्तित्व क्यों है और बुराई क्या है, यह सवाल हमारी सीमित बुद्धिसे परे है। इतना ही जानना काफी है कि अच्छाई और बुराई, ये दोनों विद्यमान हैं। और जब भी हम अच्छाई और बुराईमें भेद कर सकें, हमें अच्छाईको चुनना चाहिए और बुराईसे बचना चाहिए।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

वेलुसामी
शिवगंगा

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९४७) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०), भाग २, पृष्ठ १८३ से भी।

२१२. पत्र : सुधीरकुमार सेनगुप्तको[1]

१४ जुलाई, १९३२

प्रिय मित्र,

मैंने भैंस या गायका दूध न लेनेका व्रत लिया है, इसीलिए मैंने बकरीका दूध लेना शुरू किया। शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। नैतिकताकी दृष्टिसे यह अच्छा होता कि मैं बकरीका दूध लेनेके लोभका संवरण कर सका होता। लेकिन नैतिकताके नियमोंका पालन करनेकी इच्छाके मुकाबले जीते रहनेकी इच्छा ज्यादा प्रबल थी। दुग्धाहारकी नैतिकताके बारेमें मेरे विचार ज्योंके-त्यों हैं। लेकिन मैं देखता हूँ कि कोई ऐसी सब्जी नहीं है, जो दूधका स्थान ले सके। तुम उसे मत छोड़ो।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत सुधीरकुमार सेनगुप्त
मार्फत बाबू रजनीकान्त सेनगुप्त, प्लीडर
डाकखाना हुगली
बंगाल

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्टस, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ १८५। **महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १** से भी।

२१३. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

१६ जुलाई, १९३२

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने तो तुम्हें, अपने बारेमें जो-कुछ लिखना चाहो सो लिखनेको कहा था। यहाँ बैठे हुए तुम्हारे सुख-दुखमें यदि मैं कोई भाग ले सकूँ, तो लूँगा। परिषद्‌के बारेमें तो कुछ लिखा ही नहीं जा सकता।

१. सुधीर नामक इस बंगाली बालकने गांधीजीको लिखा था: "आपने दूध छोड़ देनेका व्रत लिया था। लेकिन इसके बाद आपने बकरीका दूध लिया। क्या आपने उसमें कुछ विशेष लाभ देखे? मेरा मुख्य आहार चावल है। दूधके सिवा मैं अन्य किन चीजोंसे पोषण प्राप्त कर सकता हूँ?"

माँको हम सबका प्रणाम। गोकीबहनके साथ कोई रहता है क्या? उन्हें मैंने कुछ दिन पहले पत्र लिखा तो जरूर था।[1]

सुमतिको[2] आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७९७) से; सौजन्य: शान्तिकुमार मोरारजी

२१४. पत्र: नारणदास गांधीको

१६ जुलाई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी जो डाक मंगलवारको मिलनी चाहिए थी वह आज अर्थात् शनिवारको मिली है। मिली है, यही ईश्वरकी बहुत कृपा है। लेकिन हमें यह तो समझ लेना चाहिए कि अब डाकके बारेमें सब-कुछ अनिश्चित हो गया है। मेरी डाक अब कदाचित् तुम्हें मिल गई होगी। अनासक्तिका अनुभव तुम सबको भी हो रहा है और यहाँ हम भी इसका अनुभव करते हैं। कैदीको पत्र लिखनेकी अथवा मिलनेकी छूट ही न हो तो वह क्या करे? उसमें भी यदि थोड़ी छूट मिल ही गई हो तो उसपर किसलिए आशाका महल खड़ा करे? इसलिए यदि मेरे पत्र न मिलें तो समझ लेना कि अनपेक्षित परिस्थितियोंके आ पड़नेके कारण ही ऐसा हुआ है। मैं तो नियमित रूपसे कुछ-न-कुछ अवश्य लिखता रहूँगा।

रानीपरज आश्रमके एक आश्रमवासीका दाह-संस्कार किया गया, यह बहुत ही अच्छा हुआ। उसकी आयुके बारेमें कुछ मालूम हो तो लिखना। उसे क्या हुआ था, अगर यह भी मालूम हो तो बताना।

नर्मदाकी कहानी तो किसी उपन्यासकी कहानी जैसी लगती है।[3] यहाँ पड़े-पड़े मैं इस सम्बन्धमें तुम्हारा अथवा नर्मदाका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता। इसके बारेमें भाई मावलंकर[4] अथवा यदि उन्हें समय ही न मिल सके या वे वहाँ न हों तो भाई तुलसीदास अथवा फूलशंकर वकीलको पूछना पड़े तो पूछना। अन्तमें तो इसमें धर्मका प्रश्न रह जाता है। इसलिए तुम्हें जो धर्मके आधारपर सूझ पड़े सो करना। तुमने नर्मदाके पतिको लिखा है, यह ठीक किया है।

१. देखिए "पत्र: गोकीबहनको", ८-७-१९३२।

२. शान्तिकुमार मोरारजीकी पत्नी।

३. ससुरालमें नर्मदाबहन राणाके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। उसे सौराष्ट्रके शम्भुशंकर त्रिवेदी वहाँसे छुड़ाकर आश्रम ले आये थे।

४. गणेश वासुदेव मावलंकर।

छोटूभाई[1] यदि अपने पिताकी सेवा करनेके लिए अभी आश्रममें रहे तब तो उसके पिताका आश्रममें आना ठीक ही हुआ, ऐसा कदाचित् कहा ही जा सकता है। हालाँकि हमसे ऐसी प्रथा तो जारी नहीं की जा सकती कि आश्रममें रहनेवाले लोग अपने अपंग सगे-सम्बन्धियोंको भी वहाँ रखें। ऐसा करनेमें तो आश्रम विच्छिन्न हो जायेगा। अभी चूँकि समय विषम है, और उसके पिता आश्रममें आ ही गये हैं, इसीलिए मैंने यह मध्यम मार्ग सुझाया है। छोटूभाई यदि आश्रममें न रहे तो उसके पिताको आश्रममें रहने देनेकी जिम्मेदारी आश्रम कदापि न ले।

हरियोमलका[2] लड़का यदि किसी अनिवार्य कारणवश आश्रममें नहीं आ सकता तो उसके लिए प्रति मास १५ रुपये भेजना मुझे ज्यादा प्रतीत नहीं होता। इस तरहकी मदद हमने कितनी ही बार की है। नियम तो जो तुम लिखते हो वही है। लेकिन हरियोमलके सम्बन्धमें उस नियमका अमल किया जाना चाहिए अथवा नहीं, यह विचारणीय है। तुम्हें इस मामलेमें अधिक जानकारी है, इसलिए मेरी रायको जितना महत्त्व देना हो उतना देनेके बाद जैसा ठीक लगे वह निर्णय करना।

आनन्दी और मणिके लिए डा० कानूगा[3] जो कहें सो करना। दूधसे हाथको कुछ फायदा हुआ हो, सो बात नहीं।

प्रार्थनाके सम्बन्धमें जो लेख[4] भेज रहा हूँ उसपर खूब चिन्तन-मनन करना। तुम्हें तो यह तुरन्त समझमें आ जायेगा, और यदि समझ लोगे तो औरोंको भी आसानीसे समझा सकोगे। मैं अनुभवसे देखता हूँ कि उसमें समयका अपव्यय होनेके स्थानपर मन हलका होता है और कामका अथवा उत्तरदायित्वका बोझ ढीला होता जान पड़ता है। आजकल मेरे मनमें प्रार्थना-सम्बन्धी विचार बहुत उठते रहते हैं। इसमें भी व्यक्तिगत प्रार्थनाके बारेमें अधिक विचार करने लगा हूँ। मुझे तो बचपनसे रम्भाने[5] प्रार्थना करनेकी आदत डाल दी थी, इसलिए मेरे लिए तो वह अत्यन्त सहज वस्तु हो गई है। तथापि, अभी भी मैं इसमें त्रुटियाँ देख सकता हूँ। यदि पूर्ण जागरूकता रहे तो इसकी भव्यताके आगे अन्य सब-कुछ मिथ्या ही लगे।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२३९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. आश्रममें खादी-विभाग एक विद्यार्थी।

२. आश्रमके कृषि-फार्ममें काम करनेवाले एक सिन्धी कार्यकर्ता।

३. डा० बलवन्तराय कानूगा।

४. देखिए "व्यक्तिगत प्रार्थना", १७-९-१९३२।

५. बचपनमें गांधीजीकी परिचारिका; देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २९।

२१५. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

१६ जुलाई, १९३२

चि० नर्मदा,

तूने जो-कुछ लिखवाया है यदि वह सब सच है, तो यह तेरे लिए शोभनीय है। तेरी पवित्रताकी रक्षा कोई मनुष्य नहीं कर सकता। इसकी रक्षा तो तू स्वयं ही कर सकेगी और यदि तुझे ईश्वरपर पूरा-पूरा भरोसा होगा तो रक्षा होगी ही, यह विश्वास रखना। आश्रममें स्त्रियोंकी प्रार्थनाका जो पहला श्लोक[1] है उसे [आश्रमकी] बहनोंसे समझ लेना। यह प्रार्थना यद्यपि द्रौपदीकी है, परन्तु यह समस्त नारीसमाजके लिए है। ऐसा नहीं मानना कि यह तो हजार दो हजार वर्ष पहले एक नारी द्वारा की गई प्रार्थना थी। संकटमें पड़ी हुई समस्त स्त्रियोंके लिए यह प्रार्थना ढालरूप है।

तुझे अदालतमें जाना चाहिए अथवा नहीं, इस सबके सम्बन्धमें मैं यहाँ बैठा हुआ कुछ नहीं कह सकता। मुझे खबर भी नहीं हो सकती। इसके लिए तो आगे-पीछेकी सब बातें मालूम होना जरूरी है। इसलिए इस सम्बन्धमें तो जिसपर तेरा विश्वास हो वह तुझे जो सलाह दे वही करना। लेकिन तुझे अपने मनमें तो याद होना चाहिए कि तुझे भले ही [वे] लोग कहीं ले जायें, भले ही कहीं भी रखें और चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, फिर भी तेरे शीलकी रक्षा तो स्वयं तेरे ही हाथमें है। यह विश्वास तुझे आवश्यक बल प्रदान करेगा, इतना निश्चित जानना। यदि तुझे आजीवन कौमार्य जीवन ही बिताना है तो इस दिशामें अपना अभ्यास बढ़ाना चाहिए और सेवा-कार्यमें अपना चित्त लगा देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७५७) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१. देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ ४०४-५, सं ५६।

२१६. पत्र : शम्भुशंकर त्रिवेदीको

[१६ जुलाई, १९३२][1]

प्रिय शम्भुशंकर,

तुम्हारा पत्र मिला। नर्मदाके बारेमें मैंने नारणदासके पत्रमें[2] जो लिखा है, उसे देख लो। ऐसे मामलोंमें मैं यहाँसे कोई सलाह नहीं दे सकता। जहाँ वकीलसे सलाहकी जरूरत हो, वहाँ उससे सलाह ली जानी चाहिए, यही बुद्धिमानी है। इसके बाद यदि आश्रमको कुछ करना है तो नारणदासको पूरा अधिकार है। उसका कर्तव्य जो कहे सो उसे करना चाहिए। नर्मदाको जो पत्र मैं लिख रहा हूँ उसे देख लेना।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०), पृष्ठ ३१९।

२१७. व्यक्तिगत प्रार्थना

१७ जुलाई, १९३२

व्यक्तिगत प्रार्थनाके विषयमें मैं कुछ लिख[3] तो गया हूँ, लेकिन उसके महत्त्वके सम्बन्धमें फिरसे कुछ लिखनेकी आवश्यकता जान पड़ती है। मुझे ऐसा लगता है कि सामाजिक प्रार्थनामें दिलचस्पी न होनेका एक कारण व्यक्तिगत प्रार्थनाकी आवश्यकताका अज्ञान हो सकता है। व्यक्तिगत प्रार्थनासे ही सामाजिक प्रार्थनाकी व्यवस्था हुई है। व्यक्तिको प्रार्थनाकी भूख न हो तो समाजको क्योंकर हो सकती है? सामाजिक प्रार्थनाका उपयोग भी व्यक्तिके लाभके लिए है। व्यक्तिके आत्म-दर्शनमें — आत्मशुद्धिमें — सामाजिक प्रार्थना सहायक होती है। अतएव यह आवश्यक है कि सब कोई व्यक्तिगत प्रार्थनाके महत्त्वको पहचान लें। जहाँ बच्चा समझने लायक होता है वहाँ माता तुरन्त ही उसे प्रार्थना सिखाती है। सारे धर्मोंके लिए यह सामान्य वस्तु है।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १६-७-१९३२।

३. देखिए "प्रार्थना", १९-६-१९३२।

इस प्रार्थनाके लिए दो समय तो स्पष्ट रूपसे निर्धारित हैं: अर्थात् सवेरे उठते समय उस अन्तर्यामीको याद किया जाये और रातको सोते समय उसका ध्यान किया जाये। इस बीच जाग्रत स्त्री-पुरुष अपनी प्रत्येक क्रियाको करते समय अन्तर्यामीको याद करेंगे; उसे साक्षी रूप मानेंगे। ऐसा करनेवाले व्यक्तिसे बुरा कृत्य तो हो ही नहीं सकता और अन्तमें उसको ऐसी आदत पड़ जायेगी कि वह अपने प्रत्येक विचारका साक्षी ईश्वरको मानेगा, उसे स्वामी बनायेगा। यह शून्यवत होनेकी स्थिति हुई। इस तरह जिसके समक्ष सारा समय ईश्वर विद्यमान रहता है उसके हृदयमें राम वास करता है।

ऐसी प्रार्थनाके लिए खास मन्त्र अथवा भजनकी जरूरत नहीं होती। हालाँकि प्रत्येक क्रियाके आरम्भ और अन्तके लिए मन्त्रोंका विधान किया गया है, लेकिन उसकी आवश्यकता नहीं। हमें तो चाहे किसी भी नामसे, किसी भी तरह, चाहे किसी भी स्थितिमें ईश्वरको याद करना है। ऐसा करनेकी आदत बहुत कम लोगोंको पड़ती है। यदि बहुतोंको ऐसी आदत हो तो जगतमें पाप कम हो जायें, मलिनता क्षीण हो जाये, और पारस्परिक व्यवहार शुद्ध हो जाये। ऐसी शुभ स्थितिको प्राप्त होनेके लिए प्रत्येक मनुष्यको, जैसा कि मैंने कहा है, दो समय तो निर्धारित करने ही चाहिए, और उसे इसके लिए अन्य समय भी निर्धारित कर लेना चाहिए और उसमें नित्य इजाफा करते जाना चाहिए, जिससे कि अन्तमें हर साँसमें रामका नाम निकलने लगे।

इस व्यक्तिगत प्रार्थनामें तनिक भी समय नहीं लगता। उसमें समयकी नहीं, जागरूकताकी जरूरत है। जैसे आँख मूँदनेमें समय नहीं लगता वैसे व्यक्तिगत प्रार्थनामें भी समय नहीं लगता। अपितु, जिस प्रकार हम जानते हैं कि पलक अपना [आँख मूँदनेका काम] करती है, उसी प्रकार हमारे हृदयमें भी निरन्तर प्रार्थना चलती रहनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना करनेवालेको याद रखना चाहिए कि जिसका हृदय मलिन है वह उस मलिनताके रहते हुए प्रार्थना नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि प्रार्थनाके समय उसे मलिनताका त्याग करना ही होगा। जैसे कोई मनुष्य किसीके सामने कोई मलिन कार्य करनेसे शरमाता है, उसी तरह उसे ईश्वरके समक्ष भी मलिन कार्य करते हुए शरमाना चाहिए। लेकिन ईश्वर तो सदैव हमारे प्रत्येक कार्यको देखता है, विचारको जानता है, अतः ऐसा एक भी क्षण नहीं जब उससे छिपकर कोई भी काम अथवा विचार किया जा सकता हो। इस तरह जो मनःपूर्वक प्रार्थना करेगा वह अन्ततः ईश्वरमय हो जायेगा, अर्थात् निष्पाप हो जायेगा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२१८. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

१७ जुलाई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र मिला। इसमें सब प्रश्नोंके उत्तर नहीं आते। मुँह-जबानी पूछे प्रश्नोंका तूने जो उत्तर दिया था उसका मुझे स्मरण नहीं है। उसके आधारपर मेरा कुछ लिखना उचित नहीं होगा। इसीलिए मैंने उन्हें लिखित रूपमें पूछा है। लेकिन अब तुझे परेशान नहीं करूँगा। तूने जो-कुछ भेजा है उसपर मैं क्या हो सकता है, सो देखूँगा। तूने अपनी दशाका जो वर्णन किया है वह दुखद है, तथापि मैं निराश नहीं होऊँगा। तू सचेत हो, ऐसा मेरा विश्वास है। और तू अपनी सामर्थ्यानुसार प्रयत्न भी करती है अतएव किसी-न-किसी दिन तुझमें आवश्यक शक्ति अवश्य आयेगी; तुझमें स्वयं इतना विश्वास होना चाहिए—ऐसी मेरी कामना है। तू यदि स्वयंमें विश्वास खो बैठेगी तो दूसरोंका विश्वास कदाचित् ही काम आयेगा।

हम तीनों मजेमें हैं। हम अध्ययनमें खूब लगे रहते हैं।

डाककी स्थिति अब गड़बड़ा गई है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४२) से।

२१९. पत्र : मोहन एन० परीखको

१७ जुलाई, १९३२

चि० मोहन,

तूने पत्र लिखा सो ठीक किया। तूने एकादशी किस तरह बिताई, सो अब लिखना। महादेव काका तुझे आशीर्वाद कहते हैं, और यदि तू सरदारको प्रणाम लिख भेजे तो वे भी तुझे आशीर्वाद भेजेंगे। अरे भूल हुई। मैं देखता हूँ कि तूने सरदारको भी प्रणाम लिखे हैं, अतएव उनके आशीर्वाद भी स्वीकार करना।

लिखावट सुधारना। धब्बे नहीं होने चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१८१) से।

२२०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१७ जुलाई, १९३२

चि० प्रेमा,

क्या यह समझ लूँ कि तेरा नसीब ही खराब है? मैंने तो जन्मदिनका आशीर्वाद लौटती डाकमें भेज दिया था, लेकिन मेरा पत्र[1] ही अधरमें लटक गया। कदाचित् कल भेजा गया हो तो कहा नहीं जा सकता। लेकिन कोरे कागजमें लिखे आशीर्वादसे क्या लाभ हो सकता है? यदि आशीर्वाद हृदयसे निकला हो तो उतनेसे सन्तोष मानना चाहिए और वह तो है ही, अर्थात् मैं तुझे हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। हृदय किस तरहसे काम करता है, इसकी हमें खबर भी नहीं होती और सच केवल यही है, बाकी सब मिथ्या है।

तुझे पीठके दर्दका तुरन्त इलाज करना चाहिए। उसका मासिक धर्मके साथ सम्बन्ध हो सकता है। क्या वह समयसे और ठीक आता है? आनन्दी, मणि और मंगलाके बारेमें मुझे यही सन्देह है। तू लड़कियोंके साथ बातचीत करके जान लेना। सम्भवतया मणिको मासिक धर्म शुरू होनेवाला हो। मणि जब आश्रममें आई थी तब वह तीन सालकी थी, यह मुझे याद है। आज उसे सोलह वर्षकी हो जाना चाहिए। मंगलाकी भी कदाचित् यही उम्र हो। सब-कुछ ठीक-ठीक जान लेना।

आश्रममें जो नई बहनें आई हैं, उनमें से जो लिखना जानती हों उन्हें लिखनेके लिए कहना। नर्मदासे अच्छी तरह परिचय कर लेना। उसकी कहानी करुणाजनक है।

प्रेसिडेंट विल्सनके जीवन-वृत्तान्तसे मैं अवगत नहीं हूँ। जैसा कि सुननेमें आया है, वे एक अच्छे आदमी थे और उनके उद्देश्य भी अच्छे थे।

गत युद्धसे कुछ लाभ हुआ हो, ऐसा नहीं लगता। उससे नीतिका बल क्षीण हो गया है, द्वेष बढ़ गया है। लड़नेकी वृत्तिमें कमी नहीं आई है। लोभ बढ़ गया दीख पड़ता है।

किसी मनुष्य अथवा वस्तुको ध्यानमें रखकर प्रार्थना की जा सकती है। उसका फल भी मिलता है। लेकिन निःस्वार्थ भावसे की गई प्रार्थना आत्मा और जगतके लिए अधिक कल्याणकारी होती है। प्रार्थनाका प्रभाव अपनेपर होता है। तात्पर्य यह कि इससे अन्तरात्मा अधिक जाग्रत होती है, और जैसे-जैसे जागृति आती जाती है वैसे-वैसे प्रभावका विस्तार फैलता जाता है। ऊपर हृदयके बारेमें मैंने जो लिखा है वह यहाँ भी लागू होता है। प्रार्थना हृदयका विषय है। मुँहसे प्रार्थना बोलने आदिकी जो क्रियाएँ हैं वे हृदयको जाग्रत करनेके लिए हैं। यह जो निस्सीम शक्ति हमें बाहर दिखाई देती है वही हृदयमें भी है और उतनी ही व्यापक भी है। उसे शरीरका कोई व्यवधान नहीं। व्यवधान तो हम स्वयं पैदा करते हैं। प्रार्थना द्वारा वह व्यवधान

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको", ३०-६-१९३२।

दूर होता है। प्रार्थनासे इच्छित फलकी प्राप्ति हुई अथवा नहीं, उसकी हमें खबर नहीं होती। मैं यदि नर्मदाकी मुक्तिके लिए प्रार्थना करता हूँ और वह दुःखसे मुक्त हो जाती है, तो मुझे ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि यह मेरी प्रार्थनाका फल है। यह प्रार्थना निष्फल तो नहीं जाती, लेकिन वह हमें क्या फल प्रदान करती है सो हमें मालूम नहीं होता। और फिर, हमारा मनचाहा फल मिल गया इसलिए वह अच्छा ही है, ऐसा भी हमें नहीं मानना चाहिए। यहाँ भी हमें 'गीता बोध' में दिखाये गये मार्गका अनुसरण करना है। प्रार्थना अनासक्त भावसे की जानी चाहिए। यदि हम किसी भी व्यक्तिके लिए प्रार्थना करें तो हमें अनासक्त भावसे करनी चाहिए अर्थात् फलके प्रति उदासीन रहकर करनी चाहिए। किसीकी मुक्ति अगर हमें इष्ट जान पड़े तो उसके लिए प्रार्थना करें। लेकिन वह मिलेगी अथवा नहीं, इसके विषयमें निश्चिन्त रहें। यदि विपरीत परिणाम निकले तो ऐसा माननेका कोई कारण नहीं कि हमारी प्रार्थना निष्फल गई। क्या इससे ज्यादा खुलासा चाहती है?

उर्दू पुस्तकोंकी मैंने जो तालिका माँगी है सो याद रखना। अब तो यह पत्र तुझे कब मिलेगा और इसका जवाब कब आयेगा, इसके बारेमें कुछ भी निश्चित नहीं है। अनिश्चिततामें निश्चितताका विकास करना और निश्चितता देखना हमारा काम है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९४) से। सी० डब्ल्यू० ५७५० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

२२१. पत्र : देवदास गांधीको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय देवदास,

हामिद अलीके उर्दू पत्रकी पीठपर लिखा तुम्हारा ३० जूनका पत्र कल दोपहरको यानी १६ जुलाईको मिला। आजकल मेरी डाक बड़ी अनियमित हो गई है। वह बहुत चक्कर लगाकर मुझतक पहुँचती है। इसे मेरा सौभाग्य ही कहना चाहिए कि इसके बावजूद वह मुझे मिल जाती है। एक कैदीके भला क्या अधिकार हैं? कैद होनेके मतलब हैं अधिकारोंका अभाव। चूंकि मैं कैदका अर्थ यह लगाता हूँ, इसलिए मैं अपना मन स्थिर रख सकता हूँ। मुलाकातोंका भी यही हाल है। बहुत करके तो तुम महादेवसे मिल सकोगे। लेकिन जैसा तुम समझते हो, वैसी कोई समयसूची नहीं बनाई जा सकती। या तो तुम उससे मुलाकात न कर सकनेका खतरा लो और या फिर उससे मिलनेका मोह त्याग दो। यदि हो सकता है तो बेशक तुमसे और लक्ष्मीसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होती, लेकिन मैंने जो कदम उठाया है वह निश्चय ही ठीक प्रतीत होता है। सबसे अधिक आघातका अनुभव बा करती है, लेकिन उसने तो आघात झेलनेके लिए ही जन्म लिया है। मेरे साथ सम्बन्ध बनाने या रखनेवालेको

बड़ी कीमत देनी होती है। कहा जा सकता है कि बा को सबसे ज्यादा मूल्य चुकाना पड़ा है। पर मुझे बहुत सन्तोष है कि इससे बा ने कुछ खोया नहीं है।[1]

वरदाचारीके बारेमें तार मिलते ही मैंने भी तार भेज दिया था।[2] मैंने पत्र भी लिखे। मुझे अपने तारकी प्राप्ति-सूचना भी राजगोपालाचारीके जरिये तारसे ही मिल गई। कल लक्ष्मीका इसी आशयका एक पत्र भी मुझे मिला। इसमें मेरे तद्विषयक पत्र[3] की पहुँचकी कोई सूचना नहीं है। लेकिन लगभग उस दौरान मेरी डाक गलत दिशामें चली गई थी।

हममें से किसीको भी कल्पना नहीं थी कि तुम सितम्बरमें रिहा कर दिये जाओगे। हालाँकि गवर्नरने तुम्हारे स्वास्थ्यका ब्योरेवार हाल मुझे भेजा है, लेकिन ऐसा नहीं लगता कि तुम्हारा वहाँसे तबादला किया जायेगा। मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारे स्वास्थ्यको अब कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा। हनुमान प्रसादकी उपस्थिति मेरे लिए बहुत शान्तिदायक साबित हुई। हामिद अलीके पत्रसे मुझे पता चला कि उन्होंने 'रामचर्चा' भी भेजी थी। मैं उसे पढ़ रहा हूँ। मैंने शहीद बालक, खेती-बाड़ी तथा कीमियागर आदिके बारेमें कहानियाँ पढ़ीं। यह सच है कि कुछ शब्द मैं नहीं समझ सका, अन्यथा कोई कठिनाई नहीं हुई। मुझे अभीतक आरोग्यपर पुस्तक[4] नहीं मिली है। यह अच्छा होगा कि दिल्लीसे 'अल-फारूक' न मँगायी जाये। हमारे आश्रममें उसकी एक प्रति थी। मैंने उसे मँगाया है। 'रामचर्चा' खत्म करनेके बाद मैं उसे पढ़ूँगा। मुझे वह पसन्द है। मुझे अब याद आता है कि इसे पहले भी पढ़ चुका हूँ। इसमें मैंने जो अर्थ लिख लिये थे वे मौजूद हैं। इस किताबको यदि दो-तीन बार पढ़ लिया जाये तो गलत नहीं होगा। तुम हामिद अली और अन्य लोगोंको अंग्रेजीमें ही लिखते होगे। तुम्हें उर्दूमें लिखनेकी आदत डालनी चाहिए। मेरा विचार उसे उर्दूमें एक छोटा पत्र लिखनेका है। उसकी लिखावट तो बिल्कुल कातिबों जैसी है। वह जरूर कातिब होगा। हम लोग लेखन-कलाको भूल गये हैं। उर्दूमें यह अब भी कायम है।

मेरे दूध लेनेका कारण यहाँके सुपरिंटेंडेंट [का आग्रह] हैं। वह परेशान थे और मेरा स्वास्थ्य कुछ ढीला पड़ गया था, इसलिए मैं दूध ले रहा हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। सम्भव था कि स्वास्थ्य शीघ्र ही फिरसे सामान्य हो जाता। लेकिन मैंने यहाँ प्रयोग जारी रखना ठीक नहीं समझा। मैं फिलहाल दूध पीनेसे कोई लाभ नहीं देखता। वजन जो कम हो गया था, अब बढ़ कर १०५½ पौंड हो गया है। वह घट कर १०३ पौंड हो गया था। दूध लेनेका मुझे हाथ पर कोई असर नहीं दिखाई पड़ता। जब दूध लेता था, दर्द तो उस समय भी था। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस पीड़ासे मुझे कोई परेशानी है, क्योंकि

१. इस अनुच्छेदको **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१के गुजराती अंशसे मिला लिया गया है।

२. देखिए "तार: च० राजगोपालाचारीको", ५-७-१९३२।

३. देखिए "पत्र: लक्ष्मीको", ७-७-१९३२।

४. **गाइड टु हैल्थ**; देखिए "पत्र: हामिद अली खाँको", १७-७-१९३२।

दर्द तभी होता है जब कुहनीको एक खास ढंगसे हिलाया-डुलाया जाये। जब वैसी हिल-डुल नहीं होती तो कोई दर्द नहीं होता। [कुहनीको] इस प्रकार हिलाना-डुलाना लगभग बन्द है। चिन्ताकी कतई कोई बात नहीं है।

वल्लभभाईने गाण्डीव चरखेपर कताई और संस्कृतका अध्ययन शुरू कर दिया है। जब उन्होंने सुना कि राजाजी संस्कृत पढ़ रहे हैं तो वह भी बहुत उत्साहित हो उठे। वह पूरे मनसे उसका अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने सातवलेकरकी कुंजीके २४ भाग मँगाये थे। इसमें से पहला भाग वह (छः दिनमें) समाप्त कर चुके हैं। अब वह दूसरा भाग पढ़ रहे हैं। उनका अध्ययन बहुत तेजीसे चल रहा है। सातवलेकरकी पुस्तकें कुल मिला कर अच्छी हैं। इन्हें याद करना आसान है। शायद तुमने भी इन्हें देखा और पढ़ा हो। उर्दू, खगोल-विज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्रका मेरा भी अध्ययन चल रहा है। बीच-बीचमें मैं कुछ धर्म-पुस्तकें भी पढ़ता हूँ। उदाहरणके लिए, मैंने अभय शर्मा[1] रचित 'वैदिक विनय' पुस्तक पढ़ी। अब मैं 'स्वाध्याय संहिता'[2] नामक ग्रन्थ पढ़ रहा हूँ। इसमें वेदोंसे तथा अन्य पुस्तकोंसे चुने हुए अंश दिये गये हैं और नीचे हिन्दीमें उनके अनुवाद दिये हुए हैं। महादेव फ्रेंच सीख रहा है और कुछ और भी पढ़ रहा है। अगर मुझे कुछ लिखानेको होता है तो मेरे लिए वह लिखता भी है। एक घंटा वह वल्लभभाईके साथ देता है। वह मेरे लिए रोटी भी पकाता है। मैं बेकरीकी रोटीकी जगह [घरकी बनी] रोटी लेता हूँ। बेकरीकी रोटीमें चोकर नहीं होता, जबकि घरकी बनी रोटीमें होता है। यही कारण है कि मैं फिरसे रोटी लेने लगा हूँ। मैं अपने ही हाथसे चिट्ठियाँ लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं ज्यादातर मौन रखते समय ही चिट्ठियाँ लिखता हूँ। मैं उनमें से अधिकांश किसी और से भी लिखवाता हूँ। मैं जो-कुछ भी लिखता हूँ, उसे मुझे दाहिने हाथसे लिखनेमें कोई दिक्कत नहीं होती। मुझे बायें हाथसे लिखनेकी इजाजत नहीं है, इसीलिए मैं दाहिने हाथसे लिखता हूँ। मैं फुरसतके वक्तमें आश्रमका इतिहास लिख रहा हूँ।[3] मैं उसे जल्दी ही खत्म कर लेनेकी आशा करता हूँ। मैं मगन-चरखे पर कताई करता हूँ।

जालभाई नौरोजी अब चल-फिर सकते हैं। वह बिल्कुल मौतके मुँहसे बचे हैं।

मैंने राजाजीका पत्र तुम्हें वापस कर दिया है। मुझे तुम्हारे २ जूनके पत्रके बारेमें चिन्ता है। यहाँ उसे फिर ढुँढवाऊँगा। मेरे साथियोंकी तरफसे जो आशीर्वाद चाहो उनके सहित।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३३१। **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड – १ से भी।

१. अभयदेव शर्मा, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी।
२. वैदिक मुनि हरिप्रसादजी द्वारा रचित।
३. देखिए "सत्याग्रह आश्रमका इतिहास", ११-७-१९३२।

२२२. पत्र : मदालसा बजाजको

१७ जुलाई, १९३२

चि० मदालसा[1],

अभिमान खराब अर्थमें प्रयुक्त होता है, स्वाभिमान अच्छे अर्थमें। तुम बड़े आदमीकी लड़की हो यह समझकर फूल जाओ तो तुम अभिमानी कहलाओगी। परन्तु कोई तुम्हारा अपमान करे और उससे तुम डरो नहीं, तो यही माना जायेगा कि तुमने अपने स्वाभिमान या स्वमानकी रक्षा की। ओम[2] पत्र क्यों नहीं लिखती?

कमला[3] तो लिखेगी ही क्यों?

बाबू[4] अब तो बहुत बड़ा हो गया होगा। क्या वह अभी भी बहुत मिठाई पसन्द करता है?

पत्र लिखनेमें आलस्य न करना। बालकृष्णसे[5] लिखनेको कहना।

बापू

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

२२३. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय रामेश्वरदास,

'प्रिय' विशेषण मैं भूलसे लिख गया होऊँगा। मैं किसीको अपना 'प्रिय' नहीं बना सकता। जो मेरा 'प्रिय' होना चाहता है उसे गले में जंजीर पहननी चाहिए। वह दुर्बलताका बहाना करके बच नहीं सकता। तुम पक्के बनिया मालूम होते हो। तुम जहाँ कहीं (सम्भव होता है), कमजोरीका बहाना करके बच निकलते हो। ऐसा आदमी मेरा 'प्रिय' कैसे बन सकता है? यदि एकादशीका व्रत नाममात्रके लिए है, तो तुम्हें ईश्वर और समाजसे विनम्रतापूर्वक कह देना चाहिए कि उपवास करनेकी ताकत तुममें नहीं है। लेकिन तुम्हें इससे बचनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। जो-कुछ व्रत लिये गये हों उनपर दृढ़ रहना चाहिए और उनका पालन करना चाहिए। इससे जबर्दस्त शक्ति पैदा होगी।

१. जमनालाल बजाजकी लड़की।
२ और ३. मदालसा बजाजकी बहनें।
४. मदालसाके छोटे भाई रामकृष्ण।
५. बालकोबा, विनोबा भावेके छोटे भाई।

अब विनोली[1] प्रसन्न होगा। रामके बारेमें जैसा वह कहे, वैसा प्रबन्ध कर देना। किसी पिताको अपनी कमजोरी अपनी सन्ततिको नहीं प्रदान करनी चाहिए। जहाँतक बन सके उसे उनके हितोंकी रक्षा करनी चाहिए। दशरथने मरना पसन्द किया और रामको वनमें जाने दिया। यह याद रखते हुए शक्ति प्राप्त करो।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३१३।

२२४. पत्र : लक्ष्मीको

१७ जुलाई, १९३२

बेटी लक्ष्मी,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। देवदासने वरदाचारीके विषयमें मुझे तार भेजा था, जिसपर से मैंने तुम्हें एक चिट्ठी[2] लिखी थी। वह तुम्हें अबतक मिल गई होगी। उसके साथ ही एक पत्र अन्नाको और एक पापाको भी भेजा था। इससे आगे मैं क्या सान्त्वना दे सकता हूँ? हम मृत्युका भय छोड़ दें और उसे अपना सबसे बड़ा मित्र मानने लगें, तो हमारे सभी दुःख मिट जाते हैं। आत्मा अविनाशी है, अतः हम दुःख क्यों करें? इस विचारको मनमें दृढ़ करना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि नरसिंहन[3] तुम्हारे पास दौड़ा गया है। अगर गया हो तो अन्नासे कहना कि उसे वापस चला जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती लक्ष्मी
गांधी आश्रम
तिरुचेङ्गोडु

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३३९।

१. अनुमानतः विनोबा, देखिए "पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको", २१-६-१९३२।
२. देखिए "पत्र : लक्ष्मीको", ७-७-१९३२।
३. लक्ष्मीका भाई।

२२५. पत्र : खोड़ीदास एच० शाहको

१७ जुलाई, १९३२

भाई खोड़ीदास,

अगर तुमने व्रत लिया है, तो उसका पालन करना तुम्हारा धर्म है।

मोहनदास

श्री खोड़ीदास एच० शाह
रोजिद
काठियावाड़

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३०१।

२२६. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

१७ जुलाई, १९३२

बालक और बालिकाओ,

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीकी छुट्टी, विशेष छुट्टी क्यों मानी जाती है? अबतक ऐसा माना जाता रहा है कि एकादशीकी छुट्टी उपवासके लिए होती है। लेकिन दिखता है कि प्रेमाबहनने कुछ खोज की है। उनको समझाओ। इस छुट्टीको एक नये ढंगसे मनानेपर मेरी आपत्ति नहीं है। मैं चाहता हूँ कि तुम उसका महत्त्व समझो। विद्यार्थीको चाहिए कि वह जो-कुछ करता है उसका महत्त्व समझनेका प्रयत्न करे।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ३०९।

२२७. पत्र : मणिको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय मणि[1],

मैं समझता था कि तू कभी बीमार नहीं पड़ेगी। तब फिर यह कैसे हुआ कि तू फिरसे बीमार पड़ गई? तू अब पत्र नहीं लिखती। क्या तुझे आश्रममें रहना अच्छा लगता है? तू माँ के पाससे क्यों चली आई? मुझे हर बात विस्तारसे लिख। तेरी इच्छा क्या है, सो भी दिल खोल कर लिख।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३११।

२२८. पत्र : आनन्दीको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय आनन्दी,

ऐसा लगता है कि तुम्हें फिरसे बुखार हो गया है। तुम उसका कारण क्यों नहीं पता चलाते? अब तुम डा० कानूगाकी गोलियाँ ले रहे हो। मुझे बताओ कि उनका क्या असर है। मेरा पत्र मिले या न मिले, तुम मुझे बराबर लिखा करो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३११।

१. लक्ष्मीदास आसरकी सबसे छोटी पुत्री।

२२९. पत्र : शारदा सी० शाहको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय शारदा,

मैं नहीं समझता कि राम और भरत जब जीवित थे उस समय लोग उनकी आराधना करते थे। अनुभव बताता है कि व्यक्तिके मर जानेके बाद ही उसकी पूजा की जाती है। यह एक अलग बात है कि जीवितावस्थामें उनको सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है। इसे हम आराधना नहीं कह सकते। जीवित आदमीको पूर्ण नहीं समझा जा सकता और पूजा और आराधना पूर्ण व्यक्तिकी ही करना उचित है। जिस व्यक्तिमें दोष हों, या जिससे गलती होनेकी सम्भावना हो उस व्यक्तिकी आराधना करनेसे नुकसान होगा, क्योंकि हम जिस व्यक्तिकी आराधना करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। मुझमें कोई शक्ति नहीं है और न चमत्कार दिखानेकी ही मेरी वैसी कोई इच्छा है, जैसे ईसा मसीहने दिखाये थे। उनमें और मुझमें कोई तुलना हो ही कैसे सकती है। वह बहुत बड़े महात्मा थे। भाईको लिखे तो उससे मुझे लिखनेको कहना।

अपना वजन जरूर बढ़ाओ।

क्यों तुझे पुरुष और स्त्रीकी शरीर-रचनामें भेद नहीं दिखाई पड़ता? जो भेद तू देखती है, उन्हें केवल आँखोंसे ही देखा जा सकता है। मर्दके मूँछ होती है, जबकि स्त्रीके नहीं होती। स्त्री बच्चे जनती है, लेकिन पुरुष नहीं। स्त्री बच्चेको स्तनपान कराती है, लेकिन पुरुष नहीं कराता। क्या ये सब भेद बड़े भेद नहीं हैं, जिन्हें सभी लोग देख सकते हैं? और इसीलिए उनके काम और उनकी शिक्षामें भेद होना चाहिए।

बापू

[गुजरातीसे]

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९५४) से; सौजन्य : शारदाबहन जी० चोखावाला

२३०. पत्र : छोटूभाईको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय छोटूभाई[1],

तुम्हारा पत्र मिला। यदि इस समय तुम अपने पिताकी देखभालके लिए आश्रममें बने रहो तो उनके आश्रममें बने रहनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी; अन्यथा मेरा विचार है कि आश्रम उनकी देखभाल नहीं कर सकेगा, और ऐसे वक्तमें आश्रमके ऊपर यह बोझ नहीं पड़ने देना चाहिए। उनके कब्जका जो विवरण तुमने भेजा है उसपर विचार करनेके बाद मैं एक ही उपाय सोच पाता हूँ, और वह यह कि जबतक वह १०-१५ दिनका लगातार उपवास नहीं करते, उनका पेट साफ नहीं होगा। लेकिन यह तो वे और तुम ही कह सकते हो कि ऐसा करनेकी ताकत उनमें है या नहीं। ताकतसे मतलब उनकी शरीरकी ताकत नहीं, उनके मनोबलसे है। वे उपवास रखें तो भी साथ-साथ उन्हें कुछ उपचार भी करना होगा, अर्थात् खूब पानी पीना और प्रतिदिन एनिमा लेना।

ऐसा नहीं लगता कि तुम्हारे पिताको लिखना आता है, क्योंकि सारा पत्र तुम्हारा ही लिखा हुआ है। अतः मैं उन्हें अलगसे नहीं लिख रहा हूँ।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(३) भाग २, पृष्ठ ३१५-७।

२३१. पत्र : हामिद अली खाँको

१७ जुलाई, १९३२

भाई हामिद अली[2],

देवदासने तुम्हारा पत्र मुझे पढ़नेको भेजा है। मुझे जो किताबें भेजी गई हैं उनके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूँ। मैं अभी भी 'रामचर्चा' पढ़ रहा हूँ। मैंने अन्य पुस्तकें समाप्त कर ली हैं। तीनों ही किताबें मुझे बहुत भाईं। उन्हें समझनेमें बहुत कठिनाई नहीं हुई। कृपया 'अल-फारूक' [इस्लामके द्वितीय खलीफा, फारूक, की जीवनी] न भेजना, क्योंकि वह मेरे पास यहाँ है। लेकिन मेरे लिए जो तुम्हें ठीक

१. साधन-सूत्रमें "छोनभाई" लिखा है; देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १६-७-१९३२
२. जामिया मिलियावाले।

लगें, ऐसी कुछ और किताबें अवश्य भेजो। जामियाके सभी भाइयोंसे मेरा वन्देमातरम् कहना।

तुम्हारा,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

मुझे अभी तक 'गाइड टु हेल्थ' ('आरोग्यकी कुंजी')[1] पुस्तक नहीं मिली है। मैंने देवदासको उसके बारेमें लिखा है। प्रेस जलनेकी खबर सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३३७।

२३२. पत्र : इन्दु एन० पारेखको

१७ जुलाई, १९३२

प्रिय इन्दु,

यदि तुम भली-चँगी हो, तो प्रार्थनामें अवश्य शामिल होना। यहाँ बैठकर मैं तुम्हारी माँगके बारेमें कुछ नहीं जान सकता। नारणदास जैसा करनेको कहे वैसा करो। तुम्हारा जीवन नियमित हुआ या नहीं? क्या तुम अपना ध्यान पढ़ाईमें एकाग्र कर सकती हो? क्या तुम्हारे मस्तिष्ककी उलझन कम हुई है? क्या दिमाग अपनी जिम्मेदारी समझने लगा है? इन सब बातोंका विचार करो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३०९।

१. देखिए खण्ड ११ और १२में "आरोग्यके सम्बधमें सामान्य ज्ञान" शीर्षकसे प्रकाशित लेखमाला।

२३३. पत्र : एस्थर मेननको

१८ जुलाई, १९३२

प्रिय बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि अपेक्षित समय पर मेरा पत्र न मिले तो परेशान मत होना। मेरी डाक थोड़ी गड़बड़ चल रही है। मैं आशा कर रहा हूँ कि इसमें शीघ्र ही सुधार हो जायेगा। फिर भी, किसी कैदीको उसकी स्वस्थ आवश्यकताओंकी सहज सन्तुष्टिके लिए जो भी सुविधाएँ प्रदान की जायें, उसे उन्हींसे सन्तोष कर लेना पड़ता है।

तुम जब अपाहिज बहनसे मिलो तो उससे यह जरूर कहना कि मुझे अकसर उसकी याद आती है। तुम्हारे पड़ोसमें विकलांग बच्चोंके लिए जो छोटा-सा स्कूल[1] है वहाँ पता नहीं तुम कभी जाती हो या नहीं। मेरा खयाल है कि इस संस्थामें कुछ लगनशील कार्यकर्ता हैं। अगर तुम्हारे पास समय हो तो मैं चाहूँगा कि तुम इस संस्था और उसके प्रबन्धकोंके बारेमें और जानकारी प्राप्त करो, और उसकी प्रगतिके बारेमें मुझे लिखो।

तुमने लिखा है कि किसी स्त्रीके न होनेके कारण बजाजका घर बहुत सूना-सूना लगता था। मैंने हमेशा ऐसा माना है कि यह स्त्री और पुरुषोंके बीच कामके बँटवारेसे सम्बन्धित हमारी गलत धारणाका परिणाम है। कामका विभाजन अवश्य होना चाहिए। लेकिन घरको ठीक-ठीक हालतमें रखनेका मौका आनेपर पुरुषका लाचारी अनुभव करना और अपनी देखभाल खुद करनेका मौका आनेपर स्त्रीका लाचारी अनुभव करना (जो पश्चिमकी अपेक्षा यहाँ अधिक है) गलत ढंगके लालन-पालनका परिणाम है। यदि कोई स्त्री देखभाल करनेके लिए न हो तो पुरुषको इतना काहिल क्यों होना चाहिए कि वह अपना घर साफ-सुथरा न रख सके, और स्त्रीको ऐसा क्यों लगना चाहिए कि उसे हमेशा एक पुरुषके संरक्षणकी आवश्यकता है? मुझे लगता है कि इस असंगतिका कारण ऐसा मानने और सोचनेकी हमारी आदत है कि स्त्री मूलतः घरकी सार-सँभाल करनेके लिए ही उपयुक्त है और उसे ऐसा आरामका जीवन बिताना चाहिए कि वह निर्बलताका अनुभव करे और उसे हमेशा संरक्षणकी आवश्यकता बनी रहे। हम आश्रममें एक भिन्न वातावरण पैदा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। यह कठिन काम है। लेकिन यह काम करने योग्य प्रतीत होता है।

१. १९३१ में गोलमेज सम्मेलनके लिए इंग्लैंड जानेके अवसर पर गांधीजी इस स्कूलमें गये थे।

श्रीमती विंस्टनको पत्र लिखो तो उन्हें मेरा और महादेवका स्मरण दिला देना।
बच्चोंको बहुत-बहुत चुम्बन।
सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (नं० ११२) से; सौजन्य: भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार। **माई डियर चाइल्ड**से भी।

२३४. पत्र: प्रिंसेस एफी एरिस्टार्शीको

१८ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

आपने जो सुन्दर उपहार भेजे हैं उनके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ। मुझे 'द वे ऑफ द क्रॉस' नामक सुन्दर पुस्तक, जिसपर आपने चिह्न लगा दिये हैं, और क्रूसारोपण सम्बन्धी कार्ड मिले, जिनके पीछे आपने समुचित विवरण और विचारपूर्ण उद्धरण लिख दिये हैं।

मुझे आशा है कि आपकी सभी परेशानियाँ खत्म हो गई होंगी, और अगर न हुई हों तो [मैं जानता हूँ कि] ईश्वरने आपको इतनी बुद्धि तो दी ही है कि आपके ही एक उद्धरणकी भाषामें कहूँ तो, आप उन्हें "प्रच्छन्न वरदान" रूप मानेंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

प्रिंसेस एरिस्टार्शी
होटल स्कोट्जकी
फ्राईबर्ग, आई० बी०, जर्मनी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २५३।

२३५. पत्र : गणेशदत्तको

१८ जुलाई, १९३२

प्रिय गणेशदत्तजी,

मुझे आपकी पुस्तक मिली। कैदियोंको भूमिका लिखनेकी इजाजत नहीं है।

आपका,
मोहनदास गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २५१।

२३६. पत्र : नरहरि देवशर्माको[1]

१८ जुलाई, १९३२

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। जैसा कि आप जानते हैं, मैं राजनीतिक विषयोंपर चर्चा करनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ। लेकिन मैं आपके इस कथनका हार्दिक अनुमोदन कर सकता हूँ कि सभी नेताओंको अपने कार्योंका स्वाभाविक परिणाम भोगना चाहिए।

आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत नरहरि देवशर्मा
बैरकपुर टैंक रोड
बैरकपुर

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २५३। **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१ से भी।

१. देवशर्माने अपने पत्रमें लिखा था कि जनताकी तकलीफोंके लिए नेता लोग जिम्मेदार हैं।

२३७. पत्र : नटवरलालको

१९ जुलाई, १९३२

प्रिय नटवरलाल,

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। यह बड़ी अच्छी बात है कि तुम तकली चलाते हो। तकली चलानेका मतलब सूत निकालना ही नहीं, बल्कि प्रति घंटे १२ अंकका १६० गज एकसार सूत निकालना है ताकि बुनाईमें कोई कठिनाई न हो। जेलमें पड़े आदमीके पत्रोंका भी कोई भरोसा नहीं करना चाहिए। तुम्हारा पत्र मुझे आज, यानी तुम्हारे लिखनेके चौदह दिन बाद मिला है। देखना है कि यह पत्र कब पहुँचता है। ऐसी हालतमें मेरे लौटती डाकसे जवाब देनेका कोई मतलब नहीं है। लेकिन तुम्हारी प्रतिज्ञा ऐसी है कि मेरा पत्र न मिलनेपर तुमने उसका पालन अवश्य किया होगा। इससे तुम्हें निश्चय ही लाभ होगा। और यदि तुम चाय और चीनीके बिना इतने दिन काम चला सकते हो तो तुम उनको हमेशाके लिए क्यों नहीं छोड़ सकते? इस दुनियामें करोड़ों लोगोंके जीवनसे हम यह बात जानते हैं कि ये चीजें अनावश्यक हैं, क्योंकि उनको चाय या चीनीका पता ही नहीं है। रही जेलकी बात। जेलमें रहनेवालेके जीवनके बारेमें विस्तारसे नहीं लिखा जा सकता। लेकिन जिनका मन निर्दोष है, ऐसे कैदियोंके लिए यह जीवन शान्तिपूर्ण और ऊँचा उठानेवाला है।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ २८९।

२३८. पत्र : श्री० दा० सातवलेकरको

१९ जुलाई, १९३२

भाइ सातवलेकरजी,

आपका पत्र आज ही मिला। संस्कृत पाठमाला पहले ही मिल गई थी। पत्रकी राह देख रहा था। पाठमालाके लिये अनुग्रह मानुं? आपके तरफसे मुझको कितनी पुस्तक मिल चुकी है। "पुरुषार्थ" इत्यादि भी आते ही हैं। आप जानकर खुश होंगे कि सरदारजीने दो भाग पूरे कर लिये हैं। तीसरा चल रहा है। जितने दोष देखनेमें आते हैं उसकी नोंध हो रही है। सूचना देनेका निश्चय पत्र आनेके पहले ही हो चुका था। यों तो पाठमालाकी सारी रचना बहुत अच्छी ही है, उसमें कोई संदेह

नहीं है। पाठमालाकी उपयोगिता बढ़ानेके लिये ही जो कुछ दोष हम लोगोंको प्रतीत होते हैं बताये जायेंगे।

मेरे हाथमें कुछ इतना बहुत दर्द नहीं है। एक प्रकारकी गति देनेसे ही बांय हाथकी कोहोनीमें दर्द होता है। यहांके मुखीने ही मुझको लाक्षादि तेल दिया था। उनसे मालीश भी किया लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। बात यह है कि जब वायु दोषसे दर्द होता है तब तो इस तेलका असर होता है। कोहोनीकी हड्डीमें जो दर्द है उसका कारण वायु नहीं है। अब तक तो डाक्तर लोग बता रहे हैं कि उसका कारण उस भागको चर्खेके मार्फत निरंतर काममें लाया गया वही है। इस कारण मैंने चर्खे चलानेमें बांय हाथका उपयोग करीब एक महिनेसे छोड़ दिया है। उससे भी कुछ लाभ हुआ है ऐसा नहीं कहा जाय। इस कारण अब ज्यादह चिकित्सा होनेवाली है। कोइ चिंताका कारण नहीं है। स्वास्थ्य ऐसे अच्छा ही रहता है।

विश्वरूप दर्शन योगके बारेमें जो आपने लिखा है[1] वह सब यथार्थ है। तदपि मैंने जो उस अध्यायकी भूमिकामें लिखा है[2] उसमें कोई फरक नहीं होता है। सारा जगत्को जो मनुष्य वासुदेव रूप मानेगा वह विश्वरूपका दर्शन अवश्य करेगा। परंतु अपनी कल्पनारूप ही मूर्ति होगा। ख्रिस्ती जगत्को इश्वररूप मानता हुआ अपनी कल्पनाके अनुकूल मूर्ति देखेगा। जो जैसे भजता है वैसे इश्वरको देखता है। हिंदु सभ्यतामें जो पैदा हुआ है और उसीकी शिक्षा जिसने पाई है वह ग्यारहवा अध्याय पढ़ते हुए थकेगा नहीं और उसमें अगर भक्तिकी मात्रा होगी तो उसमें जैसा वर्णन है वैसा ही विराट रूपका दर्शन करेगा। परंतु ऐसी कोइ मूर्ति जगतमें उसकी कल्पनाके बाहर नहीं है। ब्रह्म, आत्मा, वासुदेव जो कुछ भी विशेषण उस शक्तिके लिये हम इस्तेमाल करें निराकार ही है। भक्तके लिये वह आकाररूप बनती है। यह उस शक्तिकी माया है। यही काव्य है। हम उसका निचोड़ एक ही खींच सकते हैं जो आपने खींचा है। डाकूमें भी हमको वासुदेवका रूप देखना होगा। और हमारेमें यह शक्ति आ जायगी तो डाकू डाकूपन छोड़ देगा। और जबतक हमारेमें यह शक्ति नहीं आई तबतक हमारा सब अभ्यास और सब ज्ञान निरर्थक ही है। आपने विश्वरूप दर्शनपर जो लिखा है उसके बारेमें उत्तर नहीं मांगा है। मैंने दिया है क्योंकि मैं भी वैसे विचारोंमें ग्रस्त रहता हूं। और आपके साथ पत्र द्वारा ऐसे वार्तालाप करनेसे मुझको आनंद होता है।

अभयजीका "वैदिक विनय" मैंने पढ़ लिया। अब वैदिक मुनि हरिप्रसादजी कृत "स्वाध्याय संहिता" पढ़ रहा हूं। लेकिन वैदिक मंत्र पढ़नेमें मुझको बड़ी मुसीबत है। मेरा संस्कृत ज्ञान तो आप जानते ही हैं। कनिष्ठ श्रेणीका है। वेदकी भाषाका तो नहींसा परिचय है। मैं इतना जानता हूं कि वैदिक मंत्रोंके विद्वान् लोग बहुत

१. सातवलेकरने लिखा था कि **गीता**के ११ वें अध्यायमें न केवल काव्य ही है जैसाकि गांधीजीने लिखा है, बल्कि यह महत्त्वपूर्ण सत्य भी है कि ईश्वर समस्त प्राणियोंमें, जो कि उसके शरीरके विभिन्न अंग मात्र हैं, अन्तर्व्याप्त है।

२. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ १४१-४५।

अर्थ कर लेते हैं — सनातनी एक, आर्यसमाजी दूसरा। पश्चिमके लोग तीसरा। सनातनीओंमें भी, भिन्नता पाता हूं। सब आर्यसमाजी भी एक अर्थ नहीं करते हैं। आपके बीचमें और वैद्यजीके बीचमें जो संवाद मैंने करवाया था उसका तो स्मरण होगा ही।[1] यह सब दृष्टिमें रखता हुआ मैं जब वैदिक मंत्र पढ़नेकी कोशिश करता हूं तो घबराहटमें पड़ जाता हूं। अपना निश्चय करनेकी कुछ योग्यता नहीं पाता हूं। ईशोपनिषद् आजकल कंठ कर रहा हूं। मुझे ख्याल है कि शंकरने उसका एक अर्थ किया है, अरविंद बाबुने और किया है, आपका भी कुछ लिखा हुआ गत साल जब जेलमें था तब देखा था। उसमें कुछ और चीज है। अब मेरे पास एक गुजराती अनुवाद आ गया है उसमें और हरिप्रसादजीके अनुवादम भी और कुछ है। मैंने अपने लिये कुछ इस उपनिषद्का अर्थ बना लिया है लेकिन संस्कृत भाषाका अल्प ज्ञान होनेके कारण इस तरहसे अर्थ बना लेना दुष्टता-सा लगता है। क्या कोई ऐसी पुस्तक है कि जिससे वैदिक व्याकरणका कुछ ज्ञान हो सके और जितने अर्थ भिन्न भिन्न विद्वानोंने आजतक किये हैं उसका संग्रह मिल सके? तात्पर्य मेरे जैसा मनुष्य वैदिक मंत्रोंका अर्थका निश्चय करनेके लिये क्या करे? किसी संप्रदायवालों पर मेरी ऐसी श्रद्धा नहीं है जिससे उनके अर्थको ही मैं वेदवाक्य मान लूं। सद्भाग्य या दुर्भाग्य-वशात् संस्कृतका इतना ज्ञान भी रखता हूं जिससे मेरे सामने जब दो चार अर्थ आ जाते हैं तब मैं अपनी पसंदगी कर लूं। लेकिन इस जेलमें मैं इतनी बड़ी लाइब्रेरी बनाना नहीं चाहता। न इतना गहरा अभ्यासमें भी पड़ना चाहता हूं। आत्मसंतोषके लिये गीताजी काफी है। परंतु वेदोंमें चंचुपात करना मुझको प्रिय है। इसलिये कुछ सूचना आप दे सकते हैं तो देनेकी कृपा करें। हम सब अच्छे हैं।

आपका,
मोहनदास

मूलकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७६३) से; सौजन्य : श्री० दा० सातवलेकर

1. देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ ५८-९।

२३९. पत्र : नारणदास गांधीको

२० जुलाई, १९३२

चि० नारणदास,

१८ तारीखको डाला हुआ तुम्हारा पत्र २० तारीखको मिला। लेकिन मेरे पत्रोंका तो जो हो जाये सो ठीक। मैंने ४ तारीखको जो डाक दी थी वह १६ तारीखकी डाकमें रवाना हुई, ऐसा मुझे अधिकारियोंने बताया है। मेरे सब पत्र जाँचके लिए सरकारी दफ्तरमें जाते हैं और वहाँसे पास होनेपर यहाँ वापस आते हैं, तब जाकर उन्हें डाकमें डाला जाता है। इसका क्या कारण है, यह मैं अभी तक नहीं समझ सका हूँ। मैं इसकी छानबीन तो कर रहा हूँ, फिर चाहे जो हो। हमें तो नियम-पूर्वक एक दूसरेको पत्र लिखते रहना चाहिए। मिलने होंगे तब मिल जायेंगे। हमें इसपर तनिक भी विचार नहीं करना है। किसी दिन अगर डाक बन्द होनी होगी तो हो जायेगी और तब भी हम निश्चिन्त रहेंगे, हमें अपनी मनःस्थिति ऐसी बना लेनी चाहिए।

प्रभुदाससे कहना कि वह पत्र लिखे। दो दिन हुए डाक्टरने बायें हाथसे गांडीव चरखा चलानेकी अनुमति दी है, इससे अब गांडीव चरखा चलाता हूँ। मगन चरखेके बाद मुझे गांडीवकी ज्यादा कद्र महसूस हुई है। मेरा सूत तुरन्त महीन हो गया और टूटा भी बहुत कम। तार दायें हाथसे ही खींचता हूँ। चरखेमें थोड़ी खामियाँ हैं उन्हें दूर करूँगा, जिससे वह और भी ज्यादा अच्छी तरह चलने लगेगा। मगन चरखेके साथ गांडीव चरखेकी तुलना करनेपर देखता हूँ कि मगन चरखेपर गति तेज नहीं हो सकती। अर्थात् एक ही तकुआ चलानेके लिए गांडीव चरखा अथवा सामान्य चरखा अधिक उचित जान पड़ता है। जिसका एक हाथ धागा खींचनेमें अथवा चक्र चलानेमें भी असमर्थ हो जाये उसके लिए तो मगन चरखा अमूल्य खोज है। लेकिन जिस व्यक्तिके दोनों हाथ ठीक हैं, यह तो स्पष्ट ही है कि वह अधिक सूत कात सकता है। मगन चरखे पर महीनसे-महीन सूत नहीं काता जा सकता। उसमें कुछ फेरबदल करनेपर कदाचित् ऐसा हो सकता है। एक ही तकुआ चलानेके लिए, उसमें कुछ फेर-बदल करके उसे बनाया जाये तो सम्भव है कि रफ्तारमें भी वृद्धि हो। लेकिन वह सब तो प्रयोगकी बातें हुईं। अभी तो मैंने अपना जो अनुभव बताया वह यही है। पैरोंपर तो मेरा ठीक काबू है, ऐसा कहा जा सकता है।

मेरे हाथमें कुछ सुधार हो गया है इसलिए मुझे गांडीव चरखा चलानेकी अनुमति मिल गई है सो बात नहीं है, अपितु हाथको चरखेसे बिल्कुल आराम देनेके बावजूद कोई फायदा नहीं हुआ इसीलिए डाक्टरोंने चरखा चलानेकी अनुमति दी है। यह अनुमान किया जाता है कि हाथका यह कष्ट कदाचित् चरखा चलानेके कारण न हो। थोड़े दिनोंमें निश्चित रूपसे मालूम हो जायेगा।

डाक्टर तलवलकर गाड़ी-भाड़ेके दो रुपये लेते हैं और दवाका बिल लगाते हैं, यह बात मुझे अच्छी लगती है। यदि हम वर्षमें एकाध बार ही उन्हें कष्ट देते हों तो कदाचित् कुछ न लेनेकी बात उन्हें पुसा सकती है। लेकिन समय-समय पर वे दवा देते रहें और कुछ भी न लें, यह बात उन्हें नहीं पुसा सकती। उनके पास इतना धन भी नहीं है। गाड़ीका भाड़ा तो हम बहुत दिनोंसे देते आ रहे हैं, ऐसा मेरा खयाल है। डाक्टर तलवलकरके बिलका एक परिणाम यह होना चाहिए कि आजतक हम कदाचित् गफलतमें आवश्यकता न होनेपर भी उन्हें बुलाते रहे हैं तो अब यह गफलत दूर हो जायेगी। हालाँकि यदि हम शुद्ध धर्मका पालन करते हों, तो यदि कोई हमारी सेवा मुफ्त करता है तो हमें उसे लेनेमें अधिकसे-अधिक संकोच होना चाहिए। लेकिन हजारों उदाहरणोंमें ऐसा नहीं ही होता। पानी मुफ्त मिलता है, इसलिए हम चाहे जितना पानी खर्च करते हैं। ऐसा करते हुए हमें लज्जा नहीं आती और मुफ्त मिलता है इसलिए हम क्यों न मुक्त भावसे उसका उपयोग करें, ऐसा हम निःसंकोच कहते हैं। और जिस तरह मुफ्त पानीके प्रति हम बेखबर रहते हैं, उसी तरह अन्य सभी सेवाएँ अथवा जो वस्तुएँ हमें मुफ्त ही उपलब्ध हो जाती हैं उनके विषयमें भी हमें वैसा ही लगता है। इन सबसे अस्तेयव्रत भंग होता है — अहिंसाका भंग तो है ही।

बा का पत्र मुझे मिला नहीं। मैंने बहुत दिन पहले लिखा था। उसका कोई उत्तर नहीं आया इसलिए अभी फिरसे नहीं लिखा। इन पत्रोंका क्या होता है, इसका कुछ पता नहीं चलता। तथापि बा को एक पत्र तो लिखूँगा ही[1] और वह इस पत्रके साथ भेजूंगा। वह पत्र यदि तुम्हारे हाथ आये, तो वहाँके जेल-अधीक्षकको बताकर उसे बा को देना। सर्दीके कारण जो लोग बीमार पड़ गये थे वे सब अब ठीक हो गये होंगे। देवदासको फिरसे हलका बुखार आया है, इस आशयका तार मुझे मिला है। शान्ति यदि इस पत्रके प्राप्त होनेके समय वहाँ हो तो उसे और उसकी बहूको मेरा आशीर्वाद देना, और कहना कि उसने आकर ठीक किया। उसे मेरा पत्र मिला था? मैंने राजकोटके पतेपर लिखा था।

छक्कड़दासकी पूनी यदि किसीके साथ डाह्याभाईको भेजोगे तो पर्याप्त होगा। अन्य पूनियाँ तो यहाँ हैं ही, इसलिए छक्कड़दासकी जरा देरसे आयेंगी तो कोई हर्ज नहीं।

पारनेरकरकी तबीयत अच्छी रहती है? पृथुराजको[2] तो ठीक होना ही चाहिए।

तुम्हारे वर्णनसे तो ऐसा लगता है कि शंकरभाई बाल-बाल बचे हैं। रसोईकी छतसे गिरनेवाला तो कदाचित् ही बच सकता है, क्योंकि छत काफी ऊँची है। उम्मीद है, अब हाथ अच्छा हो गया होगा।

१. देखिए "पत्र: कस्तूरबा गांधीको", २१-७-१९३२ या उसके पश्चात्।

२. लक्ष्मीदास आसरका पुत्र।

सीनल्ला सहायके बारेमें तो मैं अपने समस्त विचार व्यक्त कर चुका हूँ।[1] यह पत्र तुम्हें मिलेगा तो तुम जान सकोगे। पारनेरकरकी माताजीके विषयमें भी मैं लिख चुका हूँ[2] और नर्मदाके सम्बन्धमें भी।[3]

महादेवने वहाँसे दुर्गाको ११ तारीखको जो पत्र लिखा था वह १४ तारीखको डाकमें डाला गया, इसकी सूचना जेलरने हमें दी थी। लेकिन वह तुम्हें वहाँ १८ तारीख तक तो नहीं मिला, इसलिए वहाँ भी कुछ गड़बड़ अवश्य होगी।

मेरी ओरकी डाक फिलहाल अनिश्चित जानो — भविष्यमें जो हो जाये सो ठीक। प्रेमाके पत्रमें[4] विशेष रूपसे लिखा है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८२४० से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

२४०. तार: लाहौर सेंट्रल जेलके सुपरिंटेंडेंटको

[२१ जुलाई, १९३२ से पूर्व][5]

सुपरिंटेंडेंट
सेंट्रल जेल
लाहौर

खबर मिली है कि खुर्शेदबाई नौरोजीका ऑपरेशन हुआ है। कृपया मुझे ऑपरेशनका कारण तथा [मरीज़की] वर्तमान दशा सूचित करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल नम्बर ९।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ६/१०-७-१९३२।

२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको," २८-६/४-७-१९३२।

३. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको," १६-७-१९३२।

४. देखिए "पत्र: प्रेमाबहन कंटकको," २४-७-१९३२।

५. जेल अधिकारियोंने यह तार लाहौर भेजनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिए २१ जुलाई, १९३२ को बम्बईके गृह-सचिवके पास पूना भेजा था।

२४१. पत्र : मीराबहनको

२१ जुलाई, १९३२

चि० मीरा,

मेरे सामने तुम्हारा पत्र और पोस्टकार्ड है। शरीर तो अपना भाड़ा लेगा ही। हम जान ही नहीं पाते कि शरीरपर लागू होनेवाले कानूनोंको हम कब भंग कर बैठते हैं। और मानवी कानूनकी तरह प्रकृति भी अज्ञानका बहाना नहीं मानती। इसलिए तुम्हारे ज्वरपर मुझे आश्चर्य नहीं होता।[1] मैं आशा करता हूँ कि तुमने जो जोरदार इलाज किया, उसने मलेरियाको बढ़नेसे रोक दिया होगा। हाँ, ऐसे समय मित्रोंकी सेवा भारी वरदान सिद्ध होती है और उससे जल्दी आराम होता है। मुझे ज्ञात है कि शिवप्रसाद बाबूके[2] घरपर मेहमानोंकी कितनी उदार सेवा की जाती है। मुझे खुशी है कि तुम्हें ये मधुर अनुभव हो रहे हैं। इससे तुम्हारी जैसी बीमारी न केवल सहनीय ही बन जाती है, बल्कि वह स्वागत योग्य भी बन जाती हैं; क्योंकि इन अनुभवोंके जरिये हम मानव स्वभावके उत्तम स्वरूपको समझ पाते हैं और जब यह स्वभाव ऐसा हो कि मनुष्य सबके साथ और सभी परिस्थितियोंमें समान व्यवहार करने लगता है, तब तो वह लगभग देव तुल्य ही बन जाता है।

तुम्हारा गंगाका वर्णन बिल्कुल काव्यमय है। मुझे भी लगभग ऐसा ही महसूस हुआ था जैसा तुम्हें हुआ है और शायद जगह भी वही थी, जहाँ मैं पैदल टहला करता था। मैंने 'नवजीवन'के लिए अपने संस्मरण लिखे थे।[3] मेरे खयालसे इसको लगभग दस साल हो गये होंगे।

दूधकी खुराक अब भी जारी है। वजन १०५½ पौंड है। इससे कुहनीपर कोई असर नहीं हुआ है। जब मैं बादाम और रोटी ले रहा था, तबकी अपेक्षा अब तबीयतमें कोई बेहतरी नहीं महसूस करता। जहाँतक हाजमेका ताल्लुक है, अवश्य ही दूधकी खुराककी अपेक्षा उस खुराकको लेते समय हाजमा ज्यादा अच्छा था।

पता नहीं यह पत्र तुम्हें कब मिलेगा। मेरे पत्र-व्यवहारमें गड़बड़ अभीतक जारी है। आनेवाली डाक तो नियमित हो गई है, परन्तु जानेवाली डाकमें बड़ी देर होती है। मैं इसके बारेमें सरकारसे लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ।[4] मैं इस अचानक पैदा हुई गड़बड़को कतई नहीं समझ सकता। लेकिन गड़बड़ हुई तो है ही। सौभाग्यसे मैंने चित्तकी शान्तिकी खातिर दक्षिण आफ्रिकामें भी अपना कैदी जीवन यह मानकर

१. छपरासे बनारस पहुँचनेके एक-दो दिनके भीतर ही मीराबहनको मलेरिया हो गया था।

२. बनारसके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित रईस और कांग्रेसी नेता।

३. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ६२।

४. देखिए "पत्र: ई० ई० डॉयलको", ९-७-१९३२, १३-७-१९३२ और २२-७-१९३२ भी।

ही शुरू किया था कि कैदीके कोई अधिकार नहीं होते। अगर तुम अभी तक जेलकी दीवारोंसे बाहर हो और अगर तुम्हें मेरे पत्र नियमित रूपसे नहीं मिलते, तो तुम जान लोगी कि उसका कारण क्या है।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

सब मित्रोंसे वन्दे कहना। सम्भव हो तो देवदाससे मिल लेना। वह तुम्हारे बहुत ही निकट है।

श्रीमती मीराबाई
द्वारा बाबू शिवप्रसाद गुप्त
सेवा उपवन
नगवा
बनारस

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५०८) से; सौजन्य : मीराबहन

२४२. पत्र : देवदास गांधीको

२१ जुलाई, १९३२

प्रिय देवदास,

आज हनुमान प्रसादजीका जो तार मिला उससे चिन्ता होती है। लगता है कि बुखारका फिरसे आक्रमण हुआ है। तारमें कहा गया है कि यह आक्रमण हलका ही है। अतः मैं आशा करता हूँ कि यह पत्र मिलने तक तुम बिलकुल ठीक हो गये होगे। मैंने इससे पहले जो पत्र लिखा था वह मिल गया होगा। मैं जो डाक भेजता हूँ, उसका अब भी कोई भरोसा नहीं है। ऐसा लगता है कि मेरे पत्रों (की जाँच-पड़ताल)में कई दिन लग जाते हैं। पत्रोंको बारीकीसे जाँचा जाता है। तुम्हें निश्चय ही अपने स्वास्थ्यके बारेमें सावधान रहना चाहिए। कैसा भी मौसम हो, मेरे विचारसे आहारमें समुचित परिवर्तन करके उसे नियन्त्रणमें रखा जा सकता है। मुझे लिखना कि दुबारा बीमार क्यों हुए।

लगता है कि मुझे अपनी डाक फिरसे नियमित रूपसे मिलने लगी है। हम तीनों सानन्द हैं। वल्लभभाई एक अध्यवसायी छात्रकी भाँति संस्कृत सीख रहे हैं। वह उसके अध्ययनमें कई घंटे देते हैं। वह दो भाग समाप्त कर चुके हैं और तीसरा पढ़ रहे हैं। इस रफ्तारसे यदि वह चार-पाँच महीनेके भीतर सभी २४ भाग समाप्त कर डालें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। तथापि, यदि वह 'महाभारत'

और 'रामायण' सामान्य रूपसे समझने लगें तो यह आश्चर्य और चमत्कारकी बात ही होगी।

बापूके आशीर्वाद

देवदास गांधी
डिस्ट्रिक्ट जेल
गोरखपुर, संयुक्त प्रान्त

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३५३।

२४३. पत्र : सोनीरामजीको

२१ जुलाई, १९३२[1]

भाई सोनीरामजी[2],

मुझे आपका पत्र मिला।[3] मैंने जनेऊके एकाधिक गूढ़ अर्थ सुने हैं। लेकिन ये सब अनुमान मात्र हैं। जनेऊका प्रयोग जब आरम्भ हुआ तब उस समय ये विचार मौजूद थे, मैं ऐसा नहीं मानता। अपनेको आर्य कहनेवाले लोगोंने आर्य-अनार्यका भेद करनेके लिए जनेऊको अपनाया। यह उस समय हुआ होगा जब रुईसे कपड़ा बनानेकी कला ईजाद हुई होगी। उस समय करोड़ों लोग केवल धोती पहनते थे, जैसा कि आज भी पहनते हैं, और शरीरका शेष भाग अनढका रहता था। किसी भी सूरतमें वे लोग तो ऐसा करते ही थे जिन्हें अनार्य माना जाता है। अतः आर्योंने कताई-कलाको प्रोत्साहित करने और उसमें सुधार करने तथा यह सिद्ध करनेके लिए कि यह एक पुनीत काम है, जनेऊ धारण करना शुरू किया। अपनी इस बातके समर्थनमें मेरे पास इतिहासकी कोई साक्षी नहीं है। यह मेरा अनुमान मात्र है। आज आर्यों और अनार्योंके बीच कोई भेद नहीं है, और होना भी नहीं चाहिए। हजारों वर्ष पहले दोनों जातियोंके खून मिल गये थे और भारतके वर्तमान निवासी उसी मिश्रित रक्तकी उत्पत्ति हैं। यदि जनेऊ धारण किया ही जाता है तो सभी जातियोंको उसे धारण करनेका अधिकार होना चाहिए। मुझे इस आन्दोलनमें कोई तत्व नजर नहीं आता। यही कारण है कि जनेऊका प्रयोग छोड़नेके बाद मैंने उसे पुनः पहननेकी कोशिश नहीं की, और न वैसा करनेकी मेरी इच्छा ही है। और जहाँतक जनेऊ पहननेके रिवाजके कारण ही ऊँच-नीचका भेद उत्पन्न होनेकी सम्भावना है, वहाँ तक उसे छोड़ ही देना चाहिए। गौरीप्रसादको मेरी सलाह है कि वह जनेऊका मोह छोड़

१, २ और ३. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध अंग्रेजी अनुवादसे।

दे। जनेऊ ब्रह्मचारीकी निशानी है। यदि कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्यका पालन करता है, तो वह स्वयंमें सर्वोत्तम जनेऊ है। सूतके जनेऊकी क्या जरूरत है?[1]

कुएँके पानीको साफ रखनेके लिए उसे तारकी जालीसे ढककर रखना चाहिए। उसके आस-पास धूलगर्द बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। कुँआ गहरा होना चाहिए और उसमें हर महीने (एक निश्चित मात्रामें) पोटैशियम परमैंगनेट या क्लोरीन डालना चाहिए। दवाकी मात्रा किसी डाक्टरसे पता कर लेनी चाहिए। ये सावधानियाँ बरतनेके अलावा पानीकी समय-समयपर जाँच करवा लेना अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स. होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४०३–५।

२४४. पत्र : कपिलको

२१ जुलाई, १९३२

प्रिय कपिल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें जानकर दुःख हुआ। मेरी राय है कि तुम शान्त मनसे अपने स्वास्थ्यको सुधारो और स्वास्थ्यको सुधारते हुए तुम जो कुछ सेवा कर सको, उससे ही सन्तोष मानो।[2] तकली चलाना सेवा ही है। तुम्हारे पास-पड़ोसमें जो बच्चे हों उन्हें पढ़ाओ या प्रौढ़ लोगोंके लिए रात्रि-कक्षाएँ चलाओ। यह भी सेवा ही है। उम्र बढ़नेके साथ ही हमें अपनेको शुद्ध करते जाना चाहिए और एक भी अशुद्ध विचारको मनमें नहीं घुसने देना चाहिए। यह भी मेरी दृष्टिमें एक सेवा है। रोग-शय्या पर पड़ा हुआ आदमी भी इतना तो कर ही सकता है।[3] तुम प्रार्थना आदिसे सम्बन्धित नियमोंका पालन तो कर ही रहे होगे। मुझे लिखना जरूर।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स. होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३९९।

१. इसके आगेका अनुच्छेद बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

२. इसके आगेका पाठ **महादेवभाईनी डायरी,** खण्ड–१ के गुजराती पाठसे मिला लिया गया है।

३. इसके आगेका पाठ बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

२४५. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दारको

२१ जुलाई, १९३२

भाई हनुमानप्रसाद,

आज तुम्हारा पत्र मिला और तार भी। तुम जबतक वहाँ हो तबतक मुझे देवदासकी चिन्ता नहीं रहेगी। और फिर, देवदासने मुझे लिखा है कि तुमने बहुत स्नेहपूर्ण वर्ताव किया है। डाक्टर 'वाकई बहुत अच्छे आदमी हैं। समय-समयपर तुम्हारे पत्र मुझे मिलते रहेंगे, ऐसी मेरी सदैव आशा है।[1]

जो मनुष्य सांसारिक वस्तुकी प्राप्तिके लिये या और किसी कारण असत्यका सहारा लेता है, रागद्वेषसे भरा है, उसको भगवत्प्राप्ति हो ही नहीं सकती है।[2] और दूसरा दृष्टान्त जो आपने दिया है उसे मैं असम्भव मानता हूं सत्यके मार्ग पर चलना और प्रपंच अर्थात् प्रवृत्तिसे अलग रहना आकाशपुष्प जैसी बात हुई। जो प्रवृत्तिसे अलग रहता है वह किस मार्ग पर चलता है वह कैसे कहा जाये। सत्यके मार्गपर चलनेमें ही प्रवृत्तिप्रवेश आ जाता है। बगैर प्रवृत्तिप्रवेशके सत्यके मार्गपर चलने न चलनेका कोई मौका ही नहीं रहता। गीतामाताने कई श्लोकोंसे स्पष्ट किया है कि मनुष्य बगैर प्रवृत्ति एक क्षणके लिए भी रह नहीं सकता है। भक्त और अभक्तमें भेद यह है कि एक पारमार्थिक दृष्टिसे प्रवृत्तिमें रहता है और प्रवृत्तिमें रहते हुए सत्यको कभी छोड़ता नहीं है, और रागद्वेषादिको क्षीण करता है; दूसरा अपने भोगोंके ही लिए प्रवृत्तिमें मस्त रहता है, और अपना कार्य सिद्ध करने के लिए असत्यादि आसुरी चेष्टासे अलग रहनेकी कोशिश तक भी नहीं करता है। यह प्रपंच कोई निंद्य वस्तु नहीं है। प्रपंचके ही मारफत भगवद् दर्शन शक्य है। मोहजनक प्रपंच निंद्य और सर्वथा त्याज्य है। यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है। और अनुभव है।

बापूके आशीर्वाद

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४०१।

१. आगेका अनुच्छेद **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड–१ के हिन्दी अंशसे लिया गया है।

२. हनुमानप्रसाद पोद्दारने पूछा था : "जो व्यक्ति सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए असत्यका सहारा लेता है उसे क्या भगवद्प्राप्ति हो सकती है? अथवा जो सत्यका पालन करनेके लिए सारी प्रवृत्तियोंका त्याग कर देता है क्या उसके लिए भगवद्दर्शन सम्भव है?"

२४६. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

[२१ जुलाई, १९३२ या उसके पश्चात्][1]

बा,

कोई नहीं कह सकता कि क्या वजह है कि तुम्हें मेरे पत्र नहीं मिलते और मुझे तुम्हारे पत्र नहीं मिलते? इसीलिए मैंने हालमें कोई पत्र नहीं लिखे हैं। जब यही निश्चित नहीं है कि पत्र तुम्हें मिलेगा, तो मुझे लिखना अच्छा कैसे लग सकता है? तुम्हारे बारेमें समाचार मुझे अवश्य मिलते रहते हैं। नीमूने लिखा है कि तुम्हारी ताकत क्षीण होती दिखाई देती है। यह कैसी बात है? खाना हजम होता है कि नहीं?

हम यहाँ सानन्द हैं। तुम्हें मालूम होगा कि मैं इस समय दूध ले रहा हूँ। दूध लेनेका कोई विशेष कारण नहीं था। यहाँके सुपरिंटेंडेंटने आग्रह किया, इसलिए मैं लेने लगा। मैं रोटी और सब्जी भी लेता हूँ। वल्लभभाईने संस्कृत सीखनी शुरू की है और चरखा भी चलाने लगे हैं। मेरे पत्रोंके बारेमें फिलहाल अनिश्चितता रहती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस पत्रका क्या होगा।

देवदास फिर बीमार पड़ गया है, लेकिन चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

राजाजीके दामादकी मृत्युका तुम्हें पता चला होगा। अगर सम्वेदनाका पत्र न लिखा हो, तो लिख देना। बहनोंको आशीर्वाद।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००।

१. तीसरे अनुच्छेदमें देवदासके पुनः बीमार पड़नेके उल्लेखके आधार पर; देखिए "पत्र : देवदास गांधीको", २१-७-१९३२ भी।

२४७. पत्र : ई० ई० डॉयलको

२२ जुलाई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

यह पत्र मेरे १३ ता० के पत्रके सिलसिलेमें है। मेरा पुत्र गोरखपुरमें भी दुबारा रोगग्रस्त हो गया है। उसका मन हलका करनेको मैंने उसे एक पत्र लिखा है[1], किन्तु मुझे पता नहीं कि वह पत्र कब मंजूर होकर उसे भेजा जायेगा। लाहौर जेलमें स्थित एक मित्रको[2] भी, जिसका ऑपरेशन हुआ था, मैंने एक पत्र लिखा है। तीसरा पत्र लापता वायु सैनिक जीजीभाईकी बहनको लिखा है।[3] चौथा पत्र श्रीमती मीराबाई स्लेडके[4] नाम है, जो बनारसमें बुखारमें पड़ी हैं। और आज एक लड़कीको पोस्टकार्ड लिख रहा हूँ, जिसमें उसके परिवारमें हुई एक मृत्युपर उसके तथा परिवारके सदस्योंके लिए सान्त्वना-संदेश है।[5] यदि ये पत्र भेजे जाने हैं तो निस्सन्देह उनका महत्त्व तत्काल भेजनेमें ही है, अन्यथा उनका कोई मूल्य नहीं। किन्तु आश्रमके पत्रोंको जिस ढंगसे रोके रखा जाता है, उसे देखते हुए मैं कैसे आशा करूँ कि पूर्वोक्त पत्र शीघ्र ही मंजूर होकर भेज दिये जायेंगे। मुझे आश्रमसे प्राप्त एक पोस्टकार्डसे सूचना मिली है कि मेरा ५ जुलाईका पत्र वहाँ २० जुलाईको पहुँचा। और स्पष्ट है कि मेरे १२ तथा १९ जुलाईको लिखे पत्र अभीतक नहीं भेजे गये हैं। उनमें आश्रमवासी रोगियों तथा अन्य दुखी व्यक्तियोंके लिए महत्त्वपूर्ण हिदायतें हैं, जिनका राजनैतिक मामलोंसे कोई सम्बन्ध नहीं। मेरे पत्र-व्यवहारके विषयमें सरकारने अपनी जिस आज्ञाकी मुझे सूचना दी है यदि वह उसे वापस नहीं लेना चाहती, तो फिर मुझे पत्रोंकी तुरन्त रवानगीका भी आश्वासन मिलना चाहिए। मेरे पत्रोंको गन्तव्य स्थान तक भेजनेमें यह जो विलम्ब होता है वह मुझे अपने प्रति घोर अन्याय और सरकारके लिए अशोभनीय प्रतीत होता है। अपने पत्र-व्यवहारसे सम्बन्धित कोई भी नियम मैंने स्वेच्छया नहीं तोड़ा है, बल्कि इसके विपरीत मैंने सरकारकी हिदायतोंका बारीकीसे पालन किया है। मेरे पत्रोंके वितरणसे सम्बन्धित इस दुखदायी परिवर्तनका कारण मेरी समझमें नहीं आता।

१. देखिए "पत्र : देवदास गांधीको", २१-७-१९३२।

२. खुर्शेदबहन नौरोजीको; देखिए "तार : लाहौर सेंट्रल जेलके सुपरिंटेंडेंटको", २१-७-१९३२ से पूर्व।

३. इस खण्डके अन्तिम शीर्षक "दैनन्दिनी, १९३२" में, २१ जुलाई, १९३२ के अन्तर्गत शीरींबाईके नाम पत्रका उल्लेख है, किन्तु वह पत्र उपलब्ध नहीं है। फिर भी, देखिए "पत्र : शीरींबाईको", २६-७-१९३२।

४. देखिए "पत्र : मीराबहनको", २१-७-१९३२।

५. देखिए अगला शीर्षक।

क्या आप कृपा करके इस पत्रको सरकार तक भिजवा कर इस विषयमें अधिकारियोंकी सम्मति जान लेंगे ?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल नम्बर ९।

२४८. पत्र : रोहिणीबहन देसाईको

२२ जुलाई, १९३२

चि० रोहिणी,

आज हमीदाका पत्र मिला। उसमें लिखा है कि तुम्हारे मामाका निधन हो गया है। तुम सबकी ठीक परीक्षा हो रही है। अपनी माँको हम सबकी ओरसे सान्त्वना देना। सच बात तो यह है कि हमें मृत्युका शोक नहीं करना चाहिए। मौतको यदि हम मित्रवत् मानें तो मामाका मित्रसे मिलन हुआ है। हम अपने स्वार्थके कारण शोक करते हैं तो भले ही करें। सौभाग्यसे हम सभीको इस मित्रसे मुलाकात करनी है। मालूम हुआ है कि कानजीभाई[1] भी कमजोरी महसूस करते हैं। मुझे ब्योरेवार लिखना। सरदार भी जानना चाहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती रोहिणीबहन
मार्फत श्रीयुत् कनैयालाल नानाभाई देसाई
गोपीपुरा, सूरत

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६५८) से।

१. रोहिणीबहनके पिता, कनैयालाल देसाई।

२४९. पत्र : निर्मलाबहन गांधीको

२२ जुलाई, १९३२

प्रिय नीमू,

तुम बहुत चतुर लड़की प्रतीत होती हो। यह दिखानेके बाद कि तुम्हारे पास कोई समय नहीं बचता, तुम मेरे विरुद्ध पाँसा पलट कर कहती हो कि जितने घंटे मैं कहूँगा उतने घंटे तुम दोगी। लेकिन मैं तुम्हें पहले ही लिख चुका हूँ कि बच्चोंकी जो देखभाल तुम करती हो, वह आश्रमका ही काम है। उसका कोई हिसाब नहीं रखा जा सकता, तो कोई हर्ज नहीं। यदि उसमें से, एक घंटेकी कौन कहे, आधा घंटा भी बचता हो तो उसका भी हिसाब रखा जा सकता है। इसमें कोई शर्मकी बात नहीं है।

यदि हासू विनयको यहाँ भेज दे तो इससे तुम्हारा और मेरा, दोनोंका हेतु पूरा हो जायेगा। तब एकके बजाय दो लड़कियाँ होंगी। बड़ीवाली लड़कीके बच्चे हैं। लेकिन इसमें दो शर्तें हैं। सुमित्रा[1] चोरी करके सजा पाये, पुरुषके भेषमें हो, किसी यन्त्रमें खिच-खिचा कर बड़ी हो जाये और उम्रमें सोलह वर्षकी दिखे, और या फिर उसके दोके बजाय चार पैर और एक दुम हो! तब मुझे चार पैरवाली बिल्ली रखनेकी अनुमति शायद मिल सके। क्या सुमित्रा चार पैरवाली और पूँछवाली बिल्ली बननेको राजी है? यदि हो, तो गंगाबहन वहाँ जा रही हैं, उनसे दवा ले लो, उसके (अतिरिक्त) पैर और दुम उगा दो और उसे भेज दो।

पत्र लिखती रहो। तुम्हारी सब तकलीफें दूर हो गई होंगी।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३९७।

1. निर्मलाबहन गांधीकी लड़की।

२५०. पत्र : नन्दूबहन बी० कानूगाको

२२ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

मैं तुम्हें पत्र लिखनेकी सोच ही रहा था कि तुम्हारे पत्रोंकी झड़ी लग गई, बेशक सरदारके ऊपर। वर्षा किसी भी कारणसे हो, लेकिन वह भिगोती तो सभीको है। वही बात हम लोगोंके साथ भी है।

तुम्हारा विनोदी स्वभाव है, यह तो मैं जानता था, लेकिन तुम्हारे पत्रसे ही पता चला कि तुम्हारे अन्दर विनोद लबालब भरा हुआ है। तुमने मेरा आशीर्वाद माँगा है, लेकिन वह तो सदा ही तुम्हें प्राप्त है।

तुम सरदारको ठीक जोश दिलाती रही हो, लेकिन वह मेरी तरह कोमल बनिया नहीं है। जब उसको दिलसे साहसिक प्रेरणा होती है, तभी वह जो-कुछ करना चाहता है उसे करता है। बात यों है। आजकल तो उसे संस्कृतके अध्ययनका जोश चढ़ा है, यानी वह पूरे मनसे उसमें जुट गया है। लेकिन यहाँ ऐसा कोई नहीं है, जिसे इसका श्रेय दिया जा सके। उसका शिक्षक महादेव है। [संस्कृतके] साथ ही गांडीव चरखा भी है। पर वह भी तब जब उसका मन हुआ। अतः तुमने उसके साथ श्रेयमें भागीदारीका जो इरादा किया है, वह बेकार है। हाँ, उसके संस्कृत-ज्ञानका श्रेय लेना चाहती हो तो वह जरूर ले सकती हो। अगर तुम कहो तो हम उसे तारसे भेज सकते हैं।

कितने शर्मकी बात है कि एक डाक्टर भी मेरे जैसा दन्त-विहीन हो जाये। हरिभाईसे[1] कहना कि अगर डाक्टर लोग भी बीमार पड़ने लगें तो फिर हम किसका भरोसा करें।

ऐसा लगता है कि तुम्हारा और लीलावतीबहनका वजन काफी कम हो गया है।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ३९५-७।

१. अहमदाबादके डा० हरिभाई देसाई।

२५१. पत्र : राघवदासजीको

२२ जुलाई, १९३२

महाराज राघवदासजी,

आपकी भेजी हुई पुस्तक मुझे मिली। समय मिलने पर मैं उसे पढ़ूँगा। जेलसे कोई समीक्षा नहीं भेजी जा सकती। इसलिए मैं क्षमा चाहूँगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (२) भाग २, पृष्ठ ३६५।

२५२. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२३ जुलाई, १९३२

चि० काका,

बहुत प्रतीक्षा करनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। और चूँकि [जेल अधिकारियों द्वारा] उसमें बहुत-सी पंक्तियाँ काट दी गई हैं, इसलिए मुझे तुम्हारी तबीयतके बारेमें पूरी तरहसे मालूम नहीं हो सकता। तुम्हारी तबीयतके विषयमें मैंने कर्नल डॉयलको लिखा तो है ही। मैंने उनके सामने तुम्हें मेरे पास भेजनेका सुझाव रखा है, और यदि वे भेज देते हैं तो तुम्हारा शरीर तो तुरन्त सुधर जायेगा और हमारा खगोल विद्याका अध्ययन भी साथ-साथ हो सकेगा; कदाचित् इस विषयपर हम कुछ लिख भी पायेंगे।

मेरा सुझाव दोहरा है। या तो शंकर[1] और/अथवा बाल[2]को तुम्हारे पास भेजा जाये अथवा तुम्हें मेरे पास। शंकर यहीं है। तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी सेवा करनेकी उसकी इच्छा अवश्य होती है। बाल का मुझे सीधे तो कोई पत्र नहीं मिला है, लेकिन बाल आदि बच्चोंके सम्बन्धमें मुझे समाचार मिलते रहते हैं। वीसापुरसे कोई-न-कोई तो लिखता ही है।

१. सतीश कालेलकर; काकासाहबके बड़े पुत्र।
२. काकासाहबके द्वितीय पुत्र।

खगोलशास्त्रके सम्बन्धमें तुम्हारा जो अनुमान है, मेरे कहनेका भावार्थ भी वही था। आकाशदर्शनसे रात्रिमें समय जाना जा सकता है अथवा ग्रहों और तारोंका वैदिक देवी-देवताओंके साथ कोई सम्बन्ध है, इसको लेकर मैंने कभी कोई विचार नहीं किया था। भाई हीरालालके विचारोंसे मैं अवगत हूँ। उनके भेजे हुए लेख मैं पढ़ गया था। वे सब लेख दिलचस्प हैं, लेकिन मेरी दिलचस्पी भिन्न प्रकारकी है।

आकाशको निहारते हुए जिस अनन्तताका, स्वच्छताका, नियमनका और भव्यताका विचार आता है, वह हमें पवित्र करता है। ग्रहों और तारोंपर पहुँचनेपर कदाचित् हमें पृथ्वीके समान ही अच्छे-बुरेका अनुभव हो, लेकिन दूरसे देखनेपर उनमें जो सौन्दर्यकी अनुभूति होती है और उनसे जो शीतलता स्फुटित होती है, उसका प्रभाव शान्त और सुखद होता है। यह मुझे अलौकिक प्रतीत होता है। और आकाशको लेकर हम जो अनुसन्धान करते हैं उसमें, हम जहाँ कहीं भी हों, कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हो सकता। यह तो घर बैठे गंगा आनेके समान हुआ। इन सब विचारोंने मुझे आकाश दर्शनका दीवाना बना दिया है। इसलिए मैं अपने सन्तोषके लिए पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर रहा हूँ। आज तो उसके विषयमें मेरे पास छोटा-मोटा संग्रह हो गया है। प्रोफेसर त्रिवेदीने मुझे जेम्स जीन्सकी तीन पुस्तकें[1] भेजी हैं। उनमें से दो बड़ी किताबें मैं पढ़ गया हूँ। मुझे दोनों अच्छी लगी हैं। अब मैं खगोलशास्त्रका तनिक विधिवत् अध्ययन कर रहा हूँ। अभी मैं खरासकी पुस्तक पढ़ रहा हूँ। लेखकने इस पुस्तक पर अच्छी मेहनत की जान पड़ती है। चित्र पुष्कल मात्रामें हैं। इनसे बहुत मदद मिलती है। चूँकि मैं [इस विषय पर] अन्य पुस्तकें पढ़ गया हूँ, इसलिए इसमें रस ले सकता हूँ। यदि इसी पुस्तकसे आरम्भ किया होता, तो कदाचित् यह अच्छी नहीं लगती। लेखकने पुस्तकको दिलचस्प बनानेका प्रयत्न नहीं किया है।

खगोलके विषयपर मैं गुजरातीमें किस प्रकारकी पुस्तक चाहता हूँ, इसकी चर्चा मैं अभी नहीं करूँगा, क्योंकि इस विषयपर अभी तो मेरे विचार बन रहे हैं। इसलिए इस सम्बन्धमें कोई रूपरेखा बनाना ठीक नहीं जान पड़ता और न सहल ही लगता है।

तुम्हारा कातना कम हो गया है, यह ठीक ही है। शरीरको जोखिममें डाल कर कोई काम करनेकी जरूरत नहीं।

लिफाफे बनानेके उद्योगमें वल्लभभाईने इजाफा किया है। वे गांडीवपर रोज दस पूनी कातते हैं और संस्कृतके अध्ययनमें भी रत हो गये हैं। उन्होंने सातवलेकरकी ग्रंथमालाके २४ भाग मँगाये और पढ़ना शुरू किया, तथा अभी पन्द्रह दिन ही हुए होंगे कि तीसरा भाग पूरा होने जा रहा है। यह तरक्की काफी अच्छी कही जा सकती है। चार-पाँच महीनोंमें उनके सब भागोंको पढ़ जानेकी सम्भावना है। वे 'रामायण', 'महाभारत' पढ़ जानेकी अपेक्षा रखते हैं।

महादेवने चरखा कातना आधा कर दिया है। ४० अंकका सूत कातनेमें समय बहुत लगता था और थकावट भी काफी महसूस होती थी। ४० अंकका सूत काफी सुन्दर काता जाता था।

१. द स्टारस इन देयर कोर्सेज, द यूनिवर्स अराउण्ड अस, और मिस्टीरियस यूनिवर्स।

मेरी बायीं कुहनी ठीक तो नहीं कही जा सकती, लेकिन डाक्टरकी अनुमतिसे मगन चरखा छोड़कर मैं पुनः गांडीव पर कातने लगा हूँ। चक्र बायें हाथसे घुमाता हूँ और तार दायें हाथसे खींचता हूँ। दायें हाथ पर मेरा इतना अधिकार नहीं है कि चाहे जैसा महीन सूत कात सकूँ, लेकिन मगन चरखेकी अपेक्षा मैं महीन तार अवश्य निकालता हूँ। रफ्तारमें भी काफी वृद्धि हुई है, और यदि बायीं कुहनी मेरा साथ देगी तो रफ्तार अभी और भी तेज होनी चाहिए। मैं देखता हूँ कि गति और सूतकी बारीकीमें अभी द्वन्द्व-युद्ध चलेगा।

अभी तो आश्रमके इतिहासमें[1] समय चला जाता है। इसे पूरा करनेसे पहले अन्य कुछ लिखनेकी इच्छा नहीं होती। उर्दूकी पढ़ाई, मुद्रा शास्त्र और 'स्वाध्याय संहिता' तो चलती ही है। अतएव 'दैवी सम्पद्'[2] के लक्षणों पर कुछ लिखनेके लोभमें मैं नहीं पड़ूँगा। यह कल्पना भी तुम्हारी ही है और इस पर तुम्हीं लिखो, यही उचित है।

'आश्रमका इतिहास' विचित्र स्वरूप धारण करता जा रहा है। काम कठिन भी लगता है। इसमें व्यक्तियोंका उल्लेख कम ही हुआ है। इसमें भिन्न-भिन्न व्रतोंके बारेमें और उनका पालन कैसे किया जाता है, इस विषयपर लिखा गया है। इसमें अहिंसा, वर्णाश्रम, रोटी-श्रम और ब्रह्मचर्यपर बहुत-कुछ कहा गया है। कदाचित् पन्द्रह-एक दिनोंमें पूरा हो जायेगा। तुम्हारे समस्त सुझाव[3] मेरे सामने ही हैं, लेकिन इतिहासमें कदाचित् इन सबका समावेश नहीं हो सकेगा। लेकिन अभी तो मुझे ही मालूम नहीं कि अन्ततः इसका स्वरूप क्या होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४८७)से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

१. देखिए "सत्याग्रह आश्रमका इतिहास", ११-७-१९३२।

२. देखिए **भगवद्गीता**, १६, १-३।

३. काका कालेलकरने लिखा था: "उपरोक्त पत्रमें आश्रमके इतिहासमें क्या-क्या शामिल होना चाहिए उससे सम्बन्धित मेरे सुझावोंका उल्लेख है। मैंने गांधीजीसे खास तौर पर प्रार्थना की थी कि वे हममें से उन लोगोंको कदापि न बख्शें जिनके संकुचित दृष्टिकोण और अयोग्यताने उन्हें काफी तकलीफ पहुँचाई है और जो सत्याग्रह आश्रमके नामसे पहचाने जाने जानेवाले सामाजिक पुनरुत्थानके हेतु समुदायिक जीवन सम्बन्धी महान प्रयोगको कारगर करनेमें असमर्थ रहे हैं।"

२५३. देखरेखकी अनावश्यकता[1]

२४ जुलाई, १९३२

कदाचित् यह शीर्षक चौंकानेवाला है। हम अभी देखरेखके बिना अपना काम-काज चला सकते हैं, ऐसा इस शीर्षकका आशय नहीं है। लेकिन इसका आशय देखरेख कम करना और अन्तमें उसे बिल्कुल खत्म कर देनेका उपाय सुझाना अवश्य है।

धार्मिक संस्थामें जिस हद तक देखरेखकी आवश्यकता पड़ती है, उस हद तक यह धर्मकी कमीका परिचायक है। इसके पीछे अविश्वासकी भावना निहित है। अविश्वास धर्मके लिए — आत्माके लिए — घातक है। ईश्वर सबको देखनेवाला है। फिर हमें किसकी देखरेख करनेकी जरूरत है? जिसने रसोई अथवा पाखाना साफ करनेका भार अपने सिर उठाया है, वह अपने-आप उसे समुचित रूपसे क्यों न करे? वह अवश्य करेगा, ऐसा विश्वास हम अपने मनमें क्यों न रखें? देखरेखके बिना जो व्यक्ति अपने हिस्सेका काम पूर्णरूपेण अथवा ठीक ढंगसे न करे तो उसके आश्रमसे चले जानेकी बात तो सहन की जा सकती है, लेकिन देखरेखकी बात असह्य लगनी चाहिए। हमारे रोजके कार्यका लेखा-जोखा ही हमारी देखरेखका द्योतक है।

यहाँ देखरेखका अर्थ समझ लेना चाहिए। बालकको देखरेखकी अपेक्षा होती है। उसे [काम करनेका ढंग] नहीं आता, इसीलिए उसको सौंपे हुए कामको बतानेकी आवश्यकता होती है। बड़े लोग भी जिनको कोई काम न आता हो, उनके लिए भी देखरेख जरूरी है, उनकी ऐसी अपेक्षा भी होगी। वस्तुतः देखा जाये तो ऐसी देखरेख, देखरेख नहीं अपितु शिक्षककी मदद है। इसी मददके आधारपर नये सीखनेवाले लोग आगे बढ़ते हैं।

लेकिन जो देखरेख चौकसीके रूपमें की जाती है, सामने बैठा हुआ व्यक्ति अपना काम ठीक तरहसे करता है अथवा नहीं, उसपर चौकसी करनेके लिए की जाती है, वह दोषपूर्ण चीज है। बालकोंपर भी इस तरह चौकसी करना बुरी चीज है। इस दोषसे बच निकलनेका मार्ग हमें ढूँढ़ निकालना चाहिए।

इसका प्रथम चरण यह है : जहाँ-जहाँ देखरेखकी जाती है उन कामोंकी तालिका बना लेनी चाहिए। उनमें कौन-कौन है, यह भी देख लेना चाहिए। उनके साथ सलाह-मशविरा करनेके बाद उन्हें उनके विश्वासपर छोड़ देना चाहिए। आश्रमके संस्थापक और अन्य लोगोंको इस बातका पूरा एहसास होना चाहिए कि परमात्मा सबसे बड़ा साक्षी है। बालकोंको भी ईश्वरकी उपस्थितिका भान अभीसे ही हो जाना चाहिए। यह कोई वहम नहीं है, अनिश्चित वस्तु नहीं है, अपितु हमें अपनी उपस्थितिका जितना विश्वास है उतने ही विश्वासकी यह चीज भी है।

१. यह लेख "पत्र : नारणदास गांधीको", २०-७-१९३२ के साथ भेजा गया था।

मेरे इस सुझावपर सब विचार करने लग जायें और जहाँ तक उसपर अमल करना सम्भव हो वहाँतक हम उसपर अमल करें, यह हमारा धर्म है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२५४. पत्र: ई० ई० डॉयलको[1]

२४ जुलाई, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

आपको मैंने अपनी डाकके बारेमें जो पत्र लिखा था[2], उसके बाद मेजर भण्डारीने उस विषयपर आपको भेजा गया सरकारका पत्र दिखाया है।

मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह पत्र देखकर मुझे धक्का लगा है। अगर मैं उसे ठीक समझता हूँ, तो उससे समूचे भारतीय सरकारी कर्मचारियोंके प्रति अविश्वासकी गन्ध आती है, और इसीलिए स्वभावतः देशकी उस महान भाषाके प्रति अवमानना भी प्रकट होती है, जिसे यहाँके करोड़ों निवासी बोलते हैं। जो लोग इस नीतिसे प्रभावित हैं, उनके लिए उसके परिणाम अत्यन्त घातक हैं। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते और पैसा देकर अंग्रेजी जाननेवालोंकी मदद नहीं ले सकते या जो लोग ऐसी मदद लेना अपने सम्मानके विरुद्ध मानते हैं, वे सब इस नीतिके फलस्वरूप घाटेकी स्थितिमें हो जाते हैं। मेरा अपना मामला इसका एक दृष्टान्त है। गोरखपुर सेंट्रल जेलमें मेरा लड़का[3] बीमार है। उससे मिलकर आनेवाले एक मित्रने मुझे लिखा है कि वह (मेरा लड़का) उत्कंठाके साथ मेरे पत्रकी राह देख रहा है। मैंने उसे पत्र लिखा था। लेकिन मेरे मित्रने जब पत्र लिखा उस समयतक मेरा

१. यह पत्र जिस दिन लिखा गया उसी दिन डाकमें नहीं छोड़ा जा सका। इस सम्बन्धमें महादेवभाईने लिखा है: "बापूने हमारे पत्र-व्यवहारके बारेमें डॉयलको भेजनेके लिए एक पत्र लिखा। लेकिन सुपरिंटेंडेंट घबरा गया और बोला, 'कृपया ऐसा कोई पत्र मत भेजिए। इसपर से वे ऐसा समझ सकते हैं कि इस जेलके भारतीय अधिकारियोंने आपसे शिकायत की है।'. . . [अगले दिन] बापूने सुपरिंटेंडेंटको विश्वास दिलाया कि उसे जिस बातका भय है, पत्रमें उस आधारपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। सुपरिंटेंडेंटने कहा, 'कृपया इसमें इतना स्पष्ट कर दीजिए कि मैं जेलके अधिकारियोंकी तरफ इशारा नहीं कर रहा हूँ।' बापूने कहा कि 'वैसी हालतमें वे जरूर ऐसा मानेंगे कि यह पत्र आपके सुझावपर लिखा गया है। उसके बजाय मैंने जिस रूपमें लिखा है उसी रूपमें इसे जाने दीजिए। वस्तुतः यह एक ऐसा सवाल है जिसपर आपको इस्तीफा दे देना चाहिए — अगर आपमें कुछ आत्मसम्मान है तो। लेकिन हम ऐसा आत्मसम्मान खो चुके हैं। इसलिए अगर आप कोई कार्रवाई नहीं कर सकते तो मुझे कमसे-कम इतना तो करने दीजिए।'" (**महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड-१)

२. १३-७-१९३२ को।

३. देवदास गांधी।

पत्र उसे नहीं मिला था। मेरा लड़का अंग्रेजी जानता है, लेकिन हमने एक-दूसरेको कभी अंग्रेजीमें पत्र नहीं लिखा है। मेरी पत्नी भी मेरे पत्र न पानेकी शिकायत करती है। वह अंग्रेजी नहीं जानती। मैं नहीं जानता कि मेरे नाम लिखे उसके पत्रों और उसको लिखे मेरे पत्रोंका क्या हो जाता है। मेरी विनम्र रायमें भारतकी प्रमुख भाषाएँ यदि अंग्रेजीसे बड़ी नहीं तो कमसे-कम उसके बराबरका दर्जा पानेकी हकदार जरूर हैं।

मुझे यह सोचकर दुख होता है कि मैं गुजराती या हिन्दी या उर्दूमें जो पत्र लिखता हूँ, वे नियमोंकी मर्यादामें आते हैं या नहीं, इसका निर्णय करनेके लिए किसी भी भारतीय अधिकारीको, जो कि ये भाषाएँ जानता है, योग्य अथवा विश्वसनीय नहीं माना जाता। मैं अपने इसी २२ तारीखके पत्रमें पहले ही पूछ चुका हूँ कि क्या मैंने अनजानेमें कोई ऐसी बात कर दी है, जिसकी वजहसे मेरे पत्रोंकी इतनी असाधारण जाँच की जाती है।

अतः ऐसा लगता है कि सरकारने मुझे पत्र लिखनेकी जो स्वतन्त्रता दे रखी है, वह सरकारके इस नये आदेश द्वारा प्रकारान्तरसे वापस ले ली गई है।

अतः तर्क और भावना, दोनोंके आधारपर मैं सरकारसे कहूँगा कि यदि वह सचमुच दिलसे चाहती है कि मैं अभीतक जिस प्रकार पत्र लिखता रहा हूँ उसी प्रकार लिखता रहूँ तो वह अपने निर्णयपर पुनर्विचार करे, और ऐसा प्रबन्ध कर दे कि मेरे अंग्रेजीके पत्रोंको जिस फुर्तीके साथ भिजवानेका वचन दिया गया है, उसी फुर्तीके साथ भारतीय भाषाओंमें लिखे मेरे पत्रोंको भी भिजवाया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्टैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) भाग १, पृष्ठ २४९।

२५५. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२४ जुलाई, १९३२

प्रिय मेजर भण्डारी,

आश्रमवाली चिट्ठियोंके थैलेमें छोटूभाईके नाम लिखे पत्र[1] संख्या २७ के बारेमें आपकी पूछ-ताछके जवाबमें मुझे कहना है कि वह मुझे अपने कागजातोंमें नहीं मिला है। एक जगहसे दूसरी जगह जाते हुए वह कहीं गुम हो गया होगा। पत्रोंको एकत्र करनेके बाद उनकी सूची बना ली जाती है। इसलिए उनमें से किसी पत्रके यहाँ छूट जानेकी कोई सम्भावना नहीं है। गुमशुदा पत्रमें मैंने छोटूभाईको उनके पिताके बारेमें सलाह दी थी, जिनको पुराने कब्जकी शिकायत है और जिनका दिमाग भी कमजोर है मुझे आशा है कि यदि पत्रका पता चल जाये और वह आपत्तिजनक न समझा जाये है। तो उसे आश्रम भेज दिया जायेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१३२) से।

२५६. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

२४ जुलाई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र मिला। तू लिखती है कि प्यारेलाल वगैरा अच्छे हैं, जब कि किसी अन्य पत्रमें लिखा है कि प्यारेलालका शरीर एकदम कमजोर हो गया है। यह किसके पत्रमें था, मैं भूल गया हूँ। तू फिर मिल आये तो अच्छा। प्यारेलालने मुझे तो कोई पत्र नहीं लिखा है। मैंने उसे लिखा है, परन्तु मेरे पत्रोंका अभी कोई ठिकाना नहीं है।

तेरी किसी तरहकी पढ़ाई हो रही है? तू अंग्रेजी सीख रही थी उसका क्या हुआ?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४३) से।

१. अनुमानतः "पत्र : छोटूभाईको", १७-७-१९३२।

२५७. पत्र : छगनलाल जोशीको

२४ जुलाई, १९३२

चि० छगनलाल,

आशा है, तुम सब सकुशल आश्रम पहुँच गये होगे। कुरेशीको[1] चाहिए कि वह अपनी तबीयतको, जो अभी सुधार पर है, बिगड़ने न दे। इमाम साहबकी कब्र पर तुम भी गये होगे। कुरेशीसे कहना कि उसके बारेमें वह मुझे लिखे। कब्रके आसपास दीवार खड़ी करना ठीक लगे तो अवश्य करना। केवलराम[2] कहाँ है? उसका शरीर कैसा है? उससे कहना, मुझे लिखे। निर्मला[3] तो सो ही गई है। मुझे अभी उसका कोई पत्र ही नहीं मिला है।

धीरू[4] और विमलाकी[5] खबर देना। उनसे मिले हो तो उनकी सेहत कैसी है, यह बताना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५०३)से।

२५८. पत्र : पुरातन बुचको

२४ जुलाई, १९३२

चि० पुरातन,

'भाई' और 'चिरंजीव' में बहुत भेद नहीं है। 'भाई' अथवा जो भी लिखा है सो कैसे लिखा गया या न लिखा गया, इसका मुझे स्मरण नहीं। मैंने जानबूझकर परिवर्तन नहीं किया था। दूसरा व्यक्ति क्या चाहता है, इसका विचार मैं कभी-कभी अवश्य किया करता हूँ; पर तुम्हारे विषयमें मैंने यह भी नहीं किया। इतना जरूर है कि जिसे मैं 'चिरंजीव' लिखता हूँ, उसे मेरा भार ज्यादा उठाना पड़ता है। जबतक मैं जेलमें हूँ, मेरे साथ रहनेकी बात तो सोची भी नहीं जा सकती। इस बारेमें किसी दिन जेलसे निकलूँगा, तब पूछना। मैं कहीं स्थिर होकर बैठूँगा, तब तुम्हें अवश्य अपने साथ रखूँगा। मेरी चेतावनीका आशय तुम्हें प्रश्न करनेसे रोकना नहीं,

१. गुलाम रसूल कुरेशी, इमाम साहबके दामाद।

२. केवलराम भीमजी जोशी।

३. केवलरामकी पत्नी।

४ और ५. छगनलाल जोशीके बच्चे।

अपितु अन्तर्मुख होनेके लिए था। मूल समस्याको जान लेनेके बाद गौण समस्याओंका समाधान करना हमें आना ही चाहिए। जबतक यह नहीं आता तबतक मूल समस्याको हमने समझ लिया है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह बात ज्यामितिके साध्योंकी तरह है। एकका हल सिद्ध हो जानेपर उससे उत्पन्न अन्य उपसाध्योंका हल निकलना ही चाहिए। अपना स्वास्थ्य सुधार लेना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१६७) से।

२५९. पत्र: चिमनलाल एन० शाहको

२४ जुलाई, १९३२

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। शारदा मुझे समय-समय पर लिखती रहती है। वह अकेली है, यह बहुत अच्छी बात है। हमारे सब बच्चोंको माता-पितासे अलग रहनेकी आदत होनी चाहिए। माता-पिता पर निर्भर रहनेवाले बच्चे अन्तमें दुर्बल हो जाते हैं।

तुम्हारी नाकके कष्टके लिए गहरा श्वासोच्छ्वास लेनेकी आदत प्रभावकारी सिद्ध होगी। पोटैशियम परमैंगनेटका पानी नाकमें चढ़ानेसे कदाचित् लाभ हो। क्या डा० रजबअलीने जाँच की थी? यदि नाककी हड्डीपर कुछ असर हुआ है तो उसमें डाक्टरकी मददकी जरूरत होगी; अन्यथा गहरे श्वासोच्छ्वाससे आराम मिलना ही चाहिए। वैद्यकी दवाके परिणामके बारेमें मुझे बताओगे ही। यदि वहाँकी आबोहवा तुम दोनोंको अनुकूल बैठे तो वहाँसे निकलनेमें जल्दी न करना। छगनलाल और काशीको[1] तुम दोनोंका साथ तो पसन्द होगा ही, और काम तो हम जहाँ भी रहें, करना ही है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० १४) से।

१. छगनलाल गांधीकी पत्नी।

२६०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२४ जुलाइ, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला है। अब मैं कितने पत्र लिख पाऊँगा सो नहीं कहा जा सकता। पत्रों पर तलवार लटक रही है। पत्रोंको यहाँसे भेजनेमें जो ढील होती है अगर वह जारी रही तो पत्र लिखनेमें मैं कोई सार नहीं देखता। आनेवाले पत्र तो अब मुझे तुरन्त दे दिये जाते हैं। यहाँसे जानेवाले पत्रोंके बारेमें अभी पत्र-व्यवहार हो रहा है। यदि पत्र न आयें तो समझना कि मेरी गाड़ी पटरीसे उतर गई है। लेकिन इससे घबराने अथवा उदास होनेका कोई कारण नहीं। लिखने देना या न देना सरकार के हाथमें है। कैदी अधिकारकी रूसे पत्र लिखनेकी माँग नहीं कर सकता। इतने दिनों तक लिखते रहे, इससे यह हमारा अधिकार नहीं हो जाता, और जिस वस्तुके बारेमें हमें कोई अधिकार नहीं है वह यदि हाथसे चली जाये तो इसमें दुःखी होनेकी कोई बात नहीं।

तेरी वर्षगाँठ पर मैंने आशीर्वादका जो पत्र तुझे भेजा था[1] वह तो तुझे अब मिल ही गया है। देरीसे मिला, इसकी क्या चिन्ता? कदाचित् इससे उसकी कीमत बढ़ गई। नहीं मिलनेसे उसमें अपशकुन मानने जैसी कोई बात न थी। मुझे तेरा पत्र मिले और मैं आशीर्वाद न भेजूं, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। अप्रत्याशित परिस्थितियोंके उपस्थित होनेपर पत्र न मिले अथवा देरसे मिले तो उसमें अपशकुन कैसा? और वस्तुतः अनासक्तके लिए अपशकुन जैसी कोई चीज है ही नहीं। इसलिए ऐसा कभी न मानना कि तेरा नया वर्ष खराब जायेगा। खराब तो वह तब जायेगा जब हम कुछ खराब सोचेंगे, करेंगे अथवा बोलेंगे और यह तो हमारे वशकी बात है।

यदि डाक्टरकी राय गलेके टांसिलस कटवा देनेकी हो तो कटवा देना। उसने पहले भी यही सलाह दी थी न? इसमें कुछ देर नहीं लगती और न कोई जोखिमकी बात ही है। तेरा शरीर बिल्कुल स्वस्थ हो जाना चाहिए। मेरी मान्यता है कि अन्ततः अपने शरीरके बारेमें सबसे ज्यादा मनुष्यको स्वयं ही पता रहता है।

डाक्टरोंको भी बहुत कुछ रोगीके कहनेपर निर्भर रहना पड़ता है। इससे यह प्रकट होता है कि यदि रोगीको अपने शरीरके बारेमें अच्छी तरहसे मालूम नहीं है तो वह डाक्टरको ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकता। 'सिर दर्द होता है,' इतना भर कहनेसे डाक्टर क्या कर सकता है? सिरदर्द क्यों होता है, यह रोगीको मालूम होना चाहिए। और हम देख सकते हैं कि यह बात अन्य अनेक रोगों पर भी लागू

१. ३०-६-१९३२ को।

होती है। ठीक यही बात उपचारके सम्बन्धमें भी चरितार्थ होती है। अमुक उपचार का रोगी पर क्या प्रभाव हुआ, यह बात डाक्टर अपने-आप नहीं जान सकता, अपितु उसे रोगी पर निर्भर करना पड़ता है। लेकिन सब रोगी उपचारोंके प्रभावको नहीं पहचान सकते। खुराक शरीरके लिए नित्य किया जानेवाला उपचार है। इसका असर तो खानेवालेको ही मालूम हो सकता है। अतएव जिस व्यक्तिने हवा, पानी और खुराकके प्रभावको जान लिया है वह अपने शरीरको जितना काबूमें रख सकता है उतना डाक्टर कभी नहीं रख सकता। इसलिए मुझे लगता है कि हम सबको शरीरके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। उसी तरह हवा, पानी और खुराकके बारेमें भी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस ज्ञानको प्राप्त करने लायक साहित्य हमारे यहाँ है। वह सब पढ़नेकी जरूरत नहीं। लेकिन यदि उसमें से थोड़ा जान लिया हो तो काम चल सकता है। शिवाजीने अपने प्रयत्नों द्वारा अपने शरीरको उत्तम बनाया था। अपने बारेमें तो मैं यह मानता ही हूँ कि यदि मैंने आवश्यक ज्ञानकी प्राप्ति न कर ली होती तो मैं कबका इस संसारसे कूच कर गया होता। मेरा जर्जर शरीर भी मेरी सावधानीके कारण ही टिका रहा है। उसमें डाक्टरोंका बहुत कम हाथ है, ऐसा मेरा विश्वास है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९५) से। सी० डब्ल्यू० ५७४९ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

२६१. पत्र: प्रभुदास गांधीको

२४ जुलाई, १९३२

प्रिय प्रभुदास,

नारणदासको लिखे अपने पत्रमें[1] मैंने मगन-चरखेके बारेमें जो लिखा है उसे पढ़ जाना।[2] सत्यके विषयमें मुझे कुछ नहीं कहना है। ईश्वरकी व्याख्या कठिन है। सत्यकी व्याख्या तो सबके हृदयमें निहित है। तू जिसे अभी सच मानता है वही सत्य है और वही तेरा परमेश्वर है। इस स्वकल्पित सत्यकी आराधना करते हुए मनुष्य अवश्य ही अन्तिम शुद्ध सत्यको प्राप्त करता है, और वही परमात्मा है। आजकल मैं वेदोंका दोहन पढ़ रहा हूँ। उसमें भी यही बात कही गई है। मेरे विचारानुसार तो जबतक हमें सच्चा जीवन जीना नहीं आता तबतक समस्त वाचन व्यर्थ है। सच्चे जीवनमें कृत्रिमताको तो अवकाश ही नहीं है। सत्यका पुजारी जैसा

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २०-७-१९३२।

२. आगेका अंश **महादेवभाईनी डायरी** से लिया गया है।

है वैसा ही वह दिखाई देगा। उसके विचार, वाणी और व्यवहारमें एकरूपता होगी, ईश्वरको सत्यरूप जाननेसे हमें यह शिक्षा जल्दी प्राप्त होती है। ऐसा सत्यमय जीवन बनानेके लिए बहुत-सी पोथियोंको उलटनेकी जरूरत नहीं पड़ती, अपितु सारी बाजी हमारे हाथमें आ जाती है। "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखं, तत्वं पूषन्नपावृणु, सत्यधर्माय दृष्टये।"[1] इस मन्त्र पर मनन करना।

बापू

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – २, तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३८९-९१।

२६२. पत्र : पद्माको

२४ जुलाई, १९३२

चि० पद्मा,

तेरे और दुर्गाके लिए मैंने रंगीन कागजके टुकड़े सँभालकर रखे हैं। यदि नई जमीन तुझे अनुकूल बैठे तब तो यह निश्चय ही बहुत अच्छी बात है। तेरा वजन हर हालतमें बढ़ना ही चाहिए। यदि तू वहाँ ही अच्छी हो जाये तो भुवाली जानेकी कोई जरूरत नहीं होगी। तेरा कब्ज दूर हो गया, इसे मैं बहुत बड़ा सुधार मानता हूँ। वहाँ फल कौन-कौनसे मिलते हैं? दूध कितना पी सकती है? समय किस तरह बिताती है? शीला सारा दिन क्या करती है?

पिताजीके पत्रकी बात तूने लिखी, पर वह मुझे नहीं मिला।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३४) से। सी० डब्ल्यू० ३४८६ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी

१. ईशोपनिषद्, १५।

२६३. पत्र : कमलाबहनको

२४ जुलाई, १९३२

प्रिय कमलाबहन,

तुम आश्रम आ गई हो यह अच्छा है। अब वहाँ शान्तिसे रहो। क्या आश्रमका पानी तुम्हें मुआफिक बैठता है? क्या तुम्हें गोपालदासका कोई समाचार मिलता है? उसका स्वास्थ्य कैसा है? मुझे लिखना।

मुझे अभी बालकृष्णके स्वास्थ्यके बारेमें कोई समाचार नहीं मिला है। क्या वह अभी भी लड़कियोंका स्कूल चला रहा है?

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ३९३।

२६४. पत्र : डा० प्राणजीवन मेहताको

२४ जुलाई, १९३२

भाई प्राणजीवन,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। पोलक लिखते हैं कि वह मगनलाल[1] से संतुष्ट हैं। उसका मन अध्ययनमें रमा हुआ है। यदि ऐसी बात है, और यही हालत बनी रही तो उसे अवश्य ही लाभ होगा। इधर काफी अर्सेसे मुझे मगनलालका कोई पत्र नहीं मिला है। रतिलाल[2] फिलहाल ठीक चलता दिखता है। उसके मामलेमें तो—अच्छे और बुरे—परिवर्तन आते ही रहेंगे।

मेरी बायीं कुहनी पर पट्टी बँधी रहनेसे भी कोई लाभ नहीं हुआ है। चूँकि जबतक एक खास ढंगसे न हिलायी जाये तबतक वह कोई तकलीफ नहीं देती, इसलिए मैं उसके बारेमें चिन्ता नहीं करता। यहाँ डाक्टर बिजलीकी सेंक दे रहे हैं। अभी तक केवल तीन वार सेंक लगी है और इसलिए उसके प्रभावके बारेमें कुछ

१. प्राणजीवन मेहताका पुत्र, जो उस समय इंग्लैंडमें पढ़ रहा था।

२. प्राणजीवन मेहताका पुत्र जो बीमार था।

नहीं कहा जा सकता। मैं आशा करता हूँ कि तुम अपनी दुकानकी देखभालमें बहुत ज्यादा श्रम नहीं कर रहे हो।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४०५-७।

२६५. पत्र : कुसुम गांधीको

२४ जुलाई, १९३२

प्रिय कुसुम (छोटी),

मालूम पड़ता है, तू सोचे बिना ही बहुत बक-बक करती है। मेरी डाक वहाँ पहुँची नहीं, इस कारण तूने पत्र लिखना ही बन्द कर दिया, हालाँकि तू मुझे अकसर लिखती रही है कि तू मुझे हर सप्ताह पत्र लिखना चाहती है। जल्दबाजीमें या बिना सोचे-समझे कुछ मत बोला कर। भली प्रकार विचारे बिना कोई व्रत मत ले। यदि कोई व्रत ले ही ले तो उसे ध्यानमें रख कर उसका पालन कर। क्या तेरा बुखार उतर गया? तू कितना दूध पी लेती है? यदि तू नर्स बनना चाहती है तो जल्दीसे ठीक हो जा और मननपूर्वक जीवन बिता। हम जो भी कार्य-भार उठायें, यदि उसके मूलभूत सभी कारणोंकी शोध करेंगे, तो वह कार्य रोचक बन जायेगा और भार-समान नहीं प्रतीत होगा।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल नं० २०/९।

२६६. पत्र: गंगाबहन वैद्यको

२५ जुलाई, १९३२

चि० गंगाबहन,

मैं तुमसे नहीं मिल सका, इसका मुझे निश्चय ही दुख हुआ। लेकिन धर्मके आगे हम सब लाचार हैं। बाहरके लोगोंसे मुलाकात बन्द करनेके बाद कोई अपवाद थोड़े ही हो सकता है? अब तुम लिखना। अपनी तबीयतका समाचार देना। काकूके बारेमें भी लिखना। अमीना[1] भी मुझे पत्र लिखे। आशा है, तुम प्रसन्न होगी। हम तीनों मजेमें हैं। मैं पत्र लिख सकूँगा या नहीं, यह निश्चित नहीं है। जो हो, उसे हमें सहन करना होगा।

उम्मीद है, तुम नाथसे[2] मिली होगी। उनकी खबर देना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६: गं० स्व० गंगाबहेनने। सी० डब्ल्यू० ८७९१ से भी; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य

२६७. पत्र: मथुरादास त्रिकमजीको

२५ जुलाई, १९३२

चि० मथुरादास,

२३ तारीखको तुम्हारा पत्र मिला। यदि वहाँका मौसम तुम्हें माफिक आ जाये तो यह अच्छा होगा। क्या तुम्हें कोई साथी दिया गया है? क्या तुम्हें पर्याप्त कपड़े दिये जाते हैं? मुझे 'पॉपुलर एस्ट्रॉनॉमी'की पुस्तक मिली थी। यह पुस्तक किसने भेजी, सो मुझे मालूम नहीं हो सका। पुस्तकमें दिये गये नामपरसे मैंने सोचा कि उसे प्राणलालने भेजा होगा। हुआ यह कि कुछ महीने पहले पुस्तककी एक प्रति मेरे हाथ लगी। आश्रमके शिवाजी (विनोबाके भाई)ने (इस विषयका) गम्भीर अध्ययन किया। मैंने उन्हें लिखा था कि वह अपनी पसन्दकी कोई पुस्तक मुझे भेजें। और इस तरह यह पुस्तक मेरे पास आई। और अब मेरे पास इस पुस्तककी दो प्रतियाँ

१. अमीना जी० कुरेशी, इमाम साहबकी छोटी पुत्री।

२. केदारनाथ कुलकर्णी, किशोरलाल मशरूवालाके गुरु।

हैं। इसमें दिये गये मानचित्र अच्छे हैं लेकिन विषय-वस्तुमें विशेष कुछ नहीं है। (विषय-वस्तुके लिहाजसे) इस समय मेरे पास इससे बेहतर किताबें हैं। इस मौसममें आकाशका कुछ अध्ययन नहीं किया जा सकता। सितम्बर अथवा अक्टूबरमें जब आसमान साफ हो जायेगा और सूर्यास्त जल्दी होने लगेगा तब यदि तुम्हें साढ़े सात-आठ बजे तक बाहर रहनेकी इजाजत हुई तो तुम आकाश-दर्शन कर सकोगे।[1]

मैं देखता हूँ कि सामाजिक सुधार-विषयक तुम्हारे विचार अत्यन्त आधुनिक हैं। इसके विषयमें मेरा दृष्टिकोण भिन्न है। जिन सुधारोंकी मैं तात्कालिक कोई आवश्यकता नहीं देखता, और जिनके बारेमें तनिक भी शंकाकी गुंजाइश हो उनको लेकर मैं ऊहापोहमें नहीं पड़ता। तलाक ऐसी ही चीज है। एक तो आम जनतामें तलाक पर कोई रोक ही नहीं है और जहाँ प्रतिबन्ध है वहाँ तलाक तक पहुँचनेसे पहले बहुत-सी चीजें बाकी रह जाती हैं। इसलिए इस विषयको लेकर मैं अपनी शक्तिका अपव्यय नहीं करूँगा और न लोगोंको संभ्रममें डालूँगा।

सन्तति-नियमनके बारेमें तो मेरा मन सदा विरोध करता रहता है। बहुत सम्भव है कि इस सम्बन्धमें मैं अपने प्राचीन विचारोंसे बहुत ज्यादा प्रभावित होऊँ, लेकिन जिन कारणोंको लेकर मैं विरोध करता हूँ वे कारण आज भी मौजूद हैं। इसलिए सन्तति-नियमनसे होनेवाले भारी नुकसानको हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। नई सन्तानको उत्पन्न होनेसे रोकनेके लिए कृत्रिम उपायोंकी खोज करनेसे आज जो सबल दिखाई देते हैं वे भी दुर्बल हो जायेंगे। सन्तति-नियमनके पीछे निहित समस्त विचार-धारा ही भयंकर और दोषमय है। सन्तति-नियमनका समर्थन करनेवाले ऐसा मानते हैं कि जननेन्द्रियको सन्तुष्ट करनेका मनुष्यको अधिकार है, इतना ही नहीं वरन् ऐसा करना उसका धर्म है और यदि वह इस धर्मका पालन नहीं करता तो जीवनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। मुझे तो यह विचार अत्यन्त दोषमय जान पड़ता है और अनुभवसे भी मुझे यह दोष दिखाई देता है। इन कृत्रिम उपायोंका सहारा लेने वाले लोगोंसे संयमकी आशा करना व्यर्थ है। इस सम्बन्धमें संयम असम्भव है, इस मान्यताके आधार पर ही सन्तति-नियमनके उपायोंका प्रचार होता है और जननेन्द्रियके संयमको असम्भव मानना अथवा अनावश्यक मानना अथवा हानिकर समझना, यह मेरे विचारसे धर्म न माननेके समान है। क्योंकि धर्मकी सारी रचना धर्मपर ही की गई है। दुर्बल सन्ततिकी उत्पत्तिको रोकनेके लिए अनेक सीधे, सरल और निर्दोष उपाय हैं। इन उपायोंको छोड़कर सन्तति-नियमन जैसी खतरनाक चीजका उपयोग कैसे किया जा सकता है? और यह बात लगभग सब लोग स्वीकार करते हैं कि इसमें बहुत जोखिम है। फलतः मैं जिस किसी तरहसे भी इसका विचार करता हूँ तो मुझे यह त्याज्य लगता है। इतना सब लिखनेका फिरसे मन हो आया सो इसका कारण यह है कि विचारके लिए तुम्हारे पास समय है, और चूँकि यह विषय अत्यन्त गम्भीर है इसलिए आवश्यक है कि तुम इसपर खूब अच्छी तरहसे विचार कर जाओ। फिर चाहे तुम जिस किसी भी निष्कर्षपर पहुँचो इसका मुझे कोई भय नहीं, क्योंकि मैं

१. यह अनुच्छेद बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें प्राप्य अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

मानता हूँ कि अन्ततः तुम्हारी निश्छलता तुम्हें बचा लेगी अथवा यदि मैं भूलपर हुआ तो तुम उस भूलको सुधार सकोगे। यदि सन्तति-नियमन तुम्हें नैतिक दृष्टिसे उचित लगेगा तो मुझे मनवाये बिना तुम्हें चैन नहीं पड़ेगा। और मेरा काम आसान है। मैं किसी विचार-विशेषके प्रति चाहे कितना भी आग्रह क्यों न रखूँ तथापि यदि उसमें मुझे दोष दिखाई दे अथवा कोई मुझे उसका एहसास कराये तो उसका त्याग करनेमें मुझे कोई देर नहीं लगती।

हम तीनोंकी तबीयत अच्छी है। मैं फिलहाल दूध लेता हूँ। उसका मुझे कोई लाभ हुआ हो, ऐसा मैं नहीं समझता। मैं तो यहाँके डाक्टरोंके अधीन हो गया हूँ। कुहनीका दर्द जारी है लेकिन वह तभी होता है जब उसे अमुक ढंगसे घुमाया जाये। इसलिए इसके बारेमें चिन्ताकी कोई बात नहीं। मुलाकातके सम्बन्धमें मैं तारा-मतीको लिख चुका हूँ।[1] लिफाफे बनानेके अलावा सरदारने दो और काम हाथमें लिये हैं: चरखा और संस्कृतका अध्ययन। संस्कृतका अध्ययन वेगके साथ चल रहा है। तुमने सातवलेकर [की ग्रंथपाल] के कदाचित् २४ भाग देखे होंगे। उनमें से तीन तो १५ दिनमें ही पूरे कर डाले। यह गति निश्चय ही अच्छी कही जा सकती है।

देवदासको फिरसे बुखार हो आया था। अन्तिम समाचार परसे लगता है कि बुखार उतर गया है। गोरखपुरके अधिकारियोंने उसकी अच्छी देखभाल की है, ऐसा उसने लिखा है। मेरे पत्रोंकी स्थिति अब अनिश्चित हो गई है। बाहरसे आनेवाली डाक तो नियमित रूपसे मिलती है, लेकिन जो मैं लिखता हूँ उन पत्रोंके रवाना होनेमें खासी देर हो जाती है। इसलिए यदि मेरा पत्र मिलनेमें देर हो तो चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं।

वहाँ तुम्हारी खुराक क्या है? हजम हो जाती है? कसरत किस तरहकी करनेको मिलती है? वजन कैसा रहता है, नींद कैसी आती है? यह सब समाचार देना। आजकल क्या पढ़ते हो?

मेरा उर्दूका अध्ययन ठीक चल रहा है। अब थोड़ा-थोड़ा लिखा जा सकता है। यह मुझे अच्छा लगता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

तुम्हें गांडीव चरखा मिल गया है? महादेव याद दिलाता है कि चरखा मिल जानेकी बात तो तुमने मुझे लिखी थी। मेरी स्मरणशक्ति धूमिल पड़ गई है। क्या तुम चरखा चला सकते हो?

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४६५।

१. १४-६-१९३२ को।

२६८. तार : मदनमोहन मालवीयको

२६ जुलाई, १९३२

पंडित मालवीयजी
हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

मीराबाई और देवदासकी देखभाल रखनेके लिए धन्यवाद। मीराबाईके ज्वरसे चिन्ता है। कृपया उसकी हालतकी सूचना तारसे दें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३७१।

२६९. पत्र : मीराबहनको

२६ जुलाई, १९३२

चि० मीरा,

तुम्हारे पोस्टकार्डोंको पाकर बड़ी राहत मिली। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम्हें बुखार क्यों बना रहता है। उम्मीद है कि तुम मच्छरदानी बराबर प्रयोग करती हो। आनेवाले पत्र फिरसे ठीक समयसे मिलने लगे हैं। जानेवाले पत्रोंमें बहुत विलम्ब होता है। मैं सरकारसे अभी भी पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। तुम्हें मेरा पत्र न मिले या देरसे मिले तो चिन्ता न करना।

सप्रेम,

बापू

श्रीमती मीराबाई
सेवा उपवन
नगवा, बनारस

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२२९) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६९५ से भी।

२७०. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२६ जुलाई, १९३२

तुम्हारा इसी २३ तारीखका हृदयस्पर्शी पत्र मुझे आज मिला। पापाका पत्र मुझे अभी तक नहीं मिला। अधिकारी लोग मेरे पत्र-व्यवहारकी जरूरत से ज्यादा जाँच करते हैं। इसलिए पत्र मिलनेमें बड़ी देर होती है और अनिश्चितता भी बहुत रहती है। आनेवाले पत्र जरूर वक्त पर मिल जाते हैं।

तुम्हारे ऊपर जो विपत्ति पड़ी है, उसको देखते हुए मैं तुमसे मृत्युकी चर्चा नहीं करना चाहता। जॉवकी तरह तुम भी कह सकते हो कि 'यह तो ढाढ़स बँधाते हतोत्साह कर देनेवाला आदमी है'।[1] लेकिन मुझे इतना तो लगता ही है कि यदि हम ईश्वरको पहचानते हैं तो हमें मृत्युमें भी आनन्द मानना सीखना ही चाहिए। जब गुजरातके प्रथम भक्त-कवि नरसिंह मेहताके बेटेका निधन हुआ तो कहते हैं कि उन्होंने आनन्द मनाया और कहा: "यह अच्छा ही हुआ कि जंजालसे मुक्ति मिली। अब मैं ईश्वरसे शीघ्र ही मिलूँगा।" यह एक सुन्दर गीतके पदका बड़ा भोंडा अनुवाद है। परमात्मा करे तुमको इस अन्धकारमेंसे ज्यादा प्रकाश मिले।[2] मैं जानता हूँ कि आपको हममें से किसीके भी सांत्वना बँधानेकी जरूरत नहीं है। वह तो भीतरसे ही मिल सकती है। यह तो सिर्फ यही बतानेको लिखा है कि हम तीनोंके मनमें आपके प्रति क्या भावना है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. **बाइबिल; द बुक ऑफ जॉब**, १६,२।

२. राजाजीने लिखा था: "सही है कि मृत्यु एक प्रिय मित्र है, भयंकर शत्रु नहीं, जैसा कि लोग मानते हैं। तथापि उसके आनेपर हम उसके विरुद्ध इतना जोरदार संघर्ष करते हैं और इस मित्रको भगानेके लिए सभी प्राचीन तथा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानका इस तरह उपयोग करते हैं कि सत्यको हम उसी समय बिल्कुल भुला बैठते हैं जिस समय उसको सबसे ज्यादा याद रखना चाहिए।. . .यह शोक नहीं, हमारे चारों ओर घिरा हुआ अन्धकार है। मैं अब भी प्रकाशके लिए ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ।

२७१. पत्र : मगनलाल पी० मेहताको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय मगनलाल,

मैं प्रति सप्ताह तुम्हारा एक पत्र पानेकी आशा रखता हूँ, किन्तु निराश होना पड़ता है। श्री पोलकने मुझे सूचित किया है कि तुम ठीक-ठाक चल रहे हो और अपनी पढ़ाईमें व्यस्त हो। मुझे मंजुलाके[1] पत्र मिलते रहते हैं।

मुझे विस्तारसे लिखना। मुझे बताना कि तुम कौन-कौनसे विषय पढ़ रहे हो।

अपने शरीरको अच्छी तरह पुष्ट करो।

आशा है तुम डाक्टरको नियमित रूपसे लिख रहे हो।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४५५।

२७२. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय हेनरी,

मैं देखता हूँ कि तुम भी अपना मूल्य वसूलना चाहते हो। मेरा खयाल था कि मिलीके साहचर्यसे तुम सुधर जाओगे। लेकिन यह तो तेंदुएके धब्बेवाले पुराने किस्सेकी लाखवीं बार पुनरावृत्ति जैसा है। मैंने तुम्हारे अन्दर एक अच्छी बात देखी, इसलिए तुम चाहते हो कि मैं तुममें और बहुतसी अच्छाइयाँ देखूँ। मैं सधन्यवाद तुम्हारे निमंत्रणको अस्वीकार करता हूँ। कारण, अगर मैं उसे स्वीकार कर लूँगा तो इसका परिणाम यह होगा कि मेरे अन्य साथी जलने लगेंगे और मुझे त्याग देंगे।

मॉड जब अपनी कार चलाती थी तब देवदास हमेशा घबराता रहता था। वह हमेशा तनावकी स्थितिमें रहती है और अकसर अन्यमनस्क भी। उसे स्वयं कार चलाना बन्द कर देना चाहिए। कृपया यह पत्र उसे दे देना।

१. मगनलाल मेहताकी पत्नी।

मैं लियॉनको पत्र लिख रहा हूँ।[1] उसका पत्र मुझे तुम्हारे पत्रसे पहले मिल गया था। हम सब आशा करते हैं कि वह और मारी बहुत वर्षों तक सुखी रहेंगे।

मगनलाल इतना अच्छा निकल रहा है इसकी मुझे खुशी है। कृपया उसे संलग्न पत्र[2] दे देना।

तुम सबको प्यार; महादेवका भी।

तुम्हारा,
बापू

श्री एच० एस० एल० पोलक
पाँचवीं मंजिल, डेव्स इन हाउस
२६५, स्ट्रैंड
लन्दन, डब्ल्यू० सी० २

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४५३।

२७३. पत्र : लियॉन पोलकको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय लियॉन,

मुझे खुशी है कि तुमने मारी लिड्मके साथ अपनी सगाईके बारेमें लिखा। ईश्वर करे कि तुम दोनों बहुत-बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्ण और सेवाका जीवन भोगो।

तुम दोनोंको मेरा प्यार।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४५३।

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

२७४. पत्र : शीरींबाईको[1]

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय बहन,

तुम्हारा दुखभरा पत्र आज ही मिला। मुझ तक पहुँचनेसे पहले इसे कितने ही हाथोंसे गुजरना पड़ा है। तुम्हारे और तुम्हारी बूढ़ी माताजीके प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। हम ईश्वरको दोष देते हैं, उसे गाली देते हैं और उसका अस्तित्व माननेसे इनकार करते हैं, और वह हमें यह सब कुछ करने देता है। यह सब हम अज्ञानवश करते हैं। हम रोज सुबहकी प्रार्थनामें एक सुन्दर संस्कृत श्लोक बोलते हैं जिसका अर्थ है: "दुख, दुख नहीं है और न खुशी ही सच्ची खुशी है। ईश्वरको भूल जाना ही सच्चा दुःख है और ईश्वरका सदैव स्मरण ही सच्चा सुख है।" और क्या एक अंग्रेज कविने भी नहीं कहा है कि "चीजें जैसी दिखती हैं वैसी नहीं होतीं"? बात यह है कि ईश्वरके सारे कानून हम जानते हों, तो ही हमें उन बातोंका अर्थ मिल सकता है जो साधारण हालतमें हमारी समझमें नहीं आतीं। हम ऐसा क्यों मानें कि तुम्हारे भाईको हमारे बीचसे उठा लिया गया तो यह दुःखकी बात हुई? हम सही बात नहीं जानते। मगर हम इतना तो जानते ही हैं या हमें जानना चाहिए कि ईश्वर पूरी तरह भला है और पूर्णतः न्यायी है। हो सकता है कि जैसी बीमारी तुम्हारे दूसरे भाईको है, वैसी हमारी बीमारियाँ भी कोई दुर्भाग्यकी चीज न हों। जीवनका अर्थ ही है अनुशासन। उसके लिए हमें कष्टकी आगमें से गुजरना ही पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि तुम और तुम्हारी माताजी अपने इस दुःखमें सचमुच आनन्द ले सको। परमात्मा तुम्हें शान्ति दे।

शहदकी बात बिल्कुल भूल जाना[2] और मुझे अंग्रेजीमें शौकसे लिखना।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. **द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड-१ में लिखा है: "शीरींबाईने, जिनका भाई वायु सेनामें था और लापता था, गांधीजीको एक हृदय-द्रावक पत्र लिखा था। शीरींबाईकी ७२ वर्षीय माता अभी जीवित थीं, और उनका एक दूसरा भाई लन्दनके एक अस्पतालमें पिछले ८ वर्षसे बीमार पड़ा था। शीरींबाईने ३० वर्ष पहले थोड़ी-सी गुजराती सीखी थी, लेकिन उसने प्रयत्नपूर्वक गांधीजीको गुजरातीमें ही पत्र लिखा था। पत्रके अन्तमें उसने बापूसे अंग्रेजीमें पत्र लिखनेकी अनुमति माँगी थी।"

२. शीरींबाईने गांधीजीको एक शहदका छत्ता भेजा था, और उसके बारेमें विस्तारसे लिखनेको कहा था।

२७५. पत्र : ए० सुब्बैयाको

२६ जुलाई, १९३२

बच्चेकी मृत्युपर[1] तुम्हारे और तुम्हारी पत्नीके शोकको मैं समझ सकता हूँ। ललिता[2] उसके बारेमें अत्यन्त प्रेम-पगे शब्दोंमें लिखा करती थी। लेकिन तुम आश्रममें इतने दिनों रहे हो कि विशेष रूपसे ऐसे अवसरोंपर यह समझ सको कि ईश्वर हमें जो कुछ देता है, उसे वापस ले लेनेका उसे अधिकार है। हमारा विश्वास क्या है, यह तुम जानते हो। हमारा विश्वास है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति इस दुनियामें ऋणीके रूपमें आता है और जब यह सामयिक ऋण अदा हो जाता है तब हम चले जाते हैं। तुम्हारे बच्चेने ऋण अदा कर दिया है और अब मुक्त है। तुम्हें और ललिताको तथा हम बाकी लोगोंको अभी अपने दायित्वोंको पूरा करना शेष है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

२७६. पत्र : ललिताको

२६ जुलाई, १९३२

बेटी ललिता,

सुब्बैयाके पत्रसे तुम्हारे शोकका पता चला और सुब्बैयाने लिखा है कि तुम बहुत ज्यादा रोती रही हो। लेकिन तुम्हें जानना चाहिए कि धर्म रोनेका निषेध करता है। जिस ईश्वरने बच्चीको दिया उसे उसको वापस ले लेनेका भी अधिकार है। और अन्तमें हम सभीको वहीं जाना है। उसका क्या शोक ? अत: शोकको भुला दो और (दूसरोंकी) सेवामें जुट जाओ। निश्चय ही मुझे पत्र लिखना। ईश्वर तुम्हें शान्ति दे।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४९१।

१. सुब्बैया जिस दिन जेलसे रिहा किये गये थे उसी दिन उनकी लड़कीका देहान्त हो गया था।

२. सुब्बैयाकी पत्नी।

२७७. पत्र : नाजुकलाल एन० चोकसीको

२६ जुलाई, १९३२

भाईश्री नाजुकलाल,

बहुत राह दिखानेके बाद तुमने पत्र लिखा है। मुझे यह अठारह दिनों बाद मिला, लेकिन इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। क्या तुम भूखे पेट सोते हो? यह जगत-प्रसिद्ध बात है कि जिसे देरसे खानेकी आदत होती है उसे तुरन्त नींद नहीं आती। अतएव यदि तुम्हें सूर्यास्तसे पूर्व भोजन करनेकी आदत न हो तो डालना और यदि रामनाममें मन न लगता हो तो ऐसा कोई भी श्लोक अथवा भजन जो तुम्हें पसन्द हो उसको बार-बार रटोगे तो बहुत करके नींद आ ही जायेगी। मैं माने लेता हूँ कि और सब तरहसे तुम्हारी तबीयत ठीक है। प्रमोद[1] काफी बड़ा हो गया होगा। हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० १२१५०)से।

२७८. पत्र : हमीदा तैयबजीको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय हमीदा[2],

सुन्दर लिखावटमें लिखा तुम्हारा पत्र मिला। अब्बाजीको भी सूचित कर दिया गया था कि तुम्हारे स्वास्थ्यमें सुधार हुआ है। रोहिणीके मामाकी मृत्युका समाचार मुझे देकर तुमने अच्छा किया। बादमें रोहिणीका पत्र मिला। हालाँकि मैंने उसे सम्वेदनाका पत्र लिख दिया है[3], लेकिन मुझे अब (किसीकी) मृत्युपर सम्वेदना प्रकट करना पसन्द नहीं है। मृत्युसे क्यों भागें? ईश्वरने हमें कई वरदान दिये हैं, और मृत्यु सबसे बड़े वरदानोंमें से एक है। यह कोई विपत्ति नहीं है। हमें मृत्युको मित्रके रूपमें देखनेका अभ्यास करना चाहिए। जो चीज हर प्राणीपर लागू होती है उसे हम विपत्ति कैसे मान सकते हैं? उसे विपत्तिके रूपमें देखकर हम ईश्वरके सामने अपराधी बनते हैं।

१. नाजुकलाल चोकसीका सबसे बड़ा पुत्र।

२. अब्बास तैयबजीकी पोती।

३. देखिए "पत्र : रोहिणीबहन देसाईको", २२-७-१९३२।

रेहानाकी भाँति यदि तुम मुझे गुजराती और उर्दू दोनों भाषाओंमें पत्र लिखो तो तुम भी उसकी जैसी निपुण हो जाओगी। तुम्हें गुजरातीमें लिखना चाहिए ताकि तुम्हें उसमें लिखनेकी आदत पड़े। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा गुजरातीका ज्ञान बढ़े।

यह अच्छी बात है कि तुमने रोहिणीके परिवारसे इतनी मैत्री बना ली है। इसमें कोई शक नहीं कि वह परिवार अच्छा है और ईमानदार है। लेकिन तुम जो प्रमाणपत्र दोगी वह सच्चा होगा। मैं उन लोगोंके बहुत सम्पर्कमें नहीं हूँ। वहाँ सब लोगोंको मेरा सलाम।

बापूके अनेक आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४७१।

२७९. पत्र : तारामती म० त्रिकमजीको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय तारामती,

बेलगाँवसे मुझे मथुरादासका पत्र मिला है जिसमें उसने लिखा है कि जबतक वह बुलाये नहीं तबतक तुम्हें बेलगाँव नहीं जाना चाहिए। मथुरादासका स्वास्थ्य अभी तक तो ठीक है। मुझे खगोल-शास्त्र पर पुस्तक मिल गई है। आशा है तुम और दिलीप अच्छी तरह हो। आजकल तुम्हारा कोई पत्र नहीं है।

तुम्हारा,
बापू

श्रीमती तारामती मथुरादास
२१ मिंट रोड, फोर्ट
बम्बई

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४४७।

२८०. पत्र : देवदास गांधीको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय देवदास,

श्री हनुमान प्रसादजी मुझे नियमित रूपसे तुम्हारा समाचार भेजते रहते हैं, इसलिए मैं निश्चित हूँ। मैं तुम्हें एक पत्र[1] पहले ही लिख चुका हूँ, लेकिन आजकल मेरे जानेवाले पत्र पहले सचिवालय जाते हैं और जाँचके बाद उन्हें डाकसे भेजा जाता है। और यदि पत्र गुजरातीमें होते हैं तो उनमें बहुत समय लगता है, और यही कारण है कि वे तुम्हें जल्दी नहीं मिलते। इसलिए यदि तुम्हें मेरा पत्र न मिले या देरसे मिले, तो चिन्तित मत होना। जेल-जीवनकी यही दशा है। तथापि मैं सरकारके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। तुम फिर बीमार पड़ गये, यह क्योंकर हुआ ?

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

देवदास गांधी
कैदी
डिस्ट्रिक्ट जेल
गोरखपुर, संयुक्त प्रान्त

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४५१।

१. २१ जुलाई, १९३२ को।

२८१. पत्र : रमणीकलाल वि० शाहको

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारे घरके बड़ोंको नहीं जानता, इसलिए मैं उन्हें लिखनेका साहस नहीं कर सकता। तुम उन्हें यह पत्र दिखा सकते हो। जिनको हम गलतीसे अछूत या नीच जातिका कहते हैं, उन्हें छूना या उनके साथ भोजन करना हमारा धर्म है। उनको न छूना तो पाप ही है। इस बारेमें मुझे रत्तीभर भी सन्देह नहीं है। यह सुधार पश्चिमसे नहीं आया है, बल्कि यह तो हिन्दुओंका कर्तव्य है।

तुम्हारा,
मोहनदास गांधी

रमणीकलाल विम्बाशी शाह
चिन्तामणि बिल्डिग
२ भोईवाड़ा, बम्बई – २

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४५१।

२८२. पत्र : एक बालिकाको[1]

२६ जुलाई, १९३२

प्रिय . . .,

तुम्हें कभी देखा हो, ऐसा याद नहीं है। वर्षों पहले जब मैं भिक्षाटनके लिए निकला था, उस समय सम्भव है मैंने तुम्हें देखा हो। हालाँकि मेरा तुमसे कोई सीधा परिचय नहीं है, फिर भी तुम्हारे पितासे और . . . से चूँकि मेरा सम्बन्ध है, इसीलिए बड़ेके नाते मैं तुमपर कुछ अधिकार जताना चाहता हूँ। लेकिन मेरे इस पत्रको किसी अपनेसे बुजुर्ग आदमीका पत्र न समझना। मैं तुम्हारा मित्र होना चाहता हूँ। . . . ने जो कुकर्म किया है उससे मैं अवगत हूँ। . . . चूँकि आश्रममें पला और बड़ा हुआ है, इसलिए उस कुकर्मके कारण मुझे दुख है। अतः मुझे उसके

१. इस पत्रमें और इससे अगले पत्रमें नाम नहीं दिये गये हैं।

कुकर्मके लिए तुमसे क्षमा माँगनी है। जब तुम . . . को अपने दिमागसे बिल्कुल निकाल दो तभी मेरी क्षमा-प्रार्थनाको स्वीकार कर सकती हो, और अब किसी नौजवानके जालमें मत फँसना।

मेरा विश्वास है कि सयाने हो जानेपर लड़के और लड़कियाँ अपने माता-पिताके नियंत्रणसे मुक्त हो जाते हैं। माता-पिता मित्रकी भाँति उनका मार्ग-दर्शन कर सकते हैं। (लेकिन) वे उनपर कोई दबाव नहीं डाल सकते। इस स्वतन्त्रताका भोग करनेवाली उम्र अभी तुम्हारी नहीं हुई है। तुम्हें शायद पता न हो कि मैंने तुम जैसी बहुत-सी लड़कियोंका मार्ग-दर्शन किया है, और उनमें से जिन्होंने मेरी सलाहपर अमल किया है वे सुखी हैं। इस संसारमें असत्यसे बड़ी बुराई कुछ नहीं है। जिसे छिपाना नहीं चाहिए, ऐसी बातको छिपानेवाला व्यक्ति मिथ्याचरण करता है। अगर तुम्हारा विश्वास था कि तुम्हारे माता-पिताको तुम्हारे ऊपर अधिकारका अंकुश नहीं रखना चाहिए बल्कि तुम्हारा मार्ग-निर्देशन करना चाहिए, तब तुमने . . . को या किसीको भी गुप्त पत्र क्यों लिखा? यदि तुम्हारा किसीसे प्रेम हो जाये तो वैसा करनेका तुम्हें अधिकार है। लेकिन स्नेहके नामपर ही अनेक लड़के और लड़कियाँ अपनी गुप्त वासनाओंको सन्तुष्ट करते हैं। यदि वे प्रतिज्ञा कर लें कि माता-पितासे कोई बात नहीं छिपायेंगे और इस प्रतिज्ञाका पालन करें, तो इस प्रकारकी विपत्तियोंसे वे अवश्य ही बच जायेंगे।

तुम्हारा यह समय विद्याध्ययन करनेका है। तुम भाग्यवान हो कि तुम्हारे माता-पिता ऐसे उदार हैं, और इसी कारण वे तुम्हारे लिए पढ़ाईकी सुविधाएँ उपलब्ध कर रहे हैं। इस सुविधाका लाभ जबतक तुम उठाना चाहती हो तबतक तुम्हें ब्रह्मचर्यका जीवन व्यतीत करना चाहिए। लेकिन यह सम्भव है कि ऐसा कर सकना तुम्हारी सामर्थ्यसे परे हो। यदि यह बात हो, तो तुम्हें शुद्ध मनसे अपने माता-पितासे परामर्श करना चाहिए। इसमें संकोच करनेकी तनिक भी जरूरत नहीं है। यदि तुम इतना करोगी और यदि तुम मुझे (ऐसा काम फिर कभी न करनेका) वचन दोगी, तभी मैं जानूँगा कि . . . ने जो कुकर्म किया है उसका तुम्हारे मनपर तनिक भी प्रभाव नहीं बचा है। यदि तुम्हें यह पत्र मिले तो उत्तर देना। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४८७।

२८३. एक पत्र

[२६ जुलाई, १९३२][1]

तुम्हारा इसी ८ तारीखका पत्र मुझे आज मिला। इस समय मेरी डाक अनियमित हो गई है। कुछ दिनोंसे मुझे अपनी चिट्ठियाँ नियमित रूपसे मिल जाती हैं। बाहर जानेवाली डाक अभी भी अनियमित है। पता नहीं यह पत्र तुम्हें कब मिलेगा।

तुमने . . . के बारेमें लिखकर अच्छा किया। मैं आशा करता था कि . . . सुधर गया होगा। लेकिन तुम्हारा विवरण पढ़नेके बाद मैंने उसके लिए जो विशेषण प्रयोग किया था, वही कहूँगा। . . . के बारेमें तुमने जो कदम उठाये थे वे उचित ही थे। मेरी रायमें उसे और भी स्पष्ट शब्दोंमें होशमें लाना चाहिए था। उसके बारेमें इस वक्त सोचनेकी कोई जरूरत नहीं है।

तुमने . . . के बारेमें गहराईसे विचार किया होगा। तुमने जो लिखा है उससे देखता हूँ कि उसका मन अभी भी शुद्ध नहीं हुआ है। मैंने . . . को एक पत्र[2] लिखनेकी हिम्मत की है। यदि तुम उचित समझो तो वह उसे दे देना। उस पत्रसे तुम्हें बच्चोंके बारेमें मेरे विचारोंका भी पता चलेगा। . . . के कारण तुम मियाँ-बीवी पर जो मुसीबत पड़ी है उससे मैं दुःखी हूँ। . . . में जो दोष अभी भी बच रहे हैं उनके लिए . . . उतने ही जिम्मेदार हैं जितना कि आश्रम। चूँकि आश्रममें पवित्रताका वातावरण फैल नहीं पाया है, इसलिए बच्चे और बड़े कोई भी दोषोंसे मुक्त नहीं हो पाते। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जहाँ पूर्ण पवित्रताका वातावरण होता है, उस वातावरणमें रहते हुए किसी दुष्ट व्यक्तिको अपनी अशुद्धियोंका त्याग करना ही पड़ता है। आश्रममें इतना भी नहीं हो पाया है। यही कारण है कि . . . के जैसे दृष्टान्त मिलते हैं।

मैं देखता हूँ कि . . . के सम्बन्धमें तुम्हारा रवैया बिल्कुल नहीं बदल सकता। . . . अत्यन्त निष्कपट और खरे व्यक्ति हैं। . . . के कारण उन्होंने बहुत कष्ट भोगा है। जब वह यह सुनेंगे तो उन्हें गहरी पीड़ा होगी।

मैंने इस महीनेके शुरूमें दूरबीन वापस कर दी थी। उसे एक महीनेसे ज्यादा रखनेकी इजाजत मुझे नहीं मिली थी। अतः तुम्हारा सुझाव देरसे मिला। हम उसका बहुत थोड़ा उपयोग कर पाये। 'गुरु' तारा तो हम बहुत साफ देख सकते थे। लेकिन तारोंके बारेमें दूरबीनकी मददसे हमें कोई जानकारी नहीं मिल सकी। पारिजातके[3] बारेमें हमने पढ़ा था, लेकिन उसका सौन्दर्य नहीं देख पाये। अन्य कोई दूरबीन हाथमें आयेगी, तब मैं तुम्हारे सुझावका पालन करूँगा। इस समय तो बादलोंके कारण हमें आकाशके दर्शन ही नहीं होते।

१ और २. देखिए पिछला शीर्षक।

३. लघु सप्तर्षि नामक एक तारामण्डल।

मेरे पास संस्कृतका शब्दकोष है। मैं [श्री] खरासकी लिखी पुस्तक पढ़ रहा हूँ। मुझे उसकी शैली पसन्द आई। मुझे लगता है कि यदि कोई इस पुस्तकसे आरम्भ करेगा तो उसे कठिनाई होगी। वैसे, यह किताब उनके लिए नहीं लिखी गई है जिन्हें खगोल-शास्त्रका कतई कोई ज्ञान नहीं है। लेकिन मैं और दूसरी किताबें पढ़ चुका हूँ, इसलिए मुझे यह पुस्तक समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारे आविष्कारके बारेमें कभी तुम्हारे मुँहसे सुनूँगा। इस बीच लिखने लायक कुछ हो तो कृपया जरूर लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४८३।

२८४. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२६ जुलाई, १९३२

बेटी रेहाना,

इस वख्त तुम्हारे तरफसे कुछ खबर नहीं आया है। मेरी उम्मीद है कि तुम्हारी सेहत तो अच्छी होगी। अब्बाजानका बहुत अच्छा खत मिला है। उनकी कंपनीका काम साफ हो गया। जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। उनका दर्द मिट गया होगा। बड़े होनेकी बहुत देर है। मैं उनका नाच देखनेकी उम्मीद करता हूं। हमीदाका भी खत आ गया है। आजकल रामचर्चा नामकी एक उर्दू किताब पढ़ रहा हूँ। बहुत अच्छी छपी हुई है। और उर्दू समझनेमें आसान है। ये किताब खत्म होनेसे सीरत[1] शुरू करनेका इरादा है। रामचर्चा एक दो दिनमें खतम होगी। यहां बारिश अच्छा पड़ रहा है। अब्बाजान और अम्माजानको हम सबकी तरफसे आदाब, वंदे-मातरम और मेरी तरफसे अब्बाजानको भुररररररर। तुम सबको जानकर खुशी होगी की सरदारने संस्कृत सीखना शुरू करना दिया है। और वे बहुत तरक्की कर रहे हैं।

बापूके रेहानाको
आशीर्वाद

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६४५) से।

१. **सीरत-उन-नबी**; देखिए इस खण्डके अन्तिम शीर्षक "दैनन्दिनी, १९३२" में २८ जुलाई, १९३२के अंतर्गत प्रविष्टि।

२८५. पत्र : मीराबहनको

२७ जुलाई, १९३२

चि० मीरा,

तुम मुझे अपने स्वास्थ्यकी दैनिक रिपोर्ट दे रही हो, इससे मुझे बहुत तसल्ली है। हर बारकी बीमारीके बाद अचानक इस प्रकार कमजोरी महसूस करना यही दिखाता है कि तुम्हारे शरीरमें बहुत दम नहीं है। लेकिन मुझे खेद है कि इसका कोई इलाज नहीं है। पिछले एक पत्रमें मैंने तुम्हें हो सके तो देवदाससे मिलनेको कहा था[1], पर अब उसका विचार भी मत करना। तुम्हें मानसिक और शारीरिक दोनों तरहसे लम्बे आरामकी जरूरत है। बाबू शिवप्रसाद तथा उनके कुटुम्बके लोगोंको मेरा स्मरण दिलाना।

सप्रेम,

बापू

श्रीमती मीराबाई
सेवा उपवन
नगवा, बनारस

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३०) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९६ से भी।

२८६. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

२७ जुलाई, १९३२

चि० रुक्मिणी[2],

बहुत दिनों बाद तेरा पत्र मिला। तुझे बुखार आता है, इस बातकी मुझे कतई कोई खबर न थी। वैसी स्थितिमें तू तो निश्चय ही पत्र नहीं लिख सकती थी, और तू न लिखे तो भला बनारसी[3] क्यों लिखे? लगता है देवलालीमें तूने जो शक्ति अर्जित की थी उसे तू खो बैठी है। फिर प्राप्त कर ले तो अच्छा होगा।

१. देखिए "पत्र: मीराबहनको", २१-७-१९३२।

२. मगनलाल गांधीकी पुत्री।

३. रुक्मिणी बजाजके पति

बच्चा तो ठीक तरहसे बढ़ रहा है न? तुम सब लोग देवदाससे मिल आये, यह ठीक किया।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती रुक्मिणी
मार्फत श्रीयुत बनारसीदास
पंचगंगा, बनारस शहर, सं० प्रा०

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४५१) से; सौजन्य: बनारसीलाल बजाज

२८७. एक पत्र[1]

२७ जुलाई, १९३२

प्रिय. . .,

तू कमजोर हो गई है। लेकिन मैं तेरे दुखको समझ सकता हूँ। मैं तुझसे पहले ही कह चुका हूँ कि तेरी संगतिमें तेरा और . . .[2] का दोनोंका जीवन बरबाद हो गया है।[3] तू यदि सचमुच विकाररहित है तो . . . के वशमें होनेके बावजूद तू उसे सन्तोष प्रदान नहीं कर सकती। यह सब विषयी लोगोंका अनुभव है। परिणाम यह होता है कि तेरे साथ विषयोपभोग करनेके बावजूद . . . अतृप्त ही रहता है और इससे उसकी विषयवासना बढ़ती ही है। इसलिए यदि तुझे संग ही रहना है तो तुझे विषयोपभोगमें रुचि लेनी होगी। और यदि तुझे रस न आये तो तुझे अलहदा रहना ही चाहिए। फिलहाल तो मैं तुम दोनोंके संग रहनेके बुरे परिणाम ही देख रहा हूँ। तुम परस्पर एक दूसरेको धोखा देते हो, स्वयं अपनेको और जगतको भी धोखा दे रहे हो। तुम्हारे जीवनके सम्बन्धमें मेरे सिवाय अन्य लोग तो यही मानते जान पड़ते हैं कि आश्रममें रहनेके कारण तुम परस्पर साधु-साध्वी जैसा जीवन व्यतीत करते हो। इस असत्यकी स्थितिसे तुम दोनों निकल जाओ और अपनी इच्छाके अनुरूप विवाह कर लो, यह तो सबसे अच्छी बात है। मेरे विचारसे तुम दोनोंका आजका जीवन दोषमय है। यदि. . . अन्य स्त्रीसे विवाह करता है तो उसके जीवनको मैं निर्दोष मानूँगा, क्योंकि वह स्वाभाविक होगा और अन्ततः उसकी कामवासना शान्त होगी। इस परिवर्तनके लिए तुम दोनोंको दिल खोलकर बात कर लेनी चाहिए और बादमें जो कदम उठाना उचित जान पड़े सो निश्चयपूर्वक उठाना चाहिए। ऐसा हो तो . . . किसी दिन निर्विकार हो सकेगा। आजकी स्थितिमें तो

१. इस पत्रमें और इससे अगले पत्रमें नाम नहीं दिये गये हैं।
२. जिसे यह पत्र लिखा गया है उस महिलाका पति।
३. इसके बादका अंश **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड-१से लिया गया है।

उसकी विषयाग्नि सुलगती ही रहेगी और उसके विकारोंमें वृद्धि होती ही रहेगी। तुझमें जो शक्ति है उसे तू मत खो बैठ। निराश न हो। ईश्वर तेरी सहायता करे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५०९।

२८८. एक पत्र

२७ जुलाई, १९३२

प्रिय. . .,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारी टिप्पणीको बहुत ध्यानसे पढ़ गया हूँ। . . .के प्रति तुम्हारा कर्तव्य मुझे स्पष्ट दिखाई देता है। यदि वह विकाररहित है तो तुम्हें उससे अलग रहना चाहिए। यदि उसे. . . विषयोपभोगकी कामना नहीं होती तो मैं उसे विकाररहित नहीं मानूँगा, अर्थात् उसे तुम्हारी वासनाको तृप्त करना ही चाहिए। चूँकि तुम अपनी वासनाको नहीं दबा सकते, इसलिए तुम्हें दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। यदि वहाँ मिल सके तो तुम अपनी मनपसन्द स्त्रीसे विवाह कर लो। यदि वह विधवा हो, तो ज्यादा अच्छी बात होगी; और इस तरह तुम अपनी काम-वासनाको सन्तुष्ट करो।[1] ऐसा करते हुए तुम किसी दिन निर्विकार बनोगे। आज तुम्हारे लिए वह असम्भव-सा जान पड़ता है। तुम्हारे क्रोधका कारण भी वही है। तुम्हारी स्वादेन्द्रिय बहुत तेज जान पड़ती है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं, क्योंकि क्रोध, काम और रस साथ-साथ ही चलते हैं। तुम मानते हो कि तुम अपने काममें तन्मय हो। लेकिन इसके बारेमें मुझे सन्देह है। इसका अर्थ यह नहीं कि तुम लापरवाह हो। लेकिन जो व्यक्ति अपने कर्तव्यमें तल्लीन हो, वह कदापि विकारवश नहीं हो सकता। इतनी फुर्सत वह कहाँसे लाये? तुम्हारी ऐसी स्थिति ही नहीं है। यह बात स्पष्ट है कि तुम कर्तव्यपरायण होनेके लिए प्रयत्नशील हो, ऐसे तो तुम निर्विकार होनेके लिए भी प्रयत्न कर रहे हो। लेकिन [अभी तक] जैसे तुम निर्विकार नहीं हुए, उसी तरह तुम कर्तव्यमें भी तन्मय नहीं हो पाये हो। लगता है, कार्य करते हुए भी तुम्हारे मनमें विकार उठते रहते हैं। मेरी स्वयंकी भी क्या ऐसी स्थिति न थी? मेरे कार्यमें कोई दोष नहीं था, ऐसा अन्य लोगोंको महसूस होता था लेकिन मैं अपना दोष देख सकता था। इसीलिए तो मैं ब्रह्मचर्य पर आ गया।[2]

१. इसके बादका अंश **महादेवभाईनी डायरी,** खण्ड-१ से लिया गया है।

२. इसके बादका अंश बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्समें उपलब्ध अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

मेरे पिछले पत्र और इस पत्रको पढ़ कर . . .को सुना देना। मेरी कामना है कि तुम दोनों किसी-न-किसी तरह इस दुखसे छुटकारा पा जाओ। भगवान तुम्हारी सहायता करे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ५०७।

२८९. पत्र : राधा गांधीको

२७ जुलाई, १९३२

मुझे तुम्हारा पत्र कई दिनों बाद मिला है। मेरी डाक आजकल अनियमित हो गई है। यह बिल्कुल ही ठप हो जाये तो आश्चर्य मत करना। मैं इस मसलेको तय करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि बरसातका तुम्हारे स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर नहीं हुआ है। मुझे आज सन्तोकका एक पत्र मिला है, जिसमें उसने लिखा है कि वह काशी जा रही है। मुझे रुखीका भी एक पत्र मिला है। अब वह बिल्कुल ठीक है। वह देवदाससे मिली है। देवदासका स्वास्थ्य अच्छा नहीं चल रहा था, लेकिन अब वह ठीक है। प्रेमकुँवरसे कहना कि मुझे उसका कोई पत्र मिलनेका ध्यान नहीं आता। अगर वह मुझे मिला होगा, तो मैंने भी प्रत्युत्तर दिया होगा।

तुम्हारा,
बापू

राधाबहन गांधी
ब्लॉक 'ए'
भाटिया सैनिटोरियम, देवलाली

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४९७।

२९०. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

२७ जुलाई, १९३२

तुम मेरा कोई पत्र न मिलनेके कारण चिन्तित हो रही हो, लेकिन मैं पहले ही तीन पत्र लिख चुका हूँ। एक पत्र मैंने आश्रमके पते पर भेजा था। यह पाँचवाँ पत्र है, जो अब मैं तुम्हें लिख रहा हूँ। हम दोनोंको समझना चाहिए कि हम दोनों ही कैदी हैं। अगर एक दूसरेको पत्र लिखनेकी इजाजत ही न होती तो हम क्या करते? ऐसी चीजोंके बारेमें चिन्ता करना व्यर्थ है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मैं अब दूध, रोटी, और सब्जियाँ ले रहा हूँ। वल्लभभाई और महादेव भी अच्छे हैं। मुझे पता चला है कि तुम कमजोरीका अनुभव करती हो। मुझे तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। मुझे विस्तारसे लिखो।

तुम्हारा,
बापू

श्रीमती कस्तूरबा गांधी
कैदी
सेंट्रल जेल, साबरमती

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ४९९।

२९१. तार : गिरिजाशंकर बाजपेयीको

२८ जुलाई, १९३२

गि० शं० बाजपेयी
डंडेलियन
शिमला

आपकी इस ग़मीमें हमारी हार्दिक सम्वेदनाएँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग २, पृष्ठ ३७७।

२९२. पत्र : डा० मुहम्मद आलमको

३० जुलाई, १९३२

प्रिय डा० आलम,

अखबारोंमें यह पढ़कर मैं चिन्तित हूँ कि आप अस्वस्थ हैं और आपको अस्पताल ले जाना पड़ा। कृपया मुझे अवश्य सूचित करें कि आपको क्या तकलीफ है। सरदार और महादेवके साथ मेरी यह कामना है कि आपका रोग कोई गम्भीर रोग नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २४) से।

२९३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३० जुलाई, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। लगता है तेरी मूर्खताकी कोई हद नहीं है। जब क्रोध करती है तब भान ही भूल जाती है। जिस पत्रमें क्रोध पर विजय पानेके व्रतकी चर्चा करती है, उसीमें क्रोध करती है और वह भी बिना कारण। मेरी हल्की फटकारका क्या कारण है, यह तू समझी ही नहीं। मेरी शिकायत तो यह थी कि लिफाफे पर तूने जो किंगरीवाली कतरन चिपकाई थी उसमें सजावट अथवा कला जैसी कोई बात नहीं थी।[1] जो व्यक्ति अपना समय कलामें लगाता है, उसे म नहीं फटकारता। लेकिन यहाँ तो कला थी ही नहीं। लिफाफेपर इस तरह कतरन चिपकानेमें क्या कला हो सकती है? और वह चिपकाई भी इस तरहसे गई थी कि आधी तो उखड़ भी गई थी। इसलिए तेरा क्रोध अकारण ही था। इससे मुझे तुझ पर हँसी ही आई। पास होता तो चपत लगाता। लेकिन तू [अपने व्रतसे] गिर गई, सो उसका क्या होगा? तूने इसमें इतना समय गँवाया। [क्रोध] न करनेकी दलील दी और अपना शरीर बिगाड़ा, क्योंकि क्रोधका शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव होता है, यह बात वैज्ञानिकोंने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाई है। हम लोगोंमे तो यह मान्यता पहलेसे ही विद्यमान है। तेरा व्रत भंग हुआ, सो अलग। अब फिर इस

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको", ६-७-१९३२।

तरह क्रोध न करना। और फिर, मेरी आलोचना तो मधुर आलोचना थी। इतनी-सी बात समझनेकी अक्ल भी तू खो बैठी।

पत्रोंके बारेमें तो गाजरकी पिपनीवाली [जिसे बच्चे बजा न सकनेके कारण खा जाते हैं] बात लागू होती है। इसलिए यदि पत्र न मिले तो दुःखी न होना। वहाँसे तो तू लिखती ही रहना। पत्र लिखना बन्द हो जायेगा तो मैं तुझे बता दूँगा। और यदि मुझसे इतनी खबर भी न दी जा सकी, तो भी तेरा लिखा हुआ व्यर्थ नहीं जायेगा।

नये पुष्पोंको मेरी ओरसे प्रणाम कहना। आशा है मैं किसी-न-किसी दिन उनके बीच सो सकूँगा, ऐसा कहकर उन्हें आश्वासन देना।

तू बहुत जिद्दी है। फूलोंके आसपास यदि तू टमाटर और सब्जीकी खेती करे, तो ये तुझे बारह मास मिलेंगी और शरीरको भी लाभ पहुँचेगा। शरीर तेरा नहीं है। वह तो ईश्वरकी ओरसे तुझे सौंपी गई वस्तु है। इसलिए तुझे उसकी रक्षाके लिए समय अवश्य देना चाहिए। टमाटर और सब्जी उगानेके लिए बहुत समय नहीं देना पड़ता। और ये जमीन बहुत कम रोकते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें मेरे साथ एक अंग्रेज मित्र रहा करते थे। वे बिना किसी परिश्रमके थोड़े ही दिनोंमें क्रेस नामक सब्जी उगा लेते थे, जो कच्ची ही खाई जाती है।

लड़कियोंकी बीमारीके बारेमें तो मैंने तुझे लिखा है।[1] इसकी अच्छी तरहसे जाँच करना। रामभाऊके बारेमें मुझे पहले ही आशंका थी। लेकिन चूँकि उसने तुझसे सब-कुछ कह दिया है, इसलिए उसे जीतनेकी कोशिश करना।

तेरा वजन यदि कम हो गया है, तो तुझे फल लेने ही चाहिए। थोड़ा ज्यादा खर्च हो, तो खर्च होने देना। इसमें लोभ करके शरीरको बिगाड़नेसे क्या लाभ? जो बात खाने पर लागू होती है, वही बात आराम करने पर भी होती है। तुझे दोपहरको थोड़ा आराम अवश्य करना चाहिए। इतना समय कैसे निकाला जा सकता है, यह मेरे बतानेकी चीज नहीं है। इतना समय निकालना ही है, यदि तू इस बातका निश्चय कर ले तो निकाल सकती है।

अब तेरी मुसीबतोंके बारेमें:

१. व्यक्तिपूजाके स्थान पर गुणपूजा करना उचित है। व्यक्ति तो बुरा भी निकल सकता है, और वह नश्वर भी है। गुणोंका कभी नाश नहीं होता।

२. यदि आश्रमको चलानेवाले लोगोंमें से बहुत सारे लोग तुझे पसन्द नहीं हैं, तो उन्हें सहन करना सीखनेका यह स्वर्णिम अवसर है। दोषके बिना तो कोई नहीं है, और यदि हम दूसरोंको अपने जैसा मानने लगें तो पसन्द अथवा नापसन्दका सवाल ही न रहे।

३. यदि आश्रममें रहनेवाले लोगोंको आश्रमके मूलभूत सिद्धान्त स्वाकार्य हों और बाह्य स्वरूपको लेकर परस्पर मतभेद हो, तो उसकी चिन्ता नहीं। हमें तो तत्वोंसे सरोकार है, बाह्य स्वरूपसे नहीं।

१. ६ जुलाई, १९३२ को।

४. अपने स्वभावजनित दोषोंको दूर करनेके लिए आश्रममें रहना तेरा धर्म है।

५. और यदि आश्रममें रहकर तू अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं करती, तो इसमें दोष तेरा है। आश्रममें सम्पूर्ण स्वतन्त्रता है।

६. तू जिन लोगोंको प्यार करती है उनके प्रति इस तरह आकर्षित होनेके कारण तू आश्रमसे बाहर क्यों जाये? [होना तो यह चाहिए कि] आवश्यकता पड़नेपर उनका प्रेम उन्हें आश्रममें तेरे पास खींच लाये। प्रेमको भौतिक सान्निध्यकी आवश्यकता नहीं होती, और यदि हो तो वह प्रेम क्षणिक माना जायेगा। एकके शुद्ध प्रेमकी कसौटी दूसरेका वियोग होने पर—मृत्यु होने पर—होती है। लेकिन यह सब तो बुद्धिवाद हुआ। तेरा हृदय जहाँ होगा वहीं तू रहेगी। यदि तेरा हृदय आश्रममें नहीं रम सकता तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ, और तू भी क्या कर सकती है?

मेरे सूतकी साड़ियाँ तो बुनी ही जानी चाहिए। मैंने सूतके विषयमें जो विचार व्यक्त किये हैं[1], यह सूत उससे पहलेका है। सच पूछो तो यह बा के लिए ही काता गया था। इसलिए बा को उसका त्याग करना चाहिए। मुझे इसमें कुछ नहीं कहना है। बा बहुत ज्यादा मोटी साड़ी तो पहन नहीं सकती। इसलिए आश्रमकी ओरसे भी उसे सामान्यरूपसे महीन साड़ियाँ ही दी जानी चाहिए। इस तरह भी मेरे सूतकी साड़ीको बा आरामसे पहन सकेगी। अब बादके सूतके विषयमें तो सख्तीसे काम लिया जाना चाहिए। लेकिन इसमें भी मैं बा के साथ जोर-जबरदस्ती नहीं करूँगा। बा खुशीसे उसका त्याग करके उसके हिस्सेमें जो सूत आये उसमें सन्तोष माने, ऐसा मैं अवश्य चाहूँगा। लेकिन यह तो भविष्यकी बात हुई। फिलहाल तो मेरा काता हुआ नया सूत सबका सब यही है। चाहे जो हो, मेरा सूत ऐसे पड़े नहीं रहना चाहिए। किसीका भी नहीं रहना चाहिए। जिस समय सूत बुनने लायक हो जाये, उस समय वह तुरन्त बुना जाना चाहिए।

धुरन्धरके बारेमें तुझे मालूम है। लीलावती तो कातती है, ऐसा मेरा खयाल है। लेकिन जो तू लिखती है, वह ठीक ही है। अनेक बहनें कातना छोड़ कर कढ़ाईका काम पसन्द करेंगी। जो बात खानेके सम्बन्धमें चरितार्थ होती है वही कामके सम्बन्धमें भी होती है। रोटीको छोड़कर मन पकौड़ीकी ओर भागेगा। रोटी पर कायम रहनेमें संयम है, त्याग है, पकौड़ी पर जानेमें स्वच्छन्दता है। उसी तरह कातने पर टिके रहनेमें संयम है, अन्य काम करनेमें (अपेक्षाकृत) स्वच्छन्दता है।

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ३१-५/३-६-१९३२, जिसमें गांधीजीने लिखा था कि कताई यज्ञमें भाग लेनेवाले लोगोंको अपने उपयोगके लिए अपना कता हुआ सूत नहीं रखना चाहिए। प्रेमाबहनका तर्क था कि गांधीजी द्वारा काता गया सूत बा के उपयोगके लिए होना चाहिए।

'किसीकी आलोचना न करो, क्योंकि कहीं कोई तुम्हारी न कर बैठे'—पर तूने जो टीका[1] की है, वह उचित नहीं है। तूने इसका अर्थ ही नहीं समझा। तेरी टीकामें बहुत अहंकार भरा हुआ है। 'कहीं कोई तुम्हारी आलोचना न कर बैठे' का तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा कोई काम ही नहीं करना चाहिए, जिसपर कोई हमारी आलोचना करे। हम संसारके प्रति उद्धत न बनें। 'भले ही संसारको जो कहना अथवा करना हो सो करे' ऐसा विचार अथवा ऐसे वचन हम मुँहसे कैसे निकाल सकते हैं? संसारके सम्मुख हमें विनीत होना चाहिए, अर्थात् सत्य मार्गपर चलते हुए भी हमें जगतको दण्डित नहीं करना चाहिए, उसकी टीका नहीं करनी चाहिए। अपितु जगत द्वारा दिये गये दण्डको, उसके द्वारा की गई आलोचनाको हमें सहन करना चाहिए। इसीका नाम नम्रता अथवा अहिंसा है। तूने जो-कुछ भी लिखा कदाचित् वह व्यंग्य-भरा और क्रोधमें लिखा गया है, परन्तु मेरी इच्छा तो यही होगी कि तू ऐसा न लिखे। मुझपर तूने जो क्रोध निकाला है उसकी मुझे फिक्र नहीं। उसे मैं हँसीमें उड़ा सकता हूँ। लेकिन यह वाक्य मुझे खटकता है। तेरी लेखनीसे ऐसे वाक्य नहीं निकलने चाहिए; तात्पर्य यह कि तेरे मनमें इस तरहका विचार भी नहीं आना चाहिए। तेरे मनमें विचार उठा और उसे तूने भले ही मेरे आगे रखा; और चूँकि तूने उसे रखा, इसलिए मैं उसमें सुधार कर सकता हूँ। मैंने यह वाक्य इसलिए नहीं लिखा है कि तू अपने विचारोंको मुझसे छिपाने लगे। मैं तुझे पागल, उद्धत, विनम्र तू जैसी भी है उसी रूपमें देखना चाहता हूँ। लेकिन मेरी माँग तो यही है कि तू उपर्युक्त विचारको अपने मनमें आने तक न दे।

लड़कियाँ अगर जोरसे मालिश नहीं कर सकतीं तो उन्हें सिखाना चाहिए। इसमें शारीरिक बलकी नहीं, कौशलकी जरूरत है।

अब तू जो पढ़ रही है, उसके विषयमें। जैसा तूने लिखा है वैसी मान्यता किसी समय अवश्य थी, लेकिन आज नहीं है। माल्थसके कुछेक सिद्धान्तोंको लोग समझ नहीं पाये और कुछेक भूल भरे हैं। जो नियम मानवेतर प्राणी पर लागू होता है, वह मनुष्योंपर नहीं होता। मानवेतर प्राणी अन्य जीवोंको मारकर निर्वाह करता है। मनुष्य इस स्थितिसे निकल जानेके लिए प्रयत्नशील है। इसमें उसकी अहिंसा है। जब तक देह है तबतक मनुष्य पूर्ण अहिंसाको प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन यदि भावनाके स्तर पर उसका [अर्थात् अहिंसाका] पोषण करे तो वह कमसे-कम हिंसासे निर्वाह कर सकता है। स्वयं मरकर दूसरोंको जीने देनेकी तत्परतामें मनुष्यकी विशेषता निहित है। जैसे-जैसे मनुष्य बढ़ता है वैसे-वैसे खुराक भी बढ़ती जाती है। अभी उसमें और आगे बढ़नेकी शक्ति है। डार्विनकी खोजके बाद और बहुत-सी खोजें

१. प्रेमाबहनने इसका यह अर्थ किया था: "अन्य लोग मेरी टीका करेंगे, इस भयसे यदि मैं टीका नहीं करती तो मैं दुर्बल ठहरूँगी। मुझे वैसा नहीं होना। भले जगत मेरी टीका करे, लेकिन मुझे जो ठीक लगे वह मैं क्यों न कहूँ? मैं संसारसे क्यों डरूँ? मुझे संसारकी कोई परवाह नहीं।" देखिए "पत्र: प्रेमाबहन कंटकको", ६-७-१९३२ भी।

की गई हैं। तू जो पुस्तक पढ़ रही है, वह पुरानी जान पड़ती है। पुरानी हो अथवा नई, 'ज्यादासे-ज्यादा लोगोंका भला' अथवा 'बलीके दो भाग' का सिद्धान्त गलत है।

अहिंसा सबके कल्याणकी बात सिखाती है। ईश्वरके यहाँ सबके कल्याणका ही न्याय हो सकता है। यह कैसे किया जाता है अथवा ऐसे न्यायमें मनुष्यका क्या कर्तव्य है, इसपर विचार करना हमारा काम है, इस नियमका दूसरे नियम द्वारा खण्डन करनेका नहीं है। लेकिन यह विषय बहुत बड़ा है। मैंने तो संक्षेपमें थोड़ा कह दिया है। तू यदि इसपर ज्यादा चर्चा करना चाहे तो प्रश्न पूछना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९६) से। सी० डब्ल्यू० ५७५१ से भी; सौजन्य : प्रेमावहन कंटक

२९४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

३० जुलाई, १९३२

भाई घनश्यामदास,

आपका २२ जुलेका पत्र मिला है। द्रव्यशास्त्रके मेरे पास जितनी पुस्तक थी मैं पढ़ चुका हूं। इसका यह अर्थ नहीं कि सब अच्छी तरह समज चुका हूं। परंतु समजशक्तिमें कुछ न कुछ वृद्धि हुई है। मेरी उम्मीद थी कि आखरकी पुस्तक पढ़ लुंगा। उसके पहले आपकी तरफसे दूसरी पुस्तक मिल जायेगी। लेकिन वह खत[1] ही आपको न मिला। यह दूसरा खत है जो नहीं मिला। मुझे चाहिये फाउलर कमिटी, चैंबरलेन कमिटी, बैबिंगटन स्मिथ और हिल्टन यंग कमिटिकी रिपोर्ट और उसीके साथ विरोधी रिपोर्ट भी। दादा चानजीकी करेन्सी ऑर एक्सचेंज[2] नामक पुस्तक और फिण्डले शिराज[3] आजकल लिखी है वह।

मुझको कुछ डर है कि आपको बादाम अनुकूल नहीं होगी। क्योंकि मैं बरसों तक बादाम मोंर्यासिंग इ० तेली चीजों पर रहा हूं मैं उन्हें बरदास्त कर लेता हूं। आपके लिए तो दूध दहि ही मुख्य खुराक रहेगा। स्टार्च कम होनी चाहिये और डालकी प्रोटीड बिलकुल नहीं। गेहूं, दूध, दहि, सेलडभाजी और स्टार्चरहित फल जैसे कि अंगुर, अनार, नारंगी, सेब, अननस, पपनस, यही खुराक आवश्यक और अनुकूल आप ऐसोंके लिये है यह मेरा अनुभव है। बादाम दूधकी जगह तब ही ले सकती है जब वनस्पतिमेंसे कोई ऐसी मिल जाय तो दूधकी जगह ले सके। रसायन-

१. सम्भवत: २८ जून, १९३२ का।
२ और ३. मूलमें ये अंग्रेजी लिपिमें हैं।

शास्त्रके प्रयोगमें तो दूध और बादाममें एक ही तत्व है लेकिन दूधमें जो कुछ सूक्ष्म वस्तु है वह बादाममें नहीं है और जो एनिमल प्रोटीन[१]में ही मिलती है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि लाखों वनस्पतिओंमें ऐसी वनस्पति अवश्य है जिसमें भी वह सूक्ष्म वस्तु है। परंतु हमारे वैद्योंने अपने आलस्यके कारण इसकी आजतक शोध नहीं की है। और इसीलिए जितना काम दूध देता है वह सबका सब बादाम नहीं दे सकती है।

मेरा हाथ ज्योंका त्यों है। लेकिन काम करनेमें कोई बाधा नहीं आती है। इसलिये कुछ चिंताका कारण नहीं है।

हम तीनों अच्छे हैं। आपको जानकर खुशी होगी कि सरदारने संस्कृतका अभ्यास आरंभ कर लिया है और बहुत तेज गतिसे चल रहे हैं।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ७९०२ से; सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला

२९५. 'गीता' कंठस्थ करें[२]

३१ जुलाई, १९३२

'गीता' कंठस्थ करनेके बारेमें मैं अनेक बार लिख चुका हूँ, कह चुका हूँ। चूंकि मैं स्वयं ऐसा नहीं कर पाया हूँ, इसलिए मुझे यह कहना शोभा नहीं देता। तथापि, बारम्बार ऐसा कहते हुए मुझे शर्म नहीं आती, क्योंकि मैं उससे होनेवाले लाभको समझता हूँ। मेरा काम तो जैसे-तैसे चल गया है, क्योंकि मैंने एक बार तो तेरह अध्याय तक 'गीता' कंठस्थ कर ली थी और 'गीता'का मनन तो वर्षोंसे चल रहा है। इसलिए बहुत करके मेरा जीवन उसकी छायामें बीता है। लेकिन अगर कहीं मैं उसे कंठ कर सका होता, यदि मैं उसमें और भी अधिक गहरे उतर सका होता तो मैं उससे कहीं अधिक ग्रहण कर सका होता। लेकिन मेरा चाहे जो हुआ हो अथवा अब हो, मेरा समय तो अब बीत गया कह सकते हैं, या कहें कि यदि मुझे अभी भी अवसर मिला तो मैं दुबारा 'गीता'को कंठस्थ करनेका अवश्य प्रयत्न करूँगा।

यहाँ हमें 'गीता'के अर्थको तनिक विस्तारसे बताना चाहिए। 'गीता' अर्थात् हमारा आधारभूत ग्रन्थ। हममें से अनेक व्यक्तियोंका [आधार] 'गीता' है, इसीलिए मैंने 'गीता' शब्दका प्रयोग किया है। लेकिन अमतुल, अमीना अथवा कुरेशी 'गीता'के बदले सारी 'कुरानशरीफ' अथवा उसके कुछ अंशोंको कंठस्थ करें। जिसे संस्कृत न आती हो, जो अब संस्कृत न सीख सकता हो वह गुजराती अथवा

१. मूलमें ये अंग्रेजी लिपिमें हैं।

२. यह "पत्र: नारणदास गांधीको", २८/३१-७-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

हिन्दीकी ['गीता'] कंठस्थ करे। जिन्हें 'गीता' पर आस्था न होकर अन्य धर्म-ग्रन्थपर हो तो वे उस ग्रन्थको कंठस्थ करें।

और कंठस्थ करनेके अर्थको भी हमें समझ लेना चाहिए। जिस वस्तुको हम कंठस्थ करें उसके अनुरूप आचरण करनेका भी हमें आग्रह होना चाहिए। वह मूल सिद्धान्तोंका हनन करनवाला नहीं होना चाहिए और हमें उसके अर्थको पूरी तरह समझ लेना चाहिए।

इसका पुरस्कार भी मिलता है। हमारे पास ग्रन्थ न हो, चोरी हो जाये, जल जाये, हम राह भूल जायें, हमारी आँखें चली जायें, हम गूँगे बन जायें लेकिन हमारी समझनेकी शक्ति कायम हो—ऐसे ही अन्य प्रसंगोंकी भी कल्पना की जा सकती है—उस समय यदि हमारा प्रिय आधारभूत ग्रन्थ हमें कंठस्थ हो तो वह हमें बड़ा ही शान्ति-प्रदायक सिद्ध होगा और मार्गदर्शक बनेगा, विपत्तिमें मित्र होगा।

जगतका अनुभव भी यही है। हमारे पूर्वज—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी अमुक पाठ कंठस्थ किया करते थे। आज भी अनेक लोग करते हैं। इन सबके अमूल्य अनुभवोंका हम त्याग न करें। इसमें कुछ हदतक हमारी श्रद्धाकी कसौटी भी है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२९६. पत्र : नारणदास गांधीको

२८/३१ जुलाई, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारा २५-२६ तारीखका पत्र आज मिला है। मेरे पत्र तुम्हें मिल सकते हैं, इसके लिए हमें ईश्वरका उपकार मानना चाहिए। लेकिन न मिलें तब भी हमें उसका उपकार मानना चाहिए। अर्थात् सर्दी-गर्मी, जन्म-मरण, अच्छा-बुरा, सुख-दुःख का भेद बिल्कुल दूर हो गया। यदि हमने अपनी जीवनडोर उसके हाथमें दे दी हो तो जैसा वह नचाये वैसा हम नाचेंगे। पत्र भेजे तो प्रसन्न हों और न भेजे तो भी प्रसन्न रहें। "भलु थयुं भांग जंजाल" (अच्छा हुआ, बन्धन टूट गया) यह कहकर नरसिंह मेहता नाच उठे थे। इसका अर्थ कोई यह थोड़ा ही था कि उनके प्रियजन उन्हें प्रिय न थे अथवा उनकी उपस्थिति उन्हें अच्छी नहीं लगती थी? अवश्य अच्छी लगती थी। तिसपर भी वे चले जायें तो समझना चाहिए कि इसमें ईश्वरका कोई रहस्य है। इतना ही नहीं, अपितु इसमें भी उसकी कृपा ही निहित है। फलतः जबतक मेरे पत्र मिलते रहें तबतक उनसे जो आनन्द मिल सके सो लेना और न मिलनेपर भी सन्तुष्ट रहना; और इस सन्तोषमें आनन्द समाया हुआ ही है।

पिछली डाकके मिलनेपर तुमने जो पोस्टकार्ड लिखा था वह मुझे मिल गया था। हाथकी स्थिति पहले जैसी ही है। वजन १०५३ हो गया था, लेकिन फिर १०४ हो गया है। ऐसे फेरबदल थोड़े-बहुत होते ही रहते हैं लेकिन तबीयत अच्छी ही रहती है।

पद्माको कर्ज नहीं लेना चाहिए था, यह बात सिद्धान्तके रूपमें सही है। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि वस्तुस्थितिके बदलनेसे यह बात लागू न हो सके। इसलिए उसके साथ न्याय करनेके लिए हमें उसका सारा हिसाब देख जाना चाहिए। यदि यह लगे कि खर्च ठीक हुआ है तो कर्ज चुका देना चाहिए। ऐसा प्रसंग भी उपस्थित हो सकता है जब कर्ज लिये बिना काम न चले। उस समय कर्ज लेना धर्म हो सकता है। ये सब बातें परिस्थितियोंके साथ-साथ बदलती हैं और तभी व्यक्तिके साथ न्याय किया जा सकता है, अन्यथा इसका परिणाम विपरीत होगा। टाइटसके बारेमें तुम्हें जो उचित जान पड़े सो करना।

केशूने २०० अंक तक काता यह तो बहुत ज्यादा हुआ। ऐसे कितने तार काते? इनमें से यदि हरेक तारकी पाँच-सात छोटी आँट बनाकर अपने पत्रमें पिरोकर भेजोगे तो वह बिना खोये मिलेगी और हम वह सूत देख सकेंगे। जिस पूनीसे वह इतना महीन सूत कात सका उसे भी यदि यहाँ कोई आनेवाला हो तो उसके साथ भेजना। यदि वह ऐसा सूत और कात सकता है तो तुम्हें उससे कपड़ा बुननेके लिए तैयार रहना चाहिए। केशूने २०० अंकका सूत किस चरखे पर काता और तकुआ कैसा था?

यह तो मैं लिख ही चुका हूँ कि अब मैं गांडीव पर सूत कातता हूँ।[1] उसके मोढ़ियामें मैंने कुछ परिवर्तन किये हैं और इसमें सहज ही ३० अंकका सूत कात रहा हूँ। आज कदाचित् ३० से भी ज्यादा अंकका काता गया होगा और टूटन भी बहुत कम होती है। जो परिवर्तन किये हैं वे ये हैं: मोढ़ियामें उतनी जगह ही रखी है जितनी तकुएके लिए आवश्यक है; मोढ़िया बहुत संकीर्ण बना डाला है; और मोढ़िया में तकुआ इस तरह बिठाया गया है कि चरखी आसानीसे खिसक नहीं सकती; उतनी ही जगह रखी गई है जिससे तकुआ आसानीसे घूम सके। ऐसा करनेसे तार टूटनेकी सम्भावना भी कम हो गई है और निरशंक होकर खूब महीन तार निकाला जा सकता है। तकुएको अभी और भी पतला करके उससे सहज ही महीन सूत काता जा सकता है या नहीं, सो देखना बाकी है।

मीराबहनका समाचार यहाँ तो मुझे नियमित रूपसे मिलता रहता है। यह पत्र लिखते समय तो २३ तारीख तकका समाचार मालूम था। उस समय वह खाटपर थी, यद्यपि पोस्टकार्ड उसके हाथका ही लिखा हुआ था। वह कमजोर बहुत हो गई है।

१. २०-७-१९३२ को।

सवेरेकी प्रार्थनाको लेकर जो फेरबदल किया गया है उसे मैंने समझ लिया है। मूल बात यह है कि प्रार्थना कभी त्रासरूप नहीं लगनी चाहिए। जिस तरह नीरोग व्यक्तिको भूख लगनेपर खानेकी जरूरत महसूस होती है उसी तरह जिस व्यक्तिकी आत्मा स्वस्थ है उसे भी, अपना एक भी दिन प्रार्थना किये बिना जाये तो प्रार्थनाकी जरूरत महसूस होनी चाहिए।

प्रभुदासके सम्बन्धमें जैसा समुचित जान पड़े करना।

अब तो शंकरभाईके हाथकी पट्टी खुल गई होगी।

प्रेमाबहनको संक्षिप्त पत्र लिखनेके लिए कहना उचित नहीं लगता। उसे हृदय उँड़ेल देनेका अवकाश तो मिलना ही चाहिए। इन पत्रोंमें वह अवश्य ही काफी समय देती होगी, लेकिन इससे उसे आत्मसंतोष होता होगा।

मैथ्यूको पत्र लिख रहा हूँ, उसे पढ़ना। विद्याभ्यासके सम्बन्धमें मेरे सुझावोंको तुम स्वयं जितना समझ सके होगे उतना ही आश्रमवासी ग्रहण कर सकेंगे।[1] यह ऐसी वस्तु हैं कि मेरे लेखोंसे एकाएक समझी नहीं जा सकती। इसपर अमल करके ही यह बताया जा सकता है कि यदि यह चाबी हाथमें आ जाये तो विद्याभ्यास कितनी सहल वस्तु है और यह कैसे बिना किसी आडम्बरके हो सकती है।

३१ जुलाई, १९३२

नर्मदाके बारेमें तो मैं अपने ३१[2]-७-१९३२ के पत्रमें लिख चुका हूँ। यह तुम्हें समयसे तो क्या मिला होगा! यहाँ अधिक कुछ लिखनेको नहीं है। शम्भुशंकरका पत्र वापस मिला है। यदि उसके सम्बन्धमें कुछ किया जा सकता होगा तो तुमने अवश्य किया होगा। इस बालाका शील अखण्डित रहे, ऐसा मेरा उसे आशीर्वाद तो है ही।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२४१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी।

१. देखिए "शिक्षा", १०-७-१९३२।

२. स्पष्टतः यहाँ भूलसे १६ के स्थानपर ३१ लिखा गया है; देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १६-७-१९३२।

२९७. पत्र : मीराबहनको

३१ जुलाई, १९३२

चि० मीरा,

तुम अद्भुत हो। अत्यधिक कमजोरीके बावजूद तुम्हारी लिखावट हमेशाकी भाँति बिल्कुल सधी हुई और साफ है। मालवीयजीको मैंने तार भेजा था।[1] उन्होंने जवाव दिया है कि जब तक तुम अपनी शक्ति पुनः प्राप्त नहीं कर लेतीं तबतक वह तुम्हें वहीं रोक रखेंगे। और अगर वहाँकी जलवायु तुम्हें अनुकूल पड़े, तो इससे अच्छा कुछ नहीं हो सकता कि तुम शिवप्रसाद बाबूकी हार्दिक मेहमानदारीमें उनके घरमें रहो और मालवीयजीकी प्रेमपूर्ण देखभाल तुमपर रहे; और इससे मैं भी पूर्णतया चिन्तामुक्त रह सकूँगा। तो तुम तुलसीकी पत्तीकी 'चाय'[2] ले रही हो। मैंने स्वयं यह कभी नहीं ली। मैंने उसके अनेक गुणोंके बारेमें सुना है। मेरी रायमें गर्म पानी ही उसका प्रधान तत्व है। लेकिन मुझे अनेक चिकित्सकों और मरीजोंकी गवाहीको नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। मैं तो सिर्फ तुम्हें पुनः पहले जैसा स्वस्थ देखना चाहता हूँ, और सो भी बिना हानिकारी कुनैन लिए। तुलसीकी पत्ती निश्चित ही अहानिकर है और उसमें एक अत्यन्त भीनी सुखद महक भी होती है।

वहाँ सभी मित्रोंको हमारा प्रेमाभिवादन कहना।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च:]

मुझे आशा है कि तुम्हें मेरे पहलेवाले पत्र मिल गये होंगे। सरकारने उन्हें तुम्हारे पास भेजनेकी अनुमति दे दी है। शुरूमें कुछ विलम्ब होता था, लेकिन इधर पत्रोंको डाकसे रवाना करनेके लिए शीघ्र ही पास कर दिया जाता है।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३२) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९६६८ से भी।

१. २६-७-१९३२ को।

२. इसपर मीराबहनने टिप्पणी लिखी है: "शिवप्रसाद बाबूका बूढ़ा नौकर तुलसीकी पत्तियों, पारिजातकी एक-दो पत्तियाँ, काली मिर्च और मिश्री पानीमें [उबालकर] मेरे लिए एक विशेष पेय तैयार करता था जिसको पीनेसे पसीना आता था और बुखारमें आराम मिलता था।"

२९८. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

३१ जुलाई, १९३२

चि० रामेश्वरदास,

तुम्हारे दो पत्र मिले। रामको[1] तुमने विनोबाकी देखभालके लिए छोड़ दिया, यह ठीक किया। यह वियोग नहीं बल्कि संयोग है। अब उसे वहाँसे न हटाना। गंगादेवीको यदि अंग्रेजी सीखनेकी इच्छा हो तो उसे अवश्य सीखने देना चाहिए। पतिको पत्नीका विकास अवरुद्ध करनेका कोई अधिकार नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८३) से।

२९९. पत्र : अमीना जी० कुरेशीको

३१ जुलाई, १९३२

चि० अमीना,

मैं तेरे लम्बे पत्रकी आशामें हूँ। तबीयत कैसी है? उर्दूकी पढ़ाई कितनी हुई है? लिख सके तो थोड़ा लिखना। बच्चे कैसे लगते हैं? सब लोग तेरे साथ कैसा व्यवहार करते थे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६१) से।

१. रामेश्वरदास पोद्दारका पुत्र।

३००. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

३१ जुलाई, १९३२

चि० पण्डितजी,

ताई वहाँ आई हैं इसलिए यदि हम उनके स्वास्थ्यमें सुधार कर सके तो यह हमारे लिए एक अच्छी बात होगी। सुन्दर स्वास्थ्यकी कला ढूँढ़ निकालना। ताईसे मुझे पत्र लिखवाना, भले ही मराठीमें लिखें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २४१) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

३०१. पत्र : निर्मला एच० देसाईको

३१ जुलाई, १९३२

चि० निर्मला (बुआ),

तुझे बुआ कहलाना अच्छा लगता है या नहीं? और तू बाबला[1] की बुआ है या नहीं? हर पत्रमें नये किस्मके कागजकी क्या जरूरत है? नोट-बुकके कागजों का इस्तेमाल महँगा पड़ता है और नोट-बुक भी [खराब] होती है। और उसके बायीं ओर जो हाशियाकी खड़ी लकीर होती है वह कागज ...[2]। जो चीज जिस कामके लिए होती है बहुत करके उसका उपयोग उसी कामके लिए किया जाना चाहिए। यही उसका उचित उपयोग है। हर पत्रमें प्रश्न पूछे ही जाने चाहिए, ऐसी कोई बात नहीं है। पत्रमें तो सप्ताहमें जो-कुछ पढ़ा [और समझा हो] उसका सुन्दर वर्णन दिया जा सकता है।

स्त्रीको अथवा किसी भी व्यक्तिको रक्षाके लिए बाहरी हथियारकी जरूरत नहीं है। कई बार तो वह हथियार स्वयं उसके विरुद्ध ही इस्तेमालमें लाया जाता है। और फिर जो स्त्री अहिंसाको ही धर्म समझती है वह मर कर भी अपनी रक्षा करेगी, मार कर नहीं। हर स्त्रीको सीता अथवा द्रौपदीके समान यह विश्वास होना चाहिए कि ईश्वर उसकी पवित्रताकी रक्षा करेगा। ईश्वर हममें अपने गुणोंके रूपमें

१. महादेव देसाईका पुत्र।

२. मूल प्रतिमें यहाँ कुछ अस्पष्टता है।

वास करता है और हमारी रक्षा करता है। यह बात [समझमें] आती है या नहीं? महादेवको तेरा पत्र मिला था। उसका जवाब तुझे मिला या नहीं?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७३) से। सी० डब्ल्यू० १००१ से भी; सौजन्य : निर्मलाबहन आई० मेहता

३०२. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

३१ जुलाई, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तू अपने वचनका अक्षर रूपमें तो ठीक पालन कर रही है, लेकिन सही अर्थमें वचनका पालन तभी माना जायेगा जब उसकी आत्माको भी हम ग्रहण करें। मुझे यह शिक्षा देनेका अधिकार नहीं है, क्योंकि दूधके सम्बन्धमें मैंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षर रूपमें पालन करके ही संतोष माना। मेरी प्रतिज्ञाका भाव तो यही था कि मुझे गाय-भैंसका ही नहीं अपितु किसी भी जानवरका दूध नहीं लेना। जीनेकी इच्छासे ही मैंने इस भावको तोड़ा। ऐसे अपरिपक्व व्यक्तिसे यदि तू कोई शिक्षा ग्रहण कर सके तो कर। मैंने तो तुझे वचनमुक्त कर ही दिया है। लिखना तभी जब लिखनेका मन हो। प्यारेलालके बारेमें तूने समाचार जान ही लिया होगा। मैं तुझे पहले ही यह लिख चुका हूँ कि मैं हरिलालके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४४) से।

३०३. पत्र : रमाबहन जोशीको

३१ जुलाई, १९३२

चि० रमा (जोशी)[1],

यदि तूने पत्र नहीं लिखा है तो अब झगड़ा होगा। मुझे तो ब्योरेवार पत्र चाहिए— व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टिसे। विमू और धीरूके क्या हाल हैं? आश्रम पहले जैसा था वैसा ही लगता है अथवा पहलेसे बेहतर अथवा खराब लगता है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३३५) से।

१. छगनलाल जोशीकी पत्नी।

३०४. पत्र : वनमाला एन० परीखको

३१ जुलाई, १९३२

चि० वनमाला,

सुरेन्द्रजीका पेड़ कैसे उखड़ गया? वहाँ दूसरा बो देना। वीरमती और चंचलसे पत्र लिखनेके लिए कहना। केशूके समान महीन सूत तू क्यों नहीं कात सकती?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७८) से। सी० डब्ल्यू० ३००१ से भी; सौजन्य : वनमाला एम० देसाई

३०५. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

३१ जुलाई, १९३२

चि० रामभाऊ,

तुम बालक लोग अब जवाबदारी समझने लायक तो अवश्य हो गये हो और इसीलिए ऐसे काम उठाने लगे हो। यह उचित भी है। तुम अंग्रेजीमें क्या लिखते हो? अपनी अंग्रेजीकी लिखावटका नमूना भेजना। एक छोटा-सा निबन्ध लिखना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९४) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

३०६. पत्र : निर्मला बी० मशरूवालाको

३१ जुलाई, १९३२

चि० निर्मला, (टोपीवाला बँगला)

तेरे पत्रकी मैं बाट जोह रहा था। 'गीतामंथन'[१] के प्रूफ मिले (अभी-अभी ही मिले हैं), लेकिन तेरा पिछला पत्र मुझे अभीतक तो नहीं मिला। मेरे पत्रोंकी स्थिति कुछ अस्त-व्यस्त हो गई थी। अब कहीं जाकर उसमें कुछ सुधार हुआ है।

तूने मुझे लिखा, सो बहुत अच्छा किया। लिखनेके लिए तो तेरे पास बहुत सारी चीजें हैं। तू यदि सबका समाचार मुझे देगी तो मुझे सचमुच बहुत खुशी होगी।

१. किशोरलाल मशरूवाला द्वारा रचित।

वाबूकाका[1] का पत्र मुझे मिला था। मैंने उन्हें लम्बा उत्तर भी दिया था।[2] कदाचित् उन्हें वह अब मिल गया होगा। गोमतीको मेरा आशीर्वाद कहना। हम तीनों ही मजेमें हैं। वहाँ सबको आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८८५) से; सौजन्य: निर्मलाबहन शराफ

३०७. पत्र : महेन्द्र वी० देसाईको

३१ जुलाई, १९३२

चि० मनु,

इस वारकी तेरी लिखावट अपेक्षाकृत ठीक कही जा सकती है। नमूनेके अक्षरोंकी जो कापी होती है उसे सामने रखकर चित्रकी तरह देख-देखकर अक्षर लिखनेसे लिखावट अच्छी होती है। तू पहले गुजराती, थोड़ी संस्कृत और गणित सीख ले और कताईकी सारी क्रियाओंको जान ले। तो बादमें मन करे तो अंग्रेजी भी जरूर सीखना। तेरा वजन खूब बढ़ना चाहिए। यदि तू अच्छी मात्रामें दूध-घीका सेवन करे और कसरत करे तो वजन अवश्य बढ़ेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६०) से; सौजन्य: वालजी गो० देसाई

३०८. पत्र : भगवानजीको

३१ जुलाई, १९३२

'ईशोपनिषद्'में एक मन्त्र है। उसका अर्थ यह भी किया जा सकता है, "तुम्हारे सम्मुख जो कार्य है उसपर तुम ध्यान दो"। ऐसा करते हुए अवश्यमेव ईश्वरसे साक्षात्कार होगा। ईश्वर तो सर्वत्र विद्यमान है। 'मेरे' काममें भी है। जिसे मैं 'अपना' मानता हूँ वह उसीका है। यदि इस कार्यपर ध्यान दूँगा तो मैं इसे उसीका कार्य मानूँगा। जो स्वामीका कार्य करता है वह स्वामीको प्राप्त करता है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. किशोरलाल जी० मशरूवाला।
२. १-७-१९३२ को।

३०९. पत्र : शारदा सी० शाहको

३१ जुलाई, १९३२

चि० शारदा,

कह सकते हैं कि तेरा पत्र अच्छा है। रक्षाके सम्बन्धमें निर्मलका पत्र पढ़ना।[1] जिसका मन पवित्र है उसे विश्वास रखना चाहिए कि पवित्रताकी रक्षा ईश्वर अवश्य करेगा। शस्त्र पर निर्भर रहना तो गलत है। यदि कोई शस्त्र छीन ले तो? अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला व्यक्ति शस्त्रपर विश्वास नहीं रखता, उसका शस्त्र तो उसकी अहिंसा ही होती है, उसका प्रेम होता है।

सत्यके प्रसंगमें यदि किसीके मनको कष्ट पहुँचता है तो उसमें हिंसा नहीं है। हम किसीको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते फिर भी यदि उसे कष्ट पहुँचे तो उसमें हिंसा नहीं है। मैं तुझसे गायके दूधकी माँग करूँ, पर क्योंकि मैंने उसे न लेनेका व्रत लिया है, इसलिए यदि तू मुझे न दे और इससे मुझे कष्ट पहुँचे तो उसमें तू हिंसा नहीं करती, बल्कि अपने धर्मका पालन करती है।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१२) से; सौजन्य : शारदाबहन जी० चोखावाला

३१०. पत्र : एक बालिकाको[2]

३१ जुलाई, १९३२

किताबोंमें जो-कुछ लिखा हुआ मिलता है उसे वेदवाक्य नहीं माना जा सकता। जो नीति-विरुद्ध हैं, अमानुषिक हैं, ऐसी बातें चाहे किसी भी पुस्तकमें क्यों न लिखी हों, हमें स्वीकार नहीं करनी चाहिए। जबतक हममें सच-झूठ परखनेकी बुद्धि नहीं आती तबतक हमें पढ़ी हुई बातके विषयमें अपने बड़े-बूढ़ोंका, जिनपर हमें पूरा-पूरा विश्वास हो, कहना मानना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. देखिए "पत्र : निर्मला एच० देसाईको", ३१-७-१९३२।

२. उक्त बालिकाने अपने पत्रमें गांधीजीसे पूछा था : पुस्तकोंमें मीराबाईके चमत्कारोंका जो वर्णन मिलता है यदि हम उनपर विश्वास न करें तो फिर क्या उनके बारेमें लोग जो-कुछ कहते हैं हमें उसपर यकीन करना चाहिए, और यदि पुस्तकोंमें लिखी बातका विश्वास न करें तो अपने वीरों और वीरांगनाओंके सम्बन्धमें जाननेका और क्या साधन है?

३११. एक पत्र[1]

३१ जुलाई, १९३२

तुम्हारे अन्दर सूक्ष्म गर्व और आत्मसंशय दोनोंकी ही भावनाएँ एक साथ काम कर रही हैं। जिन इतने सारे मनुष्योंके भाग्यको तुमने अपना भाग्य बना लिया है उनके बीच रह कर भी तुम अकेलापन कैसे अनुभव कर सकते हो, जबकि उनमें से प्रत्येक व्यक्तिको तुम्हारी सेवाकी आवश्यकता है? तुम किताबोंसे घिरे हुए हो और फिर भी तुम उनको छूते तक नहीं। तुम हिन्दी-भाषी स्त्री-पुरुषोंके बीच रहते हो और फिर भी उनसे बोलते नहीं। तुम कार्यकर्ताओंके बीच रहते हुए भी काममें नहीं कूद पड़ते और जहाँ एक तिनका उगता था वहाँ दो तिनके नहीं उगाते, जहाँ कल तक एक गज कपड़ा बुना जाता था वहाँ दो गज कपड़ा नहीं बुनते। यदि हमारा दर्शन तुरन्त दूसरोंकी प्रेमपूर्ण सेवामें कार्यान्वित नहीं किया जाता तो वह धूलके समान व्यर्थ है। तुमने अपने-आपको जिस महान ध्येयमें समर्पित कर दिया है उसके बीच तुम अपने लघु अहंको भूल जाओ। तुम्हें अपने इस आलस्यको झाड़ फेंकना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३१२. पत्र: एक बालिकाको[2]

३१ जुलाई, १९३२

आश्रममें न जानेका तुमने क्या सुन्दर कारणबताया है! यदि सब लोग ऐसा ही करेंगे तो? क्या तुमने काजी और उसके कुत्तेका किस्सा सुना है? काजी बहुत विख्यात था। उसके कुत्तेके मर जानेपर लाशको ले जानेके लिए बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया। उसमें सारा गाँव गया। लेकिन जब काजीकी मृत्यु हुई तब उसकी लाशको कन्धा देनेके लिए भी लोग न मिल सके। तुमने भी ऐसा ही किया है न? अथवा 'देहीनां स्नेही सकल स्वारथियां अंते अलगां रहेशे रे', अर्थात् प्राणीके सारे स्नेही स्वार्थी हैं और अन्तमें वे सारे अलहदा हो जायेंगे। इस भजनका तो हम सब अनुसरण करते हैं न? देहसे आत्माके निकल जानेपर हम उसे जला डालते हैं। लेकिन तुमने. . .? इस वाक्यको तुम ही पूरा करना। तात्पर्य यह कि व्यक्तिका

१. यह पत्र जिसे लिखा गया था उसने गांधीजीको लिखा था कि मैं बहुत अधिक एकाकी अनुभव करता हूँ और किसी भी कामका आदमी नहीं हूँ।

२. उक्त बालिकाने लिखा था कि चुम्बक शक्तिके अभावमें अर्थात् गांधीजीकी अनुपस्थितिमें उसकी आश्रम जानेकी इच्छा नहीं होती।

मोह नहीं रखना चाहिए। व्यक्तिके गुणोंके प्रति मोह हो सकता है लेकिन यह तो शुद्ध प्रेमजनित है। हर व्यक्तिके गुणोंकी किसी-न-किसी कार्यमें परिणति होती है। यदि हम उसके गुणोंको अच्छा समझते हों तो उससे जो कार्य मूर्तिमन्त हो हमें उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। इसलिए तुम आश्रममें जाना। इतनी बालाओंमें से तुमने थोड़ी बहुत बालाओंके साथ तो मैत्रीकी ही होगी। उनकी सार-सँभालका कार्य अपने ऊपर लेना। कभी-कभी प्रार्थनामें शामिल होना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३१३. तार: कमला नेहरूको

१ अगस्त, १९३२

कमला नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें अखबारोंमें चिन्ताजनक समाचार देखे। हालतका ठीक विवरण तारसे भेजो।

बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ३८३।

३१४. पत्र: विमलाबहन ए० पटेलको

१ अगस्त, १९३२

चि० विमला[1],

तेरा पत्र मिला। भक्तिबहनको तूने उपयोगी खबर भेजी है। उसे पहुँचाने की कोशिश करूँगा। कैदियोंसे कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। मुझे तू जब दुबारा पत्र लिखे तब बताना कि तूने पत्र पेंसिलसे क्यों लिखा? कोई विशेष कारण बिना जो पेंसिलसे पत्र लिखता है वह गलत काम करता है। यह हिंसा है, क्योंकि पेंसिलसे लिखे पत्र धुँधले हो जाते हैं और उससे पाठकको पढ़नेमें कठिनाई होती है। तू जितनी अच्छी है तेरी लिखावट भी उतनी ही सुन्दर है। लेकिन चूँकि तूने पेंसिलसे लिखा इसलिए अक्षर धुँधले पड़ गये हैं।

१. नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेलकी पुत्री।

हम तीनोंकी ओर से तुम सबको आशीर्वाद और यथायोग्य।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती विमला पटेल
पाटीदार मन्दिर
आणंद जंकशन

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२७६) से।

३१५. पत्र : मणिलाल गांधीको

३ अगस्त, १९३२

चि० मणिलाल,

तेरा पत्र मिला। तूने तारसे उत्तर माँगा है, लेकिन कैदी इस तरह झटपट तार नहीं दे सकता। सरकार तो कदाचित् तार भेज दे, लेकिन मुझे मर्यादाका पालन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त तेरा पत्र लिखे लगभग एक महीना बीत गया, अतः यदि दूसरा महीना भी बीत जाय तो कोई हर्ज नहीं होगा, यही सोचकर मैंने तार भेजनेकी अनुमति नहीं माँगी। पट्टा सीधे ही दे देनेका वचन दिया गया। यह ठीक बात तो नहीं हुई, लेकिन अब बन सके तो उसे बहाल रखनेके लिए मैं श्री कैलन-बैकको लिख रहा हूँ। पत्र इसीके साथ है।[1] मुझे उम्मीद तो यह है कि इस बीच तू ही उन्हें समझा सका होगा और मेरे पत्रकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

फीनिक्स न्यासकी प्रति मुझे भेजना। बहुत सम्भव है कि वह आश्रममें कहीं हो। लेकिन यदि न मिले तो भी मेरे पास एक प्रति होनी चाहिए ताकि मुझे कुछ देखनेकी जरूरत पड़े तो मैं देख सकूँ।

अब तो मैं समझता हूँ, तू वहाँ अच्छी तरहसे टिक गया है। यदि ऐसा हो तो कोई हर्ज नहीं। वहाँ भी सेवा ही करनी है। लेकिन मुझे पत्र लिखनेमें आलस न करना।

देवदास जेलमें काफी बीमार रहा। इसीसे उसे एक महीना पहले छुट्टी दे दी गई। मीराबहन भी खूब बीमार रही। डाक्टर मेहता भी भयंकर बीमारी भोग रहे हैं।

हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९१) से।

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

३१६. पत्र : प्रागजी के० देसाईको

३ अगस्त, १९३२

चि० प्रागजी,

तुम और पार्वती काममें इतने ज्यादा व्यस्त दीख पड़ते हो कि तुम्हें एक अक्षर लिखनेका भी फुरसत नहीं मिलती। यहाँ तो सरदार, महादेव और मैं तुम दोनोंको याद करते हैं। अतएव किसी दिन समय निकाल कर पत्र लिखना।

हम आनन्दसे हैं। कताई तो चलती ही है। महादेव आजकल ७० अंकका सूत कात रहा है। सरदार कातनेके अलावा विद्यार्थियों-जैसे उत्साहके साथ संस्कृतका अध्ययन कर रहे हैं। उनका यह अभ्यास तीव्र गतिसे चल रहा है। महादेव फ्रेंच भाषाका अभ्यास कर रहा है। मैं थोड़ा-बहुत उर्दू [का अभ्यास] कर रहा हूँ। सरदार रद्दी कागजोंसे लिफाफे बनाते हैं। यह उनका विशेष धन्धा कहा जा सकता है। यह पत्र भी उन्हींके लिफाफेमें आयेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०३३) से।

३१७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३ अगस्त, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा १ तारीखका पत्र मिला। उम्मीद है छात्रावासमें होनवाली भर्तीसे तू परेशान नहीं हो उठी होगी। लड़कियाँ अच्छी हों तो कोई तकलीफ नहीं होती। और यदि हमने अनासक्तिके पाठको अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया हो तो भी कोई परेशानी नहीं होगी। तेरे शरीरके लिए दूसरे लोग तो बाह्य उपचार ही सुझा सकते हैं। अन्तरकी बात तो तू ही ज्यादा जान सकती है। मनोविज्ञानको जाननेवाले लोगोंपर मुझे अधिक विश्वास नहीं है। मनोवैज्ञानिक इस शास्त्रमें चाहे कितने भी पारंगत क्यों न हों फिर भी वे मनको कहाँ तक जान सकते हैं? तात्पर्य यह कि तेरी सेहतका मनके साथ जो सम्बन्ध है इसकी जानकारी तो स्वयं तुझे ही होनी चाहिए; और इसके लिए उपचार करना चाहिए। लेकिन इसी पत्रमें तू यह भी लिखती है कि भारी अथवा हलके कामका, नींदका अथवा उसके अभावका शरीरपर अवश्य असर होता है। इसलिए सच बात तो यह है कि आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियोंका स्वास्थ्यके साथ अनिवार्य सम्बन्ध है। बाह्य साधनोंकी उपेक्षा

करके केवल मनसे कोई व्यक्ति अपने शरीरको नीरोग नहीं रख पाया है। इसलिए निद्रा, आराम और कामके सम्बन्धमें नारणदास जो कहे उसे सुनो और मनको टटोलो। चाहे जैसे भी हो, अपने शरीरको लोहेके समान बनाओ। मासिक-धर्मके दौरान गर्म पानीमें नहीं बैठना चाहिए, यह बात मुझे पहले ही लिख देनी चाहिए थी।

हृदयकी आवाज एक ऐसी वस्तु है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन कितनी ही बार हमें ऐसा महसूस होता है कि हमें अपने हृदयसे अमुक प्रेरणा हुई है। जिस समय मैंने इसे पहचानना सीखा वह समय मेरा नियमित रूपसे प्रार्थना करनेका समय कहा जा सकता है, अर्थात् १९०६ के आसपास। तू पूछती है, इसीसे याद करके यह लिखता हूँ। बाकी मुझे कभी ऐसी अनुभूति हुई हो कि 'अरे! आज तो कुछ नया अनुभव हुआ है,' सो ऐसा कुछ मेरे जीवनमें नहीं है। जैसे हमारे जाने बिना बाल बढ़ते हैं, उसी तरह मेरे आध्यात्मिक जीवनमें भी वृद्धि हुई है, ऐसी मेरी मान्यता है।

नाम-स्मरणसे पापोंका परिष्कार इसी तरह होता है। शुद्ध भावसे नाम-स्मरण करनेवाले व्यक्तिके मनमें श्रद्धा अवश्य होती है। पापका परिष्कार अर्थात् आत्मशुद्धि। श्रद्धापूर्वक नाम जपनेवाला कभी नहीं थकता। तात्पर्य यह कि जो नाम-स्मरण जिह्वासे होता है वह अन्ततः हृदयमें बैठता है और उससे आत्मशुद्धि होती है। ऐसा अनुभव अपवाद रहित है। मनोवैज्ञानिक भी यह मानते हैं कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है। रामनाममें यही बात लागू होती है। नाम-स्मरण पर मेरी अटूट श्रद्धा है। नाम-स्मरणकी शोध करनेवाला व्यक्ति अनुभवी था और यह शोध अत्यन्त महत्त्वकी है, ऐसा मेरा दृढ़ अभिप्राय है। अनपढ़ व्यक्तिके लिए भी शुद्धिका द्वार खुला होना चाहिए। यह नाम-स्मरणसे सम्भव है। (देखो, गीता ९,२२; १०,१०) माला आदि तल्लीन होनेमें, गिनती करनेमें साधन रूप है।

विद्याध्ययन सेवाके लिए ही होता है। लेकिन सेवामें अपूर्व आनन्द है, अतः कह सकते हैं कि विद्याध्ययन आनन्दके लिए ही है। लेकिन आजतक किसी व्यक्तिको सेवा किये बिना केवल साहित्य विलाससे अखण्ड आनन्दकी अनुभूति होनेकी बात मैं नहीं जानता।

कलापर किसी देशका अथवा व्यक्तिका एकाधिकार नहीं हो सकता। जिस चीजमें छिपाने लायक कोई बात है वह कला नहीं है।

प्रत्येक देशको अपने उद्योगोंकी रक्षा करनेका अधिकार है और (यह) उसका कर्तव्य है।

अनाश्रितको आश्रय प्रदान करना अहिंसकका धर्म है और अनाश्रित कौन है, यह तो प्रत्येककी परिस्थितियोंको जाननेके बाद ही कहा जा सकता है।

जो बाहरसे खराब दीखता है वह अन्दरसे भी खराब ही होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। उर्दू पुस्तकें बाहरसे खराब दिखाई देती हैं, लेकिन यह तो प्रकाशककी गरीबीका द्योतक है। लेकिन उसमें लिखे लेख क्या उत्तम नहीं हो सकते? कुछेक पुस्तकोंके तो हैं। लेकिन इस तालिकाको तैयार करनेमें दिलचस्प अथवा नीरस होनेकी

बात कहाँ आती है? तालिका बनाई ही जानी चाहिए। इसलिए उसमें रस होना ही चाहिए, क्योंकि अपना कर्तव्य करनेमें रस है। और फिर यदि तू किसी समय उर्दू सीखनेका कष्ट करे तो तुझे उसमें आनन्द आने लगेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९७) से। सी० डब्ल्यू० ५७४८ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३१८. तार : छगनलाल पी० मेहताको

४ अगस्त, १९३२

छगनलाल मेहता[1]
८, पगोडा रोड
रंगून

ईश्वरकी इच्छा बलवती है।[2] तुम और माताजी सान्त्वना धरो। आशा है तुम्हारे पिता व्यावसायिक ईमानदारी, उन्मुक्त आतिथ्य-सत्कार और महान उदारताकी जो परम्परा छोड़ गये हैं उन सबोंका तुम पूर्णतया निर्वाह करोगे। सरदार और महादेव भी मेरे साथ सम्वेदना भेजते हैं। जीवन भरके विश्वस्त मित्रके बिना मैं एकाकी अनुभव करता हूँ। मुझे सब चीजोंसे अवगत कराते रहना। तुम सबपर ईश्वरका वरद हस्त बना रहे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १ तथा बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग २, पृष्ठ ४४१।

१. प्राणजीवनदास मेहताके ज्येष्ठ पुत्र।

२. डा० प्राणजीवन मेहताकी ३ अगस्तको मृत्यु हो गई थी।

३१९. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

४ अगस्त, १९३२

डा० मेहता नहीं रहे। मैंने जीवनभरका वफादार मित्र खो दिया है। लेकिन मरनेके बाद उनकी उपस्थितिको मैं और ज्यादा तीव्रतासे अनुभव करता हूँ, क्योंकि मैं उनके अनेक गुणोंकी यादको अब और भी बहुमूल्य मानता हूँ। यह निधि अब एक पवित्र धरोहर बन गई है। साथमें मगनलालके लिए एक पत्र संलग्न कर रहा हूँ। मैं तुमसे अपेक्षा करता हूँ कि तुम उसे उसके पिताका योग्य पुत्र बनाओगे। मैंने उसे सलाह दी है कि वह चिन्ता न करे और अपनी पढ़ाई जारी रखे। इधर हालमें हालाँकि डा० मेहता आर्थिक दृष्टिसे बरबाद हो गये थे, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि अपनी स्वभावगत सावधानी बरतते हुए उन्होंने मगनलालके लिए उपयुक्त आर्थिक प्रबन्ध कर दिया होगा। मगनलालको मालूम होगा। मुझे खेद है कि इस वक्त उनके परिवारके लोगोंके पास मैं नहीं हूँ। लेकिन मेरी नहीं, ईश्वरकी इच्छा ही पूरी हो, आज और हमेशा।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३२०. पत्र : एस्थर मेननको[१]

४ अगस्त, १९३२

बन्धुत्वकी स्थापनाका विचार तो फिलहाल एक दूरकी साध है। मेरी दृष्टिमें तो यह सच्ची आध्यात्मिकताकी कसौटी है। जबतक हम सभी प्राणियोंके साथ एक जीवन्त समानता नहीं अनुभव करते तबतक हमारी प्रार्थनाएँ, उपवास और व्रतादि बिल्कुल व्यर्थ हैं। लेकिन अभी हृदयसे अनुभव करनेकी बात तो दूर रही, हमने बौद्धिक स्तरपर भी इस बातको नहीं स्वीकारा है। हम तो आज भी चुनावकी वृत्ति रखते हैं। चुने हुए लोगोंका भ्रातृ-समाज एक स्वार्थपूर्ण साझेदारी है। बन्धुत्वमें किसी प्रकारके प्रतिफल या प्रतिक्रियाकी अपेक्षा या आवश्यकता नहीं होती। यदि ऐसा होता तो हम जिन स्त्री-पुरुषोंको दुष्ट मानते हैं उन लोगोंसे प्रेम नहीं कर पाते। कलह और ईर्ष्याके वातावरणमें बन्धुत्वकी भावना रख सकना अत्यन्त कठिन काम है। इसके बावजूद सच्चा धर्म हमसे इसीकी माँग करता है। अतः दूसरे लोग क्या

१. एस्थर मेननने पूछा था: "बापू, कगावा, अल्बर्ट स्वीट्जर और अन्य लोगों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किये जानेके बावजूद बन्धुत्वकी भावना राष्ट्रोंके बीच घर क्यों नहीं कर पाई है?" (**द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड–१)

करते हैं इसको न देख कर हममें से प्रत्येकको इस सत्यकी प्रतीति करनेका प्रयत्न करना है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३२१. पत्र: मणिलाल आर० झवेरीको

४ अगस्त, १९३२

चि० मणिलाल[1],

डाक्टरका स्वर्गवास होनेका तार मुझे अभी-अभी मिला। मुझे रोज तार आया करते थे। तुम्हें भी मिले होंगे। पता नहीं तुम्हें रंगून जाना होगा अथवा नहीं। छगनलालको मैंने तार दिया ही है। डाक्टरका नाम स्थायी बना रहे, वैसा काम करनेमें तुम कितना योगदान दे सकते हो सो बताना। डाक्टर कोई वसीयत छोड़ गये हैं या नहीं, सो मैं नहीं जानता। रंगूनमें फिलहाल छगनलालके पास कौन-कौन लोग हैं, यह तुम्हें मालूम हो तो लिखना। ऐसेमें मगनका क्या होगा? यह सुन्दर घोंसला अब बिखर जानेवाला है। तुम सबको डाक्टरका वियोग अवश्य खलेगा। लेकिन मेरी स्थिति विचित्र है। इस संसारमें डाक्टरसे बढ़कर मेरा अन्य कोई मित्र नहीं था। मेरे लिए तो वे जीवित ही हैं। लेकिन मैं यहाँ बैठे-बैठे उनके नीड़को अविच्छिन्न रखनेमें लगभग कोई भाग नहीं ले सकता, यह बात मेरे लिए अत्यन्त कष्टदायक है। तुमसे जो-कुछ हो सके सो तुम करना। मैं छगनलालके साथ निरन्तर पत्र-व्यवहार करता रहूँगा। तुम मुझे अभी नियमपूर्वक पत्र लिखते रहना। नानालाल[2] इस समय कहाँ हैं? साथका पत्र[3] उन्हें पहुँचा देना। उम्मीद है, तुम दोनों कुशलतापूर्वक होगे। तिलक कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

खीमचन्दका पत्र[4] भी पढ़ जाना और उसे पहुँचा देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०४५) से; सौजन्य: धीरूभाई झवेरी। **महादेवभाईनी डायरी**, खण्ड – १ से भी।

१. रेवाशंकर जगजीवन झवेरी (प्राणजीवन मेहताके भाई) के पुत्र।

२. नानालाल के० जसाणी, डा० प्राणजीवन मेहताके व्यापार-प्रबन्धक और साझेदार।

३. देखिए अगला शीर्षक।

४. पत्र उपलब्ध नहीं है।

३२२. पत्र : नानालाल के० जसाणीको

४ अगस्त, १९३२

डाक्टरका निधन होनेसे मेरी स्थिति तुम सबसे ज्यादा विषम हो गई है। मेरा सबसे पुराना साथी, मित्र अथवा जो भी कहें वह चला जाये और मैं पिंजरेमें पड़ा उसके पीछे कुछ न कर सकूँ, यह बात मुझे कचोटती है। लेकिन इसके पीछे भी ईश्वरका कोई उद्देश्य है; कृपा भी हो सकती है। डाक्टरके नीड़को आबाद रखनेकी तुममें कितनी शक्ति है, यह मैं नहीं जानता। जितनी हो, उसका उपयोग करना। अब तो हमें यह देखना है कि डाक्टरका नाम निष्कलंक रहे और उनके गुण उनके लड़कोंमें आयें।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३२३. पत्र : बबलभाई मेहताको

४ अगस्त, १९३२

बबलभाई,

तुम्हारा पत्र मिला।[१] मेरा अनुभव तो यह कहता है कि समस्त संसार ठीक ढंगसे कैसे चले इसका विचार करनेसे बेहतर तो यह है कि हम स्वयं ठीक ढंगसे कैसे चल सकते हैं, इसका विचार किया जाये। संसार सरल गतिसे चलता है कि उल्टा, सो हम नहीं जानते। लेकिन यदि हम सीधा चलते हैं तो अन्य लोग भी हमें सीधे चलते जान पड़ेंगे अथवा सीधा चलनेका मार्ग खोज सकेंगे।

आत्मानुभूति करना अर्थात् शरीरकी सुध खो देना अर्थात् शून्यवत हो जाना। जो शून्यवत हो गया है उसने आत्म-साक्षात्कार कर ही लिया है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४४९)से।

१. इस पत्रमें बबलभाई मेहताने लिखा था: "संसार तो हमेशा जैसा है वैसा ही रहा है; यह सुधरेगा कब?" (**द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड–१)

३२४. एक पत्र[१]

४ अगस्त, १९३२

चि० . . .,

तू पितृविहीन हो गया लेकिन हम सबके पिताके पिता जीवित हैं, यह याद रखना। डाक्टर तो दुःखसे मुक्त हो गये। मैं कामना करता हूँ कि तू उनके समान सज्जन और बुद्धिमान बने। उनके समान बुद्धि और विद्वत्ता तुझमें नहीं आ सकती, लेकिन उन-जैसी भलमनसाहत, उदारता, सचाई आदि तो तुझमें अवश्य आ सकती है और यही गुण उपयोगी भी होते हैं। डाक्टरकी जो लोग वन्दना करते हैं सो उनकी विद्वत्ताके लिए नहीं, अपितु उनके गुणोंके कारण करते हैं। तू अधीर मत होना। यदि तू रंगून नहीं गया है तो जानेकी कोई जरूरत नहीं। अपने हिस्सेके सम्बन्धमें चिन्ता नहीं करना। मैं छगनलालको लिख रहा हूँ।[२] उसपर विश्वास करना। अविश्वास करनसे तेरा कुछ बननेवाला नहीं है। मुझे लिखते रहना। तू सारी बात समझ गया है, ऐसा मैं मान लेता हूँ। ईश्वर तेरी रक्षा करे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

भावनगर समाचार, १७-१२-१९५५

३२५. पत्र : छगनलाल पी० मेहताको

४ अगस्त, १९३२

तुमने डाक्टरका स्वर्गवास होनेके महत्त्वको अच्छी तरह समझ लिया है, यह बात अब भविष्यके तुम्हारे आचरणसे स्पष्ट दिखाई देनी चाहिए। डाक्टरके अनेक गुण ही उनकी सच्ची वसीयत हैं। वही तुम्हारी विरासत है। तुम ऐसा कुछ भी नहीं करो जिससे छोटे भाइयोंको तनिक भी क्लेश हो। . . .[३] मेरे जीवन-भरका साथी चला गया और मैं अपंग हूँ, असहाय हूँ, यह बात मुझे कचोटती है। अन्यथा इस समय मैं तुम्हारे निकट खड़ा होता और कदाचित् डाक्टरका सिर मेरी गोदमें होता और उनका अन्तिम श्वास छूटता। लेकिन ईश्वर हमारा मनचाहा कभी पूरा

१. यह पत्र सम्भवतः डा० प्राणजीवन मेहताके पुत्र रतिलाल मेहताको लिखा गया था।

२. देखिए अगला शीर्षक।

३. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

नहीं होने देता। इसलिए पत्र-व्यवहार द्वारा जो-कुछ कर सकता हूँ, उतना भर करना मेरे वशकी बात रही।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३२६. पत्र : नारणदास गांधीको

[४ अगस्त, १९३२][1]

चि० नारणदास,

इसके साथ रतुभाईको लिखा पत्र[2] है। लगता है, यहाँसे भेजी जानेवाली डाक अब नियमित हो गई है। यह ऐन मौकेपर हुई है। अब जरूरत जान पड़े और तुम्हें मुझे रोज लिखना पड़े तो रोज लिखना। तुम जो जानकारी प्राप्त कर सको सो करना।

डाक्टरका नवम्बरमें वहाँ आनेका इरादा था, लेकिन भगवान कब किसीकी इच्छा पूरी होने देता है।

बापू

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने, भाग-१। सी० डब्ल्यू० ८२४४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३२७. पत्र : रतिलाल सेठको

४ अगस्त, १९३२

भाई रतिलाल[3],

डाक्टरका वियोग सबसे ज्यादा कदाचित् मुझे खलेगा, क्योंकि डाक्टरके कार्यको बनाये रखनेमें मैं कोई भी भाग नहीं ले सकता। डाक्टरके मनमें छगनलालके कामको लेकर आशंका थी। इस भयको मिथ्या सिद्ध करनेमें कदाचित् तुम भाग ले सकते हो। लीलावती[4] का छगनलाल पर पूरा अधिकार है, यह बात मैंने तब देखी थी जब मैं रंगूनमें था और यह मुझे अच्छी लगी थी। इस प्रभावका लीलावती सदुपयोग करती थी अथवा दुरुपयोग, इसका मैं कोई निश्चय नहीं कर सका था। मुझे सन्देह तो था। मैंने उसे चेतावनी भी दी थी। उसने मुझे अभयदान भी दिया था।

१ और २. देखिए अगला शीर्षक।

३. छगनलाल मेहताके ससुर।

४. छगनलाल मेहताकी पत्नी।

तथापि डाक्टरने मुझे यहाँ कई पत्र लिखे थे। उनमें उन्होंने उसके बारेमें बहुत निराशा व्यक्त की थी। रंगूनमें तो डाक्टर मेरे सामने रोये भी थे। लीलावती पर तुम्हारा कितना नियन्त्रण है सो मैं नहीं जानता। डाक्टरका भय कहाँ तक सत्य था यह भी मैं नहीं जानता। डाक्टरका नीड़ बिखरे नहीं, सब भाई मिलकर रहें, आपसमें झगड़ा न करें और व्यापार बना रहे, इतना सब करनेमें तुम जो योगदान दे सकते हो उसमें पीछे नहीं हटोगे, ऐसी मुझे तुमसे आशा है।

मुझे दिल खोलकर पत्र लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१६७) से। सी० डब्ल्यू० ४६६१ से भी; सौजन्य: चम्पा आर० मेहता।

३२८. तार: नारणदास गांधीको

५ अगस्त, १९३२

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

रतिलाल और चम्पाके साथ मेरी सम्वेदना है। उनको मेरी जोरदार सलाह है कि वे रंगून न जायें। मैं रंगूनके साथ बराबर सम्पर्क में हूँ।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ८२४३) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

३२९. पत्र: नेली सेनगुप्तको

५ अगस्त, १९३२

यह तुम्हारे पति[1] की बीमारीके बारेमें हम क्या सुन रहे हैं? कृपया मुझे सही हाल भेजो और उन्हें हमारा अभिवादन भेजना। तुम जानती ही हो कि सरदार और महादेव देसाई यहाँ मेरे साथी हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, १४-८-१९३२

१. जे० एम० सेन-गुप्त।

३३०. पत्र : हरदयाल नागको

५ अगस्त, १९३२

प्रिय एच० डी० बाबू,

आपका पत्र पाकर हम सबोंको बहुत आनन्द हुआ। आपकी यह बात पढ़कर मुझे आपसे ईर्ष्या-सी होती है कि इस पकी हुई उम्र[1] में आपने तकली चलाना सीख लिया है। यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आपका वजन १६ पौंड बढ़ गया है। ईश्वर आपको बहुत वर्षों तक सेवा करनेका मौका दे। हम लोग अकसर आपकी आश्चर्यजनक शक्ति-स्फूर्तिके बारेमें चर्चा करते हैं।

हम सबोंके अभिवादन सहित।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३३१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

५ अगस्त, १९३२

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। लगता है कि मैं अब पत्र लिख सकूँगा।

काकूने क्या किया था?

रमीबहनसे कहना कि वह मुझे पत्र लिखे। उसे क्या रोग है? रमीबहनको समझना चाहिए कि तुम परिवारकी व्यक्तिगत रूपसे सेवा करनेके योग्य नहीं रह गई हो। इतना त्याग उसे करना ही चाहिए। और फिर रमीबहन तो ज्ञानी है। उसे तो ईश्वरीय सहायताकी जरूरत होनी चाहिए। यह तो वह जहाँ भी जायेगी, मिलेगी।

काकूके बारेमें मैं तजवीज कर रहा हूँ। उसका मुझे एक पत्र आया था। हमें उसकी चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं। हमसे जो-कुछ बन सके तो करना चाहिए। तुम मुझे पत्र तो नियमित रूपसे लिखती रहना।

बापू

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने। सी० डब्ल्यू० ८७९२ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१. पचासी वर्ष।

३३२. डा० प्राणजीवनदास मेहता[1]

७ अगस्त, १९३२

यदि मैं आश्रममें होता तो इस पुण्यात्माके बारेमें अवश्य कुछ कहता। डाक्टर मेहता मेरे सबसे पुराने साथी थे। मैं जब पहली बार इंग्लैंड गया[2] तब मेरी उनके साथ मित्रता हुई थी जो दिन-प्रतिदिन परिपक्व होती चली गई। इंग्लैंडमें सबसे पहले मेरी मुलाकात उन्हींसे हुई और तभीसे वह मेरा पथ-प्रदर्शन करने लगे। लेकिन यह तो 'आत्मकथा'[3] में दिया है। यहाँ मैं अपने निकट सम्बन्धके विषयमें नहीं लिखना चाहता। डाक्टरमें ऐसे कौनसे गुण थे जिनके लिए मैं उन्हें पुण्यात्मा मानता हूँ, उन गुणोंको जान लेने पर हम उनका अनुकरण कर सकें और वे जो कर सके सो हम भी कर सकते हैं, ऐसा मनमें विश्वास और श्रद्धा रख सकें।

डाक्टरको ग्रान्ट मेडिकल कालेजसे स्वर्ण-पदक मिला था। बादमें उन्होंने इंग्लैंडमें अनेक परीक्षाएँ पास कीं और वे बैरिस्टर बने। लेकिन यह सब मैं छोड़े देता हूँ। सब कोई विद्वान नहीं बन सकते। उसके लिए वाह्य संयोग होने चाहिए। व्यक्ति अपने अक्षर-ज्ञानके लिए नहीं अपितु अपने गुणोंके कारण पूजे जाते हैं। डाक्टरमें मैंने दृढ़ता, वीरता, उदारता, पवित्रता, सत्यप्रियता, अहिंसा, सादगी आदि गुणोंको उत्तरोत्तर बढ़ते देखा। अमुक निश्चय करनेके बाद वे अपने निश्चयसे कभी पीछे नही हटते थे। इसीसे उनके वचन पर आसपासके लोगोंमें विश्वास था। डाक्टर सदैव निर्भय थे। इंग्लैंडसे लौटने पर उन्होंने देखा कि उनके स्वाभिमानकी रक्षा नहीं हो सकती। इसीसे उन्होंने अपना वतन मोरवी हमेशाके लिए छोड़ दिया। उनकी उदारताकी कोई सीमा ही न थी। उनका घर धर्मशाला था। कोई भी योग्य गरीब व्यक्ति उनके घरसे खाली हाथ नहीं लौटता था। उन्होंने अनेक लोगोंका निर्वाह किया था। डाक्टर द्वारा की जानेवाली सहायतामें कोई दम्भ न था। अपनी उदारताका डाक्टरने कभी ढिंढोरा नहीं पीटा। उनकी इस उदारतामें न्याति-जातिका अथवा प्रान्तका कोई बन्धन न था। सब प्रान्तके लोगोंको, समस्त जातिके लोगोंको और समस्त धर्मावलम्बियोंको उनकी इस उदारताका लाभ मिला था। डाक्टरके पास विपुल धन था, लेकिन उन्हें इसका गर्व न था। डाक्टरने अपने उपभोगके लिए इस धनसे बहुत कम खर्च किया था। और यह कहा जा सकता है कि अपने विशाल बँगलेमें स्वयं अपने लिए उन्होंने छोटीसे-छोटी जगह रख रखी थी। अपने सुखोपभोगके लिए उन्होंने कोई पैसा खर्च किया हो, इसकी मुझे याद नहीं आती। डाक्टरने अत्यन्त दृढ़ताके साथ एकपत्नीव्रत

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको" २/७-८-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

२. अक्टूबर, १८८८ में।

३. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ ३९-४०

का पालन किया था, ऐसी मेरी मान्यता है। अनेक वर्षोंसे उन्हें ब्रह्मचर्य बहुत प्रिय था। अपने प्रारम्भिक जीवनमें डाक्टरको कदाचित् ही पुस्तकें पढ़नेका शौक था। लेकिन बादमें यह शौक बढ़ गया था। मुझे वे यहाँ जो पत्र लिखा करते थे उनमें अपनी पढ़ी हुई पुस्तकोंका उल्लेख किया करते थे। वे सब धार्मिक पुस्तकें ही थीं। डाक्टरने अपने व्यापारमें और वकालतमें, जहाँतक मैं जानता हूँ, सत्यव्रतका पालन ही किया था। मैं यह जानता हूँ कि असत्य और दंभके प्रति उन्हें बड़ी घृणा थी। उनकी अहिंसा उनके चेहरेसे लक्षित होती थी, उनकी आँखोंमें उसे पढ़ा जा सकता था और उसमें दिन-ब-दिन वृद्धि होती जाती थी। ऐसे तो व्यक्तिकी आत्मा कभी नहीं मरती, लेकिन डाक्टर जैसे व्यक्ति तो अपने गुणोंसे विशेष रूपसे अमर हो जाते हैं। आश्रमके साथ उनका निकट सम्पर्क आश्रमकी धर्म-वृत्तिका पोषक था। हमें चाहिए कि हम इस पुण्यात्माके जीवनसे यथाशक्ति शिक्षा ग्रहण करें।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३३३. पत्र : नारणदास गांधीको

२/७ अगस्त, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक आज मिली है। नर्मदा बच जाये तो समझना कसाईके घरसे गाय बच गई। लीलाधर[1] की जो मदद की जा सकती है सो करना। उससे प्रेम दर्शानेसे कदाचित् वह व्यवस्थित-चित्त भी हो जाये। वह आश्रमसे बाहर है, ऐसा उसे कभी भी महसूस न होने दें। तथापि वह स्वतन्त्र है और हम भी स्वतन्त्र रहें। लड़कियोंके लिए उसे कुछ जिम्मेदारी लेनी ही चाहिए। इसमें उसीका भला है। उसको लिखा मेरा पत्र[2] पढ़ लेना।

जयसुखलाल[3] की लड़कियोंके बारेमें जो करना उचित जान पड़े सो करना। यदि बड़ी लड़की अपनी इच्छासे वहाँ न रहना चाहे तो उसकी देखभाल करना मुश्किल होगा। इन्दुका पत्र तुमने पढ़ा होगा। उसको मैंने उत्तरमें जो पत्र लिखा है[4] वह पढ़ना। मणिके बारेमें डाक्टर क्या कहता है? कुसुमके फेफड़े यदि अच्छे हो गये हों तो इस बातका ध्यान रखना कि अब वह अधिक परिश्रम करके उन्हें बिगाड़े नहीं। इस ऋतुमें उसे अवश्य लाभ होना चाहिए। लेकिन उसकी दो शर्तें हैं — बहुत

१. वाडजके एक दूकानदार। जब उनकी पत्नी बीमार थीं तब उनका परिवार कुछ समयके लिए आश्रममें ठहरा था।

२. उपलब्ध नहीं है।

३. जयसुखलाल गांधी

४. उपलब्ध नहीं है।

परिश्रम न करे, और दूध-घी नियमित रूपसे खाये। विद्यापीठके किसी भी व्यक्तिको जहाँ तक बन सके आश्रय देना। देवदासके बारेमें मुझे भी समाचार मिला है, उसी तरह डा० मेहताके सम्बन्धमें भी। डा० मेहताकी बीमारी इस बार सम्भवतः प्राणलेवा सिद्ध होगी। डा० मेहताने कैसी वसीयत लिखी होगी, यह मैं नहीं जानता। छगनलाल व लीलावतीकी ओरसे उन्हें काफी दुःख पहुँचा है, यह बात तो तुमने डाक्टरके पत्रोंसे जान ली होगी। रतुभाईकी स्थिति फिलहाल कैसी है? उन्हें फुरसत मिलती है या नहीं, यह तो तुम अच्छी तरहसे जानते होंगे। रतुभाई यदि वहाँ पहुँच जायें और इस बातका ध्यान रखें कि छगनलाल तथा लीलावतीसे कोई उलटा काम न हो तो बहुत ही अच्छा हो। रतिलाल अवश्य जाना चाहेगा। यदि वह जाये तो उसे रोकनेका प्रयत्न करना मैं व्यर्थ समझता हूँ। लेकिन इसके बारेमें तो तुम ही विचार कर सकते हो। नानालाल आजकल कहाँ हैं? हरिलालके बारेमें पढ़कर मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। उसका पूरा जीवन कदाचित् ऐसे ही बीतेगा। रामजीको लिखा मेरा पत्र[1] पढ़ जाना। उसे हम जहाँ तक निभा सकते हैं वहाँ तक निभाना हमारा धर्म है। अन्त्यजोंके प्रति [किये गये अत्याचारोंका] यह अपना प्रायश्चित्त है। रामजी अथवा दूधाभाईके समान अच्छे व्यक्ति हमें शायद ही मिल सकते हैं।

४ अगस्त, १९३२

प्रार्थनाके जिस स्थल पर बाढ़ने आक्रमण किया है उसके बारेमें यदि वहाँके इंजीनियर श्री मलिकसे बात करोगे तो वह तुम्हारी मदद करेंगे। उन्हें कदाचित् तुम जानते होंगे। वे पहले आश्रममें आया करते थे। भाई मावलंकरसे[2] कहोगे तो वह उन्हें भेजेंगे। बाढ़का भय पहलेसे ही था। इसीसे बुनाई-घर और हृदयकुंज जितनी दूर बनाये जा सकते थे उतनी दूर बनाये गये थे। यह कार्य कदाचित् बरसातमें तो हो भी नहीं सकता, लेकिन जैसा इंजीनियर कहे वैसा करना ही ठीक होगा। बंगालमें तो ऐसा हर साल होता है। वहाँकी नदियोंमें जमीनको चाट जानेकी बड़ी खासियत है।

७ अगस्त, १९३२

डाक्टरके बारेमें तुम्हारा तार और पत्र दोनों समयसे मिले। रंगूनसे तो मुझे नियमित रूपसे मिलते रहते थे। जिस दिन तुम्हारा तार मिला उसी दिन[3] मैंने तुम्हें, रतिलालको और चम्पा तथा रतुभाईको पत्र लिखे थे जो तुम्हें तुरन्त मिल गये होंगे। मेरा तार[4] भी मिला होगा। मृत्यके तारके बाद रंगूनसे अभी और कोई

१. उपलब्ध नहीं है।
२. गणेश वासुदेव मावलंकर।
३. ४-८-१९३२ को।
४. देखिए "तार: नारणदास गांधीको", ५-८-१९३२।

तार नहीं आया है जिससे चिन्ता होती है। आये, या न आये रतिलाल और चम्पाका हित न जानेमें ही दीखता है। उनके नसीबमें जो होगा सो होगा। मगनलालके बारेमें भी मेरी यही सलाह है।

मेरी खुराकमें पिछले आठ दिनोंसे थोड़ा-सा परिवर्तन हो गया है। दोनों समय रोटी लेता था इससे कुछ कब्जकी शिकायत होने लगी थी। इसलिए अब एक समय चार केले लेता हूँ और साँझको केले न लेकर, पहले जैसे हरी सब्जियाँ लिया करता था वैसे लेता हूँ। फिलहाल तो मुख्यतः ग्वार [की फली] और शलगम लेता हूँ। उनमें दूध मिलाकर खाता हूँ। साथमें मोसंबी अथवा नारंगी तो होती ही है। सवेरे भी होती है। इससे कब्जमें थोड़ा लाभ हुआ है। अभी देख रहा हूँ। अब जो प्रयोग किये जायेंगे उनमें अधिकांशतः दूध तो रहेगा ही। इस बार मेरा वजन १०५ पौंड हो गया है। सब तरहसे तबीयत अच्छी ही कही जा सकती है।

कुल ३७ पत्र हैं। इनमें ९ पत्र डोरीसे बँधे हुए हैं।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२४२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३३४. पत्र : मीराबहनको

७ अगस्त, १९३२

चि० मीरा,

मुझे दो पोस्टकार्डों और एक पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनी है। वल्लभभाईके बनाये लिफाफोंका स्टॉक निरन्तर बढ़ रहा है, और वह उनमें से सबसे अच्छे लिफाफों का चुनाव करता है। अतः यदि तुम उसकी कलाकी सराहना करो तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। यह ऐसी कला है जो रद्दीको सम्पदामें बदल देती है।

मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि राजेन्द्र बाबू तुम्हारे साथ हैं। अगर मैं उन्हें न लिख पाऊँ तो उन्हें मेरा, वल्लभभाई और महादेवका भी प्रेम-भरा अभिवादन कहना। मुझे सन्देह नहीं है कि जहाँ सम्भव है वहाँ तुम हिन्दीमें बोलती हो।

अभी उस दिन तुमने मुझसे पूछा था कि यदि और जब तुम्हें समय हो तबके लिए तुम्हें कुछ किताबोंके नाम सुझाऊँ।[१] बाबू शिवप्रसादके पास चुनी हुई पुस्तकोंका बड़ा अच्छा संग्रह है। वे और राजेन्द्र बाबू तुम्हें चुनाव करनेमें मदद दे सकते हैं। तुम्हें चूँकि 'रामायण' पसन्द है इसलिए शायद तुम्हें 'महाभारत' भी

१. मीराबहनने स्पष्ट करते हुए लिखा है: "यदि और जब मैं जेल जाऊँ तब पढ़नेके लिए।"

अच्छी लगेगी। यह काम कठिन है, लेकिन करने योग्य है। फिर 'वेद' और 'उपनिषद्' तो हैं ही। तुम वेदोंके चुने हुए अंश और सभी मुख्य उपनिषद् पढ़ सकती हो। इस अध्ययनसे तुम्हें हिन्दू विचारधाराका परिचय मिलेगा जो मूल्यवान होगा। हिन्दू-धर्मके प्रति तुम्हारा जो सहज प्रेम है उसे तब प्रबुद्ध मस्तिष्कका आधार मिल जायेगा। यह भी होसकता है कि तुमने जो धारणाएँ बनाई हैं उनमें से कुछको तुम्हें सुधारना पड़े। मैं चाहूँगा कि इस ज्ञानको संतुलित करनेके लिए तुम 'कुरान' और अमीर अली रचित 'स्पिरिट ऑफ इस्लाम' भी पढ़ लो। पिकथॉल द्वारा किया गया 'कुरान' का अनुवाद शायद सबसे अच्छा है। मैं ठीक कह नहीं सकता लेकिन यदि वह नहीं तो डा० मुहम्मद अली द्वारा किया गया अनुवाद। मैंने अब तुम्हें पूरे एक वर्ष तक पढ़नेका अच्छा ठोस मसाला दे दिया है।

मैं देवदासके बारेमें कुछ नहीं कह रहा हूँ, क्योंकि मैं उसे अलगसे लिख रहा हूँ। बीमारीके बाद स्वास्थ्यलाभ करते हुए आदमीके लिए कड़ी चाय या काफी जहर हैं। चीनी ढंगसे बनाई गई चाय शायद नुकसानदेह नहीं होगी। तुम जानती ही हो कि यह कैसे बनाई जाती है; कि नहीं?

तुमने एस० सहाय और राजेन्द्र बाबूके जिन पत्रोंका जिक्र किया है वे मुझे बिल्कुल नहीं मिले। वे वहीं रह गये होंगे। फिलहाल कमसे-कम मेरी आनेवाली और जानेवाली दोनों डाकें नियमित हैं।

पिछले हफ्तेसे मैं चपातीकी जगह प्रतिदिन चार केले लेता हूँ। ऐसा मैंने कब्जसे बचनेके लिए किया, जो लगता था कि होने जा रहा है। म बेहतर महसूस करता हूँ। बेशक परिणाम यह है कि भोजनमें अब नमक बिल्कुल नहीं है। मैं संतरे ले रहा हूँ। उसके साथ नमक नहीं लेता। मैं एक सब्जी भी ले रहा हूँ। शामको इसीमें दूध डाल लेता हूँ।

हम सबोंकी ओरसे प्रेम सहित।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३५) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७०१ से भी।

३३५. पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको

७ अगस्त, १९३२

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। प्याला सम्बन्धी तुम्हारा पत्र मैंने सँभालकर रख लिया है।[1] फिलहाल तो हम तीनों व्यक्ति महीन सूत कातनेमें लगे हुए हैं। महादेव लगभग ८० अंक तक पहुँच गया है। सरदार और मैं तीस-चालीसके बीचमें हैं। हम अपनी सीमा तक पहुँच जायें तब प्यालेका उपयोग करके हम तुम्हें उसके परिणाम बतायेंगे।

याज्ञिक सिलाईके विषयमें इतना विचार कर लेना चाहिए: (१) कौनसी किस्मके कपड़े झट सिये जा सकते हैं; (२) कौन किस्मके कपड़ेकी सबसे ज्यादा खपत है; (३) स्त्रियाँ [सिलाईका] कौन-सा काम ज्यादा कर सकती हैं और पुरुष क्या कर सकते हैं; (४) इस आयोजनमें कढ़ाईका समावेश हो सकता है या नहीं; (५) इससे धनवान लोगोंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेका प्रयत्न किया जायेगा अथवा मात्र गरीबोंकी; (६) मशीनकी सिलाई और हाथकी सिलाईका क्षेत्र, आदि-आदि। यह सारा विषय सुन्दर और उपयोगी है। उसमें खूब ध्यान देनेकी जरूरत है। लेकिन इस समय यदि तुम्हारा ध्यान कताई पर केन्द्रित है तो सिलाईको गौण स्थान देना। इनसब बातों पर फुरसतसे विचार कर जाना और अपने-आप प्रयोग करके देखना। इस दिशामें मीठूबहन और पेरीन बहनने बहुत बड़ा काम किया है। लेकिन तुम्हारी कल्पना इससे कहीं विशाल है, सो मैं जानता हूँ। यदि तुम्हारी कल्पनाको पूरी तरहसे व्यवहारमें लाया जाये और लोग उसे स्वीकार कर लें तो खादीके साथ कोई स्पर्धा कर ही नहीं सकता। लेकिन इस समय तुम्हारा धर्म सूतका सुधार करना है। इसमें सिलाईका जितना समावेश किया जा सके उतना समय ही इसे देना। एक कार्यमें एकाग्र होना मोक्षदायी है, बहुत सारे कामोंमें हाथ डालना स्वच्छन्दताका परिचायक है।

मोतीबहनके बारेमें सबसे पहले तो तुम्हें अपने मनको टटोलना चाहिए। क्या तुम्हें अभी विषयोपभोग करना है? और यदि विषयोपभोग न करनेका दृढ़ निश्चय ही कर लिया हो तो तुम्हें उसे मित्रों और मोतीबहनको बता देना चाहिए। इससे मोतीबहनको आघात तो अवश्य पहुँचेगा, लेकिन तुम्हारे दृढ़ निश्चयका उस पर बिजलीका-सा असर होगा। दृढ़तासे तात्पर्य यह है कि मोतीबहन पागल हो जाये अथवा मृत्युको प्राप्त हो जाये तब भी तुम्हें उसे सहन करना होगा। इसीमें तुम दोनोंका कल्याण है, यह बात भी तुम्हें स्पष्ट रूपसे प्रतीत होनी चाहिए। लेकिन तुम यदि इस हदतक अभी नहीं पहुँच पाये हो तो मोतीबहनसे इस विषय पर कोई

१. देखिए "पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको", ६-७-१९३२।

चर्चा न करना। अन्य लोग जिस प्रकार अपनी पत्नीके साथ रहते हैं तुम भी उसी तरह चुपचाप रहना और उस तरह संयमका जितना पालन किया जा सके उतना करना। ऐसा करोगे तो इसमें किसीको तुम्हारी निन्दा करनेका कोई अधिकार नहीं है। सब कोई अपनी शक्तिके अनुरूप ही आगे बढ़ सकते हैं। बीचमें लटके रहना, स्वयं अपनेको, अपने लोगोंको और संसारको धोखा देना तो निन्दनीय ही है। इस स्थितिसे बच निकलना; बस फिर कल्याण ही है। विचारोंके भँवरमें अधिक न फँसना। विचारोंमें तो तुमने अनेक वर्ष गँवाये हैं। तुम्हें एकदम कोई निश्चय कर लेना चाहिए; बस इसी प्रकार तुम्हें शान्तिका लाभ प्राप्त होने लगेगा।

"व्यवसायात्मिक बुद्धिरेकेह कुरुनंदन"[1] का अर्थ यही है। इस श्लोक पर और इसके बादके श्लोकों पर विचार कर जाना, इससे इस पत्र पर अधिक प्रकाश पड़ेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७५६) से।

३३६. पत्र : छगनलाल जोशीको

७ अगस्त, १९३२

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे नाम लिखा मेरा पत्र कैम्प[2] में गया। तुम्हारे पाँवमें क्या हुआ है? इस बार रामदास और हरगोविन्द[3] जब मिले थे[4] तब उन्होंने बताया था। बाहर रहकर अपनी सेहतको बिगाड़ना नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५०५) से।

१. **गीता**, २, ४१।
२. यरवडा सेन्ट्रल जेल कैम्प, जहाँ सत्याग्रही कैदियोंको रखा जाता था।
३. हरगोविन्द पण्ड्या।
४. ५ अगस्त, १९३२ को (**द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड–१)।

३३७. पत्र : वनमाला एन० परीखको

७ अगस्त, १९३२

चि० वनमाला,

तेरा पत्र मिला। तेरा बायाँ हाथ जितना काम करता है उतना ही दायें हाथको भी करना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७७९)से। सी० डब्ल्यू० ३००२ से भी; सौजन्य : वनमाला एम० देसाई

३३८. पत्र : निर्मला एच० देसाईको

७ अगस्त, १९३२

चि० निर्मला,

तेरे बड़े भाई[1]की इच्छा है कि उन्हें राखीके दिन [राखी][2] न भेजकर तू जनेऊ भेजे। तेरा और आनन्दीका, दोनोंमें से जिसका सूत महीन हो--तकलीका कता हो तो ऐन बेहतर--सो पण्डितजीसे पूछकर वे [पण्डितजी] जितना माँगे उतना देना, और उनसे जनेऊ बनवाकर यदि तू नारणदासको देगी तो वह भेज देगा।

बड़े भाईका पत्र तुझे मिला होगा। इसके बाद उसने तेरी माँको भी पत्र लिखा है। ये दोनों पत्र उन्हें दे देना। माँकी पूरी कसौटी हुई, इससे तू डर तो नहीं गई न? अन्य लोग जो संकट सहन करते हैं उतने ही यदि हमें भी सहन करने पड़ें तो इसे हम अपना सौभाग्य ही मानेंगे न?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४७६) से।

१. महादेव देसाई।

२. मूलमें शब्द अस्पष्ट है।

३३९. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

७ अगस्त, १९३२

बालको और बालाओ,

एकादशीकी कथा रसमय है। लेकिन हमारी एकादशी इससे भिन्न है।

हमारी एकादशी तो स्वेच्छापूर्वक पालन किया जानेवाला व्रत है। उसमें मन और शरीर एक साथ काम करते हैं और उसका हेतु आत्मशुद्धि है। बीमार व्यक्ति खाना न खाये तो उसे उपवास नहीं कहा जा सकता, वह तो उपचार है। गरीब अन्नके अभावमें नहीं खाता, अतः वह भी उपवास नहीं करता।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

३४०. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

७ अगस्त, १९३२

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। मैं तो यही चाहता हूँ कि तू आश्रममें रहे और खूब तरक्की करे। मेहनत करके तू अपनी लिखावट सुधारना। तेरा निश्चय शुभ है अतः भगवान तेरी सहायता करेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मुझे लिखती रहना।

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २७५८) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

३४१. पत्र : दूधीबहन वी० देसाईको

७ अगस्त, १९३२

चि० दूधीबहन,

यदि तुमने सोच-समझकर सूत दिया हो तो इसे मैं अच्छा मानता हूँ। वालजीको यदि अभी जेतपुरमें ही रहना पड़े तो तुम वहाँ जाओगी, यह मैं समझ सकता हूँ। उनके छूटनेके बाद बात ज्यादा साफ होगी। मनु अपनी लिखावट सुधारे, इस ओर ध्यान देना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३४) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

३४२. पत्र : डाह्याभाई पटेलको

७ अगस्त, १९३२

चि० डाह्याभाई,

महादेवके चश्मेका एक शीशा टूट गया है, जिससे उसे बड़ी परेशानी होती है। यहाँ वह शीशा मिल नहीं सकता। यह चश्मा पिछले साल जून-जुलाईमें फोर्टमें स्थित व्हिटन कम्पनीमें डाक्टर भास्कर[1] ने बनवाया था। इसका नम्बर व्हिटन कम्पनी के पास है, और यदि वहाँ न मिले तो यह डाक्टर हीरालाल पटेलके यहाँसे मिल जायेगा, जिन्होंने महादेवकी आँखोंकी जाँच की थी और चश्मेका नम्बर दिया था। यदि तुम भास्करसे मिल सको तो उससे मिलकर व्हिटन कम्पनीसे नम्बर निकलवा कर और चश्मा बनवाकर तुरन्त भेजना। इस चश्मेके शीशे और डण्डीका माप भी कदाचित् उनके यहाँ होगा, लेकिन यदि न हो तो माप मैं साथके पत्रमें भेज रहा हूँ। भास्करके न होने पर यदि तुम डाक्टर हीरालालसे मिलोगे तो वह भी बनवा देंगे। भास्करको महादेवने पिछले सप्ताह एक रजिस्टर्ड पत्र भेजा था, वह कदाचित् उसे नहीं मिला है। करमचन्दकी पत्नी अब बिल्कुल ठीक होगी।

मणिबहनका पत्र अभी तो नहीं आया है। महादेवका काम चश्मेके बिना रुक गया है। इसलिए चश्मा जल्दी भेज देना।

उम्मीद है नन्हा मुन्ना ठीकसे होगा। हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

१. डा० भास्कर पटेल।

२. बम्बईके एक नेत्र विशेषज्ञ।

[पुनश्च :]

आज तुम्हारे पिताने तुम्हारे पते पर डा० अन्सारीको एक पत्र लिखा है। वह उन्हें पहुँचा देना। वे ११ तारीखको बम्बईसे रवाना होनेवाले हैं, इसलिए ९-१० तारीखको तो बम्बईमें ही होंगे।

वे उस्मान सोभानीके[1] यहाँ ठहरे होंगे। नहीं तो, जहाँ भी ठहरे होंगे उसकी खबर उस्मानसे मिल जायेगी। खोजकर उन्हें पत्र पहुँचा आना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

३४३. पत्र : प्रभुदास गांधीको

७ अगस्त, १९३२

तुम नाम-जपके साथ मित्र-सम चिपके रहो। जब कहींसे भी सहायता नहीं मिलेगी तब भी इससे तो अवश्य मिलेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड-१

३४४. पत्र : शारदा सी० शाहको

७ अगस्त, १९३२

चि० शारदा,

हरिलालसे तुम दोनों लड़कियाँ भयभीत नहीं हुईं और उसे साहसपूर्वक उत्तर दिया, यह बहुत अच्छा किया।

चिमनलालके आ जानेके बाद भी यदि छात्रावासमें रहना तुझे अच्छा लगता है और तेरी तबीयत ठीक रहती है, तो तू वहीं क्यों नहीं रहती?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१३) से; सौजन्य : शारदाबहन जी० चोखावाला

१. बम्बईके एक मिल-मालिक।

३४५. एक पत्र

७ अगस्त, १९३१

. . .का[1] शव देखने गई, यह ठीक किया। हम सबको किसी-न-किसी दिन इस स्थितिको प्राप्त होना है, और हमें कामना करनी चाहिए कि जब ऐसा समय आये तब हम प्रसन्नचित्त इस घरको छोड़ें। जहाँ तक बन सके इसे स्वच्छ, पवित्र और स्वस्थ रखें। लेकिन जब यह छूट जाये तब इसे जाने दें। यह तो हमें इस्तेमाल करनेके लिए मिला है। देनेवाला जब इसे ले जाना चाहे तब भले ही ले जाये। हमें उसका उपयोग भी सेवाके लिए करना है, अपने सुखोपभोगके लिए नहीं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड–१

३४६. एक पत्र[2]

७ अगस्त, १९३२

मैं तुम्हारे दुखमें शामिल नहीं हो सकता। तुम्हारी पत्नी तो दुखसे छुटकारा पा गई है। उसकी मृत्यु ऐसे समय और इस ढंगसे हुई है जो स्पृहणीय है। तुम स्वयं अपनेको अनाथ कैसे मानते हो? अनाथ तो वही व्यक्ति अपनेको समझ सकता है, जिसके सिर पर ईश्वर न हो। लेकिन ईश्वर तो सबके सिर पर है। इसलिए अपने ही घोर अज्ञानके कारण हम खुदको अनाथ मानते हैं। तुम्हारा कवच न तो मणि थी और न तुम्हारी पत्नी। यह सब तो झूठे कवच हैं, सच्चा कवच हमारी श्रद्धा है। मानव-शरीरकी हस्ती तो काँचकी चूड़ीसे भी बहुत ओछी है। काँचकी चूड़ी सँभालकर रखनेसे सैकड़ों वर्षों तक बनी भी रह सकती है पर मनुष्य-शरीर तो चाहे कितने ही प्रयत्न किये जायें, एक निश्चित अवधिसे आगे जा ही नहीं सकता और उस अवधिके भीतर भी चाहे जब नष्ट हो सकता है। ऐसी चीज पर क्या भरोसा करना? तुम आश्रमके काममें तन्मय हो जाओ। इधर-उधरके विचारोंमें मत पड़ो। छः वर्षकी मंगलाकी चिन्ता करने जैसी कोई बात ही नहीं है। तुम स्वयं ही उसे अच्छी तरह सँभालना। शान्ति और जेकोरको अपनी सँभाल रखना भी सिखाना। तुम कदाचित् नहीं जानते कि रुखीबहन[3] जब बिल्कुल बच्ची थी, तब हालाँकि सन्तोक जीवित थी, फिर भी वह मगनलालके हाथों बड़ी हुई है। उसके

१. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया है।

२. अनुमानतः यह पत्र शंकरभाई पटेलको लिखा गया था जो साबरमती आश्रमकी शालामें अध्यापक थे।

३. रुक्मिणी बजाज।

जीनेकी आशा बहुत कम थी। वह कदाचित् ही सांस ले पाती थी। इस बच्चीको मगनलाल नहलाया करता था, उसकी चोटी बनाता था, पास बैठकर उसे खिलाता था तथा अपने अन्य बच्चोंकी भी सँभाल करता था, तथापि वह अपनी नौकरीमें सबसे ज्यादा काम करता था। सबसे ज्यादा सुन्दर बाड़ी उसीकी थी, फीनिक्समें पहला गुलाब उसीने उगाया था। अपनी कुल्हाड़ीके साथ जब वह फीनिक्सकी कठिन भूमि पर आघात करता था, तब धरती काँपती-सी लगती थी। जो कार्य मगनलाल कर सकता था, वह सब कार्य तुम भी कर सकते हो। इसमें मैंने कोई मगनलालकी भारी कलाशक्तिकी अथवा उसके अक्षर-ज्ञानकी चर्चा नहीं की है। मगनलालको आत्मविश्वास था, अपने कार्यके प्रति श्रद्धा थी और ईश्वर ने उसे बलिष्ट शरीर भी दिया था। यह शरीर तो आश्रमके बोझसे, उसकी तपश्चर्यासे अन्तमें दुर्बल पड़ गया था। लेकिन मगनलालने अपने संक्षिप्त जीवनमें सौ वर्ष जितना अथवा सैकड़ों वर्षों जितना काम किया, ऐसा मैं मानता हूँ। मैंने तुम्हें मगनलालका उदाहरण दिया है, क्योंकि तुम मगनलालको जानते थे और उसके प्रेमभावके कारण ही तुम्हारा आश्रमका नाता जुड़ा था। मगनलालको याद करके ही तुम इस बातको भूल जाना कि तुम अपंग हो अथवा अन्धकारमें हो? जो सुविधाएँ तुम्हारे पास हैं वे सुविधाएँ इस देशमें लाखमें से एक व्यक्तिके पास भी नहीं होंगी, ऐसा मैं मानता हूँ।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड-१

३४७. एक पत्र

७ अगस्त १९३२

हमारे लिए हर उद्योग जो उपयोगी है, अच्छा है और करने योग्य है। अर्थात् चमारका काम, बढ़ईगिरी, पाखाना साफ करनेका काम, खेती-बाड़ी, बुनाईका काम, रसोईका काम, ढोर चरानेका काम अथवा ऐसे अन्य काम सब एक जैसे हैं। यदि मैं समाजको समझा सकूं तो सब धन्धोंका, शिक्षित अथवा अशिक्षितका, क्लर्कका अथवा जमादारका, एक ही मूल्य आँका जाना चाहिए। यह तो कदाचित् तुम्हें मालूम ही होगा कि इसी दृष्टिसे जाँच करनेके लिए फिलहाल आश्रममें कामके घंटोंका हिसाब रखा जाता है। इसलिए यदि अच्छी बुनाईके कामके लिए तुरन्त ही आवश्यक सूत नहीं मिलता तो तुम्हें ऐसा कभी नहीं मानना चाहिए कि खेती आदि अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण काम करनेके कारण तुम निम्न स्तर पर उतर आये हो।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३४८. एक पत्र

७ अगस्त, १९३२

गांधी परिवारसे मैं यह आशा करता हूँ कि सब लोग पूरी तरहसे सेवाकार्य में जुट जायें, जहाँ तक हो सके वहाँ तक संयमका पालन करें और धनके लोभका त्याग करें। विवाहका विचार छोड़ दें, जो विवाहित हों वे भी ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करें और सेवा द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करें। सेवाक्षेत्र इतना विशाल है कि उसमें असंख्य स्त्री-पुरुष समा जायें। इतनेमें सब-कुछ आ गया क्या?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३४९. पत्र: सरोजिनी नायडूको

८ अगस्त, १९३२

प्रिय बुलबुल,

डा० अन्सारीका एक पत्र संलग्न कर रहा हूँ, जिसे तुम पढ़ना चाहोगी। यह जितना हमारे लिए है उतना ही तुम्हारे लिए भी।

तुम्हारे प्रेमपूर्ण उपहारोंके बारेमें मेरा सन्देश तुम्हें मिल गया! यह पत्र मैं इसलिए नहीं लिख रहा हूँ कि तुम और उपहार भेजो। हम सब प्रकृतिके ऐसे दुर्ललित पुत्र हैं, जिन्हें शारीरिक सुविधाकी दृष्टिसे जो भी आवश्यक है वे सभी चीजें प्राप्त हैं।

यह पद्मजा[1] की शरारत है कि उसने मेरी इतने दिनोंसे उपेक्षा कर रखी है। आशा है अब वह बेहतर है। क्या तुम्हें अपने दाढ़ीवाले बेटेके पत्र मिलते हैं? उसे लिखना तो मेरा प्यार कहना।

वहाँ[2] की महिलाओंने तुम्हें बताया कि नहीं कि सरदार गम्भीरतापूर्वक संस्कृतका अध्ययन कर रहे हैं। पिछले चार हफ्तोंसे ही वह पढ़ने लगे हैं और इतनेमें उन्होंने बहुत प्रगति कर ली है। उनका अध्यवसाय तो ऐसा है कि किसी जवान विद्यार्थीको भी शर्मिन्दा कर दे।

हम सबोंकी ओरसे प्यार।

तुम्हारा,
नन्हा आदमी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५१२४) से।

१. सरोजिनी नायडूकी पुत्री।

२. बम्बईकी आर्थर रोड जेलमें, जहाँ सरोजिनी नायडू, मीराबहन और कमला चट्टोपाध्यायके साथ कैद थीं।

३५०. पत्र : प्रभाशंकर परीखको

८ अगस्त, १९३२

भाईश्री प्रभाशंकर[1],

आपका पत्र मिला। डाक्टरके देहान्तसे दुःख तो हुआ ही है। वे तो दुःखसे छुटकारा पा गये। मैंने तो अपनी सलाह दी है कि रतिलाल और चम्पाको रंगून जानेकी जरूरत नहीं है। मैं रंगून पत्र तो लिख ही रहा हूँ। उनका [डाक्टरका] वसीयतनामा है या नहीं, इसकी मुझे खबर नहीं है। छगनलाल पर ही विश्वास किया जाये, इसीमें सुरक्षा और शोभा है, ऐसी मेरी मान्यता है। तथापि, आप भाई नानालालकी अथवा किसी अन्य व्यक्तिकी सलाह लेना आवश्यक समझें, तो लें। सम्भव है, मेरे ये विचार आपको व्यवहारके विरुद्ध जान पड़ें। मुझे तो यही व्यावहारिक लगते हैं।

मैं चम्पाको और रतिलालको सुरक्षित मानता हूँ।

माताजीको आराम होगा। उनको मेरा प्रणाम।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७६५) से।

३५१. पत्र : जमनाबहन गांधीको

८ अगस्त, १९३२

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। अनेक डाक्टरोंका अनुभव यह है कि मीठा दही किसीको नुकसान नहीं पहुँचाता। मीठा दही वह होता है जिसमें तनिक भी खटास न हो। यह दही सबको पच सकता है। दहीमें लेशमात्र भी खटास हो तो थोड़ा-सा सोडा डालो। उससे फेन उठेंगे और खटास दूर हो जायेगी। ऐसा मैं रोज करता हूँ। मीठे फल खानेसे भी कोई नुकसान नहीं होता। मोसम्बी हमेशा मीठी होती है। छोटेवाले अंगूर हमेशा मीठे होते हैं। इस तरह थोड़ी मात्रामें खाकर देखो। माफिक न आये तो छोड़ दो। सूर्यस्नान और हलका प्राणायाम तो करना ही चाहिए। जानकीबाईने गुजराती पढ़ना शुरू करके अच्छा किया है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. रतिलाल मेहताके ससुर।

३५२. पत्र : प्रभावतीको

८ अगस्त, १९३२

चि० प्रभावती,

तुमको खत हि मेरे न मीले यह बड़ा आश्चर्य है। मैंने तो बहोत लिखे। इसके पहेलेका खत[1] हिंदीमें जान बुझकर लिखा। मेरा खत मिलनेसे मैं और लिखूंगा। हम तो आराममें हैं। मेरा वजन १०५ है, दूध लेता हुं। हाथकी कोई चिंता नहिं है। सरुप कृष्णा कान्ताको आशीर्वाद। तुमारे खत तो मिलते हैं।

बापुके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४२१) से।

३५३. पत्र : अकबर हैदरीको

९ अगस्त, १९३२

प्रिय सर अकबर[2],

मैं उर्दू पढ़ रहा हूँ। इस समय मैं शिबली रचित पैगम्बर [मुहम्मद]की जीवनी पढ़ रहा हूँ। लेकिन मैं उसमानिया विश्वविद्यालय द्वारा जारी की गई पाठ्य-पुस्तकें तथा अन्य साहित्य देखना चाहूँगा। क्या आप कुछ चुनी हुई पुस्तकें भिजवा सकेंगे?

जहाजपर मेरी-आपकी जो भेंटें होती थीं उनकी मुझे अकसर याद आती है।

लेडी हैदरी तथा परिवारके अन्य सदस्योंको कृपया मेरा अभिवादन कहें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग ३, पृष्ठ १३।

१. सम्भवत: २ जून, १९३२ का।

२. हैदराबादके दीवान।

३५४. पत्र : माधवदास और कृष्णा कापड़ियाको

९ अगस्त, १९३२

चि० माधवदास और कृष्णा,

तुम दोनोंके पत्र मिले। मुझे पूरा विवरण लिखा, यह बहुत अच्छा किया। हमारी कसौटी ही संकटके समय पर होती है। संकटसे कभी नहीं हारना चाहिए। गरीबीका स्वागत करना। मुझ लिखते रहना, मुझसे भले ही कुछ न हो सके। तुम दोनों हारे नहीं हो और दुःखको सुख मान सकते हो, यह बात मुझे शान्ति प्रदान करेगी। देवदासका पत्र तो आया होगा। रामदाससे मिला था। वह ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से।

३५५. पत्र : श्री० दा० सातवलेकरको

९ अगस्त, १९३२

भाई सातवलेकरजी,

सरदार संस्कृत सीख रहे हैं जानकर दूसरोंने भी सीखनेका विचार किया है। वे सब दूसरे स्थान पर रहते हैं। उनके लिये एक और सेट भेजनेकी कृपा करें। मैं नहीं जानता आपकी संस्था पुस्तकोंका दान कहां तक कर सकती है। यदि आवश्यक समझा जाय तो मूल्य भेजनेका प्रबंध करूंगा।

ईशोपनिषदादि ग्रंथ मिल गये थे। मैं दूसरे खतकी प्रतीक्षा कर रहा था इतनेमें यह खत लिखनेका अवसर आया। ईशोपनिषद् ध्यानसे पढ़ रहा हूं। कंठ कर लिया है। दूसरे ग्रंथ भी पढ़ुंगा।

आजकल गंगाका वेदांक पढ़ रहा हुं। उसमें साहित्याचार्य महेन्द्र मिश्रने जो कुछ लिखा है उसमेंसे एक पृष्ठ भेजता हुं।[1] जिस जगह लाल पेंसिल लगाई है उसे

१. इसमें लेखकने वेदोंमें से उद्धरण देते हुए वैदिक कालमें गो-बलि और गो-मांस-भक्षणका प्रचलन दिखानेका प्रयत्न किया था। सातवलेकरने २० अक्टूबर १९३२ के पत्रमें इस दावेका विरोध किया था (एस० एन० १८५९०)।

देखें और कुछ प्रकाश डालें। ऐसी और बातें भी इस वेदांकमें देख रहा हूँ। परंतु मैं ज्यादा तकलीफ देना नहीं चाहता हूँ।

आपका,

मोहनदास

मूलकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७६४) से; सौजन्य: श्री० दा० सातवलेकर

३५६. पत्र : बनारसीलाल बजाजको

९ अगस्त, १९३२

चि० बनारसी,

तुमारा खत मिला। मेरे पत्रोंका कुछ गोलमाल हो गया था। अब ठीक हुआ है। पिताजीके[1] कभी खबर आते हैं? कैसे हैं? माधवके साथ रुक्मिणी भी चली जाती तो अच्छा था। बहोत वजन गवाया है। शरीर संपत्ति अच्छी रहेगी तो सब प्रकारसे सुख मिला रहेगा। तुमारा स्वास्थ्य तो अच्छा है न? व्यापार कैसे चलता है? देवदासको मिलनेका रहता होगा।

बापुके आशीर्वाद

श्रीयुत बनारसीलाल
के २३/९६ पंचगंगा
बनारस

सी० डब्ल्यू० ९४४९ से; सौजन्य: बनारसीलाल बजाज

३५७. पत्र : ई० ई० डॉयलको

१० अगस्त, १९३२

प्रिय कर्नल डॉयल,

मेरे गत माहके २२ तथा २४ ता० के पत्रों तथा उत्तरमें आपके कृपापत्रके सिलसिलेमें निवेदन है कि तत्पश्चात् आपका कोई पत्र नहीं आया है और न ही काका कालेलकरका पत्र आया है, जिनके विषयमें आपने कहा था कि उनको अपने

१. रामेश्वरलाल बजाज।

स्वास्थ्यके सम्बन्धमें मुझे पत्र लिखनेकी अनुमति मिल जायेगी। इस विषय पर शीघ्र ध्यान देनेके लिए मैं आपका आभार मानूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, गृह विभाग, आई० जी० पी० फाइल नम्बर ९।

३५८. पत्र : मानशंकर जे० त्रिवेदीको

१० अगस्त, १९३२

चि० मनु,

तेरा पत्र मेरे हाथमें बहुत विलम्बसे आया।

अब तू पढ़ाई करने लगा है तो इधर-उधरका विचार करनेके बजाय अपनी पढ़ाईको सांगोपांग पूरा कर। उसमें जहाँ-जहाँ घोर हिंसा निहित है उसपर गहराईसे विचार करके यदि सिद्ध कर सके तो अपना अध्ययन समाप्त करनेके बाद (सिद्ध) करना कि जीवित प्राणियोंपर ऐसे घातक प्रयोग करनेकी कोई जरूरत नहीं है। स्वयं डाक्टरोंने ही इस विषयपर परस्पर विरोधी प्रचार प्रकट किये हैं।

मैं देखता हूँ कि तू अपने समयका सदुपयोग कर रहा है। "भणतर मिथ्या बगर विचारे" (बिना विचार किये विद्याभ्यास करना मिथ्या है) में निहित तत्त्वका अनुसरण करना। केवल किताबोंको रटनेसे ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान तो ध्यानपूर्वक पढ़कर उसे आत्मसात् करनेसे बढ़ता है।

हम तीनों आनन्दमें हैं। सरदार संस्कृतका अभ्यास कर रहे हैं। यह जानकर युवा लोगोंको कितना जोश आना चाहिए?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १००६) से।

३५९. पत्र : रामदास गांधीको[1]

११ अगस्त, १९३२

मेरा खयाल तो यह है कि तुमने अभी लौंग और दालचीनी छोड़नेका निश्चय नहीं किया है। मैं नीमूको लिखनेका विचार करता हूँ। यदि उसने व्रत ले ही लिया होगा तो मैं उसे तोड़ देनेका आग्रह नहीं करूँगा, केवल धर्म ही समझाऊँगा। इस तरहके व्रत छोड़नेका आग्रह नहीं करना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। ऐसा आग्रह करनेसे मनुष्य अपनी दृढ़ता खो बैठता है और उसके मनमें दौर्बल्य आ जाता है। जैसा कि तुम लिखते हो, मैं पहले जो सख्तियाँ किया करता था उसका मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। उस समयको देखते हुए वह ठीक थीं। आज मेरी तनिक-सी भी सख्ती हिमालयके समान भारी लगती है। जो कार्य आज मैं झिड़की-भरसे ले सकता हूँ, उसके लिए पहले मुझे स्वयं उपवास करना पड़ता था; और दूसरोंको भी वैसी ही सख्ती बरतनी पड़ती थी। यदि मैं पहलेकी तरह अब भी वैसा ही व्यवहार करूँ तो निर्दयी ठहरूँ। तब क्या इसका मतलब यह हुआ कि मैंने तरक्की की है और दूसरोंने भी की है? ऐसा माननेका कोई कारण नहीं। लेकिन जो लोग मेरे सम्पर्कमें हैं उनपर मेरा प्रभाव काम करता ही रहता है, इसलिए कुछ विशेष करनेकी जरूरत नहीं रह जाती। तात्पर्य यह कि तुम्हें नीमूके प्रति सख्ती बरतने अथवा स्वयं कष्ट सहन करनेकी कोई जरूरत नहीं है क्योंकि मैं बड़ा चौकीदार बैठा हुआ हूँ। जब मेरा देहान्त हो जायेगा तब निश्चय ही तुम सबको बहुत सावधानीसे काम लेना होगा। वस्तुस्थितिके ऐसा होनेके कारण ही अनेक बार मेरी अनुपस्थितिमें ढील आ जाती है। संसारका नियम ही ऐसा है। इसलिए हमें शिक्षा तो यह लेनी है कि हमें अपने जीवनमें पूरी तरह जागरूक रहना चाहिए। आज हम भले ही लताकी तरह पेड़के सहारे खड़े हों, लेकिन यह परतन्त्रता है। उससे मुक्त होकर अपने ही बलपर खड़े रहना सीख लेना चाहिए। नीमूपर बिजलीके समान जो असर हुआ है, उसका कारण मैंने जो ऊपर बताया है वह है। तुम्हें मेरे जिस समयकी याद है वह समय ऐसा न था, क्योंकि आसपासका वातावरण इतना अनुकूल नहीं था, और न इतना शुद्ध था। मैं नीमूको कुछ सख्त बात लिखूँ तो वह सूख ही जाये। अब मेरी उदारता समझमें आई? मेरी पहलेकी सख्तीमें और आजकी उदारताके पीछे

१. **द डायरी ऑफ महादेव देसाई,** खण्ड–१ में इस पत्रके बारेमें इस प्रकार लिखा है: "आज जो पत्र आये वे सभी कैदियोंके थे। इनमें से एक पत्र रामदासका था, जिसने शिकायत की थी कि वही बापू जो किसी समय अपराधके लिए प्रायश्चित करने और करानेके मामलेमें बहुत सख्ती करते थे, अब उदार रवैया अपनाने लगे हैं और लोग इस उदारताका अनुचित लाभ उठाते हैं। लगता है कि उसने दालचीनी और लौंग न लेनेका व्रत लिया था . . . जिसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पत्नी निर्मलाने दूध और घी का त्याग कर दिया था।"

भी यही शुद्ध प्रेम काम कर रहा था। बाकी तुम्हारा यह लिखना तो ठीक ही है कि मेरी उदारताका अनर्थ करके यदि कोई लापरवाह बन जाये तो यह निश्चय ही एक बुरी बात है। ऐसा डर बना रहता है, इसका कारण अलग है। मैं स्वयं अपने प्रति नरम रुख इख्तियार किये हुए हूँ। मेरी पहले जैसी अकड़ चली गई है। मैं जितना चाहता हूँ शरीर अब उतना काम नहीं करता, और जो मैं स्वयं नहीं करता वह अन्य लोगोंसे करवाते हुए संकोच होता ही है। इसीलिए मैंने आश्रममें अनेक बार कहा है कि मैं अब आश्रम चलानेके योग्य नहीं रहा हूँ। आश्रमका दरबान जागरूक और बलवान होना चाहिए। पहले तो मैं हर काममें सबके साथ खड़ा होता था, इसलिए औरोंको भी मेरे साथ खड़ा होना पड़ता था। अब तो मेरा काम दर्शनीय नहीं रहा। केवल मेरे वचनोंके अनुरूप चलना भर रह गया। इसीसे तुम आसपासके वातावरणमें ढील देखते होगे। यह सब तुम अच्छी तरह समझ गये हो न?

तुम्हारी सावधानी मुझे अच्छी लगती है। इस बारेमें तुम नीमूसे सख्तीसे काम न लेना। पति-पत्नीके सम्बन्धके बारेमें मेरे विचारोंमें परिवर्तन तो अवश्य हुआ है। मैं यह अवश्य चाहूँगा कि मैंने बा के साथ जैसा व्यवहार किया था वैसा व्यवहार तुम लोग अपनी पत्नियोंके साथ न करो। मेरी सख्तीसे बा ने कुछ खोया नहीं, क्योंकि मैंने बा को कभी अपनी मिल्कियत नहीं माना। उसके प्रति मेरे मनमें प्रेम और सम्मान तो था ही। मैं उसे उन्नत देखना चाहता था। लेकिन बा मुझपर क्रोध नहीं कर सकती थी, जबकि मैं उसपर नाराज हो सकता था। बा को मैंने व्यावहारिक रूपसे अपने जितने अधिकार नहीं दिये थे, और बेचारी बा में उन्हें प्राप्त करनेकी शक्ति भी न थी। हिन्दू स्त्रियोंमें यह शक्ति होती ही नहीं है। यह हिन्दू समाजकी खामी है। इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम नीमूको अपने समान ही स्वतन्त्र मानो। मैंने उसे हँसी-हँसीमें एक पत्र[1] में लिखा है कि वह अपनेको पराधीन मानकर हर बातमें तुम्हें परेशान न किया करे। जिसपर उसने लिखा था कि मैं पराधीन तो हूँ ही, यह बात रामदास जानते हैं। भाषा मेरी है, लेकिन उसने जो लिखा था उसका भावार्थ यही है। यह पराधीनता दूर हो जानी चाहिए। नीमूको नौकरकी जरूरत हो तो वह तुमसे क्यों पूछे? वह नारणदाससे माँग सकती है, और लड़ने-झगड़नेकी जरूरत हो तो वैसा भी कर सकती है। यह तो तुच्छ उदाहरण है। लेकिन इसके बारेमें उसे स्वतन्त्रता होनी चाहिए। तुम व्यभिचार करना चाहो तो नीमूका भय न खाओ। हाँ, उसका प्रेम तुम्हें रोके, तो यह अलग बात है। उसी तरह नीमूको व्यभिचार करना हो तो वह निडर होकर वैसा कर सकती है। परस्पर एक दूसरेका प्रेम दम्पतिको पापसे भले बचाये, लेकिन परस्पर भय कदापि नहीं होना चाहिए। यह शिक्षा देना मैंने आश्रममें ही सीखा है। साबरमतीमें बा के प्रति मेरा व्यवहार उत्तरोत्तर ऐसा ही होता गया है। इसीसे बा का विकास हुआ है। हो सकता है कि पहलेका भय अभी पूरी तरहसे दूर नहीं हुआ हो, लेकिन काफी दूर हो गया है। मनमें भी यदि बा के प्रति रोष होता है तो उसे मैं खुद पर ही निकालता हूँ। रोषका मूल मोह है। मुझमें यह जो परिवर्तन हुआ है

१. देखिए "पत्र: निर्मलाबहन गांधीको", ९-७-१९३२।

वह महत्त्वपूर्ण है और उसके सुन्दर परिणाम निकले हैं। मेरा प्रेम अब भी जितना निर्मल होता जायेगा उतना ही परिणाम भी अधिक सुन्दर होगा। असंख्य स्त्रियाँ मुझमें सहज ही विश्वास रखती हैं। उसका कारण मेरा प्रेम और आदरभाव है, ऐसा मुझे विश्वास है। ये गुण अदृश्य रूपसे काम करते ही रहते हैं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३६०. पत्र : अमतुस्सलामको

[१२ अगस्त, १९३२ से पूर्व][१]

प्रिय अमतुल,

मुझे खुशी है कि तुम आश्रम पहुँच गई हो और अपनी भतीजी[२] को साथ ले गई हो। आशा है वहाँकी जलवायु उसको अनुकूल पड़ेगी। तुम्हें अब स्वस्थ रहना चाहिए। मौसम तो काफी ठंडा होगा।

तुम्हारा उर्दू खत पढ़कर मुझे बहुत खुशी है। ऐसे ही लिखा करो। हिन्दी सीखनेका इरादा तो अच्छी बात है। और तुमको तो कुछ तकलीफ ही नहीं होगी। मेरे हर्फ पढ़नेमें कुछ मुश्किल होती है क्या?[३]

उम्मीद है कि तुम मेरी उर्दूकी लिखावट पढ़ सकती हो। मैं जानता हूँ कि वह खराब है। अगर तुम्हारी भतीजी लिख सकती हो तो उससे भी कहना कि मुझे लिखे। वह कितनी बड़ी है?

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५२) से।

१. **बापूके पत्र–८: बीबी अमतुस्सलामके नाम**-नामक पुस्तकमें यह पत्र १२ अगस्त, १९३२ के पत्रसे पहले दिया गया है; देखिए अगला शीर्षक।

२. ९ वर्षीय कुदसिया, जो अपनी माताकी मृत्युके बाद अमतुस्सलामके साथ रहती थी।

३. यह अनुच्छेद उर्दूमें है।

३६१. पत्र : अमतुस्सलामको

१२ अगस्त, १९३२

प्रिय अमतुल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे पत्रोंमें किसीसे छिपाने जैसा कुछ नहीं था। मासिक बीमारीके बारेमें जो झूठी लज्जा है उसे मैं चाहूँगा कि सब लड़कियाँ छोड़ दें। शर्मकी बात उनके लिए हो सकती है जो वासना तृप्त करना चाहते हों और इस मासिक धर्मको यौन-सुखकी दृष्टिसे देखते हैं। लेकिन जो लोग संयमका जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे जिस प्रकार अन्य बीमारियोंकी चर्चा करते हैं उसी प्रकार उन्हें इस बीमारीकी भी चर्चा करनी चाहिए। अब इसका उपाय। पहली चीज तो यह कि मासिक शुरू होनेका लक्षण पाते ही तुम्हें पूर्ण विश्राम लेना चाहिए और जबतक तनिक भी स्राव होता रहे तबतक आराम करना चाहिए। अनावश्यक या तीन दिनसे ज्यादा रक्तस्राव या पीड़ा न हो, इसके लिए महीनेके शेष दिनोंमें घर्षण-स्नान और कटि-स्नान करना चाहिए। मासिकके दौरान कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिए। यदि इस उपचारसे लाभ न हो तो तुम्हें किसी डाक्टरसे गर्भाशयकी जाँच करानी चाहिए। इस मामलेमें तुम्हें श्रीमती लैजारससे परामर्श करना चाहिए और वह जैसा कहें वैसा करना चाहिए। वह तुम्हें बता सकेंगी कि क्या करना चाहिए। तुम्हें प्रेमाबहनको भी हमराज बनाना चाहिए। वह इसके बारेमें ज्यादा नहीं जानती। लेकिन तुम दोनों मिलकर बात कर सकती हो और इस विषयका साहित्य पढ़ सकती हो। यदि तुम्हें न पता हो कि घर्षण-स्नान क्या है और प्रेमाबहन भी न जानती हो तो तुम्हें कुने की पुस्तक पढ़ लेनी चाहिए। यदि तुम इस बीमारीका रहस्य अच्छी तरह जान लो तो अन्य लड़कियोंको भी उसकी जानकारी दे सकती हो। यह स्त्रियोंकी सभी बीमारियोंका मूल स्रोत है। झूठी लज्जा लड़कियोंको इसे समझने और इसका उचित नियन्त्रण करनेसे रोकती है। इस चीजको छिपाना और फिर अनकथ तकलीफें भोगना पाप है। साथका पत्र डा० शर्मा[1] के लिए संलग्न कर रहा हूँ।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारा उर्दू खत अच्छा है। जवाब दूसरे हफ्ते दूंगा। आज वक्त भर गया है।[2]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५३) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. पुनश्च : के बादका अनुच्छेद उर्दूमें है।

३६२. पत्र : डा० हीरालाल शर्माको

१२ अगस्त, १९३२

प्रिय डा० शर्मा,

आपका पत्र पाकर खुशी हुई। प्राकृतिक उपचारका अध्ययन पूरा करनेके लिए आप यूरोप या अमेरिका जायें, इसके लिए मैं आपको जोरदार शब्दोंमें मना करूँगा। आपको यहीं रहते हुए अपने अध्ययनको पूर्ण बनाना है और मौलिक अनुसन्धान करना है। इस क्षेत्रमें पश्चिममें जिन लोगोंने कुछ भी किया है उन्होंने दूसरोंसे नहीं केवल अपने अनुभवोंसे ही सीखा था। यह मानना तो बहुत बड़ी भूल है कि पश्चिम जाकर आप इस कलाके बारेमें बहुत-कुछ सीख सकते हैं। वहाँ भी यह कला अभी अपनी शैशवावस्थामें ही है। लेकिन सबसे पहली चीज आपको यह करनी है कि आप अपने आपको ठीक करें। यदि आपका शरीर ही टूटा हुआ है तो लोग आपकी बातपर कान नहीं देंगे। निश्चय ही आपके रोगको[1] धूप-सेवन और पथ्यापथ्यके कठोर नियमनसे लाभ होगा।

अपनी कुहनीके लिए मैं आपको कष्ट नहीं दूँगा। तथापि आपके सहायता-प्रस्तावके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१५०) से। **बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष** से भी।

३६३. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

१२ अगस्त, १९३२

भाई खम्भाता,

मैंने तुम्हें जान-बूझकर पत्र नहीं लिखा। मेरा विचार तुम्हारे तेलका इस्तेमाल करनेके बाद ही तुम्हें पत्र लिखनेका था। अब उसका इस्तेमाल करनेकी छूट मिली है। दस-एक दिन हो गये हैं, अभी कुछ फर्क नहीं पड़ा है। महादेव रोज मालिश करता है। हाथको अन्य कोई कष्ट नहीं है, अतः चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६०१) से। सी० डब्ल्यू० ४३८७ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता

१. डा० शर्माको तेज जुकाम हो गया था।

३६४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१२ अगस्त, १९३२

चि० प्रेमा,

निम्नलिखित पुस्तकें परचुरे शास्त्रीके लिए चाहिए। इनमें से जो वहाँ हों सो भेजना। न हों तो अन्य जगहोंसे मँगवा लूँगा। जरा जल्दी भेजे तो अच्छा होगा। मणिबहनको देना अथवा नंदुबहनको[1] देना, वे डाह्याभाईको भेज देंगी। परचुरे शास्त्री आश्रममें रहा करते थे। बहुत विद्वान हैं। यहींकी जेलमें हैं। इन्हें कुष्ठरोग हो गया है। इसीसे मुझे उन्हें पुस्तकें देनेकी उतावली है। वे रोज कातते हैं। मैं उनसे मिल तो नहीं सकता, लेकिन उन्हें पत्र लिख सकता हूँ। उनकी पत्नी भी बीमार पड़ी हुई हैं। वह बाहर हैं। पुस्तकोंके नाम ये हैं: (१) 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट', (२) 'वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द' (जो भी खण्ड हो), (३) 'वर्क्स ऑफ सिस्टर निवेदिता' (जो भी खण्ड हो), (४) 'एसेज ऑफ टॉल्स्टॉय', (५) 'व्याकरण-महाभाष्य' (६) 'यजुर्वेद-भाष्य', (७) 'डिस्पेन्सेशन्स ऑफ केशवचन्द्र सेन'।

चूँकि श्री शास्त्री आश्रममें रहे हैं, इसलिए लिखते हैं कि अन्तिम तीन पुस्तकें आश्रममें हैं। लगता है, ये पुस्तकें उन्होंने वहाँ पढ़ी थीं।

तेरा पत्र मिला। तू ऐसा मानती जान पड़ती है कि अगर मैं चाहूँ तो दिलचस्प पत्र अवश्य लिख सकता हूँ। लेकिन अब अच्छी तरहसे समझ ले कि ऐसा कुछ भी नहीं है। और सच मानो कि कौन-सा पत्र दिलचस्प है और कौन-सा नीरस, मुझे सो भी मालूम नहीं होता। और फिर, जिस-जिस पत्रको तू दिलचस्प मानती है वह वस्तुत: दिलचस्प ही है, यह कौन कह सकता है? इसको मापनेका स्वतन्त्र पैमाना भगवानने अपनी सन्दूकचीमें तालेमें बन्द करके रखा जान पड़ता है। इसलिए फिलहाल तो इसको मापनेका सबके पास अपना-अपना पैमाना है। तेरे मापके अनुकूल उतरनेका यदि मैं प्रयत्न करूँ तो मेरी तो मुसीबत आ जायेगी न? और इसमें ही मेरा सारा समय चला जायेगा। इस भयसे कि कदाचित् तुझे वह पत्र नीरस जान पड़े, मैं दूसरा पत्र और फिर तीसरा, इस तरह लिखता ही चला जाऊँ? और फिर, जिस तरह तुझे दिलचस्प पत्र लिखने चाहिए उसी तरह मुझे औरोंको भी लिखने चाहिए। तब तो मेरा दिवाला ही निकल जायेगा!!! इसकी अपेक्षा मैंने सीधी पद्धति अपनाई है। दिलचस्प और नीरसका खयाल किये बिना जो मनको सुझाई दे और जो भाषा आये उस भाषामें लिखना। लेकिन तू ठहरी मूर्ख और फिर अभिमानी। इतनी सीधी बात तेरी समझमें थोड़े ही आयेगी? और अब देखता हूँ कि तू तो सर्वज्ञ होनेका दावा करती है। मैं जो भी ज्ञानकी बात लिखता हूँ उसे तू पहलेसे ही

१. अहमदाबादके डा० बल्वन्तराय कानूगाकी पत्नी।

जानती दीख पड़ती है। लेकिन जरा ठहरना। जो व्यक्ति यह मानता है कि वह सब-कुछ जानता है लेकिन उसे व्यवहारमें नहीं रख सकता — वह वस्तुतः कुछ नहीं जानता अथवा जाननेके बावजूद नहीं जानता। इसलिए तू जबतक ऊटपटाँग लिखती रहेगी, क्रोध करेगी, अभिमान करेगी तबतक मेरे लिए तो तू मूर्ख ही रहेगी। इसका अर्थ यह नहीं कि तू अपने अभिमान, क्रोध अथवा पागलपनको ढँक कर मुझे लिख। जबतक ये सब तुझमें विद्यमान हैं तबतक तुझे अपने पत्रोंमें इन सबका जिक्र करना ही होगा, इसके सिवा और कोई चारा नहीं। तेरे पत्रोंका मूल्य जैसी तू है वैसी ही तुझे प्रस्तुत करनेमें है। तू भले ही मूर्ख बनी रहे लेकिन तुझे अपने क्रोधसे छुटकारा पाना ही होगा और अपने अहंकारमें कमी करनी होगी। इन सबको अपने मनसे बिल्कुल निकाल देना लगभग असम्भव है।

तूने नारद मुनिका उदाहरण दिया है। लेकिन क्या तू उनके वचन[1] के मर्मको समझती है? उनकी जैसी व्यक्तिपूजा अवश्य करो, यह तो अभीष्ट वस्तु है। जितने बैकुण्ठवासी भगवान ऐतिहासिक हैं, उतने ही उनके कृष्ण भी हैं। नारद मुनिके भगवान उनके मन-मन्दिरमें वास करते थे। वह नारद मुनि तो आज भी हैं और उनके कृष्ण भी हैं, क्योंकि वे दोनों हमारी कल्पनामें सदैवसे रहते आये हैं। मेरे विचारानुसार इतिहासकी अपेक्षा कल्पना श्रेयस्कर है। रामसे नाम ऊँचा है, ऐसा तुलसीदासने लिखा है। इसका अर्थ कदाचित् यही है।

तू व्यक्तिपूजाके चक्करमें पड़ी हुई है इसीसे तो मुझे परेशान करती है न? आश्रमके सम्बन्धमें तू मुझे निःशंक नहीं कर सकती। नारणदास कर सका है। ऐसे अन्य उदाहरण भी दे सकता हूँ। वे लोग भी व्यक्तिपूजक तो हैं ही। कौन नहीं है? लेकिन अन्तमें वे व्यक्तिको छोड़कर उसके गुणोंके अर्थात् उसकी कृतिके पुजारी बन जाते हैं। इस अमूल्य चीजको भुलाकर हमने अपने अज्ञानमें स्त्रियोंको सती होना सिखाया। यह है व्यक्तिपूजाकी पराकाष्ठा! जबकि पत्नीका धर्म तो यह है कि वह अपने पतिका कार्य करते हुए पतिको अमर बना दे। यदि हम पति-पत्नीसे विकारको तथा 'नर-नारीके भेदको' निकाल दें तो यह आदर्श समस्त संसारके लोगोंपर हर एक स्थितिमें लागू होता है। दूसरे शब्दोंमें यह प्रेम भगवानसे जाकर मिलता है। लेकिन अब इस विषयको यही छोड़ता हूँ।

धीरूके आनेकी खबर सुनकर तू उलझनमें क्यों पड़ गई है? उसे भी नियन्त्रणमें कर लेनेकी हिम्मत रख, इतना विश्वास रख। "प्रेम सब पर विजय प्राप्त कर लेता है", इस अमर वाक्यको अपने हृदयमें उतार। चाहे जो कोई भी आश्रममें आये, हमारा कर्तव्य है कि हम प्रसन्न रहें। हमें तो हमसे जितनी बन सके उतनी सेवा करनी ही होगी। इसके बिना छुटकारा कैसे हो सकता है? तू ऐसा क्यों नहीं मानती कि यदि अन्य लड़के सचमुच सुधर गये हैं तो वे धीरूको भी सुधारेंगे? सम्भावना तो इसी बातकी है कि धीरू अब समझदार हो गया होगा। मुझे तो उससे बहुत उम्मीदें हैं।

१. सा तु अस्मिन् परम प्रेमस्वरूपा — **नारद भक्तिसूत्र।**

लड़कियोंके लिए तो तुझे अपना जीवन समर्पित कर देना चाहिए। वे यदि किसीसे खुलकर बात नहीं करतीं तो वे सब अवश्य बीमार पड़ेंगी। आनन्दीको लिखा मेरा पत्र पढ़ना। वह यदि तुझे पत्र देती है तो जो लड़कियाँ समझदार हो गई हैं उन सबको यह पढ़नेके लिए देना चाहिए।

केलेसे वायु पैदा होती है, इस बातका अनुभव मुझे तो कभी नहीं हुआ। मेरे जितने केले कदाचित् ही किसीने खाये होंगे। अनेक वर्षोंतक केला मेरा मुख्य आहार था। दूध नहीं, रोटी नहीं, केला और जैतूनका तेल तथा मूँगफली और नींबू। लेकिन वायु-जैसी कोई चीज ही नहीं थी। अब बहुत वर्षों बाद फिरसे केला लेना शुरू किया है, लेकिन कोई खराब असर नहीं देखता। इसका एक नियम अवश्य है। या तो केले आगमें पकाये हुए हों अथवा बिल्कुल पके हुए होने चाहिए। कच्चे केलेमें शुद्ध स्टार्च होता है। स्टार्चयुक्त वस्तुओंको बिना पकाये नहीं खाना चाहिए, यह बात मैंने गोपालरावके प्रयोगमें देख ली थी। इसलिए केला जबतक नरम न हो, पका हुआ न हो, तबतक नहीं खाना चाहिए। दो-तीन दिन पड़े रहनेसे केले पक जाते हैं और यदि खानेकी जल्दी हो तो उन्हें भूनना अथवा उबालना चाहिए।

तूने जो पुस्तक पढ़ी है वह भले ही १९२४ में प्रकाशित हुई हो, लेकिन उसमें कही गई बातें पुरानी हो गई हैं।

मेरे विरोधी पहले थे और आज भी हैं, लेकिन मुझे उनके प्रति कोई रोष नहीं है। स्वप्नमें भी मैंने उनका बुरा नहीं चाहा है। फलस्वरूप अनेक विरोधी मित्र बन गये हैं। किसी भी व्यक्तिके विरोधका आजतक मुझपर कोई असर नहीं हुआ है। तीन बार तो मेरी जानतक पर बन आई तथापि मैं आज भी जीवित हूँ। इसका अर्थ यह नहीं कि विरोधीको कभी सफलता नहीं मिलेगी। सफलता मिले अथवा न मिले, इससे मुझे कोई ताल्लुक नहीं है। मेरा धर्म तो उनके भी हितकी कामना करना है और अवसर आनेपर उनकी सेवा करना है। इस सिद्धान्तपर मैंने यथाशक्ति अमल किया है। और मेरी मान्यता है कि यह मेरे स्वभावकी विशेषता है।

लाखों लोग मेरी पूजा करते हैं और इससे मैं ऊब उठता हूँ। उनकी इस पूजासे किसी भी दिन मुझे खुशी नहीं हुई और न मुझे ऐसा ही लगा कि मैं इन सबके योग्य हूँ। हाँ, मुझे अपनी अयोग्यताका निरन्तर आभास होता रहा है। मेरे मनमें कभी भी सम्मानकी भूख रही हो, यह याद नहीं पड़ता। लेकिन कामकी भूख हमेशा रही है। सम्मान देनेवाले व्यक्तिसे काम लेनेकी मेरी चेष्टा रही है और न मिलनेपर मैं उससे दूर भाग खड़ा हुआ हूँ। मैं कृतार्थ तो तभी होऊँगा जब मैं वहाँ पहुँच जाऊँ जहाँ मुझे पहुँचना है। लेकिन ऐसा दिन कौन जाने कब आयेगा।

संसारका सामना करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए अभिमान और द्वेषके भावका विकास करनेकी कोई जरूरत नहीं। ईसा मसीहने संसारका सामना किया, बुद्धने भी अपने युगका विरोध किया, प्रह्लादने भी ऐसा ही किया। वे सब नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे। इसके लिए आत्मविश्वास और ईश्वरमें श्रद्धा होनी चाहिए। जो लोग अहंकारकी भावनासे संसारके विरुद्ध खड़े हुए उन्हें अन्ततः पराजय मिली। तेरा

अभिमान और तेरा क्रोध कितनी ही बार ढोंग (मात्र) होता है। लेकिन यह ढोंग एक बुरी चीज है। ढोंग अन्तमें एक आदतका रूप धारण कर लेता है और अनेक बार व्यर्थ ही गलतफहमीका कारण बन जाता है। ऐसा न होने देनेके लिए मनुष्यको बहुत सावधानी बरतनेकी जरूरत होती है। अत्यन्त विनयशीलताके बिना मैं आखिरमें एकाकी टिके रहनेकी शक्ति प्राप्त करना असम्भव मानता हूँ। और ऐसी शक्ति आनेसे ही वह सच्ची चीज मानी जायेगी। इसीमें उसकी कसौटी है। अनेक ऐसे वीर हो गये हैं जिन्हें परखनेका अवसर समाजको मिला ही नहीं कि वे सचमुच वीर थे अथवा नहीं। अब अमतुलबहनको लिखा मेरा पत्र भी पढ़ लेना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९८)से। सी० डब्ल्यू० ५७५२ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३६५. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

१३ अगस्त, १९३२

चि० परसराम,

भारतमें भी यदि कोई नेता दीर्घजीवी हो तो वह उच्च पदका उपभोग अवश्य कर सकता है। अरस्तूके लेख मैंने नहीं पढ़े हैं। प्लेटोको भी मैंने थोड़ा ही पढ़ा है। इसलिए इनके विचारोंके बारेमें मैं क्या कह सकता हूँ?

तुमने जिन गुणोंके बारेमें लिखा है, सार्वजनिक सेवाके लिए उन सबकी जरूरत है।

बच्चोंके लिए सत्संगकी जरूरत है। सत्संगकी व्याख्या तुलसीदासने की है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया'का लेख मैंने नहीं देखा है।

मेरे सहवासमें जिसे मधुका अनुभव हुआ है वह जहाँ कहीं भी जायेगा उसे मधुका ही अनुभव होगा। क्योंकि उसे तो कड़वी चीज भी मधुर लगेगी।

अनन्तपुरकी रिपोर्ट मुझे मिली नहीं है। इसलिए तकलीकी बाबत भी वही हुआ। मैं तलाश करूँगा।

इमर्सन कौन था, यह मैं नहीं जानता। तुम्हें मालूम नहीं है कि मेरा अध्ययन एक अच्छे मैट्रिकुलेटसे भी कम है?

अपने हृदयसे सुख-सामग्री खोज निकालनेवाले व्यक्तिके लक्षण 'गीता'के द्वितीय अध्यायके स्थितप्रज्ञ-जैसे होने चाहिए। 'लालेग्रो'[1] और 'इल पेंसेरोजो'[2] भी मैंने नहीं पढ़ी हैं।

१ और २. जॉन मिल्टनकी कविताएँ।

मेरे अज्ञानकी खूब परीक्षा हुई। लेकिन इसका मुझे खेद नहीं है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५०५)से। सी० डब्ल्यू० ४९८२ से भी; सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

३६६. पत्र: नर्मदाबहन राणाको

१३ अगस्त, १९३२

चि० नर्मदा,

तू अच्छी छूटी। अब निश्चिन्त होकर सब-कुछ सीखना। अक्षर-ज्ञान भी प्राप्त करना और दस्तकारी भी सीखना। प्रार्थना आदि ठीकसे समझना। तुझे तो बहुत तरक्की करनी है। मुझे लिखती रहना।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७५९) से; सौजन्य: रामनारायण एन० पाठक

३६७. पत्र: लक्ष्मी जेराजाणीको

१३ अगस्त, १९३२

चि० लक्ष्मी (जेराजाणी),

तेरा पत्र मिला।

मेरा पत्र[1] कुछ गड़बड़में पड़ गया था इसीसे वह देरसे मिला।

तूने एक दिनका कार्यक्रम भेजा सो ठीक किया। तू क्या-क्या सीखती है? एक सुझाव दूं? तेरे कार्यक्रममें मैं प्रार्थनाका कोई स्थान नहीं देखता। सवेरे उठनेके साथ ही दातौन आदिसे फारिग हो, स्थिरभावसे बैठकर एकाग्रचित्तसे प्रार्थना करनी ही चाहिए, इसी तरह सोनेके समय भी। जैसे शरीरको अन्नकी आवश्यकता होती है उसी तरह जीवको प्रार्थनाकी जरूरत होती है। शरीर अन्नके अभावमें कुछेक दिन निभ सकता है। थोड़ा उपवास फायदा भी करता है, लेकिन प्रार्थनाका उपवास होता ही नहीं है। जिसे आत्मामें विश्वास है वह प्रार्थनाके बिना एक दिन भी नहीं रह सकता। विट्ठलदासका[2] समाचार देती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१३) से; सौजन्य: पुरुषोत्तम डी० सरैया

१. २-७-१९३२ का।

२. लक्ष्मी जेराजाणीके चाचा।

३६८. वाचन और विचार[1]– १

१४ अगस्त, १९३२

हमें पाठशालामें सिखाया जाता है: 'भणतर मिथ्या वगर विचार' (बिना विचारे पढ़ना बेकार)। यह बात अक्षरशः सत्य है। हमें पढ़नेका शौक हो तो वह अवश्य अच्छा कहा जायेगा और जो आलस्यवश लिखते-पढ़ते नहीं वे अवश्य मूढ़ माने जायेंगे, लेकिन जो व्यर्थ ही पढ़ते रहते हैं और विचार नहीं करते वे भी लगभग मूर्ख ही रहते हैं। और फिर बदलेमें कुछ लोग आँखें खो बैठते हैं सो अलग। व्यर्थका वाचन अर्थात् बिना विचारका वाचन भी एक प्रकारका रोग ही माना जायेगा।

हममें अनेक लोग इस तरहकी पढ़ाई करनेवाले होते हैं। वे पढ़ते हैं लेकिन विचार नहीं करते। इसीसे पढ़ी हुई चीजका अनुसरण तो क्या करेंगे? फलतः हमें थोड़ा पढ़ना चाहिए, उसपर विचार करना चाहिए और उसे अमलमें लाना चाहिए। अमल करते हुए जो उचित न लगे उसे छोड़कर आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा करनेवाला व्यक्ति कम वाचनसे अपना काम चला सकता है, बहुत सारा समय बचाता है और मौलिक कार्य करनेकी जिम्मेदारी उठानेके योग्य बनता है।

जो विचार करना सीखता है उसे एक और लाभ भी होता है जो जानने योग्य है। हमेशा पढ़नेको नहीं मिल सकता और ऐसा देखा गया है कि जिन्हें पढ़नेकी आदत होती है यदि उन्हें पढ़नेको नहीं मिलता तो वे विक्षिप्त हो उठते हैं। लेकिन यदि विचार करनेकी टेव हो तो उनके पास विचारपोथी हर समय रहती है, इसलिए उनके पागल हो उठनेका कारण नहीं होता।

विचार करते हुए 'सीखना' इस शब्दका प्रयोग मैंने जानबूझकर किया है। सच्चे-झूठे, व्यर्थके विचार तो अनेक जन करते रहते हैं। यह तो पागलपन हुआ। कुछेक लोग विचारोंके भँवरमें फँसकर निराश हो जाते हैं और आत्मघात भी करते हैं। मैं यहाँ ऐसे विचारोंकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ। यहाँ पर मेरी सलाह तो केवल यह है कि हमें पढ़े हुए पर विचार करना चाहिए। मान लीजिए कि आज हमने एक भजन पढ़ा अथवा सुना है। हमें चाहिए कि हम उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। उसमें क्या रहस्य है? उससे हमें क्या ग्रहण करना है और क्या नहीं, इसकी जाँच करनी चाहिए। उसमें कोई दोष हो तो देखो; अर्थ समझमें न आया हो तो समझो। यही सही विचार-पद्धति है। यह तो मैंने सरल-से-सरल उदाहरण दिया है। इसके आधारपर प्रत्येकको अपनी सामर्थ्यानुसार ग्रहण करके आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा करनेवाला व्यक्ति अन्ततः आत्मानन्दका उपभोग करेगा और उसका वाचन भी फलीभूत होगा।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको" ११/१५-८-१९३२ के साथ भेजा गया था।

३६९. एक पत्र

१४ अगस्त, १९३२

यह कह देने मात्रसे किसीका काम नहीं चलेगा कि मैं तो जो हूँ सो हूँ। यह तो निराशाका रुदन हुआ। एक सत्यान्वेषी तो कहेगा "मुझे जो होना चाहिए मैं वही बनूँगा।" तुमसे मेरी अपील है कि तुम अपने मनकी कोठरीसे बाहर निकलो और तुम्हारे चारों तरफ जितने चेहरे हैं उन सबमें अपने-आपको देखो। चारों ओर इतना जीवन होनेपर भी उसके बीच तुम एकाकी कैसे हो सकते हो? यदि हमारा दर्शन हमें अन्य मानवोंके सम्पर्कसे आनन्द पाना और उनकी सेवा करना नहीं सिखाता तो फिर वह सबका-सब बेकार है।

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३७०. पत्र : गुलाबको

१४ अगस्त, १९३२

चि० गुलाब,

तेरा पत्र मिला। तेरा मन लग गया है, यह अच्छा हुआ। खूब सीखना। कसरत करके शरीरको भी अच्छा बनाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७२०)से।

३७१. पत्र : शामल आर० रावलको

१४ अगस्त, १९३२

चि० शामल,

जब भय लगे तब रामका नाम लेना चाहिए। उससे भय दूर हो जायेगा। सोनेके समय राम-नाम लेकर सोना चाहिए। तेरे पास कोई सोता है क्या? भगवान हमारे पास ही हैं, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए और जिसके साथ भगवान है उसे भय काहेका?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४५)से। सी० डब्ल्यू० २८८० से भी; सौजन्य: शामल आर० रावल

३७२. पत्र : केशवको

१४ अगस्त, १९३२

चि० केशव,

तेरा पत्र मिला। अक्षर सुधारना। खूब सीखना। हमारे हाथसे यदि कोई साफ करनेके लिए बर्तन ले ले तो विवेकपूर्वक उससे कहना चाहिए कि वह हमें ही बर्तन साफ करने दे। यदि वह न माने तो उसे करने दें। जो पदार्थ मिर्चवाला हो उसे हमें छोड़ देना चाहिए। हमें चाहिए कि हम पहले ही मिर्चवाला पदार्थ परोसनेसे मना कर दें। रोटी, नमक या छाछ-जैसा जो-कुछ मिल जाये उसी पर गुजारा करें। लेकिन यदि हमसे ऐसा न हो सके तो जो मिले थोड़ा बहुत खा लें।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२७९) से।

३७३. पत्र : पद्माको

१४ अगस्त, १९३२

चि० पद्मा,

तेरा पत्र बहुत दिनों बाद मिला। तुझे पत्र लिखना बाकी रह गया था, यह बात मेरे ध्यानमें ही नहीं रही। मैंने तो खूब पत्र लिखे हैं। तेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है यह जानकर मैं प्रसन्न हूँ। खदलीका वर्णन देना। वहाँ कितने पेड़ हैं? पानी कहाँसे मिलता है? अल्मोड़ासे कितनी दूर है? शीला बहुत बड़ी हो गई है? तू दिन कैसे व्यतीत करती है? अपने हाथकी जाँच करनेके लिए मैंने कुछ दिन 'गाण्डीव' चलाया था। आजसे मैं फिर मगन चरखा चलाने लगा हूँ। मेरी गति प्रति घंटा सौ तारसे अधिक नहीं जान पड़ती। मुझे लिखती रहना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३५) से। सी० डब्ल्यू० ३४८७ से भी; सौजन्य : प्रभुदास गांधी

३७४. पत्र : भाऊ पानसेको

१४ अगस्त, १९३२

चि० भाऊ,

कब्जके लिए तुरन्त डा० तलवरकरके पास जाकर उनकी सलाह लेनी चाहिए। अर्थार्थी भक्त वह है जो अपनी विशेष इच्छाकी पूर्तिकी याचना करता है, ऐसा मुझे लगता है। यदि मैं खादी-प्रवृत्तिकी सफलताके लिए रोज ईश्वरका भजन करता हूँ तो मैं अर्थार्थी भक्त हुआ।

'अग्निर्ज्योति' वाला श्लोक[1] क्षेपक है, ऐसी अर्नाल्डकी मान्यता है। अगर ऐसा है तो भी ठीक है — यह तो मेरी भी मान्यता है। उसके शब्दार्थको लेकर मैं उसके रहस्यको समझ ही नहीं पाता। भावार्थ तो सरल लगता है। पहला तो ज्ञान-मार्ग है, दूसरा उससे विपरीत है। षण्मास तो उदाहरण स्वरूप है। मेरे सन्तोषके लिए इतना काफी है। प्रार्थनामें तुम्हें जो विघ्न पड़ते हैं वे (आरम्भमें) सभीको पड़ते हैं, पर प्रयत्नपूर्वक लगे रहनेसे दोनों विघ्न दूर होते हैं। इन विघ्नोंके बावजूद प्रार्थनामें लगे रहना चाहिए। किसी-न-किसी दिन तो प्रार्थनामें तल्लीनता प्राप्त होगी। विघ्न आते हैं, उसका कारण यह है कि जितनी हमें भोजनकी भूख लगती है उतनी प्रार्थनाकी भूख नहीं लगती। तात्पर्य यह है कि हमें आत्माके बारेमें इतनी प्रतीति नहीं है जितनी शरीरके बारेमें है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३४) से। सी० डब्ल्यू० ४४७७ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१. **भगवद्गीता,** ८, २४ और २५; देखिए खण्ड ३२, पृष्ठ २५७-५८ भी।

३७५. पत्र : महेन्द्र वी० देसाईको

१४ अगस्त, १९३२

चि० मनु,

नोटबुकका कागज पाठ लिखनेके लिए है। लेकिन लिखनेके लिए कागज अगर (नोटबुकमें बँधे न होकर) खुले हों तो उनकी कीमत कम पड़ती है। सुन्दर लिखावटके लिए [सरकंडेकी] कलम जरूर होनी चाहिए। कापी-बुक यदि ध्यानपूर्वक लिखी जाये तो लिखावटमें जरूर सुधार होगा। इस बारकी लिखावट ठीक कही जा सकती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३५) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

३७६. पत्र : छगनलाल जोशीको

१४ अगस्त, १९३२

आश्रमकी मजदूरीके पीछे स्वतन्त्रताकी मान्यता रही है और दूसरेमें पराधीनता निहित है। हमारे लिए तो वस्तुतः दोनोंमें स्वतन्त्रता है। जो स्वयं ही दुख बटोरते हैं उन्हें मनमें भी दुखके प्रति शिकायत नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत उन्हें वह दुख भी सुखरूप भासना चाहिए। तेलकी कढ़ाईमें पड़नेपर सुधन्वा कैसे हर्षसे नाच उठा होगा! प्रह्लादने आगसे तपे लौहस्तम्भोंका किस प्रकारसे आलिंगन किया होगा? इसे हमें कपोलकल्पित नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आज भी ऐसा हो सकता है। रिडली,[1] लेटिमर[2] और मन्सूर[3] के उदाहरण तो ऐतिहासिक हैं। अन्य उदाहरण तो तुम स्वयं याद कर सकते हो। हर बात मनपर निर्भर करती है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड–१

१ और २. प्रोटेस्टेंट मतावलम्बी शहीद।
३. एक सूफी शहीद।

३७७. पत्र : शारदा सी० शाहको

१४ अगस्त, १९३२

चि० शारदा,

यदि किसी दूसरे व्यक्तिके पत्रमें वही बात हो तो तू क्यों न पढ़ लेती?

तेरा वजन तीन पौंड बढ़ा, यह तो अच्छी बात है। शकरीबहन[1] के आ जानेसे कहीं कम न हो जाना।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१४) से; सौजन्य : शारदाबहन जी० चोखावाला

३७८. एक पत्र

१४ अगस्त, १९३२

. . .[2] की आत्माका अब हनन नहीं करना। उसके हठके प्रति मेरे मनमें आदरभाव है। जिसे वह धर्म मानती है उसके बीच हम लोग कैसे आ सकते हैं? हमें उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। उसका भरण-पोषण करना तुम्हारा धर्म है। उस पर रोष किया ही नहीं जा सकता। किसी पराई स्त्रीके आचारके सम्बन्धमें जैसे हम रोष नहीं करते, वैसे ही इस प्रसंगमें भी होना चाहिए। ऐसे अभेदमें ही आन्तरिक सुखकी कुंजी निहित है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड–१

१. शारदाबहनकी माता।

२. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया है।

३७९. पत्र : एक बालिकाको

१४ अगस्त, १९३२

क्रोध आये तब क्या करें, ऐसा प्रश्न न पूछ कर तुम्हें यह पूछना चाहिए कि क्रोध न आये उसके लिए क्या करना चाहिए। क्रोध न आये, इसके लिए सबके प्रति उदार बनना चाहिए और हम सबमें हैं तथा सब हममें हैं, इस भावनाका विकास करना चाहिए। जिस तरह समुद्रके जलकी समस्त बूँदें भिन्न होनेपर भी एक ही हैं उसी तरह हम भी भवसागरमें पड़े हैं। अतः कौन किसपर क्रोध करे?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३८०. एक पत्र

१४ अगस्त, १९३२

आश्रममें न्याति-जातिको प्रश्रय नहीं दिया जाता, क्योंकि जात-पाँतमें धर्म नहीं है। इसका हिन्दू धर्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। किसी भी व्यक्तिको अपनेसे उच्च अथवा हीन माननेमें पाप है। हम सब समान हैं। छुआछूत पापके प्रति हो सकती है, मनुष्यसे कभी नहीं। जो मनुष्य सेवा करना चाहता है उसके हृदयमें किसीके प्रति ऊँच-नीचकी भावना नहीं होती। ऊँच-नीचकी यह मान्यता हिन्दू धर्मपर कलंक है। उसे हमें दूर करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड–१

३८१. पत्र : एक बालिकाको

१४ अगस्त, १९३२

जहाँतक तेरा हृदय दोष न माने वहाँतक दोष नहीं समझना। अंतमें हमारे पास दूसरा कोई नाम नहीं है। इसीलिए हम हृदयको स्वच्छ रखनेकी कोशिश करते हैं। पापी मनुष्य पापको ही पुण्य मान लेता है, क्योंकि उसका हृदय मलिन है। कुछ भी हो, जब तक उसे ज्ञान नहीं हुआ तब तक पापको ही पुण्य समझकर चलता रहेगा। इसलिए तेरे लिए अच्छा क्या है, वह और कोई नहीं बता सकता। मैं तो इतना ही बता सकता हूँ कि हमें सत्य और अहिंसाके पथपर चलना है। और ऐसा करनेके लिए यम-नियमादिका पालन आवश्यक है।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३८२. एक पत्र

१४ अगस्त, १९३२

आत्मा, कुटुंब, देश और जगतके प्रति चार पृथक् धर्म नहीं हैं। अपना अथवा कुटुंबका अकल्याण करके देशका कल्याण नहीं हो सकता है। इसी तरह जगतका अकल्याण करके देशका कल्याण नहीं हो सकता। इसमेंसे फलितार्थ यह होता है कि हम मरके कुटुंबको जिलावें; कुटुंब मरके देशको, देश जगतको। परंतु बलिदान शुद्ध ही हो सकता है। इसलिए सब प्रारंभ आत्मशुद्धिसे होता है। आत्मशुद्धि होनेसे प्रतिक्षणके कर्तव्यका पता अपने आप मिल जाता है।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३८३. पत्र: नारणदास गांधीको

११/१५ अगस्त, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक नियमपूर्वक मिल गई। आजकी डाकमें इटलीमें हमारी तरह ही एक आश्रममें रहनेवाली किसी महिलाका[१] अत्यन्त सुन्दर पत्र भेज रहा हूँ। वहाँ काम करनेवाली सब महिलाएँ ही हैं। ये लोग कितने भक्तिभावसे और कितने धैर्य से काम करती हैं और क्या करती हैं, इसका थोड़ा बहुत आभास तुम्हें इस पत्रसे मिलेगा। आश्रमके सब लोगोंको, मुख्यतः महिलाओंको इसका सार बताना। साथ ही यह भी बता देना कि सेंट फ्रान्सिस कौन थे। सेंट फ्रान्सिसका जीवन-वृत्तान्त महादेव ने 'नवजीवन' में लिखा था। यह कदाचित् तुमने भी देखा होगा। मैंने इन बहनोंसे सीधे आश्रमको एक पत्र लिखनेका अनुरोध किया है। वहाँ कदाचित् उनका पत्र आये तो उत्तर देना और साथके इस पत्रको पढ़नेके बाद यदि तुम्हारा उनको लिखनेका मन हो तो उनकी ओरसे पत्र मिले बिना भी तुम उन्हें लिख सकते हो। लिखना आवश्यक है, ऐसा न समझना। कदाचित् उन महिलाओंने सीधे आश्रमको भी पत्र लिखा हो।

तुम्हारे यहाँ बहुत जोरदार बारिश हुई जान पड़ती है। यहाँ भी लगभग वैसी ही बारिश हुई है, लेकिन बहुत कम मात्रामें। अब बादल छँटने लगे हैं।

१. सियेना आश्रमकी कुमारी टर्टन।

आज मापनेपर पता चला कि मैं गांडीव चरखेपर ५३ अंकतक का सूत कात सका हूँ। महादेव ८० अंक तक पहुँचा है। वल्लभभाई भी ४० अंकतक तो अवश्य पहुँचे हैं। मेरी मान्यता है कि ऐसे परिणामोंकी अपेक्षा केवल गांडीवसे ही की जा सकती है। महीन सूत कातनेके लिए अभी गांडीवमें सुधार करनेकी गुंजाइश है। थोड़ा बहुत सुधार तो हम लोग यहीं जेलमें कर रहे हैं। महीन सूत कातनेवाले व्यक्तिको एकाग्रचित्त तो होना ही पड़ता है, पूनियाँ अच्छी रखनी ही पड़ती हैं। तात्पर्य यह कि हरएक वस्तु सावधानीके साथ की जाये तभी महीन सूत काता जा सकेगा। मुझे लगता है कि यदि हम अच्छेसे-अच्छा और महीनसे-महीन सूत कातें और बुनें तो अनेक शोध कर सकते हैं और सूतकी किस्ममें भी सुधार हो सकता है; हमारा अपना काम भी बहुत दुरुस्त हो जाये और सुघड़ता भी आये। और यदि ऐसा करना हो तो महीन कातनेवाले सब लोगोंको गांडीव चरखा अपनाना चाहिए। लेकिन इस बारेमें तो तुम सब लोग वहाँ इकट्ठे होकर ही किसी निर्णय पर पहुँच सकते हो और यही बेहतर भी है। यद्यपि गांडीवपर मेरा अनुभव काफी लम्बे समयका है तथापि मैं उसे बहुत महत्त्व नहीं देता। यदि गांडीवपर प्रयोग करनेवाले अन्य लोग भी दृढ़तापूर्वक मेरी इस बातका समर्थन करें तभी इसका महत्त्व है। अतएव अपने प्रयोगको मैं केवल मार्गदर्शक मानता हूँ। गांडीव चलानेसे अभीतक मेरे हाथको कोई नुकसान हुआ है, ऐसा नहीं जान पड़ता। जबतक वह काम देगा तबतक उससे काम लूँगा। नहीं तो वापस मगन चरखेपर चला जाऊँगा। तुम्हारे खुदके लिए तो गांडीव चरखा चलाना बिल्कुल आसान चीज है। तुम तार दाहिने हाथसे खींचते हो यह मैं जानता हूँ। गांडीव चरखेपर दाहिने हाथसे तार खींचनेमें कोई मुश्किल ही नहीं है। मोढ़ियाके खाँचेमें यदि टेढ़ापन न हो तब तो केवल तकुएकी दिशाको ही बदलना पड़ता है। और खाँच पड़ी हो तो बदली हुई खाँचकी दिशावाला मोढ़िया रखना चाहिए। चूँकि मेरे मोढ़ियामें टेढ़ी खाँच पड़ी हुई है इसलिए मजबूत सूत निकालनेमें लाभ होता है। पर जिस पूनीसे ५३ अंकका सूत निकाला है वह छक्कड़दासकी है। मैं यदि इस बार छक्कड़दासको न लिख सका तो उससे इतना कहना कि उसकी पूनीका खूब उपयोग किया जा रहा है।

आशा है, वीरसिंहका बुखार उतर गया होगा। अमतुलको भी आराम होगा।

छक्कड़दासकी पूनी, उर्दू पुस्तकें तथा फ्रेंच शब्दकोष मिल गये हैं। शंकरभाईका पलस्तर तो बहुत दिन चला। इससे लगता है कि उन्हें काफी चोट आई होगी। अब तो पलस्तर उतर गया होगा।

नर्मदाको तो सचमुच मुक्ति मिल गई। धीरसिंह किस जातिका है? ६५० रुपये कौन देगा? क्या नर्मदाके पीहरके लोग समर्थ हैं? यह सब मैं अपनी जानकारीके लिए पूछ रहा हूँ। नर्मदा तो सस्तेमें ही छूट गई।

डाक्टरके सम्बन्धमें यदि रतुभाईने कुछ कार्रवाईकी हो तो मुझे समाचार देना, चाहे वह दिन तुम्हारे लिखनेका न हो। रंगूनमें कौन-कौन हैं? यह खबर मिली हो तो यह भी बताना।

मेरे वजनमें एक-डेढ़ पौंडकी कमती-बढ़ती होती रहती है। इसके लिए विशेष कारण ढूँढ़नेकी मैंने कोशिश नहीं की है। कोशिश करने-जैसी कोई बात भी नहीं है। अपनी खुराकमें से मैंने दस-एक दिन पहले रोटीकी छुट्टी कर दी है, उसका कारण थोड़ा बहुत कब्ज था। तबसे एक बार चारसे छः केले और दूध तथा एक चमचा पिसे बादाम लेता हूँ। दूसरी बारके भोजनमें, जैसाकि लिया करता था, एक हरी सब्जी लेता हूँ तथा उसमें दूध मिलाकर खाता हूँ। और बहुत करके दोनों समय सन्तरा अथवा मोसम्बी लेता हूँ। इससे कब्ज दूर हो गया है। इस समय मेरा वजन १०४½ पौंड हो गया है। मतलब यह कि रोटी न खानेसे मेरा वजन कम नहीं हुआ है।

हाथ जैसाका तैसा है। केशू और अब्बासके सूत मिल गये। दोनों अच्छे हैं। मैं दोनोंको यत्नपूर्वक सँभालकर रखूँगा। अब्बासने किस चरखेपर काता? यज्ञ विषयक टिप्पणीकी जाँच कर गया हूँ, बहुत बारीकीके साथ तो नहीं कर सका। यदि हम यह चाहते हों कि प्रशिक्षित लोग कमसे-कम २० अंकका सूत अवश्य कातें तो हमें काफी ज्यादा सीमा निश्चित करनी होगी। ऐसा करनेपर २० अंकसे नीचे कदाचित् ही कोई कातेगा। जो अन्तिम सीढ़ीसे नीचे नहीं उतरना चाहता उसे हमेशा पाँच-दस सीढ़ी आगे ही रहना चाहिए। स्थिरता-जैसी चीज तो इस संसारमें कोई है ही नहीं। इसलिए कोई भी व्यक्ति निम्नतम सीढ़ीपर तो रह ही नहीं सकता और जो आगे नहीं बढ़ता उसे नीचे उतरना ही पड़ता है। विद्याभ्यासके लिए मैंने जो पद्धति बताई है[1] उसमें परस्पर एक-दूसरेके लिए समय निकालने-जैसी कोई बात नहीं है अपितु जहाँ ऐसा वातावरण हो वहाँ समय अपने-आप निकल आता है, ठीक उसी तरह जिस तरह खानेके लिए समय-विशेषकी जरूरत नहीं रहती; वह तो होता ही है। उसी तरह विद्याभ्यासके लिए एक-दूसरेको समय देना भी स्वाभाविक बन जाना चाहिए। जिसके पास जो सम्पत्ति हो उसे चाहिए कि वह सम्पत्ति अपने सम्पत्तिरहित पड़ोसीको दे। लेकिन जबतक हमें इसकी आदत न पड़ जाये तबतक, जैसा कि तुमने लिखा है, हमें परस्पर एक दूसरेके लिए समय निकालनेकी आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए जिसके पास देनेके लिए कुछ हो उसके लिए हमारे पास जो दैनिक पत्रक है, उसमें समय के उल्लेखका खाना होना चाहिए।

कृष्णदासको मदद देनेके बारेमें पुछवाया, यह बहुत ठीक हुआ। नीमूके बारेमें मैं उसे लिखूँगा। मेरे पत्रको पढ़ जाना। यदि वह व्रत ले ही चुकी होगी[2] तो उसे तोड़ देनेका आग्रह नहीं करूँगा। उन लिए हुए व्रतोंको, जिनमें पाप न हो, तोड़नेसे व्यक्तिकी व्रत लेनेकी अर्थात् निश्चय करनेकी शक्तिका ह्रास होता है। 'अनासक्ति-योग'की प्रतियोंकी यदि माँग की जाती है तो जहाँ ठीक जान पड़े वहाँसे उसे प्रकाशित करवानेमें मैं कोई हर्ज नहीं देखता। और यदि तुम इस माँगको पूरा नहीं कर

१. देखिए "शिक्षा", १०-७-१९३२।

२. देखिए "पत्र: रामदास गांधीको," ११-८-१९३२।

सकते तो फिलहाल शान्त रहना। मुझे लगता है कि प्रवचनोंको प्रकाशित करवानेमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन यदि प्रकाशित करवाये जायें तो उन्हें एक बार फिरसे अच्छी तरह देख जाना चाहिए। मैं भेजते समय उनकी अच्छी तरहसे जाँच नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त मेरी लिखावट भी खराब है जिससे अनपेक्षित भूलें रह जानेकी सम्भावना है। फिलहाल मैं जो प्रवचन भेजता हूँ वे आश्रमके छोटेसे समाजको ध्यानमें रखकर लिखे गये हैं। अप्पाने बहुत ही सुन्दर कार्य किया है। हरियोमलको छुट्टी देकर तुमने ठीक ही किया।

१४ अगस्त, १९३२

नारायणप्पाका पत्र देखनेमें नहीं आया। इसलिए यदि वह तुमसे मेरे उत्तरके बारेमें पूछे तो उससे कहना कि उसका पत्र ही नहीं मिला। बच्चोंके सम्बन्धमें आनन्दी और अमतुलको लिखे मेरे पत्रको पढ़ जाना।

बापू

महादेव कहता है कि वल्लभभाईके संस्कृतके अभ्यासके विषयमें मैंने अभीतक तुम्हें कुछ नहीं लिखा है। मेरा खयाल है कि लिखा है। वे तो फिलहाल संस्कृतके अध्ययनमें लवलीन हो गये हैं। चलते-फिरते भी उसीका पठन-मनन करते हैं। लगभग पाँच घंटे देते हैं। युवक विद्यार्थी भी उनके उत्साहके आगे लजा जाये। उन्होंने पण्डित सातवलेकरके पाँच भाग पढ़ लिए हैं, इसके अतिरिक्त वे अब रोज 'गीता' के पाँच श्लोक भी याद करते हैं। पहला अध्याय पूरा कर लिया है, दूसरा चल रहा है। संस्कृत पढ़नेका मूल कारण यह है। एक दिन राजाजीका पत्र आया था। उसमें उन्होंने संस्कृतका अभ्यास करनेकी बात लिखी थी। इससे सरदारको उत्साह हुआ। इस बातको अभी पाँच सप्ताह ही हुए हैं। संस्कृतके साथ ही चरखा भी शुरू किया। अब उसमें भी कातते समय एकाग्रचित्त हो जाते हैं। सूतमें रोज वृद्धि होती जाती है। लगभग ४० अंकतक पहुँचे हैं।

१५ अगस्त, १९३२

परसराम लिखता है कि अनन्तपुरकी रिपोर्ट तुम भेज चुके हो। यदि ऐसा हो तो उसके भेजनेकी तारीख लिखना। क्या उसे रजिस्टरमें दर्ज किया था?

कुल ४४ पत्र हैं।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२४५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३८४. पत्र : एस० सत्यमूर्तिको

१५ अगस्त, १९३२

प्रिय सत्यमूर्ति,

तुम्हें क्या हुआ है? मैं अखबारोंकी रिपोर्टोंका विश्वास नहीं करता। मैं आशा करता हूँ कि कोई गम्भीर बात नहीं है।

हम तीनों ठीक-ठाक हैं।

[अंग्रेजीसे]

एडवांस, २३-८-१९३२

३८५. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

१५ अगस्त, १९३२

चि० जानकीबहन,

कितना अभिमान? जेलमें हो आईं तो क्या अब पत्र ही नहीं लिखोगी? जैसे तुम्हीं अकेली जा सकती थीं न! तबीयत कैसी है? कमलनयन[1] कहाँ है? उसको मैंने खत लिखा है। लगता है, वह उसतक नहीं पहुँचा है।

बालकृष्ण कहाँ है? उसका इधर कोई खत ही नहीं आया। मदालसा भी मानो सो गई है। शिवाजी तथा राधाकृष्णके बारेमें लिखना। छोटेलालको पत्र लिखा है, उसका भी जवाब नहीं आया। मैं इन सबकी आशा तुमसे रखता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती जानकीबाई
मार्फत सेठ जमनालाल बजाज
वर्धा

[पुनश्च :]

हम तीनों मजेमें हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २८९९) से।

१. जमनालाल बजाजके पुत्र।

३८६. पत्र : विमलाबहन ए० पटेलको

१५ अगस्त, १९३२

चि० विमला,

इस बारका तेरा पत्र पास करता हूँ। यदि तुझे ३३⅓ प्रतिशत अंक अधिक चाहिए तो माँगना। अक्षर बारीक हैं, सो तो कोई बात नहीं; लेकिन अक्षर एक जैसे नहीं हैं। लिखावट पर रामदास[1] की एक कविता है, उसे तूने पढ़ा है? न पढ़ी हो तो आश्रमसे मँगा लेना। मेरे पास यहाँ नहीं है। पुस्तक सुन्दर है। स्याहीसे लिखे पत्रकी भी कारबन पेपरसे नकल उतारी जा सकती है, यह बात तू जानती है? इसके लिए खास किस्मका कारबन पेपर आता है। मैंने तेरा सन्देश भक्तिबहनको तुरन्त पहुँचा दिया था। पर तो भी उसमें विलम्ब हुआ। डाह्याभाई उससे मिल गये थे।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती विमलाबहन
पाटीदार मन्दिर
आणंद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२७७) से।

३८७. पत्र : भुस्कुटेको[2]

१५ अगस्त, १९३२

मैं दोनों ईश्वरको मानता हूँ, जिसके पाससे हम सेवा लेते हैं, और जिसकी हम सेवा करते हैं। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि हम सेवा करें और किसी प्रकारकी सेवा न लेवें। लेकिन दोनों ईश्वर काल्पनिक हैं। उसके नजदीक तो वही चीज सच्ची है। जो ईश्वर सचमुच है वह कल्पनातीत है। वह न सेवा करता है, न सेवा लेता

१. महाराष्ट्रके एक संत-कवि।

२. "ईश्वर दो हैं। एक तो वह जिसमें सब लोगोंका विश्वास है, और जिसे कभी-कभी उन लोगोंकी बड़े परिमार्जित ढंगसे सेवा भी करनी पड़ती है; सम्भवत: उन्हें मात्र मनकी शान्ति प्रदान कराके। इस ईश्वरका अस्तित्व नहीं होता। लेकिन जिस ईश्वरकी हम सबको सेवा करनी है, उसका अस्तित्व है और वही हमारे जीवन और जो-कुछ हमें दृष्टिगोचर होता है उसका कर्ता है।" टॉल्स्टॉयके इन शब्दोंका उल्लेख करते हुए भुस्कुटेने यह पूछा था कि "गांधीजी इन दोनोंमें से कौन-से ईश्वरको मानते हैं, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति दूसरे ईश्वरको मानता है तो फिर उसके लिए प्रार्थनाका कोई महत्त्व नहीं है।"

है। उसके लिये कोई विशेषण भी नहीं है, क्योंकि ईश्वर कोई बाह्य शक्ति नहीं है, लेकिन वह हमारे भीतर ही है। और क्योंकि हम जानते नहीं हैं कि ईश्वर किस तरहसे काम करता है, इसलिये कल्पनातीत शक्तिका स्मरण करना ही चाहिये। और जब हमने स्मरण किया वैसे ही हमारा कल्पनामय ईश्वर पैदा हुआ। अन्तमें बात यह है कि आस्तिकता बुद्धिका प्रयोग नहीं है, वह श्रद्धाकी बात है। बुद्धिका सहारा बहुत कम इस बातमें मिल सकता है। और जब हमने ईश्वरको माना तब विश्वके व्यवहारकी बातका झगड़ा छूट जाता है, क्योंकि पीछे हमको मानना होगा कि ईश्वरकी कोई कृति बगैर हेतु नहीं हो सकती। इससे आगे नहीं जा सकता हूँ।

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३८८. पत्र : साथी कैदियोंको

१५ अगस्त, १९३२

जो लोग एकाग्रचित्त होकर अध्ययन नहीं कर सकते उनके लिए यह दवा है : बाहरकी दुनियाको बिल्कुल भूल जाओ। शरीर रूपी इस चोलेको छोड़ते समय यदि जीवका ध्यान इस संसारमें बना रहता है, तो वह अधोगतिको प्राप्त होता है और इस तरह अपनेको तथा दूसरोंको भी पीड़ा पहुँचाता है; कैदियोंको भी ऐसा ही समझना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे बाह्य जगतका ध्यान ही न करें, क्योंकि [जेलमें रहनेके कारण] उनकी तो [सिविल डेथ] सांसारिक मृत्यु हो गई है। और यदि सांसारिक मृत्युको प्राप्त मनुष्यका जीव संसारमें ही मन लगाये रहे तो वह स्वयं भी पागल-जैसा जान पड़ता है और अपने आसपासके लोगोंको भी पागल बना डालता है। मैं जो यह लिख रहा हूँ सो कोई नई बात नहीं है। [जॉन] बनियन यदि बाह्य संसारका विचार किया करता तो वह अपना अमर ग्रन्थ[1] नहीं लिख पाता, और लोकमान्य [तिलक] 'गीता रहस्य' न लिख पाते।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस।

३८९. एक पत्र

१५ अगस्त, १९३२

प्रार्थना और ब्रह्मचर्य दोनों एक ही तरहकी चीजें नहीं हैं। ब्रह्मचर्य पाँच महाव्रतोंमें से एक है, और प्रार्थना उसतक पहुँचनेका एक साधन है। ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके बारेमें तो मैंने बहुत-कुछ कहा है, लोगोंको बहुत समझाया है। लेकिन उसतक कैसे पहुँचा जाये, इसका विचार करते हुए प्रार्थनाका एक बहुत बड़ा साधन हमारे हाथ लगा है। जो प्रार्थनाके महत्त्वको समझ सकता है और समझकर प्रार्थनामें लीन हो सकता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सहल हो जाता है।

मेरे मतानुसार आदर्श डाक्टर वह है जो अपने धन्धेके लिए ज्ञान प्राप्त करे और जनताको बिना पैसेके उस ज्ञानका लाभ दे। अपनी आजीविकाके लिए या तो वह कोई सामान्य धन्धा करे अथवा जो थोड़ा-बहुत जनता उसे दे उससे अपना निर्वाह करे, लेकिन उसे कभी भी अपने कामकी फीसके रूपमें न माने। आदर्श स्थितिमें मैं इन सेवकोंके लिए वार्षिक शुल्क तय कर दूँगा और उसके बाद वह धनवान अथवा गरीबसे कुछ ले न सकेगा।

जहाँतक मैं समझ सका हूँ, जपयज्ञका अर्थ है नामस्मरण।

मिताहारका परिमाण बताना मुश्किल है, अल्पाहारका सहज ही बताया जा सकता है, क्योंकि अल्पाहारका अर्थ है निश्चयपूर्वक आवश्यकतासे कम खाना, और इसीका चुनाव श्रेयस्कर भी है।

जो व्यक्ति सत्यका पालन करना चाहता है, उसके मनमें एक भी ऐसा विचार नहीं आना चाहिए जिसे गुप्त रखना पड़े। उसके बेहूदे विचारोंको भी यदि संसार जान जाये तो उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चिन्ता तो कलुष विचारोंकी होनी चाहिए, पापकी होनी चाहिए। मेरी डायरी कोई देख लेगा तो क्या होगा, इस भयके मूलमें कारण यह है कि हम जो हैं, उससे अच्छे दीखना चाहते हैं। और समस्त संसार द्वारा किसी व्यक्तिकी डायरी देख लेनेपर भी जिसे चिन्ता न हो वह अपनी पत्नीसे तो कोई चीज क्यों छिपाना चाहेगा?

व्रतकी मर्यादा केवल हमारी अशक्ति ही हो सकती है।

जबतक दो मित्रोंके बीच भी परस्पर मेरे और तेरेका भेद है, जो भेद पति-पत्नीके सम्बन्धमें भी है और जो शरीरधारीके लिए अनिवार्य है, तबतक उन्हें चाहिए कि वे एक-दूसरेकी अनुमतिके बिना कदापि एक-दूसरेकी कोई चीज न लें। यह विचार कि बादमें अमुक वस्तुको यथास्थान रख देंगे इसमें सहायक नहीं होता। उसका एक बहुत बड़ा कारण तो यह है कि ऐसा निश्चय करनेवाले व्यक्तिको स्वयं क्या खबर है कि दूसरे क्षण वह जीवित भी रहेगा या नहीं, अथवा उसके हाथमें आनेके बाद वह वस्तु चोरी चली जायेगी या नहीं। इस नियमका पालन करनेमें

यदि कोई पाखण्डी होनेका अथवा इससे भी बुरा आरोप लगाता है, तो उसे सहन कर लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३९०. एक पत्र[1]

१५ अगस्त, १९३२

आचारका अर्थ केवल बाह्याचार है और बाह्याचार समय-समयपर बदल सकता है। आन्तरिक आचार तो सदैव एक ही होता है, अर्थात् सत्य और अहिंसाका पालन करना, और ऐसा करते हुए बाह्याचारोंको जहाँ-जहाँ बदलना पड़े वहाँ-वहाँ बदला जा सकता है। आचार प्रथम धर्म है—ऐसा शास्त्रोंमें कहा गया है, यह कहकर अथवा मानकर हमें किसी वस्तुसे चिपके रहनेकी कोई जरूरत नहीं है। संस्कृतमें व्यक्त किये गये समस्त विचार कोई शास्त्र नहीं हैं। 'मानव धर्मशास्त्र 'के नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थ भी सही अर्थोंमें शास्त्र नहीं है। शास्त्र पुस्तकोंमें लिखी हुई चीज नहीं है। यह तो सजीव वस्तु होनी चाहिए। अतएव चारित्र्यवान्, ज्ञानी अथवा जिसकी करनी और कथनीमें भेद न हो, ऐसे व्यक्तिका वचन ही हमारा शास्त्र है। यदि हमारे हाथमें ऐसा कोई प्रकाश-स्तम्भ न हो और यदि हमें विरासतमें संस्कार मिले हों तो हमें जो सत्य प्रतीत हो वही हमारा शास्त्र है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३९१. पत्र : एफ० मेरी बारको

१६ अगस्त, १९३२

प्रिय मेरी[2],

तुम्हारा पत्र आज मिला। मै सोच रहा था कि तुम्हें क्या हो गया है। मेरे पत्रके[3] उत्तरमें मुझे तुम्हारा पत्र नहीं मिला। कृपया अपने प्रश्नोंको दुबारा लिखकर भेजो। मेरा खयाल है कि वह मुझे सही-सलामत मिल जायेगा। हम सब विभिन्न चीजोंके अध्ययनमें और कताईमें लगे हुए हैं, और मजेमें हैं। हमारे पास आवश्यकतासे ज्यादा पुस्तकें हैं।

१. पत्र-लेखकने "आचार: प्रथमो धर्म:" का उल्लेख करते हुए गांधीजीसे उसका सही अर्थ पूछा था।

२. हैदराबादके मिशन बोर्डिंग स्कूलकी अध्यापिका; **बापू : कॉनवरसेशन्स ऐंड कॉरसपॉन्डेंस विद महात्मा गांधी** नामक पुस्तककी लेखिका।

३. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ ६७।

हम सबोंकी ओरसे प्यार सहित,

बापू

[पुनश्च :]

मैं देखता हूँ कि तुम उस धर्म-समाजमें शामिल हो गई हो, जो प्रति शुक्रवारकी शामको "लीड काइंडली लाइट" भजन गाता है।

कुमारी मेरी बार
करीम नगर
हिज एग्जॉल्टिड हाइनेस निजामका राज्य

अंग्रेजीको फोटो-नकल (जी० एन० ५९८२) से। सी० डब्ल्यू० ३३१० से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

३९२. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

१६ अगस्त, १९३२

भाईश्री खम्भाता,

आपका पत्र मिला। आपका इलाज छोड़ देनेकी खातिर मैंने पत्र नहीं लिखा था, बल्कि यह बतानेके लिए लिखा था कि मुझे तेलका कब्जा मिल गया है। दर्द मिटे न मिटे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। लेकिन इस तेलके पीछे तुम्हारा प्यार छिपा हुआ है, मैं यह जानता था इसीलिए मुझे उसका उपयोग करना था। बोतल खत्म होने तक मैं तेल मलवाऊँगा ही, तुरन्त नहीं छोड़ूँगा। सूर्यकी किरणें अभी तो कहाँसे लाऊँ? लेकिन जब सूर्य अच्छी तरहसे निकलेगा तो अवश्य लूँगा। ठण्डी पट्टियाँ तो नहीं रखीं, लेकिन ठण्डे पानीमें मिट्टीका लोंदा बनाकर रखा था। उससे लाभ नहीं हुआ। मूल बात तो यह है कि दर्दका ठीक-ठीक कारण मालूम नहीं हो सका है, इसलिए सही इलाज भी नहीं हो पा रहा है। मेरी मान्यता तो यह है कि यह बुढ़ापेकी निशानी है। यदि ऐसा हो, तो उपचार निरर्थक है। तथापि, आपका उपचार तो बिल्कुल निर्दोष है, इसलिए इसे नहीं छोड़ूँगा। आपको बुलानेका मन तो बहुत होता है, लेकिन चूँकि मैंने मुलाकातें बन्द कर दी हैं इसलिए आपको खास हड्डीके वैद्यके रूपमें ही बुलानेकी अनुमति प्राप्त करनी होगी। वैसा करनेकी इच्छा नहीं होती, क्योंकि इसमें तो मेहरबानी [के लिए याचना]का भाव दिखाई देता है। अतएव इस समय तो जो चल रहा है, उसीको चलने देना मैं उचित मानता हूँ।

मेरे दायें हाथकी कुहनीमें अभी कोई तकलीफ नहीं है। दायें हाथका तो अँगूठा लिखते समय दर्द करता था। मुझे लगता है कि वह आरामसे ही ठीक हो गया। फिर दुखेगा तो उसे आराम दूँगा। उसकी भी महादेव रोज मालिश करता है। यह

पत्र मेरे दर्दकी कथासे भर गया। दर्दमें ऐसी कोई [विशेष] बात नहीं, लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम्हें यह कथा सुनना अच्छा लगता है, इसीसे पत्र भर दिया।

एन्ड्रयूज गुरुदेवके पौत्र[1] को देखनेके लिए जर्मनी गये थे। वह तो चला गया।

आपके लम्बेगो [एक प्रकारका गठिया] की दवा तो मुझे करनी चाहिए न? उसके लिए उपवास, भाप और कटिस्नान ही है। इतनेसे यदि यह रोग न जाये तो कभी नहीं जाता, ऐसा अनुभव है। उपवास करना तो एक कला है। पूनामें मेहताको उसका अनुभव है। उनसे आप मिले हैं? मुझे इसका निजी अनुभव तो नहीं है, लेकिन उनके पास मैंने एक सिन्धीकी पत्नीको भेजा था, उसका अनुभव है। वह रोग तो कुछ दूसरा ही था। लेकिन यह तो पत्रको भरनेकी बात हुई। उपवास, कटिस्नान आदि करते हुए भी अन्तिम उपाय तो भगवत शरण ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५५१) से। सी० डब्ल्यू० ५०२६ से भी; सौजन्य: तहमीना खम्भाता

३९३. पत्र: रेहाना तैयबजीको

१६ अगस्त, १९३२

बेटी रेहाना,

फिर तुम्हारा खत नहीं है। उम्मीद है तुम्हारी सेहत अच्छी तो होगी। तुमको मैंने लिखा है कि मैंने जोहराको उर्दूमें खत[2] लिखा था। डाक्टर अनसारीको इसका पता लगा। मैंने उनको लिखा ये सब रेहानाकी कारवाई है। इस परसे खुश होकर लिखते हैं कि रेहानाको लव भेजो। याद रखो मेरी गलतियोंके लिए जिम्मेवारी तुम्हारी है। गालिबकी यह गजलके माने भेजो:

कफसमें हूं तो अच्छा भी
न जाने मेरे शेरों को
मेरा होना बुरा क्या है
नवासंजाने गुलशन को
न नीकला आंखसे तेरी
एक आंसु इस जुदाहत पर
किया सिनेमें जिसने खून
चीकन भीझगा सोजनको

१. नितिन, जिसकी क्षयरोगके कारण जर्मनीमें मृत्यु हो गई थी।
२. ७ जुलाई, १९३२ को।

शहादत थी मेरी किस्मतमें
जो दी थी यह खू मुझको
जहां तलवारको देखा
झुका देना था गरदनको
सुखन क्या यह नहीं सीखे
कि जरियां हो जवाहिरके
जिगर क्या हम नहीं रखते
कि खोदें जा के [कमरूं][1]

इसके मतलब समझ गया हूं, लेकिन हरएक लफसके माने ठीक मालूम नहीं है। अब्बाजान अम्माजानको हम सबकी तरफसे, बहुत आदाब। हमिदा आ गई? खुदा हाफिज।

बापू

[पुनश्च :][2]

इतना लिखनेमें बहुत समय चला गया। मुझे उम्मीद है कि तुम्हें पढ़ पानेमें कोई परेशानी नहीं होगी। तुम न लिख सको तो हमीदासे, अथवा जो कोई तुम्हारे पास हो उससे दो पंक्तियाँ ही सही लिखवा भेजना। पाठ न मिले तो उसकी परवाह नहीं।

बापूके आशीर्वाद

उर्दू और/ गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६८०) से।

३९४. एक पत्र[3]

१६ अगस्त, १९३२

तुम्हारा यह लिखना बिल्कुल ठीक है कि जो व्यक्ति विश्वासपात्र नहीं है उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। मेरे लिखनेका उद्देश्य यह था कि हमें किसीको सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए। जैसे हम चाहते हैं कि संसार हमारे वचनोंका विश्वास करे, वैसे ही हमें दूसरे व्यक्तिके वचनोंका विश्वास करना चाहिए। जब वह विश्वासपात्र न निकले तब हम पश्चात्ताप न करें। विश्वास रखनेवाले व्यक्तिने आजतक जगतमें कुछ खोया नहीं है, लेकिन विश्वासघात करनेवाला व्यक्ति तो करोड़ोंकी प्राप्ति करता हुआ भी खोता ही है। जब हमारी आत्मा

१. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।
२. इसके बादका अंश गुजरातीमें है।
३. सम्भवतः यह पत्र डा० प्राणजीवन मेहताके किसी सम्बन्धीको लिखा गया था।

भ्रष्ट हो जाये तब समझो कि हमने खोया। धन-दौलत तो आनी-जानी है। वह जाये तो उसका कदापि शोक न करें।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

३९५. पत्र : रामेश्वरलाल बजाजको

१७ अगस्त, १९३२

भाई रामेश्वरदास,

तुमारा पत्र महादेवपर था। वह मैंने पढ़ा। मैंने तो किसके लिये मेरी नाराजी जाहेर नहिं की है न किसीके लिये हे। मेरा परिचय भी सिर्फ बनारसीसे है। और उसको मैं अच्छा, विनयी, सादा, सत्यप्रिय नवयुवक समझता हूं। मुझे उसके बारेमें कोई असंतोष नहिं है। उसके पत्र भी मेरे पास बराबर आते रहते हैं। जो कोईने तुमसे लिखा वह कुछ जानता हि नहिं। क्यों लिखा वह मेरी समझके बहार है।

तुमारे जितने पत्र आये उसका मैंने ठीक उत्तर भेजा है।

हां तुमसे मेरा असंतोष है सही। वहां[1] पड़े हो और सब वेच कर यहां नहिं आ जाते हो। गरीबीका डर क्यो? यहां आ कर साझदारमें धार्मिक जीवन व्यतीत करो। वहां जीवन बरबाद होता है।

रुक्मिणी तो लिखती रहती है।

हम सब अच्छे हैं। मेरे हाथको कोई चिंता नहिं है। तुमारा प्रेम हर घड़ी याद आता है।

बापुके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६३) से। सी० डब्ल्यू० ९४४७ से भी; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

१. इंग्लैंडमें।

३९६. पत्र : रैमजे मैक्डोनॉल्डको

१८ अगस्त, १९३२

प्रिय मित्र,

'दलित वर्गों' के प्रतिनिधित्वके सवालपर मैंने ११ मार्चको जो पत्र[1] सर सैमुअल होरको लिखा था, मुझे कोई शक नहीं है कि उन्होंने उसे आपको और मन्त्रिमण्डलको दिखा दिया है। उस पत्रको इस पत्रका ही एक अंश समझना चाहिए और उसे इस पत्रके साथ मिलाकर पढ़ा जाना चाहिए।

अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधित्वके सवालपर ब्रिटिश सरकारका फैसला[2] मैंने पढ़ा है और उसपर शान्त मनसे मनन किया है।[3] मैंने सर सैमुअल होरको जो पत्र लिखा है, और सेंट जेम्स पैलेसमें गोलमेज सम्मेलनकी अल्पसंख्यक जाति समितिमें १३ नवम्बर, १९३१ को मैंने जो घोषणा[4] की थी उसको दृष्टिमें रखते हुए मुझे आपके फैसलेका प्राणोंकी बाजी लगाकर विरोध करना है।

ऐसा मैं एक ही ढंगसे कर सकता हूँ और वह यह है कि मैं आमरण अनशन करूँ और केवल नमक और सोडा मिला हुआ या बिल्कुल सादा जल ही लूँ। यह अनशन उस समय समाप्त हो जायेगा जब अनशनके दौरान ब्रिटिश सरकार अपनी ही इच्छासे या लोकमतके दबावके कारण, अपने फैसलेपर पुनर्विचार करे और 'दलित' वर्गोंके लिए साम्प्रदायिक मताधिकारकी योजनाको वापस ले ले। दलित वर्गोंके प्रतिनिधियोंका निर्वाचन सामान्य मताधिकारके अन्तर्गत आम मतदाताओं द्वारा होना चाहिए, भले ही सामान्य मताधिकार कितना ही व्यापक क्यों न हो।

१. देखिए खण्ड ४९, पृष्ठ १८१-४।

२. १७ अगस्त १९३२ को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री सर रैमजे मैक्डोनॉल्डने अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्वकी एक अंतरिम योजनाकी घोषणा की थी, जिसे "कम्यूनल अवार्ड" के नामसे जाना जाता है। इस योजनामें प्रान्तीय विधानमण्डलोंमें अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानोंके लिए सीटोंकी संख्या निर्धारित की गई थी और बंगाल तथा पंजाबमें, जहाँ मुसलमान स्पष्ट ही बहुमतमें थे, वहाँ भी अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानोंके लिए पृथक निर्वाचनकी व्यवस्था की गई थी। उन प्रान्तोंके मुसलमानोंको जहाँ वे अल्पसंख्यामें थे तथा पंजाबके सिखों और हिन्दुओंको भी अधि-प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। दलित वर्गोंको अल्पसंख्यक जातियोंके रूपमें मान्यता प्रदान की गई थी और पृथक मतदानका अधिकार दिया गया था। दलितवर्गोंके लिए विशेष रूपसे सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रोंकी स्थापनाके साथ ही उन्हें यह भी अधिकार दिया गया था कि वे सामान्य सीटोंपर भी चुनाव लड़ सकते हैं। योजनामें यह व्यवस्था की गई थी कि बीस वर्ष बाद विशेष मतदान सूचियाँ और सुरक्षित स्थानोंकी व्यवस्था अपने-आप समाप्त हो जायेगी।

३. गांधीजीने यह पत्र १७ तारीखको लिखना आरम्भ किया था और १८ तारीखको इसे पूरा किया था। इस पत्रसे सम्बन्धित वार्तालापोंके लिए देखिए परिशिष्ट।

४. देखिए खण्ड ४८, पृष्ठ ३३१।

यदि उक्त फैसलेको ऊपर दिये गये सुझावोंके अनुसार बदला नहीं गया, तो मेरा प्रस्तावित अनशन आगामी २० सितम्बरकी दोपहरसे आरम्भ हो जायेगा।

मैं अधिकारियोंसे यहाँ कह रहा हूँ कि वे इस पत्रका पाठ आपको तारसे भेज दें ताकि आपको पर्याप्त पूर्व-सूचना मिल जाये। लेकिन किसी भी हालतमें इसका ध्यान रख रहा हूँ कि सर्वाधिक विलम्बवाले रास्तेसे भेजे जानेपर भी यह पत्र आपको समय रहते मिल जाये।

मैं यह भी चाहता हूँ कि इस पत्रको और सर सैमुअल होरको लिखे अपने जिस पत्रका मैंने उल्लेख किया है उसे जल्दीसे-जल्दी प्रकाशित कर दिया जाये। जहाँतक मेरा सवाल है, मैंने जेलके नियमका सावधानीसे पालन किया है और अपने दो साथियों, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीयुत महादेव देसाई, को छोड़कर मैंने अपनी यह इच्छा अथवा उक्त दोनों पत्रोंमें कही गई बातें किसीको भी नहीं बताई हैं। लेकिन यदि आप सम्भव कर सकें तो मैं लोकमतको अपने पत्रसे प्रभावित करना चाहूँगा। उन्हें शीघ्र प्रकाशित करानेका मेरा अनुरोध इसी निमित्त है।

मैंने जो फैसला लिया है, उसका मुझे खेद है। लेकिन मैं अपनेको एक धर्म-प्रिय आदमी मानता हूँ, और उस नाते मेरे सामने और कोई रास्ता नहीं है। जैसा कि मैंने सर सैमुअल होरके नाम अपने पत्रमें कहा है, यदि ब्रिटिश सरकार अपने आपको अटपटी स्थितिमें पड़नेसे बचानेके लिए मुझे छोड़ भी देगी तो भी मेरा अनशन जारी रहेगा। कारण, मुझे अब सरकारके फैसलेका अन्य किसी उपायसे प्रतिरोध कर सकनेकी उम्मीद नहीं रह गई है। मुझे अपनी रिहाईके लिए किसी ऐसे तरीकेका उपयोग करनेकी इच्छा नहीं है, जो सम्मानजनक न हो।

यह हो सकता है कि पृथक निर्वाचनको 'दलित' वर्गोंके लिए तथा हिन्दू-धर्मके लिए भी हानिकारक समझकर मैं बिलकुल गलती कर रहा हूँ और मेरी समझ विकृत हो। यदि ऐसा हो, तो फिर मेरे जीवन-दर्शनके जो अन्य हिस्से हैं उनमें भी मैं सही नहीं हो सकता। वैसी दशामें अनशन करते हुए मेरा मर जाना मेरी गलतीका प्रायश्चित्त स्वरूप भी होगा और उन असंख्य स्त्री-पुरुषोंके ऊपरसे एक बोझ हटने जैसा भी होगा, जिनको मेरी समझदारीमें बच्चों-जैसा सरल विश्वास है। दूसरी ओर, यदि मेरा निर्णय सही है, और मुझे कोई सन्देह नहीं है कि वह सही है, तब मेरा यह प्रस्तावित कदम जीवनकी उस योजनाकी पूर्ति-जैसा है, जिसे मैंने एक चौथाई शताब्दीसे अधिक समयतक काफी सफलताके साथ आजमाया है।

आपका विश्वसनीय मित्र,

मो० क० गांधी

सेवामें
द राइट ऑनरेबिल जे० रैमजे मैक्डोनॉल्ड
प्रधान मन्त्री, लन्दन

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १३-९-१९३२

३९७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१८ अगस्त, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला।

राखी मिली, दो दिन विलम्बसे। लेकिन मैंने तो उसे सोमवारको ही मिली माना।

केला यदि तुझे अनुकूल नहीं बैठता है तो उसे जबरदस्ती लेनेसे कोई फायदा नहीं। हर व्यक्तिके पेटकी अपनी विशेषता होती है।

तेरे क्रोधका मैंने अच्छी तरह विश्लेषण किया है। तू उसपर विजय पायेगी। मुझे विश्वास है कि तू ऐसा अवश्य कर सकेगी। अपने पत्रमें जो हिस्सा तूने काटे बिना छोड़ दिया है, उसके पीछे निहित अर्थको मै समझा हूँ। न काटना ही उचित था। अपनेको यदि किसी चीजकी आवश्यकता हो तो उसको न कहनेमें भारी अभिमान और अन्याय है, और इससे प्रियजनोंपर भारी बोझ आ पड़ता है। हमारी विनयशीलता और निरभिमान प्रियजनोंको हमारी आवश्यकताओंको जाननेके कष्टसे बचा लेते हैं। यह तो विनयका पहला पाठ है। इसे अब सीखो।

कृष्ण नायरको लिखना कि मैं तो बहुधा उसका स्मरण करता हूँ।

तू राजकोट गई, यह तो ठीक ही हुआ। ऐसा लगता है कि तेरी तबीयत इतना [आराम] तो अवश्य माँगती है।

सार्वजनिक रायका अर्थ यह हुआ कि जिस समाजके मतकी हमें परवाह है उसकी राय। और यह राय जबतक नीति-विरुद्ध न हो तबतक उसको मान्यता प्रदान करना हमारा धर्म है।

धोबीके किस्सेसे शुद्ध निर्णय करना मुश्किल है। हमें तो वह आज कतई अच्छा नहीं लग सकता। ऐसी टीकाको सुनकर अपनी पत्नीका परित्याग करनेवाला व्यक्ति निर्दयी और अन्यायी ही माना जायेगा। लेकिन 'रामायण' में कविने किस भावनासे प्रेरित होकर इस घटनाका वर्णन किया है सो मैं नहीं कह सकता। इस झंझटमें पड़ना हमारा काम नहीं है। मैं तो कमसे-कम इस झमेलेमें न पड़ूँ। 'रामायण' जैसी पुस्तकोंको मैं इस दृष्टिसे नही पढ़ता।

लड़कियोंके साथ मैं जो छूट लेता हूँ उससे यदि आश्रमवासियोंको आघात पहुँचता है तो ऐसी छूट मुझे नहीं लेनी चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। इस छूटको लेनेमें कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं है और न लेनेमें ही नीतिका भंग होता है। लेकिन मेरे ऐसी छूट न लेनेका यदि लड़कियोंपर बुरा असर होता है तो मैं आश्रमवासियोंको समझाकर यह छूट लूँगा। लेकिन यदि लड़कियाँ ही मुझे न छोड़ें तो ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए, यह देखना मेरा काम होगा। मैं जो छूट जिस प्रकार भी लूँ,

उसका कोई किसी भी रूपमें अनुकरण नहीं कर सकता। यह तो एक स्वाभाविक क्रिया होनी चाहिए। 'आजसे मुझे छूट लेनी है' ऐसा मनमें विचार करके कृत्रिम भावसे भी कोई छूट नहीं ले सकता, और ले तो यह गलत बात होगी। नारणदासको जो उचित लगे उसे करनेके लिए वह स्वतन्त्र है। मुझे उसकी टीका करनेकी इच्छातक नहीं होती। सच बात तो यह है कि जो व्यक्ति विकारवश अत्यन्त निर्दोष छूट भी ले, तो वह स्वयं खाईमें गिरता है और साथमें दूसरोंको भी ले डूबता है। हमारे समाजमें जबतक स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध सामान्य नहीं हो जाता तबतक सावधानीके साथ चलनेकी जरूरत है। इस सम्बन्धमें जो सबपर लागू हो सके ऐसा राजमार्ग नहीं है। तेरे अपने व्यवहारमें बहुत-सी खामियाँ हैं। तेरी स्वाभाविक निर्दोषता ही तेरी रक्षा करती है, लेकिन तू इसका अभिमान करे और हठपूर्वक उससे चिपकी रहे, यह उचित नहीं है। यह तेरी विचारहीनता है। उससे होनेवाले नुकसानसे आज तू परिचित नहीं है। लेकिन किसी-न-किसी दिन तुझे अवश्य पछताना पड़ेगा। अभिमान किसीका नहीं टिका है। समाज द्वारा निश्चित सीमाएँ खराब ही हैं, ऐसा कहकर समाजपर कुठाराघात नहीं किया जा सकता। अब समझी कि सार्वजनिक रायका अर्थ क्या है?

धुरन्धरसे कहना कि मेजरने जो कहा है उसे याद रखे। आसनोंके प्रचारके लिए उसे स्वयं चलता-फिरता विज्ञापन बनना पड़ेगा।[1]

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०२९९) से। सी० डब्ल्यू० ५७४५ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

३९८. पत्र: मीराबहनको

१९ अगस्त, १९३२

चि० मीरा,

तो अब तुम फिर अपनी माँदमें पहुँच गई हो।[2] मुझे उम्मीद है कि तुम खोई हुई शक्ति और स्फूर्ति फिरसे प्राप्त कर लोगी। और तुम अकारण ही चिन्ता भी नहीं करोगी। तुम केवल कताईपर और ऐसे अध्ययनपर ध्यान केन्द्रित करो, जो तुम आसानीसे कर सको। हम सब मजेमें हैं। हम सबोंकी ओरसे प्यार। ईश्वर तुम्हारे साथ रहे।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३३) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९६९९ से भी।

१. धुरन्धर योगासन किया करते थे और वे जहाँ-जहाँ जाते थे इनका प्रचार किया करते थे।
२. मीराबहनको एक वर्षकी कैद हो गई थी।

३९९. पत्र : गुलाबको

१९ अगस्त, १९३२

चि० गुलाब,

मनमें जो विचार उठें वे यदि अच्छे हों, तो कोई हर्ज नहीं। निकम्मे विचार हों तो रामनाम लेकर उन्हें निकाल बाहर करना चाहिए और अपने कामका ही विचार करना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७२१) से।

४००. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१९ अगस्त, १९३२

चि० पुरुषोत्तम,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनोंके बाद मिला। प्रार्थनाके लिए आश्रममें जो समय निर्धारित है तुम उसका पालन नहीं कर पाते, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं। तुम और जमना दोनों शरीरकी दृष्टिसे कमजोर रहे हो। जिनसे जल्दी उठा ही नहीं जाता, उनसे जोर-जबर्दस्ती नहीं की जा सकती। जल्दी उठनेकी कुंजी जल्दी सोनेमें है।

पीलियाके लिए मुझे लगता है कि कटिस्नान, सूर्यस्नान और फलाहार अथवा जितना हजम हो सके, उतना दूध लेना रामबाण उपचार सिद्ध होगा। खुली हवा तो चाहिए ही।

आरोग्य पुस्तकमें[1], मुझे जिन-जिन रोगोंका अनुभव हुआ है, उन-उन रोगोंकी ही चर्चा की गई है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०४) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. **आरोग्यकी कुंजी**; देखिए खण्ड ११ और १२ में प्रकाशित "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान" लेखमाला।

४०१. पत्र : नानालाल के० जसाणीको

१९ अगस्त, १९३२

भाई नानालाल,

जेठ-आषाढ़में हम जिस तरह मेघराजकी बाट जोहते हैं, उसी तरह मैं तुम्हारे पत्रकी बाट जोह रहा था। जिस दिन मुझे डाक्टरकी चिरनिद्राका तार मिला उसी दिन मुझे तुम्हारी याद आई और मैंने तुम्हें पत्र भी लिखा।[१] मनमें इच्छा हुई कि यदि तुम पास होते तो कितना अच्छा होता, लेकिन तुम पास ही थे यह मुझे मालूम न था। कहाँ होगे इसकी भी मुझे कोई खबर न थी, इसीलिए मैंने मणिलालको पत्र लिखा[२] तथा उसके पत्रमें ही मैंने तुम्हारा और खीमचन्दका पत्र रखा और उसी पत्रमें तुम्हारी मदद माँगी। खीमचन्दको सावधान किया। उसके पत्रमें खीमचन्दके प्रति अपने अविश्वासका उल्लेख भी किया, अन्य लोगोंके अविश्वासकी बात भी लिखी। लेकिन मैंने यह भी लिखा कि डाक्टरको उसपर बहुत विश्वास था और यह इच्छा प्रकट की कि वह उस विश्वासका घात न करे। मगनलाल जब इंग्लैंड गया था उन्हीं दिनों उसने खीमचन्दके बारेमें दो लम्बे पत्र लिखे थे, जिनपर से मैंने डाक्टरको भी लिखा था। लेकिन डाक्टरने मुझे आश्वासन दिया कि खीमचन्दने नया पन्ना बदला है अर्थात् वह बदल गया है, अतः उसपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। अब तुम्हें वहाँ हस्तक्षेप करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए। अब तुम्हारा धर्म यह है कि तुम्हें किसीके निमन्त्रणकी राह नहीं देखनी चाहिए। तुम्हारे प्रति डाक्टरको कितना विश्वास था, यह तो उनके अन्तिम पत्रमें स्पष्ट रूपसे दीख पड़ता है। छगनलाल मुझे लिखता रहता है। उसने सुन्दर पत्र लिखा है। मैं जैसा कहूँ वैसा करनेकी उसने प्रतिज्ञा की है। अपने विचार भी प्रकट किये हैं, लेकिन उनपर अमल करनेके बारेमें उसका किसी प्रकारका आग्रह नहीं है। मेरे पत्र वहाँ [अगले माहकी] १३ तारीखतक पहुँच पायेंगे, ऐसा नहीं जान पड़ता। इसलिए मेरी अपेक्षाओंको जाने बिना उसने उस लेखकी नकल मुझे भेज दी है, जो तुमने उसे भेजा था। डाक्टरके जानेके बाद आजतक जो-जो पत्र और तार छगनलालकी ओरसे आये हैं वे ऐसे हैं जिन्हें पूरी तरहसे सन्तोषजनक कहा जा सकता है। इसके पीछे यदि कोई और उद्देश्य रहा हो तो तुम मुझे बताना। मैं तो छगनलालके ऊपर विश्वास रखकर काम कर रहा हूँ। रतिलाल देसाईको[३] [ऐसा विश्वास] नहीं है, ऐसा उसने लिखा है। हिसाब-किताब ठीक करनेके अलावा अभी मैंने और कोई सुझाव नहीं दिया है।

१. देखिए "पत्र : नानालाल के० जसाणीको", ४-८-१९३२।

२. देखिए "पत्र : मणिलाल आर० झवेरीको", ४-८-१९३२।

३. डा० प्राणजीवन मेहताके दामाद।

इस समय तो मैं सारी जानकारी इकट्ठी कर रहा हूँ। रतिलाल, चम्पा और मंजुलाको मैंने तार[1] द्वारा उस ओर दौड़कर जानेसे रोका है। मेरी इच्छा तो मगनलालको भी रोक लेनेकी थी, लेकिन मुझे पूरा यकीन था कि वह इतना ज्यादा धीरज नहीं रख सकता। उसे छगनलालका विश्वास नहीं है, यह बात भी मैं जानता था। मेरा विचार तो सदासे यह रहा है कि तीनों भाइयोंका भाग अलग-अलग हो जाना चाहिए। जैसा छगनलालने लिखा है, उसके मुताबिक मैं डाक्टरकी जितनी मिल्कियत समझता था उसमें बहुत कम निकली है। छगनलालने लिखा है कि नकद रुपया तो बिल्कुल नहीं है तथा उसने मायाशंकरके[2] प्रति अपना अविश्वास भी व्यक्त किया है। मैं समझता हूँ कि डाक्टरकी अन्तिम लिखावटको हमें वसीयतनामा मानकर काम करना चाहिए। लेकिन जैसा कि छगनलालने लिखा है, यदि उतनी ही सम्पत्ति है और नकदी भी कुछ नहीं है तो डाक्टर द्वारा निश्चित रकम अब कहाँसे दी जा सकती है? इन सबके बारेमें मुझे निःसंकोच होकर और विस्तारपूर्वक लिखना। इस समय मैं बन्दी हूँ, यह बात मुझे अखर रही है। लेकिन हमारा सोचा इस जगतमें होता नहीं है। इसलिए जिस स्थितिमें हम हों उसीमें रहते हुए, हमसे जितना हो सके अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४६२) से।

४०२. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

२० अगस्त, १९३२

चि० जानकीमैया,

खूब! आखिर पेंसिलसे दो सतरें लिखनेकी तकलीफ की तो। जेल जाकर भी आखिर आलस्य नहीं गया न? 'अ' वर्ग देनेमें ही भूल हुई। 'क' वर्ग देकर खूब काम कराना चाहिए था। आलस्यकी तो खैर कोई बात नहीं, परन्तु अब शरीरकी हालत ठीक कर लेना। विनोबाके शिकंजेमें खूब फँसी हो। पत्र बराबर नहीं आयेंगे तो सजा मिलेगी। तुमने जिस पुरानी कमलीको खादीके साथ सीकर फिरसे बनाया था वह राजमहल[3] में हो आई, यह बात मैं कह चुका हूँ न?[4] यहाँ तो वह है ही। अभी तो वह बहुत चलेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९००) से।

१. देखिए "तार: नारणदास गांधीको", ५-८-१९३२।

२. मायाशंकर ब्रजलाल देसाई, डा० प्राणजीवन मेहताके व्यवसायमें साझेदार

३. बकिंघम पैलेस।

४. देखिए "पत्र: मथुरादास पुरुषोत्तमको", ६-७-१९३२ भी।

४०३. पत्र : लीलावती आसरको

२० अगस्त, १९३२

चि० लीलावती,

मेरा सन्देश तो तुझे मिला होगा। अब तेरा दुःख कुछ कम हुआ होगा। दूसरे अध्यायका स्मरण करना।

तू अपने धनकी व्यवस्था नारणदासको सौंप दे और वह जैसी व्यवस्था करना चाहे वैसी करने दे, यह बात मुझे सबसे अच्छी लगती है। वह जो प्रबन्ध करे सो तू जान लेना। रसीद आदि लेकर सँभालकर रखना अथवा असल प्रति नारणदास को सँभालनेके लिए दे देना। इस सम्बन्धमें विशेषतः नारणदाससे जानकारी लेना। मैं उसे लिख रहा हूँ। यहाँसे मुझे इससे ज्यादा नहीं सूझ पड़ता। उम्मीद है, तेरी तबीयत अच्छी होगी। कामका हिसाब लिख भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७०) से। सी० डब्ल्यू० ६५४२ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

४०४. पत्र : छगनलाल जोशीको[1]

२० अगस्त, १९३२

शरीरको रुग्ण बनानेके अनेक कारणोंमें से एक कारण अधीरता है। पहले मन अधीर बनता है, बादमें शरीर बनता है। लेकिन यह एक अनुभव वाक्य है कि 'अधीरा सो बावरा धीरा सो गंभीर'। यदि संसार जल रहा हो तो क्या हम अधीरतासे उसकी आगको बुझा सकते हैं? और हमें बुझानेकी जरूरत भी क्या है? क्या तुम जानते हो कि जब आगकी बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही हों, उस समय आग बुझाने-वाले लोग लपटोंपर पानी नहीं डालते। वे आसपासके हिस्सेकी ही देखभाल करते हैं और यदि वे इतना भी कर पायें तो कर्मकुशल अर्थात् योगी माने जायें। यदि हम अपना कर्तव्य करते रहें तो वह सारी आगको बुझानेके समान ही होगा। देखनेमें भले ही ऐसा प्रतीत न हो, लेकिन उसे बुझा हुआ ही समझना चाहिए। सत्यकी शोध करते-करते मुझे तो इसके अतिरिक्त और चीज हाथ नहीं लगी और भविष्यमें कुछ हाथ आयेगा, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता। यदि यह ठीक न हो तो सत्याचरण

१. छगनलाल जोशीके पत्रमें आसपासके वातावरणसे उत्पन्न निराशा और अनेक कार्योंको पूरा करनेकी अधीरताका वर्णन था।

और सत्य पर आग्रह, दोनों असम्भव हो जायें। आग्रह उसीका हो सकता है जो सम्भव हो। जो व्यक्ति चन्द्रमाके पर्वतोंकी हवाका आग्रह रखे वह शेखचिल्ली ही माना जायेगा, क्योंकि यह असम्भव है। यही बात हमारे कर्त्तव्यके सम्बन्धमें भी लागू होती है। और वस्तुतः देखा जाये तो सबका कर्त्तव्य स्पष्ट होता है; इसके लिए लम्बी नजर डालनेकी जरूरत ही नहीं है। उसे केवल नाकके आगे ही देखनेकी जरूरत है। पैरोंके आगे पड़े हुए कचरेको ही फेंकनेकी जरूरत है। जैसे-जैसे हम कचरा निकालते जायेंगे वैसे-वैसे और कचरा उभर कर हमारे सामने आयेगा और हम उसे भी साफ करेंगे, भले ही जीवनके अन्ततक वह खत्म हुआ न लगे। जीवनका अन्त कहाँ है? अन्त तो शरीरका है, लेकिन उसकी क्या चिन्ता? और यदि जीवनका अन्त नहीं है तो हमें यह देखकर हार नहीं बैठना चाहिए कि कचरेका तो कोई अन्त ही नहीं है। दर्जीका लड़का जबतक जीता है तबतक सीता है। यदि अन्तिम श्वास लेते समय भी उसके हाथमें सुई हो तो वह कर्तव्यपरायण समझा जायेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड–१

४०५. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

२० अगस्त, १९३२

अब तो तू रिहा हो जायेगी। लेकिन मुझसे नहीं मिल पानेका तुझे दुख होगा, मुझे तो है ही। तेरे लिए भी मुक्त होनेका मन होता है। लेकिन यह तो तू भी मानती होगी कि यह शोभाकी बात नहीं होगी। हमारा जीवन त्यागसे ही गढ़ा गया है। इसलिए शान्ति रखना। मुझे बराबर लिखती रहना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४०६. पत्र : बालकृष्णको[1]

२० अगस्त, १९३२

मायाको शंकराचार्य किस तरहसे मानते थे, यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। मेरी मान्यता यह है: हम जिस तरह जगतको मानते हैं, देखते हैं, वह आभास-मात्र है, हमारी कल्पना है। लेकिन जगतका अपना अस्तित्व तो है ही। वह कैसा है, यह हम नहीं जानते। ब्रह्म है, ऐसा कहनेके साथ ही हम उसका वर्णन 'नेति, नेति' कहकर करते हैं। जगत भी ब्रह्म ही है। वह ब्रह्मसे भिन्न नहीं है और जो भिन्नता हमें दिखाई देती है वह आभास-मात्र है।

१. सम्भवतः बालकृष्ण भावे, विनोबा भावेके भाई।

मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि हमारी आयुका माप छोटा या बड़ा हो सकता है। वस्तुतः प्रत्येक देह अपने समग्र स्वधर्मोंके साथ ही उत्पन्न होती है। वे क्या हैं, यह हम नहीं जानते, जाननेकी आवश्यकता भी नहीं।

काल-विभाग मनुष्यकृत हैं और कालचक्रमें वे रजकणसे भी लघु हैं। हम अपनी गिनतीके करोड़ों हिमालयोंको इकट्ठा करें तो भी वे कालचक्रसे छोटे हैं। इसलिए मनुष्यके हाथमें जो है वह नहींके समान है। वह स्वयं भले ही अपने मन मुस्कराता रहे।

स्वप्नके भौतिक कारण तो असंख्य हैं। स्वप्नमें भी स्वप्नके मिथ्या होनेकी बात देखी जा सकती है। यह कदाचित् जागृति और स्वप्नावस्थाका सन्धिकाल होता है। स्वप्नदोष कई बार केवल शारीरिक कारणोंसे बिना विकारके होता है। उसका निवारण खुराक सम्बन्धी रद्दोबदलसे किया जा सकता है। बहुधा उसका कारण कब्ज होता है। दूधसे स्वप्नदोष होता है। उसमें बहुत करके विकार भी कारण रूप होता है, क्योंकि दूध विकारोत्तेजक है। लेकिन यह बात तुम पर लागू नहीं होती। तात्पर्य यह कि जिनके शरीर दुर्बल हो गये हैं उनके शरीरमें दूध विकार पैदा नहीं कर सकता, फिर भले ही वह दूध विकारी पुरुषने पिया हो। जिनके शरीर दुर्बल हो गये हों उनका पोषण करनेमें ही दूधकी सारी शक्ति चली जाती है। डाक्टर रजब अली जो कहते हैं वह किसी हदतक सही है। लेकिन जिनका शरीर और मन बिल्कुल नीरोग है उन पर डा० रजब अलीका कथन लागू नहीं होता।

ज्ञानी पुरुषके स्वभावमें लोकसंग्रहकी भावनाका होना आवश्यक है। इसका कोई अपवाद हो ही नहीं सकता।

मैं अपने मनको कितने समयतक विचारोंसे मुक्त रख सकता हूँ सो नहीं बता सकता, क्योंकि मैंने कभी इसका माप नहीं निकाला। लेकिन इतना जानता हूँ कि मेरे मनमें व्यर्थके विचारोंको अवकाश नहीं है। यदि वे मनमें आ भी जायें तो उन्हें चोरकी तरह भाग जाना पड़ता है।

दम्भ तो केवल असत्यका आवरण है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४०७. पत्र : मथुरादासको[1]

२० अगस्त, १९३२

याज्ञिक सिलाईकी कल्पना गरीबोंको खादीके वस्त्रोंकी सिलाईका काम देनेके विचारसे नहीं की गई है अपितु उसके पीछे बिना किसी नुकसानके गरीबों द्वारा बुनी हुई खादीकी तुरन्त खपतकी व्यवस्था करनेका भाव है; महँगी दीख पड़नेवाली खादीको सस्ता करनेके लिए इस यज्ञका आयोजन किया गया है। . . .[2]

विकारका भी चिन्तन न करना। अमुक वस्तुका निश्चय करनेके बाद उसे पूरा हुआ समझना चाहिए। व्रतका अर्थ ही यह है कि जिस वस्तुका हमने व्रत लिया है उसके बारेमें मनने सोचना ही बन्द कर दिया है। व्यापारी अमुक वस्तुका सौदा करनेके बाद जिस तरह उसका विचार नहीं करता और अन्य वस्तुके बारेमें सोचता है, उसी तरह व्रतके बारेमें भी समझना चाहिए।

[गुजरातीसे [
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४०८. पत्र : मदालसा बजाजको

२० अगस्त, १९३२

चि० मदालसा,

तेरा पत्र मिला। तू भले ही माने कि तेरे अन्दर ईर्ष्या, अभिमान वगैरा भरे पड़े हैं, पर मैं नहीं मानता। ये दोष तूने कहाँसे लिये होंगे? जमनालालमें तो ये हैं ही नहीं, जानकीबहनमें भी नहीं हैं। न तुझे कोई कुसंग हुआ, न तुझे किसी चीजकी कोई कमी है। हाँ, क्रोध है; यह तो मैं भी देखता था। वह जानकीबहनमें भी है। फिर तेरा शरीर भी कमजोर है; लेकिन तू समझदार है, इस कारण विचारपूर्वक इस क्रोधको निकाल डाल। जैसे हम हैं वैसे ही सब हैं। सबमें एक ही जीवात्मा है। इसलिए किसी पर क्रोध करना अपने ऊपर ही क्रोध करनेके समान है। और जिसके अन्दर जीवमात्रकी सेवा करनेकी लगन पैदा होती है उसमें दोष रह ही नहीं सकते। तू अपनी सेवा-वृत्तिको बढ़ाना।

मुझे नियमित रूपसे लिखे तो अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१. सम्भवतः मथुरादास पुरुषोत्तम; देखिए "पत्र : मथुरादास पुरुषोत्तमको", ७-८-१९३२।
२. इसके बाद खुराकके विषयमें की गई चर्चाका साधन-सूत्रमें कोई उल्लेख नहीं मिलता।

४०९. पत्र : उमादेवी बजाजको

२० अगस्त, १९३२

चि० ओम,

तेरा पत्र मिला। तेरी लिखावट तो बहुत सुधर गई है। तेरा वजन यदि तेरी स्वस्थ देहकी वजहसे है तो उसको कम करनेकी क्या जरूरत है? यदि तू कद्दावर और बलिष्ठ है और इसके साथ तेरा मन भी उतना ही बलिष्ठ है तो तू सेवाके अधिक योग्य बनेगी। यदि किसी रोगके कारण शरीर फूल गया हो तो उसे निश्चय ही कम करनेका प्रयत्न करना चाहिए। क्या तुझे कोई रोग है? मुझे पत्र लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

४१०. वाचन और विचार – २[1]

२१ अगस्त, १९३२

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है?"

अरे मुसाफिर उठो, सुबह हो गई है। अब रात कहाँ है जो तुम सोये हुए हो। इसके अर्थको जानकर भी जो उस पर अमल न करे, चुपचाप हाथपर-हाथ धरकर बैठा रहे तो समझना चाहिए कि उसने उपर्युक्त पंक्तिको पढ़ा तो अवश्य है, लेकिन उस पर मनन नहीं किया है। क्योंकि वह मनुष्य प्रभातमें उठेगा और अपनेको कृतार्थ हुआ मानेगा। लेकिन जो इस पर विचार करना चाहेगा वह अपने आपसे पूछेगा 'मुसाफिर, अर्थात् कौन? सुबह हो गई से कविका क्या अभिप्राय है? रात बीत गईका क्या मतलब? सोनेके क्या मानी हैं?' यदि वह इस तरह विचार करेगा तो एक पंक्तिमें से अनेक अर्थ निकलेंगे और वह समझेगा कि मुसाफिर अर्थात् प्राणि-मात्र। जिसे ईश्वर पर आस्था है उसके लिए तो हर दिन सुबह ही है। रातका अर्थ अज्ञान भी हो सकता है। और जो व्यक्ति जरा भी गाफिल – लापरवाह – रहता है उस पर यह पूरी तरह लागू होता है। जो झूठ बोलता है वह भी सुप्तावस्थामें है। यह पंक्ति उसे भी जाग्रत करनेवाली है। और इस तरह इस पंक्तिका व्यापक अर्थ करके उससे

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", २०/२१-८-१९३२ के साथ भेजा गया था।

आश्वासन प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें, इसी पंक्ति पर अच्छी तरह मनन करनेसे यह मनुष्यकी आध्यात्मिक यात्राके लिए पर्याप्त पाथेयका काम दे सकती है। और चारों वेदोंको कण्ठस्थ करनेवाले और उनका अर्थ भी समझनेवाले व्यक्तिके लिए यही पंक्ति भाररूप भी बन सकती है। यह तो मैंने, जो ध्यानमें आ गया, वही एक उदाहरण दिया है। यदि सब अपनी दिशा निर्धारित करके विचार करने लग जायें तो वे अपने जीवनसे नये-नये अर्थ खोज निकालेंगे और नित्य नये आनन्दका आस्वादन करेंगे।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४११. पत्र : नारणदास गांधीको

२०/२१ अगस्त, १९३२

चि० नारणदास,

तुम्हारी बहुत भारी डाक मिली है। चम्पाकी ओरसे एक कटु पत्र आया था। उसे मैंने एक पोस्टकार्ड लिख दिया है, वह तुम्हें रविवारको अथवा सोमवारको मिल जाना चाहिए। नर्मदा बच गई इसलिए उसके प्रति हमारा विशेष कर्तव्य है। ऐसा जान पड़ता है कि उसकी पढ़ाई बहुत कच्ची है, लिखावट भी ढंगकी नहीं है और यदि उसके नसीबमें अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेकी बात लिखी होगी तो, ऐसा लगता है कि, उसके साथ उसे ज्ञानकी प्राप्ति भी होनी चाहिए। इसलिए समयकी कुछ ज्यादा सुविधा करके उसे कुशल बनाया जा सके तो बनाना। मिले हुए समयका यदि दृढ़तापूर्वक वह सदुपयोग न करे तो तुरन्त बन्द कर देना। लीलाधरके बारेमें तुमने जो किया है वह उचित जान पड़ता है। यदि सम्भव हो तो तुम जयसुखलाल-की लड़कियोंके मनसे अमरेलीकी यादको भुला देना। इन्दुके मामा कौन हैं? पाली-तानामें वह क्या करते हैं? कुसुम जबतक क्षयरोगके भयसे मुक्त नहीं हो जाती तबतक उससे नर्सिंगका काम नहीं लिया जा सकता। यदि वह जाये और महीने दो महीनेमें वापस लौट आये तो यह बहुत बुरी बात होगी। नर्सिंगमें बहुत मेहनत करनी पड़ती है, यह बात उसे अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। सच्चे दिलसे काम करने-वाली सेविकाको सारा दिन खड़े रहना पड़ता है। खानेके लिए भी वह मुश्किलसे ही समय बचा पाती है।

रतुभाईकी स्थिति दयाजनक है। कर्ज होनेके बावजूद वह लड़कोंको किस लिए कालेजमें पढ़ाता है? वह रंगून नहीं जा सकता यह बात तो मैं अच्छी तरहसे समझ सकता हूँ। क्या उसके बच्चोंमें ऐसा कोई नहीं है जो आश्रममें आकर रह सके? सत्यवादी, उद्यमी और नीरोगी लड़के जीवनमें जितना ऊँचा जाना चाहें वे आश्रममें रहकर अपने इस लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं। यह बात सही है कि वे आश्रममें कालेज-जैसी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते, लेकिन कालेजकी शिक्षामें रखा क्या है?

तुम रतिलालको जानेसे रोक रहे हो, यह निःसंदेह बहुत अच्छी बात है। छगनलालने मुझे सुन्दर पत्र भेजे हैं जिससे मैं उसकी ओरसे अपेक्षाकृत निश्चित हो गया हूँ। नानालाल और मणिलालके पत्र भी मिले हैं। मंजुलाके पत्र तो आते ही रहते हैं। मंजुलाका मूल्य मेरी दृष्टिमें नित्यप्रति बढ़ता जाता है।

मुझे अपनी खुराकके सम्बन्धमें विचित्र अनुभव हो रहे हैं। केले लेते हुए मैंने जबतक दूध लेना बन्द नहीं किया तबतक कब्जकी शिकायतको पूरी तरहसे दूर न कर सका था। इसलिए अब दूध छोड़कर खाली केले लेने लगा हूँ। साँझको रोटी और हरी सब्जियाँ। इससे कब्जकी शिकायत कुछ कम तो हो गई। लेकिन चूँकि मुझे यह याद था कि १९३० में 'सी' वर्गके कैदियोंकी खुराककी नकल करनेके लोभमें आकर मैंने बाजरेकी रोटीका प्रयोग किया था जिससे मेरा कब्ज दूर हो गया था, इसलिए पिछले दिनों तीन दिनोंसे साँझको हरी सब्जीके साथ बाजरेकी रोटी लेता हूँ। परिणामतः कब्ज बिलकुल दूर हो गया है। पिछली बार बाजरा जारी रखनेसे कब्ज तो दूर हो गया था, लेकिन उसके और परिणाम भी हुए जिसके फलस्वरूप मैंने बाजरा छोड़ दिया था। इस बार भी वैसा ही होनेकी सम्भावना है। फिलहाल दूध कतई न लेनेका आग्रह तो नहीं है इसलिए कब्जकी तरफसे बिल्कुल निश्चिन्त हो जानेके बाद मेरा इरादा बाजरेके साथ दूध लेनेका है। मैंने इतना सब जो लिखा उसका कारण तो यह है कि वहाँ यदि कोई कब्जके निराकरणके लिए यह प्रयोग करना चाहे तो करके देख सकता है। लेकिन इसके मूलमें एक बात यह है कि जब कोई व्यक्ति कब्ज दूर करनेके लिए यह प्रयोग करे तब सब्जीके साथ अथवा बाजरेके साथ न तो तेल लिया जाये, न दूध और न घी ही। १९३० में जब मेरी कब्जकी शिकायत दूर हुई थी उस समय मैं केवल हरी सब्जियाँ और बाजरा ही लेता था। फल भी नहीं लेता था और बादाम भी नहीं। कब्ज दूर होनेके बाद बादाम लेना शुरू किया था। खट्टे नींबू अवश्य लेता था। सब्जियोंमें कुछ हरी सब्जियाँ होना जरूरी है।

यदि डाक्टर कहे तो परसरामको आपरेशन करवा लेना चाहिए।

यह अच्छा है कि तुम प्रेमाबहनको समय-समय पर जाने देते हो। उसे स्थिर होनेमें समय लगेगा और फिर मेरे पत्र भी उसे आश्वासन देनेके लिए होते ही हैं।

दार्जिलिंगसे मिले तारका आशय मैं भी नहीं समझ सका हूँ। तुमने इसके सम्बन्धमें कोई कदम न उठाकर ठीक ही किया। इस तारकी थोड़ी जानकारी महावीरको देना और उससे उसका आशय पूछना। अगमगिरिको भी लिखकर पूछना कि तार भेजनेके पीछे उसका क्या अभिप्राय है?

'व्रतविचार'[१] का यदि कोई जर्मन भाषामें अनुवाद करना चाहे तो उसे कहना कि हम किसी भी पुस्तकका कापीराइट (सर्वाधिकार सुरक्षित) नहीं रखते अर्थात्

१. यह पुस्तक गांधीजीने १९३० में यरवडा सेन्ट्रल जेलसे साप्ताहिक चिट्ठियोंके रूपमें सत्याग्रह आश्रमको लिखी थी। बादमें इसका नाम बदलकर **मंगलप्रभात** हो गया था; देखिए खण्ड ४४।

यदि वह अनुवाद करना चाहे तो कर सकता है। लेकिन ऐसी पुस्तकोंके लिए यह जरूरी है कि अनुवाद करनेवाला व्यक्ति कोई गड़बड़-घोटाला न करे।

शंकरभाईके हाथका उपचार लम्बा चलेगा, इसका अर्थ कहीं यह तो नहीं कि हमेशाके लिए कोई दोष रह जायेगा? अथवा उसका कोई और परिणाम निकलनेकी आशंका है? कोई समय-समय पर हाथकी जाँच करता है या नहीं?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२४६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

४१२. पत्र. रामेश्वरदास पोद्दारको

२१ अगस्त, १९३२

चि० रामेश्वरदास,

मुझे लिखनेमें कोई कष्ट नहीं होता। जब कुछ ज्यादा लिखनेको होता है तब मैं महादेवसे लिखवा ही लेता हूँ। तुमने कौनसे व्रत लिये हैं, मुझे याद नहीं है। यदि तुम्हें भी उनकी याद न हो तो भूल जाना और समझना कि एक भी व्रत नहीं लिया है। तुम्हारा जीवन अभी ऐसा नहीं है कि तुम व्रत सहन कर सको। लेकिन धीरे-धीरे [इनका] निश्चय करना चाहिए। जिन व्रतोंका तुम्हें स्मरण है और जिनका पालन आजकल करते हो उनका उल्लेख करना। कुछ भी न किया जा सके तो भी रामनाम तो रटते ही रहना चाहिए। किसी दिन एकाएक तुम्हें अन्धकारमें प्रकाशके दर्शन होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०४) से।

४१३. पत्र: गुलाबको

२१ अगस्त, १९३२

चि० गुलाब,

कातनेकी और पूनी बनानेकी रफ्तार बढ़ गई है, ऐसा कहनेसे तो दूसरा व्यक्ति कुछ जान नहीं पाता। लेकिन १५० के बदले १६० तार निकलते हैं और ५ तोलाके बदले प्रति घंटा ७ तोलाकी पूनियाँ बनती हैं, यह कहनेसे पता चलता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७२२) से।

४१४. पत्र : मणिबहन एन० परीखको

२१ अगस्त, १९३२

चि० मणिबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अब नरहरिकी चिन्ता तो नहीं सताती ना? जब हमने चिन्ता करनेका काम भगवानको सौंप दिया है तो फिर हम किसलिए चिन्ता करें? और हमारी चिन्ताका परिणाम भी क्या होगा?

वनमालाको फिर लिखूँगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९७१) से। सी० डब्ल्यू० ३२८८ से भी; सौजन्य: वनमाला एम० देसाई

४१५. पत्र : चम्पाबहन आर० मेहताको

२१ अगस्त, १९३२

चि० चम्पा,

मैंने तुझे कार्ड लिखा था, वह पहुँच गया होगा। तू तनिक भी घबराना मत। ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। तूने प्रभाशंकरको जो पत्र लिखा था उसकी नकल उन्होंने मुझे भेजी है। लेकिन जैसा कि मैंने लिखा, हम दोनोंका मेल नहीं बैठेगा, यह तेरे लिए दुखकी बात है। मुझे तो जो उचित लगेगा सो करूँगा और तुझसे कहता रहूँगा। ईश्वर तुझे धीरज दे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७५३) से। सी० डब्ल्यू० १०४१ से भी; सौजन्य: चम्पाबहन आर० मेहता

४१६. पत्र : मथुरी एन० खरेको

२१ अगस्त, १९३२

चि० मथुरी,

बहुत दिनों बाद तेरा पत्र मिला। कार्यक्रम अच्छा है। वजन कितना हुआ? प्रार्थनामें यदि तुझे नींद आती है तो उसकी तुझे छूट है। नींदमें भी भगवानका नाम लिया जा सकता है, यह बात तू जानती है ना?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६६) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन एन० खरे

४१७. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

२१ अगस्त, १९३२

चि० रामचन्द्र,

तेरी अंग्रेजीकी लिखावट तो बहुत अच्छी है। हिज्जेमें जरूर कच्चा है। अर्थ ठीक-ठीक समझता है क्या?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९५) से; सौजन्य: लक्ष्मीबहन एन० खरे

४१८. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२१ अगस्त, १९३२

चि० जमना,

बहुत दिनों बाद पत्र लिखा। थोड़े समयके लिए राजकोट जाकर रहना होता है यह अच्छा ही है। खुशालभाईकी तबीयतमें इतना जो सुधार हुआ यह तो चमत्कार ही है। जमनादाससे कहना कि वह पत्र लिखनेमें आलस्य न करे तो बेहतर होगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८५८) से; सौजन्य: नारणदास गांधी

४१९. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२१ अगस्त, १९३२

चि० नर्मदा,

तुझे अपने अक्षर सुधारने चाहिए। पत्रका हाशिया सलामत हो, शब्द अलग-अलग हों और पंक्तियाँ सीधी हों। कलमका इस्तेमाल करे तो अच्छा है।

तू सब चीजोंमें होशियार हो, ऐसी मेरी इच्छा है। लड़कोंकी पोशाकसे तेरा क्या अभिप्राय है। तनिक ब्योरेसे लिख। कितने वर्षोंसे ऐसी पोशाक पहनती है और किसके कहनेसे?

अपना कार्यक्रम लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७६०) से; सौजन्य: रामनारायण एन० पाठक

४२०. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

२१ अगस्त, १९३२

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। रमीबहन[1] यदि वहीं अच्छी हो जाये तो बहुत अच्छा होगा। मेरे सारे पत्र तुम्हें मिले होंगे। खोये हुए वजनको वापस ले लेना। जो आवश्यक हो वह खुराक मुक्तभावसे लेना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने। सी० डब्ल्यू० ८७९४ से भी; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य

१. रमीबहन कामदार, गंगाबहन वैद्यकी बहन।

४२१. पत्र : विद्या आर० पटेलको

२१ अगस्त, १९३२

चि० विद्या,

तू तो बहुत व्यस्त दिखाई देती है। यह अच्छी बात है। लेकिन तुझे अपने अक्षर सुधारने चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४३०) से; सौजन्य: रवीन्द्र आर० पटेल

४२२. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२१ अगस्त, १९३२

बालक और बालिकाओ,

आजकल तुम्हारे पत्र नीरस होते हैं। सात दिनोंमें कोई ऐसी खास बात न हो जिसका जिक्र किया जा सके, ऐसा तो कभी नहीं हो सकता।

पत्रमें वनस्पति, ढोर-डंगरका वर्णन किया जा सकता है। अपने उपद्रवोंके बारेमें लिख सकते हो, कौन आलस्य करता है, कौन सबसे ज्यादा सावधान रहता है, कौन-कौन-सी किताबें पढ़ीं आदि-आदि। चाहो तो अनेक वस्तुओंके बारेमें लिख सकते हो। तुम्हारे पत्रमें [यह सब][1] जो होना चाहिए वह क्यों नहीं है?

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. मूल पत्रमें अस्पष्ट है।

४२३. पत्र : कमलनयन बजाजको

२१ अगस्त, १९३२

चि० कमलनयन,

तुम्हारा धर्म मुझको जेलसे निकलते हि लिखनेका था। मैंने खत लिखा था वह मिला था? तुमने तो खूब अनुभव लिये। विलायत जानेके पहेले तुमारा पत्र था ऐसा कुछ स्मरण आता हैं। मैंने प्रश्नका उत्तर दिया था ऐसा भी कुछ खयाल रह गया है। अब तो प्रश्न भूल गया हूँ। मुझे दोबारा लिखो।

नर्मदा बेडोल चित्र देकर ठीक निकल गई। यह आलस्यकी निशानी है।

बापुके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०४८) से।

४२४. पत्र : अमतुस्सलामको

२१ अगस्त, १९३२

माई डियर अमतुल, (अंग्रेजीमें),

तुमने कुरानके बारेमें ठीक पूछा है। मैं किसी किताबके लिए नहीं मानता हूं कि वह फरिश्तोंने किसीको खुदाकी तरफसे दिया। लेकिन पैगम्बरोंको अन्दरूनी आवाज आया। हमारे लिए इतना काफी होना चाहिए। कुरानके मानी अच्छी तरह समझ लेनेका तुम्हारा इरादा अच्छा ही है। दोनों किताबें पढ़नेका मतलब तो यह है कि हमें पता चले कि इसमें क्या लिखा है और हमारे दिल पर इसका क्या असर होता है।

कुदसियाको उर्दू मालूम ही नहीं ऐसा क्यों। क्या तुम्हारे घरमें सब अंग्रेजी ही जानते हैं? थोड़ी तुम्हारे कबीलेकी हिस्ट्री दो। असल कहाँके रहनेवाले? उर्दूका शौक कबसे छूट गया और क्यों। अब तुमको अच्छा रहता होगा। हृदसे ज्यादा मेहनत मत करो। किसी बातके खयालोंको न किया करो। खुशमिजाज रहो और जितना खुदा करनेदे उसे गनीमत मानो। डा० शर्माको खत भेजा होगा। बता दो मेरा यह खत आसानीसे पढ़ सकी? उर्दू खतसे तुमको सन्तोष मिले तो मैं उर्दूमें ही लिखना पसन्द करूँगा। हर हफ्ता तुम्हारे मेरी गलतियाँ बताते रहना। अगर तुमको अंग्रेजी खत ज्यादा पसन्द हैं, तो बिला शुबा मुझे लिखो। मेरा मतलब तुमको खुश रखनेका

हैं। हां, जब हिन्दी सीख लेगी तब हिन्दीमें लिखेगी। तू मुझे उर्दूमें लिखा करेगी तो अच्छा है, लेकिन साफ हरफ निकालना होगा। नहीं तो मैं नहीं पढ़ सकूँगा।

बापू

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २५४) से।

४२५. पत्र : शारदा सी० शाहको

२१ अगस्त, १९३२

चि० शारदा,

तूने जो श्लोक उद्धृत किया है उसमें विद्वानका अर्थ गुणवान है। पहले विद्वान का अर्थ वेदविद् अर्थात् वेदको जाननेवाला होता था और ऐसा माना जाता था कि वेद जाननेवाला व्यक्ति जरूर गुणवान होता है। मेरे कहनेका अभिप्राय तो यह था कि डाक्टरकी पूजा उसके गुणके कारण होती है। उसका मतलब यह नहीं कि विद्वत्ताकी पूजा ही नहीं की जाती। लेकिन हम जानते हैं कि कई लोग बहुत अधिक पढ़े-लिखे होते हैं फिर भी उनकी कोई कद्र नहीं होती।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१५) से; सौजन्य : शारदाबहन जी० चोखावाला

४२६. पत्र : मणिलाल गांधीको

२२ अगस्त, १९३२

चि० मणिलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम दोनों ज्वरमुक्त हो गये यही बहुत बड़ी बात है। स्वास्थ्य अब पहले-जैसा हो गया होगा। प्रागजीके सम्बन्धमें दुख होता है। मुझे श्री रिच का पत्र आया है। उससे तो प्रगट होता है कि फीनिक्स आश्रमको भंग नहीं किया जा सकता। वे प्रागजीके बारेमें तो कुछ नहीं लिखते लेकिन तुम्हारी सहज ही शिकायत करते हैं। लिखते हैं कि तुम सोराबजीके फन्देमें पड़ गये हो और पैसा गँवा बैठे हो। भगवान करे, यह बात सच न हो। तुम्हारे पास जो-कुछ है वह तो ट्रस्टकी मिल्कियत है। इसमें से अपनी आजीविका उपरान्त तुम कुछ नहीं ले सकते, यह तो जानते हो न? न तो किसीको उधार दे सकते हो, न भेंटमें कुछ दे सकते हो, और न उस पर कोई कर्ज ले सकते हो। पहले २५ बीघा भी 'इंडियन ओपिनियन' के लिए पट्टेपर दिये गये, ऐसा मैं समझा हूँ और वह भी भूल तो हुई ही। यह तो खुद तुमने भी महसूस किया, इसलिए उसके बारेमें क्या कहना?

प्रागजी केवल अपना स्वार्थ ही देखते हैं। और तुम्हें इस बातकी प्रतीति हो गई है तो मैं समझता हूँ कि तुम्हें 'इंडियन ओपिनियन' के लिए उनका उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि तुम चाहो तो प्रागजीको मैं लिखनेको तैयार हूँ।

हम तीनों मजेमें हैं। देवदास ठीक हो गया है। अभी तो आराम करेगा। प्यारेलाल छूट गया है। मणिबहन फिर जेलमें गई है, सवा वर्षके लिए। रामदास ठीक है। बा अब छूटनेवाली है। उसका शरीर कुछ ढल गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९३) से।

४२७. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

२२ अगस्त, १९३२

चि० सुशीला,

तुझ आलसीको दो पृष्ठोंका अपना पत्र लम्बा लगता है जबकि मुझे तो बहुत छोटा जान पड़ता है। तुझे पता है कि मैं अपने भाईको जब इंग्लैंडसे पत्र लिखा करता था तब वह बीस-पचीस पृष्ठोंका होता था और तो भी मुझे वह पत्र छोटा लगता था। भाईको भी वह पत्र लम्बा जान पड़ेगा और उन्हें पढ़नेमें तकलीफ होगी, ऐसा मनमें कुछ नहीं होता था। अपितु मनमें इस बातका विश्वास होता था कि उन्हें अच्छा लगेगा। सप्ताह-भरमें जो-कुछ किया, जिनसे मिले हों, जो दोष किये हों, उन सबका वर्णन करनेमें यदि पृष्ठ भर जायें तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? और फिर वह भी एक भाईको ही लिखना है। इसलिए जितना हो सके उतना उसमें भर देता था।

लेकिन तू ठहरी एक ही पंक्तिमें सब-कुछ कहनेवाली। खुले अक्षरोंवाली पचास पंक्तियाँ लिखे तो वह तो बहुत ज्यादा लगेगा ही। वाह री शहजादी! खैर, तू वहाँ मणिलाल पर अंकुश रख, यही काफी है। मणिलाल भोला है, तू गम्भीर है। ऐसा जानकर ही तो तुझसे उसका विवाह किया है। मेरी मान्यता है, लोगोंकी तेरी कसौटी खरी है। हाल जरा ज्यादा अंकुश रखना। यह न सोचना कि वह पति ठहरा, उसे कह देना-भर काफी है। अच्छी पत्नी पतिका कान पकड़ कर गड्ढेमें गिरनेसे रोकती है। मैं समझता हूँ यह सब गुण तुझमें हैं। मणिलालके साथ मेरा यह करार है कि वह तुझे दासी नहीं मानेगा, बल्कि तुझे सहचरी, सहधर्मिणी, अर्धांगिनी मानेगा। इसलिए तुम दोनोंका परस्पर एक-दूसरे पर एक समान अधिकार है। तुझमें अन्तर्ज्ञान ज्यादा है, इस दृष्टिसे इस क्षेत्रमें तेरा अधिकार विशेष है। मणिलालको प्रेसकी मशीन चलानेका अधिक ज्ञान है — इसलिए उसमें उसका अधिकार विशेष है। पानीके उपचारके बारेमें उसे ज्यादा जानकारी है, इससे उसमें भी उसका पलड़ा

भारी है। मणिलालको लिखा मेरा पत्र पढ़ने पर तुझे मालूम होगा कि मैंने यह सब क्यों लिखा है? तेरा कान कैसा है? ताराकी चिट्ठी आती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९२) से।

४२८. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

२२ अगस्त, १९३२

भाई खम्भाता,

तुम्हारा पत्र मिला। मलहम जरूर भेजना। उसका उपयोग करके देखूंगा। लेकिन इतना जान लो कि मैंने आयोडिनका काफी उपयोग किया है। इस मलहममें अन्य उपयोगी वस्तुएँ हों तो ठीक है। मेरी स्मरणशक्ति इतनी खराब है कि तुम्हारी मार्फत मैंने विद्याका जो इलाज करवाया था उसे भूल गया। सच है कि बुढ़ापेमें कोई रोग नहीं होना चाहिए। लेकिन यह बात तो उसपर लागू होती है जिसका जीवन हमेशा भोगोंसे मुक्त रहा हो। मैंने कौन-से भोग नहीं भोगे हैं? एक रह गया था कि मालिश करवाकर और हाथ दबवाकर कभी नहीं सोया। इसीलिए रोज रातको तुम्हारी याद आ जाती है।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६६०२) की फोटो-नकलसे। सी० डब्ल्यू० ४३८८ से भी; सौजन्य: तहमीना खम्भाता

४२९. पत्र : त्र्यम्बकलालको

२२ अगस्त, १९३२

चि० त्रंबकलाल,

छगनभाईको तुमपर पूरा विश्वास है। डाक्टरको भी था। डाक्टरका परिवार अखण्डित रहे इसके लिए तुमसे जितना बन सके उतना तो तुम करते ही होगे। मुझे लिखना। रास्तेमें जो मुश्किलें आयें उनसे मुझे अवगत कराना और यदि तुम्हारे पास कोई सुझाव हो तो वह भी बताना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९४३६) से।

४३०. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२२ अगस्त, १९३२

बेटी रेहाना,

तुम्हारा खत आज मिला। अब्बाजानका भी। जिसमें दागकी गजल थी, वह खत मिला था। लेकिन बहुत देरसे। मेरा कुछ खयाल रहा है कि मैंने तुमको एक खतकी पहुँच लिखी थी। [वो] गजल अच्छी लगी। तुम्हारे सब खत मेरे पास मौजूद हैं। गालिबकी गजलके बारेमें तुमने अम्माजानको क्यों तकलीफ दी? और तुमको भी मैं इतनी तकलीफ देना नहीं चाहता हूँ। आसानीसे जितना मुझे दे सकते हैं उतना मेरे लिए काफी होगा। अब मेरे पास उरदू किताबें भी काफी हो गई हैं। पुरोहितजी ठीक छूटे। भाईजीका अफगानिस्तान जानेका क्यों छूट गया। महादेव फ्रेंच और उर्दू पढ़ रहा है। बाबाजान इसे फ्रेंच सिखाते थे। तबसे महादेवने फ्रेंच छोड़ा नहीं है। इतना कर लेवे इसके बाद टींबटुकी जबानका देखा जायेगा। लेकिन तुम्हारे सिखाना होगा। इस जबान जाननेवाली तो तू एक ही तो इस दुनियामें होगी। बाबाजानको अलग नहीं लिखता। बड़ोंको लिखनेमें खतरा रहता है। बाबाजान अम्माजानको आदाब। औरोंको बन्देमातरम। तुमको थप्पड़।

बापू

[पुनश्च :]

इतना लिखनेमें मुझे आधा घंटा लग गया है। यह सब तुम्हारा ही दोष है ना? मुझे जल्दी लिखना क्यों नहीं आता?[1]

बापूके आशीर्वाद
दुआ आदि

उर्दू/गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६७१) से।

१. यह अनुच्छेद गुजरातीमें है।

४३१. पत्र : मीराबहनको

२३ अगस्त, १९३२

चि० मीरा,

मैंने तुम्हारे नये पतेपर एक पत्र[1], बल्कि एक पोस्टकार्ड लिखा है।

मैंने निश्चय कर लिया था कि यदि तुम फिरसे बीमार पड़ीं तो मैं तुम्हें अपने मनमें भी नहीं झिड़कूँगा। जब मैंने काशीसे तुम्हारी बीमारीका हाल सुना तो मैंने मनमें सोचा कि तुम्हारे बीमार पड़ने पर हर बार तुम्हें ही दोष देनेसे काम नहीं चलेगा। निःसन्देह हम अपनी ही गलतियोंके कारण बीमार पड़ते हैं। लेकिन कठिनाई यह है कि हम हमेशा अपनी गलतियोंको पहलेसे ही नहीं जान सकते। दूसरी कठिनाई यह है कि यदि हम उनको जानते हों तो भी हमेशा उनसे अपना बचाव नहीं कर सकते। इसलिए इस सत्यको जानना ही पर्याप्त है कि हम अपनी भूलोंसे तकलीफ पाते हैं और बीमार पड़ जाने पर हमें हमेशा अपनी भर्त्सना नहीं करनी चाहिए। इसलिए तुम्हारी सबसे हालकी चूकसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ है। जो परिस्थितियाँ तुमने बताईं उनमें वह अवश्यम्भावी ही थी। ईश्वरका शुक्र है कि तुम्हारी ये बीमारियाँ बिना कोई बुरा प्रभाव छोड़े ठीक हो जाती हैं। प्राकृतिक उपचारसे रोगके कीटाणुओंको दूर करनेपर अकसर शरीर ज्यादा शुद्ध और शक्तिवान हो जाता है। तुम्हें जो विश्राम मिल रहा है वह बड़े भाग्यकी बात है। और अगर तुम्हें मुलाकातियोंसे मिलने या चिट्ठियाँ लिखनेकी अनुमति न मिले तो चिन्ता मत करना। सिर्फ ५० साल पहलेकी बात है कि कैदी लोग न तो मुलाकातियोंसे मिल सकते थे और न चिट्ठी लिख सकते थे। साधारण जेल-जीवनकी आजकल सारी भयंकरता समाप्त हो चुकी है। हॉवर्डने[2] जो आन्दोलन चलाया वह एक महान आन्दोलन था। आज तो वह केवल अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें है। वह दिन दूर नहीं जब जेलोंका नव-संस्कार किया जायेगा और वहाँ लोगोंको केवल इसलिए नजरबन्द रखा जायेगा कि वे अपने-अपने राज्यकी धारणाके अनुसार नैतिक, सामाजिक या राजनीतिक, जो भी मर्यादाएँ हों, उनकी दृष्टिसे कोई अपराध न कर सकें। लेकिन जेल-जीवनकी जो भी दशाएँ हों, हमें उनमें प्रसन्न रहना है और साथ ही इस बातकी बराबर कोशिश करनी है कि जहाँ सम्भव हो वहाँ राहत प्राप्त की जाये।

अब मेरे भोजनकी बात सुनो। तुम्हें याद होगा कि यहाँ यरवडामें मैं दूध और रसीले फलोंको लेकर कब्जसे छुटकारा नहीं पा सका था और दूध छोड़नेके बाद ही मुझे उससे छुटकारा मिल सका था। इस बार भी मैंने दूध छोड़ दिया था,

१. १९ अगस्त, १९३२ का पत्र, जो मीराबहनको जेलके पतेपर भेजा गया था।

२. जॉन हॉवर्ड, अंग्रेज लोकोपकारक और जेल-सुधारक।

क्योंकि मैं दूध और फलोंके बलपर अपनेको चुस्त नहीं रख पा रहा था। इस बार मैंने दूधके साथ केला लेना शुरू किया। इससे कुछ थोड़ा-सा सुधार हुआ, लेकिन वह काफी नहीं था। अतः मैंने कुछ दिनोंके लिए दूध छोड़ दिया है और गेहूँकी जगह बाजरेकी चपाती ले रहा हूँ। इससे अद्भुत फायदा है। पिछली बार जब जेलमें था[1], उस समय बाजरेने ही मेरा कब्ज दूर किया था और मैं जेलमें अपने शेष दिन रोटी, सब्जियाँ और पिसा बादाम लेकर काट सका था। मेरा विचार दूध फिर शुरू करनेका है और देखना है कि बाजरेके साथ लेते रहनेपर कब्जसे बचा जा सकता है या नहीं। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। और तुम देख ही सकती हो कि मैं बिना किसी तकलीफके दाहिने हाथसे लिख रहा हूँ। बायीं कुहनीकी ज्यादा अच्छी सुरक्षाके लिए मैंने फिरसे मगन चरखा अपना लिया है और इस बार उससे तीस अंकका सूत निकाल लेता हूँ। मैं इससे सन्तुष्ट हूँ। प्रति घंटे जितना सूत निकलता है, उसकी मात्रा अच्छी नहीं है। मुश्किलसे प्रति घंटे १०० फेरे होते हैं।

वल्लभभाई संस्कृतमें बहुत तेजीसे प्रगति कर रहे हैं। महादेव फ्रेंच और उर्दू, दोनों पढ़ रहे हैं। इस तरह हमारा समय बहुत उपयोगी ढंगसे व्यतीत हो रहा है। यहाँ मौसम सहसा ही बहुत धूपदार और बहुत गरम हो गया है, जो वर्षके इन दिनोंमें असामान्य है। मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारे यहाँका मौसम खराब नहीं है।

उम्मीद है कि तुम्हारे पास मच्छरदानी है।

हम सबोंकी तरफसे प्रेम सहित,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३४) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७०० से भी।

४३२. पत्र : वसुमती पण्डितको

२३ अगस्त, १९३२

चि० वसुमती,

अब तो तुझे स्वतन्त्र रूपसे पत्र लिखा जा सकता है। तू महादेवसे मिल तो नहीं सकी। तेरा पत्र तुरन्त आयेगा, मैंने यह आशा रखी थी। कदाचित् मेरे उस पत्रके पहुँचनेसे पहले ही मुझे तेरा पत्र मिल भी जाये। सारे अनुभव लिखना। जिन-जिन बहनोंसे जो-कुछ सीखनेको मिला, जो विचार मनमें आये, क्या कुछ पढ़ा आदि-आदि सब। [जेलमें] स्वास्थ्य कैसा रहा? मराठीका कुछ ज्ञान प्राप्त किया?

१. १९३०-३१ में।

जो खुराक मिलती थी क्या उससे उत्साह बना रहता था? नानी बहनका अभीतक कोई पत्र नहीं आया, यह कैसे? हम तो मजेमें ही हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९३३१) से। सी० डब्ल्यू० ५०७६ से भी; सौजन्य : वसुमती पण्डित

४३३. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

२३ अगस्त, १९३२

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र और सर विट्ठलदास[1] का जीवन-चरित्र मिले हैं। मैं उसे पढ़ जाऊँगा।

हम तीनोंकी तबीयत तो अच्छी ही रहती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४८२३) से; सौजन्य : प्रेमलीला ठाकरसी

४३४. पत्र : दरबारी साधुको[2]

२३ अगस्त, १९३२

यह कहना मुझे उचित नहीं जान पड़ता कि ऐसा क्रम है कि मनुष्य थोड़ा-बहुत समय व्यर्थके विचारोंमें बिताता है। यदि इसमें एक भी अपवाद है तो यह निश्चित क्रम है, सो नहीं कहा जा सकता। और अपवाद तो हमारी दृष्टिमें अनेक आते हैं। इतना अवश्य है कि असंख्य व्यक्ति अनेक प्रकारके मनसूबे बाँधते हैं, अर्थात् उनके मनमें व्यर्थके विचार उठते रहते हैं। ऐसा न हो, तो एकाग्रता आदिपर जो जोर दिया जाता है उसकी आवश्यकता ही न रहे। हमारे लिए इस समय कामकी

१. प्रेमलीला ठाकरसीके पति।

२. दरबारी साधुने अपने पत्रमें लिखा था कि "व्यर्थके विचार वाकई भारस्वरूप होते हैं, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि सत्यशोधकको भी अस्थिर विचारोंकी स्थितिमें से गुजरना होता है। यह सच है कि निष्काम कर्मसे चित्तकी शुद्धि होती है; लेकिन कुछ शुद्धि हो जानेके पश्चात साधकको शान्त होकर भीतरी क्रियाका अवलोकन तो करना ही पड़ता है न? या सिर्फ निःस्वार्थ कर्मसे ही मामला हल हो जाता है? बुद्धने इसी प्रकारका कोई उद्देश्य सामने रखते हुए कर्म और चिन्तन के सामंजस्यका उपदेश दिया है। बापू कर्मको प्रधान मानते हैं जो कि उनके अनुसार आत्मोत्कर्षका राजमार्ग है। लेकिन क्या सिर्फ इसीसे मनुष्य आत्माकी क्रियाको समझ जाता है?" (**द डायरी ऑफ महादेव देसाई**, खण्ड–१)।

जो चीज है वह यह है। हम स्वयं अनेक प्रकारके हवाई-किले बनाते हैं, अनेक प्रकारके विचार करते हैं, उनमें से बहुत तो याद भी नहीं रहते। इन सारे विचारोंको व्यभिचारकी संज्ञा दी जा सकती है। सामान्य व्यभिचारसे जिस तरह मनुष्य अपनी शारीरिक शक्तिका नाश करता है, उसी तरह विचार-व्यभिचारसे भी मानसिक शक्तिका ह्रास होता है; और जिस तरह शारीरिक दौर्बल्यका मनपर असर होता है, उसी तरह मानसिक दुर्बलताका भी शरीरपर असर होता है। इसीलिए मैंने ब्रह्मचर्यकी व्यापक व्याख्या करके निरर्थक विचारोंको भी ब्रह्मचर्यका भंग करनेवाला माना है। ब्रह्मचर्यकी संकुचित व्याख्या करके हमने उसे अपेक्षाकृत कठिन वस्तु बना दिया है। व्यापक व्याख्याको स्वीकार करके यदि हम इन्द्रियमात्रका, ग्यारहों इन्द्रियोंका संयम करें तो एकेन्द्रिय-संयम अपेक्षाकृत अत्यन्त सहल हो जाये। तुम मन-ही-मन ऐसा मानते दीख पड़ते हो कि बाह्य कर्मको करते हुए आन्तरिक शुद्धिके पर्यवेक्षणका काम अधूरा रह जाता है, अथवा कम हो जाता है। मेरा अनुभव इससे बिल्कुल विपरीत है। बाह्य कर्म आन्तरिक शुद्धिके बिना निष्काम भावसे हो ही नहीं सकता। इसीसे आंतरिक शुद्धिका मापदण्ड बहुधा बाह्य कर्मकी शुद्धिसे ही जाना जा सकता है। जो व्यक्ति बाह्य कर्मके बिना आन्तरिक शुद्धिको प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसके भ्रममें पड़ जानेकी बराबर आशंका रहती है। ऐसे तो मैंने अनेक उदाहरण देखे हैं। एक प्राकृत उदाहरण ही देता हूँ। जेलमें मैंने अनेक साथियोंको अनेक प्रकार के शुभ निश्चय करते देखा है और बाहर जाते ही प्रथम आघातपर ही उन्हें टूटते भी देखा है। जेलमें तो उन्होंने यह निश्चित रूपसे मान लिया था कि वे अपने निश्चयसे कभी नहीं डिगेंगे, उनकी आन्तरिक शुद्धिकी प्रक्रिया पूरी हो गई है, पर्यवेक्षण शान्ति-पूर्वक किया है, और प्रार्थनामें एकाग्रता आ गई है। लेकिन जेलकी चारदीवारीसे बाहर निकलते ही मैंने इन सबको स्वप्नवत् होते देखा है। गीताजीके तीसरे अध्यायका पाँचवाँ श्लोक अत्यन्त चमत्कारक है। एकाधिक वैज्ञानिकोंने सिद्ध कर दिखाया है कि इसमें जो सिद्धान्त कहा गया है वह सर्वव्यापक है। उसका अर्थ तो यह है कि कोई भी व्यक्ति एक क्षणके लिए भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। कर्म अर्थात् गति, यह जड़-चेतन सबके लिए सर्वव्यापक नियम है। मनुष्य इस नियमका निष्काम भावसे अनुसरण करे, यही उसका ज्ञान है और यही उसकी विशेषता है। 'ईशोपनिषद्' में दो मन्त्र हैं[१], जो इसी सत्यका प्रतिपादन करते हैं। ये मन्त्र भी उतने ही चमत्कारिक हैं। बुद्ध भगवानकी मेरे-जैसे लोग क्या आलोचना करें? और फिर मैं तो उनका भक्त हूँ। लेकिन बुद्ध भगवानने स्वयं (संघों)की रचना की अथवा उनके अनुयायियोंने की? चाहे जैसा हुआ हो, लेकिन जिन संघोंकी स्थापना हुई थी वे सब इस सर्व-व्यापक नियमका पालन करते हुए ही जड़वत् बन गये और अन्तमें आलस्यका घर बन गये। आज भी लंकामें, बर्मामें, तिब्बतमें बौद्ध साधु ज्ञानहीन और आलस्यके पुतले-जैसे दिखाई देते हैं। हिन्दुस्तानमें भी साधुओंके रूपमें माने जानेवाले लोग साधु शब्दको चरितार्थ नहीं करते। इसलिए मुझे तो ऐसा लगता है कि सच्ची और

१. १ और २।

शाश्वत चित्तशुद्धि तो मनुष्य कर्म करते हुए ही साध सकता है। यहाँ फिर 'गीता' का वचन उद्धृत करनेका मन हो आता है। 'गीता' के चौथे अध्यायके १८वें श्लोकका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखता है वही बुद्धिमान है, वही योगी है, वही पूरा कर्मी है। लेकिन यह तो मैंने अपने अनुभवकी बात लिखी है। मैंने 'गीता' का श्लोक इसलिए उद्धृत किया है, क्योंकि इसमें निहित शिक्षाका मुझे अनुभव हुआ है। जिन्हें मैंने अनुभवसे न परखा हो, ऐसे शास्त्र-वचनोंको मैं उद्धृत नहीं करता। दूसरोंका अनुभव मुझसे भिन्न हो सकता है और वे कदाचित् 'गीता' से विरोधी वचनोंको भी उद्धृत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, मैंने जिन श्लोकोंको उद्धृत किया है, उन्हीं श्लोकोंका वे अपने अनुभवके समर्थनमें दूसरा अर्थ भी लगा सकते हैं। यह सब सम्भव है। इसलिए मेरे अनुभवको स्वीकार किया ही जाना चाहिए, इसके बारेमें मेरा कोई आग्रह नहीं है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४३५. पत्र : ननी और अन्य बच्चोंको

२४ अगस्त, १९३२

मेरी प्रिय नन्हीं मित्रो, ननी[1], अन्ना[2], गिलियन[3] और लीडिया[4],

तुम्हारे मधुरपत्र और तुम लोगोंके बनाये हुए मजेदार चित्र पाकर मुझे बहुत आनन्द आया। तुम सबोंके नाम एक ही पत्र भेजनेका तुम लोग बुरा न मानना। आखिरकार तुम लोग मनसे तो एक ही हो, शरीरसे न भी हो तो क्या। हाँ, यह तुम्हारे-जैसे नन्हे बच्चे ही हैं, जो सब लड़ाइयोंको रोकेंगे। इसके मतलब हैं कि तुम लोग अन्य लड़के-लड़कियोंसे या आपसमें लड़ाई-झगड़ा कभी न करो। अगर तुम लोग खुद ही छोटी-छोटी लड़ाइयाँ करोगे, तो बड़ी लड़ाइयोंको नहीं रोक सकते।

मेरा कितना मन है कि ननी और अन्नाका जन्मदिवस मनानेके लिए मैं भी तुम लोगोंके साथ होता। ईश्वर उन्हें और तुम सबको खुश रखे। तुम सबोंको मेरे चुम्बन, बशर्ते कि तुम मुझे चूमने दोगी, और ननी मेरा प्यार एस्थर तक पहुँचा देगी। नहीं?

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (नं० २) से; सौजन्य : भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. एस्थर मेननकी पुत्री।

२, ३ और ४. इन तीनों बच्चोंसे गांधीजी सेली ओकमें उस समय मिले थे जब वे १९३१ में गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए गये थे।

४३६. पत्र : प्रेमी जयरामदासको

२४ अगस्त, १९३२

प्रिय प्रेमी[1],

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। चूँकि तुमने 'कुरान' का कोई जिक्र नहीं किया है, अतः उसे किसी औरने भेजा होगा। वह तुम्हारे डिब्बोंके साथ आ गया था। ऐसी बात नहीं है कि तुम्हारी भेजी मिठाइयाँ सरदारको पसन्द नहीं हैं। लेकिन वह यहाँ रहते हुए मिठाई नहीं खाना चाहते थे। यही वजह है कि दोनों डिब्बे सरोजिनी देवीको भेज दिये गये थे। तुम हिन्दी कब सीखोगी? अपने पिताके बारेमें मुझे सब-कुछ लिखना। हम सब अच्छे हैं।

तुम्हारी माताजी, अर्जुन[2] और तुम्हें हम सबोंका प्यार।

तुम्हारा,
बापू

श्री प्रेमीबहन
प्रेमभवन, मार्केट रोड
हैदराबाद, सिन्ध

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९२४३) से; सौजन्य: जयरामदास दौलतराम

४३७. पत्र : गोविन्ददासको

२४ अगस्त, १९३२

आपकी पत्नीकी बीमारीके बारेमें हमने अखबारोंमें पढ़ा। ईश्वर उनको पूरी तरह स्वस्थ करे। सरदार और महादेव मेरे साथ हैं, और हम लोग अकसर आपकी याद करते हैं।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३१-८-१९३२

१. जयरामदास दौलतरामकी पुत्री।
२. जयरामदास दौलतरामके पुत्र।

४३८. पत्र : हरिइच्छा एस० कामदारको

२४ अगस्त, १९३२

चि० हरिइच्छा[1],

मैं तुझे पाँच मास तक कुछ न लिखूँ तो चलेगा न? तू इतनी आलसी निकलेगी, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था; और फिर पता भी पूरा नहीं देती। मुझे आश्रमकी मार्फत पत्र भेजना होगा। अब आलसको दूर करना। तबीयतको ऐसा क्या हुआ था? रसिक[2]से मिलनेके बाद मुझे उसकी पूरी खबर देना। तारा, वसन्त किस स्कूलमें जाते हैं?

मेरे साथ सरदार वल्लभभाई तथा महादेव हैं।

दिन कैसे बीतता है तेरा? कुछ पढ़ती है? कातती है?

रेहानाबहनसे परिचय हुआ? आँख कैसी है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४७०) से। सी० डब्ल्यू० ४९१६ से भी; सौजन्य: हरिइच्छा एस० कामदार

४३९. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

२४ अगस्त, १९३२

चि० रुक्मिणी,

तेरा पत्र मिला। राधाका भी मिला है। तू खोया हुआ वजन हासिल कर लेना। देवदाससे मिली, यह ठीक हुआ।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत बनारसीदास
के० २३/९६ पंचगंगा
बनारस सिटी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१४०) से।

१. वालजी गोविन्दजी देसाईकी भतीजी।
२. हरिइच्छाके भाई।

४४०. पत्र : मनुबहन गांधीको

२४ अगस्त, १९३२

चि० मनुडी,

तेरा पत्र मिला। तू हरिलालके लिए अभी भी क्यों रो उठती है? हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम उसके कल्याणके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें। तुझे मुझे नियमपूर्वक लिखते रहना चाहिए। उम्मीद है, तू अब क्रोध नहीं करती होगी और अच्छी तरहसे पढ़ती होगी। इस बार तूने खराब अक्षर लिखे हैं। रामीबहनके[1] सब बच्चे अब ठीक होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० _ १५१५) से; सौजन्य: मनुबहन मशरूवाला

४४१. पत्र : बलीबहन वोराको

२४ अगस्त, १९३२

चि० बली,

तेरा पत्र बहुत दिनोंके बाद मिला है। ऐसा आलस्य न करे तो अच्छा हो। हरिलालके नाम कोई बिल आये तो वह तुझे निश्चित रूपसे वापस भेज देना है। वह तो कदाचित् अहमदाबादमें है, ऐसा सुनता हूँ। दिन-ब-दिन उसके सुधरनेकी आशा क्षीण होती जाती है। वह और हम सब ईश्वरके हाथमें हैं।

मेरे हाथमें कोई ज्यादा दर्द नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १५१६) से; सौजन्य: मनुबहन मशरूवाला

१. मनुबहन गांधीकी बहन।

४४२. पत्र : निर्मला बी० मशरूवालाको

२४ अगस्त, १९३२

चि० निर्मला,

तेरा पत्र मिला। 'गीतामंथन' के प्रूफ मिलते रहते हैं। १० अध्यायसे १३ अध्यायतकके प्रूफ मिले हैं। लेकिन १३ वें अध्यायके अभी पूरे नहीं मिले हैं। दसवें अध्यायसे पहलेके क्यों नहीं मिले? ये प्रकरण कब लिखे गये और प्रूफ कौन देखता है? पुस्तक कबतक प्रकाशित होगी? गोमतीके[1] साथ कौन है? दिन कैसे बिताती है? अब यह रहा किशोरलालके पत्रका जवाब। 'गांधी विचार दोहन'[2] अभी हाथमें नहीं ले सका। इस समय पत्रोंकी बहुत भरमार रहती है और डाक्टर मेहताके देहावसानके बाद तो यह बहुत ज्यादा हो गई है। यहाँसे दी जा सके तो सलाह देनेमें और उसके लिए जानकारी प्राप्त करनेमें खूब पत्र लिखने पड़ते हैं, इसलिए बहुत कम समय बच पाता है। परेशानी उठाकर, रातका जागरण करके कुछ करनेकी इच्छा नहीं होती। दिनमें भी थोड़ी नींद अवश्य चाहिए, उसमें भी विघ्न डालकर कुछ नहीं करता। फलतः जो समय अनिवार्य कार्योंसे बचता है उसमें ही पढ़ा जा सकता है। उस बचे हुए समयमें मैं उपनिषद्का थोड़ा अभ्यास कर लेता हूँ और खगोलकी पुस्तक देख जाता हूँ। इस सप्ताहमें तो उर्दू पुस्तकको हाथ भी नहीं लगा सका, हालाँकि आजतक उसका अध्ययन कमोबेश चलता रहा है। आश्रमका इतिहास[3] जो लगभग लिखा जा चुका है, यह भी आजकल मुल्तवी है। ज्योतिषियोंने मेरे बारेमें समय-समयपर जो भविष्यवाणी की है यदि वह सच हो जाये, तब तो मेरा यह सारा किया-धरा व्यर्थ हो जाये। लेकिन ग्रह उन्हें दगा दे जाते हैं, इसलिए जिस तरह मृत्युका विचार मात्र किये बिना हम आगे बढ़ते जाते हैं, उसी तरह ज्योतिषियोंके कथनको अनसुना करके मैं आगे बढ़ता जाता हूँ। हम तीनों ही चल रहे हैं। आरोग्यकी पुस्तक अभी मुझे किसीने नहीं भेजी है। यह मिल जाये तो मैं इसे तो अवसर मिलते ही सबसे पहले देख जाऊँ। उसमें संशोधन-परिवर्धन करनेकी खूब जरूरत है। कताई-सम्बन्धी प्रयोग अच्छे चल रहे हैं। महादेव ८० अंक कातता है। सरदार ४० अंकतक पहुँचे हैं। वह अभी और आगे जायेंगे। ये दोनों प्रयोग गांडीव पर चल रहे हैं। मैं मगन चरखा चलाता हूँ। उसपर ३० अंक सूत निकलता है और ४० तक पहुँचनेकी आशा है। सरदारका संस्कृतका अभ्यास घुड़दौड़के घोड़ेकी गतिसे चल रहा है। सातवलेकरकी पाठमालाका छठा भाग चल रहा है। उसके बाद रोज 'गीता' के पाँच श्लोक करते हैं। खूब

१. किशोरलाल मशरूवालाकी पत्नी।

२. किशोरलाल मशरूवालाकी रचना।

३. देखिए "सत्याग्रह आश्रमका इतिहास", ११-७-१९३२।

समय देते हैं। तू कन्नड़ सीख रही है, यह तो बहुत अच्छी बात है। लिपि एक हो तो समय बहुत बच जाता है, सो तो है ही। लेकिन वह चीज तो रामराज्यमें देखेंगे। तथापि, मेरा यह अनुभव जरूर है कि दो-तीन लिपियोंका अभ्यास हो जानेके बाद अन्य अनेक लिपियाँ त्रास नहीं देतीं, क्योंकि उनके बीच [समानताका] एक सिलसिला निकल आता है। 'गीतामंथन' के जितने प्रूफ मिले हैं, उतने पढ़ गया हूँ। भाषा अच्छी लगी है। मूलके आधारपर एक नई 'गीता' ही रच दी है। उसमें संशोधन-परिवर्धन करनेके चक्करमें मैं नहीं फँसा, क्योंकि वैसा करना मुझे अनुचित लगता है। किशोरलालने विचारपूर्वक जैसी रचना की है, उसे ज्योंका-त्यों रहने देना मुझे ठीक लगा है। मेरी बायीं कुहनी जैसी थी वैसी ही है। कोई दुःख नहीं देती। हम तीनों आनन्द कर रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८८४) से; सौजन्य : निर्मलाबहन शराफ

४४३. पत्र : मणिलाल झवेरीको

२४ अगस्त, १९३२

चि० मणिलाल,

तुम्हारे पत्रकी मुझे खूब प्रतीक्षा करनी पड़ी, लेकिन अन्तमें मिल गया। इस समय तो सबके पत्र आने शुरू हो गये हैं। छगनलालके पत्र बहुत सन्तोषजनक हैं। लेकिन जेकी[1], माणेक बाई[2] तथा रतिलाल देसाई अपना-अपना असन्तोष व्यक्त करते हैं। छगनलालके पत्रसे अविश्वासका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। तथापि, मैंने छगनलालसे स्पष्ट प्रश्न किये हैं। आवश्यकता हुई, तब तो तुम्हें रंगून जाना पड़ेगा। मुझसे जहाँतक सम्भव होगा, मैं तुम्हें उसमें नहीं घसीटूँगा। नानालालका पत्र आ गया है। तुम्हारी समझमें यदि कोई बात आये, अथवा यदि तुम कुछ सुझाव देना चाहो तो वैसा करनेमें संकोच न करना। काम निःसन्देह बहुत नाजुक तो है ही। डाक्टरके पुण्यके फलस्वरूप सब-कुछ ठीक होगा, ऐसी हमें उम्मीद करनी चाहिए।

मंजुला आ गई होगी, यह सोचकर मैं उसे पत्र नहीं लिख रहा हूँ। मैंने उसे पत्र लिखा था कि वह जेतपुर पहुँचे। गुलाबका, मगनलालका और तिलकका पत्र इसके साथ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०४३) से; सौजन्य : धीरूभाई झवेरी

१. जयकुँवर, डा० प्राणजीवन मेहताकी बड़ी लड़की तथा मणिलाल डाक्टरकी पत्नी।

२. डा० प्राणजीवन मेहताकी पत्नी।

४४४. पत्र : गुलाबको

२४ अगस्त, १९३२

चि० गुलाब,

ऐसा क्या हो गया था कि इतने वायु-परिवर्तनकी जरूरत दिखाई दी? मुझे विस्तारपूर्वक लिखना। अब तो सब-कुछ ठीक हो गया होगा। धीरूभाईकी चिट्ठी आती है? वे दोनों कैसे चल रहे हैं? तिलक कैसे रहता है? उसके रहनेसे क्या कोई असुविधा होती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५०४७) से; सौजन्य: धीरूभाई झवेरी

४४५. पत्र : बनारसीलाल बजाजको

२४ अगस्त, १९३२

चि० बनारसी,

तुमारा खत मिला है। पिताजीका खत मुझको मिला था उसमें लिखा था कि किसीने उनको लिखा था कि मैं तुम लोगोंसे नाराज हुं और ऐसा खत मिलनेसे उनको बहोत दुःख हुआ। मैंने उनसे लिखा है[1] कि मुझे कभी तुम लोगोंके तरफसे नाराज होनेका कारण नहिं मिला है। ऐसी गलत बात कौन लिख सकता है?

बापुके आशीर्वाद

श्रीयुत बनारसीदास
के० २३/९६ पंचगंगा
बनारस सिटी

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१४०)से। सी० डब्ल्यू० ९४५० से भी; सौजन्य: बनारसीलाल बजाज

१. देखिए "पत्र: रामेश्वरलाल बजाजको", १७-८-१९३२।

४४६. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको[1]

२४ अगस्त, १९३२

प्यारी बहन,

आपका खत मिलनेसे मुझे बहुत खुशी हुई। डाक्टर साहबका खत मुझे मिल गया था। आपका इनसे और कल पता मिला। मेरी उम्मेद है कि डाक्टर साहबको आराम होता होगा।[2] मुझे खबर देती रहियो। सरदार, महादेव और मेरे तरफसे डाक्टर साहबको बन्दे मातरम दीजिए। खुदाकी मेहरबानीसे हम सब अच्छे हैं। मैं उम्मेद रखता हूं कि यह खत पढ़नेमें आपको तकलीफ नहीं हुई।

आपका,
गांधी

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २५) से।

४४७. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

२५ अगस्त, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र मिला। जिस पत्रमें तूने मेरे प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न किया था, उसके उत्तरमें मैंने लिखा था कि अन्य पत्रोंके आनेपर ही मैं काम हाथमें लूँगा। 'अन्य पत्रोंसे' मेरा तात्पर्य है, जो प्रकाशित किये जानेवाले हैं वे पत्र। उन्हें मैं [एक बार] देख जानेकी जरूरत समझता हूँ। तेरे संकोचने मेरा काम कठिन कर दिया है। हरिलालके साथ तेरे इस सम्बन्धका जबतक स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता, तबतक उन पत्रोंका कोई मूल्य नहीं है। यह स्पष्टीकरण तो तूने जो मुझे लिखा और तुझसे जो मैंने सुना तथा उस समयके उसके पत्रोंसे जो तथ्य प्राप्त हुए, उनके आधारपर ही किया जा सकता है। जैसा कि मैंने सोचा था, यह काम उससे कहीं अधिक कठिन है। तथापि, इसे पूरा करनेकी कोशिश करूँगा। मेरी मनोवृत्ति इस समय ऐसे कामोंकी नहीं है। यह निश्चय ही मेरे मार्गमें एक विघ्न है। तथापि, यदि ईश्वरकी इच्छा हुई तो वह मुझे करने देगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४५) से।

१. डा० मुहम्मद आलमकी पत्नी।

२. डा० आलम लाहौर सेंट्रल जेलमें बीमार थे।

४४८. पत्र : महालक्ष्मी एम० ठक्करको

२५ अगस्त, १९३२

चि० महालक्ष्मी,

जेलसे छूटनेसे पहले तुमने जो पत्र लिखा था वह मुझे मिला था। इससे पहले कि यह पत्र तुम्हें मिले, मुझे तुम्हारे सब अनुभवोंसे युक्त पत्र मिल जाना चाहिए। बच्चोंके बारेमें जो समाचार मिले हों, वे भी देना। जेलमें जो-कुछ पढ़ा हो, मनन किया हो सो भी लिखना। इतनी सारी बहनोंके बीच अच्छा लगा, सारी बहनें किस तरहसे व्यवहार करती थीं, यह सब भी बताना। माधवजी[1] का जो समाचार हो वह देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८२०) से।

४४९. पत्र : तारा एन० मशरूवालाको

२५ अगस्त, १९३२

चि० तारा,

तेरा पत्र मिला। हम [जेलमें] नीचेसे-नीचे वर्गका अनुसरण करें, यह निश्चय ही एक अच्छी बात है। लेकिन 'सी' वर्गका अनुसरण करते हुए भी हमारा शरीर जो खुराक माँगे वह हमें प्राप्त हो सकती हो, तो उसे प्राप्त करना चाहिए। 'सी' वर्गके अनेक लोगोंको दूध मिलता है। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए यदि हमें उचित खुराक मिले तो ठीक है, और यदि न मिले तो भी असन्तुष्ट हुए बिना हमें निर्वाह करना चाहिए। अत्यन्त संक्षिप्त डायरी लिखनेकी आदत हमारी अनेक बुरी आदतोंको दूर करती है। जो सत्यका आचरण करना चाहता है, उसके लिए तो डायरी चौकीदारका काम देती है। अब यदि डायरी लिखनेका विचार किया ही है तो उसपर दृढ़ रहना। माथेपर जो चोट लगी थी अब वहाँ कुछ नहीं है न?

[राजनीतिक बन्दियोंके] वर्ग खड़े करनेसे द्वेष होना स्वाभाविक था। उसका उपाय यही है कि हमें उससे अलिप्त रहना चाहिए और ऊपर लिखे अनुसार उच्च वर्गके प्रलोभनोंसे स्वयंको यथाशक्ति अलग रखना चाहिए।

१. महालक्ष्मी ठक्करके पति।

नानाभाईकी तबीयतको क्या हुआ?

मणिलाल और सुशीलाने मुझे भी पत्र लिखा था। मणिलाल थोड़े कष्टमें है। प्रागजीके साथ नहीं निभी है, ऐसा लिखता है। कदाचित् वहाँ भी लोगोंको यह मालूम है।

किशोरलाल और गोमतीका समाचार निर्मला देती रहती है। मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

हम तीनों मजेमें हैं। कदाचित् तू यह नहीं जानती कि सरदार बहुत त्वरित गतिसे संस्कृत सीख रहे हैं। ४० अंकका सूत कातते हैं। महादेव ८० अंकतक पहुँच गया है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५२१) से। सी० डब्ल्यू० ४९९७ से भी; सौजन्य: कनुभाई मशरूवाला

४५०. पत्र: महेन्द्र वी० देसाईको

२५ अगस्त, १९३२

चि० मनु,

जो बच्चा प्रार्थनामें हँसता है उसे पागल तो नहीं, लेकिन अविवेकी कहा जायेगा। टिकट किसका? मनुष्योंमें नाम इसलिए रखे जाते हैं ताकि उन्हें पहचाना जा सके। यदि तेरा नाम न हो और अन्य बालकोंके बीचमें से तुझे ही बुलाना हो, तो किस तरहसे बुलाया जाये?

जो अपनी पढ़ाईका उपयोग नहीं करता, उसे तो अनपढ़ ही कहा जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४३६) से; सौजन्य: वालजी गो० देसाई

४५१. पत्र : भाऊ पानसेको

२६ अगस्त, १९३२

चि० भाउ,

विनोबाने श्लोकोंका जो अर्थ किया है, वह भेजकर तुमने ठीक किया। लेकिन लेखकका अर्थ भी यही था, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं। और जैसा कि मैंने 'अनासक्तियोग' की प्रस्तावना[1] में बताया है, कवियोंके कथनके अर्थमें हमेशासे क्रान्ति होती आई है, और होनी भी चाहिए। विनोबाने जो अर्थ किया है, उन्हें वैसा करनेका अधिकार है। लेकिन यदि तुम्हें उस अर्थसे सन्तोष न हो तो जो अर्थ मैंने किया है उसपर विचार करना[2], और यदि वह भी अनुकूल न बैठे तो ऐसे किसी भी बुद्धि-ग्राह्य अर्थकी कल्पना कर लेना, जो 'गीता' के उद्देश्यका विरोधी न हो। और यदि यह भी न हो तो इतना मानकर सन्तोष कर लेना कि इन श्लोकोंको फिलहाल नहीं समझा जा सकता। इन श्लोकोंका सन्तोषजनक अर्थ न मिलनेसे 'गीता' के अध्ययनमें खलल पहुँचे, ऐसी कोई बात नहीं। तुम्हारा कार्यक्रम ठीक है। लेकिन इसमें आरामका कोई अवकाश नहीं है। तुम्हें सिरदर्द दूर करनेके उपाय करने चाहिए। उसके लिए तुम्हें फिलहाल यज्ञ-कार्यको छोड़कर अन्य कार्य बन्द कर देने चाहिए और आराम करना चाहिए। तुम्हें बिस्तरपर लेटे रहना चाहिए और माथेपर मिट्टीकी पट्टी बाँधनी चाहिए। एक सप्ताह ऐसा करनेसे सिरदर्द शान्त हो जाना चाहिए। डा० तलवलकरकी गोलीका असर भी होना चाहिए। सिरदर्द एक स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, अपितु यह दूसरे रोगका परिचायक है, अथवा उसकी पूर्व-सूचना या चेतावनी है। अभी थोड़ा आराम करनेसे तुम लम्बा आराम करनेकी परेशानीसे बच जाओगे। अध्ययन कम कर देना। सवेरे ४-४५ से ६-३०, ९-३० से १०-३०, और ११-४५से दोपहर १२-३० तकका समय तुमने 'गीता' और समाचारपत्रके लिए रखा है। इसे बन्द करके अब तुम आराम करना। इससे भी यदि दर्द कम न हो तो बढ़ईका काम कुछ कम कर देना। लेकिन इस दर्दको दूर करना तुम्हारा कर्तव्य है, ऐसा समझकर इसके पीछे पड़ जाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७३५) से। सी० डब्ल्यू० ४४७८ से भी; सौजन्य: भाऊ पानसे

१. देखिए खण्ड ४१।

२. देखिए "पत्र: भाऊ पानसेको", १४-८-१९३२।

४५२. पत्र : पद्माको

२६ अगस्त, १९३२

चि० पद्मा,

यह पत्र केवल तेरे लिए है। तुझे शिकायत है कि मैं तुझे पत्र नहीं लिखता, लेकिन मैंने तुझे कुछेक पत्र अवश्य लिखे हैं। नारणदासको तूने जो हिसाव भेजा है, वह उसने मुझे भेजा है। उसमें तूने ३० रुपये फुटकरमें जो लिखे हैं, वह ठीक नहीं है। फुटकरमें क्या-क्या शामिल है, यह लिखना चाहिए। सीतला सहायने जितना मुझे लिखा था, उससे खर्च बढ़ा हुआ लगता है। सोच-समझकर चलना। फुटकरके बारेमें ब्योरा भेजना। अपने पिछले पत्रमें[1] मैंने नई जगहके बारेमें जानना चाहा है तथा तेरे और सरोजिनी देवीके कार्यक्रमके बारेमें पूछा है। मैं शीलाके बारेमें भी जानना चाहता हूँ। वह क्या खेलती है? कितनी बड़ी हुई है? उसकी ऊँचाई कितने फुट और कितने इंच है? क्या वह कुछ सीखती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१३६) से। सी० डब्ल्यू० ३४८८ से भी; सौजन्य: प्रभुदास गांधी

४५३. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२६ अगस्त, १९३२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। मुझसे विशेषण प्राप्त करनेकी खातिर कहीं तू उन विशेषणोंके अनुरूप जुदा-जुदा गुण तो प्रकट नहीं करती न? यदि तू ऐसा करने लगे तो विशेषणोंका कुछ मूल्य ही न रह जाये।[2]

काठियावाड़में जो द्वेषभाव दिखाई देता है, वह किसी अन्य स्थानमें दिखाई नहीं देता। इसलिए जब तूने इसका प्रदर्शन भी देखा तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। इसका प्रदर्शन वहाँ किसी तैयारीके बिना देखनेमें आता है। इससे . . . जैसा व्यक्ति भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो सकता है, लेकिन . . . राजकोटमें होनेके बावजूद . . . की ग्लानि दूर नहीं कर सकती, यह आश्चर्यकी बात है। रक्षाबन्धनके दिन उसने उसे

१. १४ अगस्त, १९३२ के।

२. अगले दो अनुच्छेदोंमें नाम नहीं दिये गये हैं।

राखी तो बाँधी ही होगी। लेकिन क्या वह सूतका तार पर्याप्त सिद्ध हुआ? . . .के दु:खके मूलको जानकर उसे दूर करना . . .की शक्तिसे बाहर नहीं होना चाहिए। . . . अपनी पत्नी . . .की पूजा करता था। मेरी धारणा यह है कि दोनों विवाहित होनेपर भी ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। . . .के जानेसे . . .को बहुत आघात पहुँचा। . . .की मन ही मन कदाचित् विवाह करनेकी इच्छा हो। अपनी इस स्थितिको वह स्वयं नहीं जान सकता। लेकिन उसे अपने विचारोंवाली ही स्त्री चाहिए। तथापि, इसके एवजमें यदि उसे आदर्श बहन मिल जाये तो कदाचित् वह खिल उठे और खुल जाये। . . .की मैंने पूर्ण ब्रह्मचारिणीके रूपमें कल्पना की है। उसमें . . .के प्रति मैत्रीका भाव है। उसके भी आदर्श विचार हैं। चूँकि तूने . . .को खिन्न मन:स्थितिके बारेमें लिखा था, इसलिए मैंने यह सब लिखा है। . . . को मैंने अच्छी तरह पहचान लिया है, यदि तुझे ऐसा लगे और यह भी लगे कि उपर्युक्त कार्य उसकी शक्तिके बाहर नहीं है तो यह पत्र सुखसे उसे भेजना। यदि यह कार्य उसकी शक्तिके अथवा सीमाके बाहर लगे तो इतने भागको भूल जाना। . . . शुद्ध प्रेमका भूखा है। लेकिन . . . राग और विरागसे परिपूर्ण है। वह बहुत थोड़े व्यक्तियोंको ही चाह सकता है इसीलिए मन ही मनमें कुढ़ता रहता है। ऐसे व्यक्तिको पत्नीकी जरूरत कम रहती है। लेकिन [विवाहोपरान्त] वह सारा समय पत्नीमें ही अनुरक्त रह सकता है। उसके लिए तो विकारशून्य बहन चाहिए; वह मिले तभी . . .का जीवन सुधर सकता है।

हमारी महिलाएँ विकारशून्य होनेके गुणका विकास नहीं करतीं। उन्हें पत्नी बनना तो आता है, बहन होना नहीं आता। बहन होनेमें भारी त्यागवृत्तिकी आवश्यकता है। यह बात मुझे स्वयंसिद्ध दिखाई देती है कि जो पत्नी होती है वह कभी बहन हो ही नहीं सकती। कोई भी स्त्री समस्त संसारकी बहन हो सकती है। पत्नी तो स्वयंको एक पुरुषको सौंप देती है। पत्नी-गुणका होना आवश्यक तो है लेकिन उसका विकास नहीं करना पड़ता, क्योंकि वहाँ विकार-शान्तिको अवकाश है। जगत की बहन होनेका गुण कष्टसाध्य है। वह तो उसीसे सम्भव हो सकता है जिसके लिए ब्रह्मचर्य सहज है और जिसमें सेवा-भाव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हो गया है। . . . इतने ऊँचे पहुँच गई है, इसका मुझे एहसास न था। लेकिन उसमें इतनी दूर तक पहुँचनेकी शक्ति है, ऐसा मुझे अवश्य लगा है। हो सकता है कि इसके लिए तू स्वयं कारणभूत हो। अब तो मेरे मनमें जो आया वह सब मैं यहाँ लिख चुका हूँ। तू स्वयं ऐसी आदर्श बहन बने, ऐसा मेरा प्रयास तो है ही। यह कार्य कठिन है। लेकिन ईश्वरको करना होगा तो करेगा।

तूने प्रदर्शनीका ठीक-ठीक वर्णन दिया है। तेरे दिये विवरण हमेशा पढ़ने और विचार करने लायक होते हैं।

जन्माष्टमीके लिए तू आश्रममें पहुँची, यह अच्छा हुआ। देख, क्रोधपर विजय पाना। जानती है, धीरू किसी भी सूरतमें तेरे साथ जानेको तैयार नहीं हुआ? धीरू पर कदापि क्रोध न करना। वह बच्चा है, तू बच्ची नहीं है। धीरूको जीतनेमें तेरी जीत है, उसे न जीतनेमें तेरी पराजय है।

अच्छे संस्कारवाले माँ-बापकी परीक्षा कौन कर सकता है? जब बालक गर्भमें आता है उस समय माँ-बापकी स्थिति कैसी थी, सो कौन कह सकता है? इससे मुझे लगता है कि अच्छेका फल अच्छा ही होता है, इस निरपवाद नियमको माननेमें ही सार है। यदि हम हर समय अमुक व्यक्तिके बारेमें इस नियमको सिद्ध नहीं कर सकते तो उसका कारण अपना अज्ञान हो सकता है, नियमकी अपूर्णता नहीं।

यदि मैं किस्मतको मानूँ[1] तो भी उसे मिथ्या सिद्ध नहीं किया जा सकता। किस्मत अर्थात् पूर्व कर्मोंका प्रभाव।

वेश्याओंका उद्धार करनेके लिए पुरुषोंके भीतरके पशुका नाश करना होगा। जबतक जगतमें पुरुष-पशु रहेंगे तबतक वेश्याओंका रहना भी लाजिमी है। वेश्या अपना धन्धा छोड़ दे और सुधर जाये तो उससे 'कुलीन' कहे जानेवाले पुरुष अवश्य विवाह कर सकते हैं। एक बार जो स्त्री वेश्या बन गई वह हमेशा वेश्या ही रहेगी, ऐसा नियम नहीं है।

फौजके लिए लड़कियोंको भगाया जाता है, यह मान्यता मुझे अतिशयोक्तिपूर्ण जान पड़ती है। सुव्यवस्थित राज्यमें ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

मलाबारके किनारे रहनेवाले लोग उस वातावरणको छोड़नेके बाद भी नारियल हजम कर सकते हैं, ऐसा मानना भूल है। तांदलजा[2] में नारियल मिलाकर तुमने तांदलजाके असरको ही कम किया। मैंने स्वयं तो नारियलके बहुत प्रयोग किये हैं। मुझे वह माफिक नहीं आया। लेकिन जहाँ नारियल पैदा होता है वहाँ अन्य खाद्य वस्तुओंके साथ उसका होना आवश्यक है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३००) से। सी० डब्ल्यू० ५७४७ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

१. प्रेमाबहन कंटकने **बापुना पत्रो-५: कु० प्रेमाबहेन कंटकने**में लिखा है कि "मैंने गांधीजीसे पूछा था कि क्या आप किस्मतको मानते हैं।" इसका उत्तर सम्भवतः यह होना चाहिए: "यदि मैं किस्मतको न मानूँ . . ."।

२. एक प्रकारकी वनस्पति।

४५४. पत्र : रामचन्द्र एन० खरेको

२६ अगस्त, १९३२

चि० रामभाउ,

तूने हिन्दी अपने-आप लिखी है अथवा परसरामजीकी मददसे? लिखावट तो ठीक है। यदि हिन्दी तूने अपने-आप लिखी हो तो अच्छी कही जा सकती है। मैं तुझसे जन्माष्टमी मनाये जानेके बारेमें विस्तृत वर्णनकी अपेक्षा रखता हूँ।

यदि तू कुछ अंग्रेजीके वाक्य लिख भेजे तो मुझे मालूम हो जायेगा कि उस भाषामें तूने कितनी तरक्की की है।

बापू

[पुनश्च :]

तूने काटकर जो 'ॐ' बनाया है वह ठीक है, लेकिन वह आसानीसे पढ़ा जा सकता हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। इसमें कितना समय लगा होगा?

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९६) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

४५५. पत्र : मणिबहन पटेलको

२६ अगस्त, १९३२

चि० मणि,

तेरे कैद होनेके बाद[1] तूने किसीको भी कोई पत्र नहीं लिखा, ऐसा क्यों कर? कैद होनेके तुरन्त बाद पत्र लिखनेका अधिकार तो है न? अब यदि वहाँसे आजतक न लिखा हो तो पत्र लिखना। हो सके तो इस बार अपने शरीरको सुधार लेना। जो खुराक आवश्यक हो उसे लेनेमें अथवा माँगनेमें संकोच न करना।

मेरी राय है कि तू अपने विद्याभ्यासको अच्छी तरहसे व्यवस्थित करके, जो विषय कच्चे हों उन्हें पक्का कर ले। यदि तू गुजराती व्याकरणको पक्का करे, और भाषापर अधिक अधिकार प्राप्त करे तो अच्छा होगा। और चूँकि तुझे अंग्रेजी आती ही है, इसलिए उसे भी पक्का किया जा सकता है। इसमें कमलादेवी [चट्टोपाध्याय] की मदद ली जा सकती है। संस्कृतमें लीलावतीबहन (मुंशी) मदद कर सकती हैं। साथमें मराठी भी ज्यादा अच्छी कर सके तो बेहतर होगा। स्त्रियोंसे सम्बन्धित विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेनेकी भी आवश्यकता है न? लेकिन यह तो मेरा

१. मणिबहन पटेल ११ अगस्त, १९३२ को गिरफ्तार हुई थीं और उन्हें १५ मासकी कैद हुई थी।

सुझाव हुआ। इसमें से यदि तुझे जो पसन्द न आये, तो जो अच्छा लगे सो करना। इसमें यदि कुछ भी अच्छा न लगे तो कोई नई चीज हाथमें लेना। मेरे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि यह जो सुन्दर अवसर मिला है उसका पूरा सदुपयोग ज्ञानवृद्धिके लिए कर लेना। कातनेकी छूट हो तो कातना तथा प्रार्थना और दैनन्दिनी लिखनेकी बातको कभी न भूलना।

हम तीनों मजेमें हैं। तेरे बापूका संस्कृतका अभ्यास इतने वेगसे चल रहा है कि यदि तू देखेगी तो तुझे आश्चर्य होगा। किताब हाथसे छूटती ही नहीं है। नौजवान विद्यार्थियोंमें भी ऐसा उत्साह देखनेमें नहीं आता। सूत कातते हैं, लेकिन ४० अंकका ही; और लिफाफे बनानेका काम तो है ही। महादेवका ८० अंकका सूत कातना जारी है। इसके अतिरिक्त फ्रेंच और उर्दू है। मेरी धीमी गाड़ी मगन-चरखेपर चलती है। अभ्यास तो टूटा-फूटा चलता ही है। पत्र लिखनेमें ही बहुत समय चला जाता है। . . .[१]

यदि कभी पत्र भेजनेकी गुंजाइश हो और तेरी इच्छा हो आये तो मुझे पत्र लिखना। हम सबकी ओरसे आशीर्वाद।

बापू

मणिबहन पटेल
प्रिजनर
बेलगाँव

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४: मणिबहेन पटेलने

४५६. पत्र: द० बा० कालेलकरको

२६/२७ अगस्त, १९३२

चि० काका,

बहुत दिनोंके बाद और कर्नल डॉयलकी कृपासे मैं तुम्हारा तारीख १ [६-८-१९३२][२] का पत्र प्राप्त कर पाया हूँ। तुम आज ही अहमदाबाद पहुँच चुके होगे, यह समाचार भी कर्नल डॉयलने मुझे आज दिया और साथ ही साथ यह भी कहा कि पीठके दर्दके कारण तुम्हें एकदम चरखा चलाना छोड़ देना चाहिए। मैंने उनसे कहा है कि इस बारेमें मैं तुम्हें लिखूंगा और जबतक दर्द हो तबतक चरखा छोड़नेके लिए कहूँगा। इसलिए फिलहाल चरखा चलाना ही छोड़ देना। खड़े-खड़े और बिना परिश्रम जैसे तुम यहाँ तकली चलाया करते थे वैसे तकली चला सको तो चलाना, अन्यथा इसके लिए भी [मेरा] आग्रह नहीं है। अभी तो मेरा मुख्य आग्रह

१. यहाँपर कुछ पंक्तियाँ जेल-अधिकारियों द्वारा काट दी गई थीं।
२. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

यह है कि तुम अपना स्वास्थ्य ठीक बनाओ और पीठमें जिस भागमें दर्द होता हो वहाँ हलकी मालिश तो करवाओ ही। तुम ठंडे पानीका स्नान ले सकते हो, यह बड़ी अच्छी बात है। (अब वहाँ तुम्हारे साथ कौन है, यह लिखना) . . .[1]

खगोलकी पुस्तकके बारेमें मैं हीरालालको लिख रहा हूँ। आपने जिन पुस्तकोंकी तालिका तैयार की है, उनमें से तीन तो हीरालालने मुझे भेज दी हैं। ये निम्नलिखित हैं: 'स्टेलर मैप्स,' 'खगोलचित्रम्' और 'हिन्दू ऐस्ट्रॉनॉमी'। ये तीन पुस्तकें मैं इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। इन पुस्तकोंमें से 'खगोलचित्रम्'के पीछे एक इतिहास है। वह जब यहाँ आई तब उसके पृष्ठ फटे हुए थे। . . .[2] मेरे पास तो खगोल-विद्या-सम्बन्धी पुस्तकोंका एक अच्छा खासा भण्डार हो चला है। इसमें जीन्सकी तीन पुस्तकें हैं। ये पढ़ने लायक हैं। तुमने न पढ़ी हों तो उनमें से कुछ मैं तुम्हें भेजूँ? हीरालालने तुम्हारे सुझाव पर मेटरलिंककी पुस्तक भेजी है। यह दो-तीन दिन पहले ही मिली थी। चूँकि यह तुम्हारे सुझावपर भेजी गई है, अतः तुमने तो इसे पढ़ा ही होगा। लेकिन यदि तुम्हें चाहिए तो तुम इसे भी मँगवा लेना, मैं भेज दूँगा। तुमने सवेरेके नक्षत्रोंके जो नाम दिये हैं उन्हें मैं सहज ही पहचान सकता हूँ। तुम यों तो अनेक तारोंके नाम बताया करते थे, लेकिन वे सब तो उस समय नाम मात्र थे। अब तो उनमें से बहुतोंको मैं पहचान सकता हूँ। इस विषय पर थोड़ा-बहुत तो रोज पढ़ता हूँ। तुम्हारे अध्यायोंको मैं एक नजर देख गया हूँ। उनमें गहरे उतरे बिना भी मैं एक अभाव तो देखता ही हूँ। पश्चिमके खगोलशास्त्रियोंके नाम और उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र, जिनमें से कुछेक तो बहुत साहसिक और पुण्यवान हैं, जैसा कि तुम स्वयं भी लिखते हो, दिये जाने चाहिए। यह मुझे बॉलकी 'स्टोरी ऑफ द स्काई' नामक पुस्तकमें सर विलियम हर्शलका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त देखनेके बाद महसूस हुआ। 'ज्योतिर्विलास'में कुछ हदतक यह प्रयत्न किया भी गया है। हमारी खगोल सम्बन्धी पुस्तक यथासम्भव सम्पूर्ण होनी चाहिए और उसमें आजतक हुई खोजोंकी जानकारी होनी चाहिए। जीन्सकी पुस्तकें पढ़नेके बाद ऐसा अवश्य लगता है कि थोड़ी-बहुत भौतिकीका ज्ञान भी होना चाहिए अर्थात्, यह साहस थोड़ा विशेष माना जायेगा। यह तो मैंने अपना सुझाव-भर दिया है। तुम वहाँ बैठे-बैठे यह सब करो, ऐसी आशा मैं नहीं रखता। यह कदाचित् तुम्हारी सामर्थ्यसे बाहर भी है, इसलिए मैं तुम्हारे लिखे प्रकरणोंका बहुत ज्यादा विश्लेषण नहीं करना चाहता। और फिर, हमारी पुस्तकें ऐसी भी नहीं होनी चाहिए कि केवल बहुत पढ़े-लिखे लोग ही उन्हें समझ सकें। गाँवके लोगोंको ध्यानमें रखकर ही पुस्तक लिखी जानी चाहिए। पुस्तक-लेखनके इस प्रयासको भी अपने स्वास्थ्यके आगे गौण समझना। स्वास्थ्यको सुधारकर ही ऐसा काम किया जाना चाहिए, उसे बिगाड़कर नहीं।

पुण्डलीकको[3] कैसे नहीं जानता? वह तो तुम्हारे साथ नहीं आया होगा। [उसे जो रोग है] वह तो भयंकर है। मेरे उपचारमें तो ऐसे रोगके लिए उपवास,

१ और २. यहाँपर एक-दो पंक्तियाँ जेल-अधिकारियों द्वारा काट दी गई थीं।

३. पुण्डलीक कातगड़े, गंगाधरराव देशपाण्डेके भक्त।

ठंडे पानीसे कटिस्नान और एनीमा, इन सबके अलावा और कुछ नहीं है। नीचेकी अँतड़ियोंको बिल्कुल आराम मिलनेसे ही यह रोग कुछ शान्त हो जाता है। गुजरातीमें इसे 'आँतका छिटकना' कहते हैं। एनीमाका उपयोग यह है कि इससे आँतोंके छिटके बिना पेटमें जो-कुछ हो वह पानीके वेगके साथ ही निकल जाता है, और चूँकि उसने कुछ खाया नहीं होगा इसलिए आँतोंको कुछ काम नहीं करना पड़ेगा और आँत भी बाहर नहीं आयेगी।

मेरा खयाल है कि यह पत्र तुम्हारे पास जल्दी पहुँच जाना चाहिए। वल्लभभाईकी संस्कृत उच्चैःश्रवाकी गतिसे चल रही है। कातनेसे फुरसत मिलते ही संस्कृतकी किताब हाथमें होती है। सातवलेकर [की ग्रंथमाला]के छः भाग और 'गीता' के दो अध्याय पूरे हो गये हैं। रोज पाँच-पाँच श्लोक होते हैं। कातनेमें भी वे इसी तरह तन्मय हो जाते हैं। ४० अंकतक पहुँच गये हैं। विद्यापीठके विद्यार्थियोंमें मुझे ऐसा कोई विद्यार्थी नहीं दीखता जो उनके उद्यमका मुकाबला कर सके। महादेवकी फ्रेंच और उर्दूकी पढ़ाई चल रही है। वह ८० अंकतक पहुँच गया है। मैं स्वयं भी गांडीव चरखे पर ५३ अंकतक पहुँच गया था, परन्तु बायीं कुहनीको आराम देनेकी खातिर वापस मगन चरखेपर हूँ। इसपर ३० अंकसे आगे नहीं जा सका। खगोलशास्त्रके अध्ययनके बाद उर्दूकी पढ़ाई ठीक-ठीक चल रही है। पत्र-व्यवहारमें मेरा खासा समय जाता है। डा० मेहताके निधनके बाद उनके परिवारके साथका पत्र-व्यवहार काफी बढ़ गया है। डा० मेहताके बारेमें तुम्हें मालूम ही होगा। उन्हें काँच चुभ गया था और उससे पाँवमें जहर फैल गया, जिससे पैर कटवाना पड़ा। आपरेशन तो ठीक हो गया था, लेकिन बादमें डबल निमोनिया हो गया और वह प्राणलेवा सिद्ध हुआ। उनकी मृत्यु हुए यह चौथा सप्ताह चल रहा है।

मगनलाल (डा० मेहताका पुत्र) आज बम्बई उतरा होगा। वह इंग्लैंड गया हुआ था। . . .[१]

बापूके आशीर्वाद

२७ अगस्त, १९३२

. . .[२] मैंने आश्रमका इतिहास लगभग समाप्त कर लिया है। दुबारा पढ़नेके बाद आगे चलनेवाला ही था कि मुझे रुकना पड़ा। तबसे उसके लिए समय नहीं मिल पाया है। समय निकालनेकी कोशिशमें हूँ। जितना तुम चाहते हो उतना विस्तारसे तो नहीं लिख पाया हूँ। तथापि, मेरा खयाल है कि इसमें संक्षेपमें सारे विषयोंपर मेरे विचारोंका समावेश हो जायेगा।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४८८) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

१. यहाँपर जेल-अधिकारियोंने ७½ पंक्तियाँ काट दी थीं।
२. यहाँ पहली पंक्ति काट दी गई थी।

४५७. पत्र : सुलोचनाको

२७ अगस्त, १९३२

चि० सुलोचना,

तेरा पत्र मिला। मानना होगा, तूने अच्छी तरक्की कर ली है। पींजना भी जल्दी सीख लेना। तेरे पत्रोंमें भूलें रह जाती हैं। दुबारा पढ़नेकी आदत डालनी चाहिए और किसीसे भूल सुधरवा लेनी चाहिए। थोड़ी मेहनतसे लिखावट भी सुधर सकती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७३७) से।

४५८. पत्र : विमला जोशीको

२७ अगस्त, १९३२

चि० विमु,

तेरे अक्षर तो बहुत ही खराब हैं, तो भी तेरा पत्र मुझे अच्छा लगता है। अब अपनी आँखोंको जल्दी ठीक कर डालना। आँखोंको क्या हुआ है? अब तो तू आश्रममें ही रह जाये तो बहुत अच्छा हो।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३११) से।

४५९. पत्र : छगनलाल जोशीको

२७ अगस्त, १९३२

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला है। अब तो आश्रममें तुम्हें काफी दिन हो गये हैं। तुम मेरे माँगे बिना अपनी निरीक्षणकी रिपोर्ट लिख भेजोगे ऐसी मुझे उम्मीद थी, लेकिन वह आजतक तो मिली नहीं। रमाने मुझे इस सम्बन्धमें थोड़ा-बहुत लिख भेजा था, जिसकी एवजमें उसने मेरी ओरसे लम्बा पत्र पाया। वह तो तुम पढ़ोगे ही। मुझे तुम्हारा ब्योरेवार विवरण चाहिए। अच्छा-बुरा जैसा भी हो, उसकी कोई चिन्ता नहीं। मुझे तो, तुम्हारे हृदयपर जो छाप पड़ी है, उसका ब्योरा चाहिए।

विमूकी आँखके बारेमें लापरवाही न करना[1]। आँखके दर्दको उठनेके साथ ही दवा देना चाहिए। वह अभी भी वैसी ही शैतान है कि कुछ गम्भीर बन गई है? धीरू आ जाये तो अच्छा होगा। उसने अपना समय किस तरह बिताया?

विद्यापीठकी लाइब्रेरी तुमने देखी है? अमीनाको क्या हुआ है? कब्र देखी?

आशा है, तुम पूंजाभाईसे मिले ही होगे। लगता है, वह अब थोड़े ही समयके मेहमान हैं।

मैं शंकरलालसे मिला था। वह पश्चात्ताप करता दीख पड़ता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५०६) से।

४६०. पत्र : चम्पाबहन आर० मेहताको

२७ अगस्त, १९३२

चि० चम्पा,

तेरे सारे पत्र मिले। डाक्टरके निर्देशोंकी एक प्रति मुझे मिली है। उसमें उनके हस्ताक्षर नहीं हैं। लेकिन उनपर अमल होगा, ऐसी मेरी मान्यता है। तू किसलिए घबराती है? मेरे लिए यह सम्भव ही नहीं कि मैं तेरा त्याग कर सकूँ। तू चाहे तो मेरी सलाहको अस्वीकार कर सकती है। यदि तू ऐसा करेगी तो भी मुझे उसका दुःख नहीं होगा। मैं तो पिता बननेका प्रयत्न ही कर सकता हूँ, लेकिन प्रभाशंकर तेरे जन्मदाता पिता हैं। मेरी सलाहसे ज्यादा तुझे उनकी सलाह पसन्द आयेगी ही, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। लेकिन इसमें तो अपनी बुद्धिके अनुसार चलना चाहिए। और यदि बुद्धि कुछ न कहे, तो जो तेरे पिता कहें उसके अनुसार चलना चाहिए। मैं इस बातका प्रयत्न तो अवश्य करता हूँ कि मैं और प्रभाशंकर परस्पर सहमत हो सकें। लेकिन प्रभाशंकरको मैं अच्छी तरहसे पहचान नहीं पाया हूँ। उनका कुछ-एक व्यवहार मुझे पसन्द नहीं आता, अथवा मैं उन्हें समझ नहीं पाता। उनके कुछेक विचार मुझे सीधे नहीं जान पड़ते हैं। मैं उन्हें समझानेका प्रयत्न कर रहा हूँ, पत्र-व्यवहार करता हूँ। हमारा मेल मिल जाये तब तो ठीक ही है, और नहीं मिलता तो भी तेरे लिए घबरानेका कोई कारण नहीं है। जो तेरा है उसे कौन ले जा सकता है? ईश्वरपर विश्वास रख। अभी तो तुझे कोई कदम उठानेकी आवश्यकता नहीं है। तू शान्तिसे बैठी रह। बच्चोंको सँभाल। जो बीमार थे वे अब ठीक हो गये होंगे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७५४) से। सी० डब्ल्यू० १६२२ से भी; सौजन्य : चम्पाबहन आर० मेहता

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४६१. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२७ अगस्त, १९३२

चि० नर्मदा,

तू बहुत लोभी जान पड़ती है। तुझे एक पत्र लिखना होता है, इसलिए तू लम्बा लिख सकती है। पर मुझे तो अनेक पत्र लिखने होते हैं और अगर लम्बे-लम्बे लिखने बैठूँ तो कब पूरे करूँ? लेकिन मुझे तेरा लोभ अच्छा लगता है।

मुझे जो कहना होता है वह तो सब कह देता हूँ। अपनी लिखावट सुधारना। पंक्तियोंमें अन्तर रखना, शब्द भी अलग-अलग लिखना।

तू दृढ़ रहेगी और विवेकसे काम लेगी तो सारे सम्बन्धी अनुकूल हो जायेंगे।

कम बोलना ही ठीक है। मौनके लिए तूने नारणदासकी अनुमति ली होगी। तुझे गुजराती कौन सिखाता है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २७६१) से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

४६२. पत्र : शारदा सी० शाहको

२७ अगस्त, १९३२

चि० शारदा,

तेरे पत्र हमेशा अच्छे होते हैं। राजाजीके प्रवचनोंका जो सार तूने भेजा है, वह अच्छा है।

तेरी कमरमें दर्द क्यों होता है, सो मैं जानता हूँ। इसके बारेमें आनन्दीको लिखा मेरा पत्र पढ़ जाना और मुझे विस्तारसे लिखना।

पूनी खराब क्यों होती है? इसके बारेमें तू नारणदाससे कहती क्यों नहीं है?

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९१६) से; सौजन्य : शारदावहन जी० चोखावाला

४६३. पत्र : नारणदास गांधीको[1]

२५/२८ अगस्त, १९३२

चि० नारणदास,

२५ तारीखकी तुम्हारी डाक मंगलवारको मिली है। पार्वतीका[2] पत्र हृदयद्रावक है। बुधाभाई[3] यदि समझते ही न हों तो तुम क्या कर सकते हो? मैं जान-बूझकर पार्वतीको नहीं लिखता। तुम जितनी सान्त्वना दे सको उतनी देना। यदि तुम चाहो कि मुझे दोनोंको या दोनोंमें से किसी एकको लिखना चाहिए तो लिखूँगा।

कुसुमके पत्रसे देखता हूँ कि आजकल तुमपर कामका काफी बोझ रहता है। चाहे कितना भी बोझ क्यों न हो, लेकिन नींद पूरी लिया करो और दोपहरको भी कमसे-कम आधा घंटा विश्रामके लिए निकाल ही लिया करो। राजाजी आ गये हैं और मीराबहन भी, यह बहुत ठीक हुआ। अमीना दूध, घी, शक्कर क्यों नहीं खा सकती? उसे क्या रोग हुआ है? उम्मीद है, आश्रमकी बहनें उसकी देखभाल अच्छी तरहसे करती होंगी। मैंने बा के लिए पिछले सप्ताह जो पत्र[4] लिखा था वह उसको रिहा होनेके बाद देना, यह बात तुम समझ गये होगे। मुझे कुछ ऐसा खयाल पड़ता है कि बा आज-कलमें छूटनेवाली है। क्या पार्वती पतकी स्थायी तौरपर खामगाँव ही रहेगी। यह हास्यास्पद है कि इटलीसे प्राप्त पत्र[5] के बारेमें मैंने जो लिखा था वह तुम्हें तुरन्त ही समझमें नहीं आया। ऐसा कई बार हो जाता है।

अब हम महीन सूत कातने लगे हैं, इसके लिए हमारे पुरुषार्थकी अपेक्षा चरखा, तकुआ और पूनियाँ ही ज्यादा जिम्मेवार हैं। महीन सूत कातनेकी दिशामें प्रयोग किये जानेके बाद अब आश्रममें खराब पूनियाँ होनी ही नहीं चाहिए। जो लोग कातते हैं, वे अपनी-अपनी पूनीपर कातते हैं अथवा सबकी पूनियाँ परस्पर मिल जाती हैं? मुझे लगता है कि यदि सब-कोई अपनी-अपनी पूनीसे कातें तो पींजनमें बहुत सुधार हो सकता है। महीन सूतकी हम जो व्याख्या करते हैं यदि हम उसे केन्द्रबिन्दु बनायें तो कपास बोनेसे लेकर कपड़ा बुननेतककी समस्त प्रक्रिया पूर्णताको पहुँचे बिना नहीं रहेगी। फिर तो हमें अच्छेसे-अच्छा बीज तैयार करना चाहिए, जमीन तैयार करनी चाहिए, खादकी जाँच करनी चाहिए, कपास चुननेमें सावधानी रखनी चाहिए, आदि-आदि। महीन सूतसे हमारा तात्पर्य उस सूतसे है जो कमसे-कम ४०

१. यह पत्र "सविचार कार्य और विचाररहित कार्य", २८-८-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

२ और ३. एक दम्पति जो आश्रमके समीप रहते थे।

४. २० अगस्त, १९३२ को।

५. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ११/१५-८-१९३२।

अंकका हो और एकसार हो, जो कि मिलके उसी अंकके सूतका मुकाबला कर सके और बुनकर बिना किसी परिश्रमके उसे बुन सके। अपनी इस व्याख्यामें मैंने ४० अंकका सूत पसन्द किया है। उसका कारण यह है कि इससे कम अंकका सूत कमजोर पूनीसे जैसे-तैसे काता जा सकता है, परन्तु ४० अंकका सूत ऐसे नहीं काता जा सकता। तुम्हारी यह मान्यता है कि गांडीवपर बैठकर कातनेसे कुछ असुविधाएँ होती हैं; उनके बारेमें मुझे बताना। गांडीवके अनेक गुणोंमें एक गुण मैंने यह माना है कि इसे अनेक स्थितियोंमें रखकर काता जा सकता है। तुम तिपाई अथवा कुर्सीपर बैठकर एक पेटी अथवा बेंचपर गांडीवको रखकर सुविधाके साथ चला सकते हो। इसे एक ओर रख कर भी चलाया जा सकता है और सामने रखकर भी। ट्रेनमें जिस बेंचपर मैं बैठा होता हूँ उसीपर इसे रखकर चलाता हूँ। छक्कड़दासकी पूनी देरसे आये तो भी कोई हर्ज नहीं। केशूकी पूनी यदि तुमने पहले न भेजी हो तो उसपर निशानी लगाकर तुम उसे छक्कड़दासकी पूनीके साथ भेजोगे तो भी चलेगा। अब्बास किस नम्बरका सूत कातते हैं? उनके तकुएकी लम्बाई और घेरा लिख भेजना। तुम्हारे हाथसे २०-२२ अंकसे अधिकका सूत नहीं निकलता, इसकी कोई चिंता नहीं। अच्छीसे-अच्छी पूनी और पतलेसे पतले तकुएपर जितना सूत निकल सकता हो उतनेसे मैं सन्तोष मानूँगा।

इस बार भी अनन्तपुरकी रिपोर्ट मेरे हाथमें नहीं आई है। तुम्हारे पास जो रसीद है उसपर किसके हस्ताक्षर हैं? परसरामको जो कहना उचित जान पड़े सो कहना। प्यारेलाल वहाँसे इतनी उतावलीमें क्यों चला गया? पद्माको फुटकर खर्चका ब्योरा भेजना ही चाहिए। मैंने उसे जो पत्र लिखा है[1] वह पढ़ना। महावीरके चाचा को तुमने ठीक ही लिखा है। जीवनलालकी भाभी आ गई है, यह अच्छा हुआ। क्या वह कुछ पढ़ी-लिखी है?

दत्तात्रेय मन्दिरके सम्बन्धमें तुमने उचित ही प्रश्न किया है। इसे मैं मन्दिर ही नहीं मानता। मुझे लगता है कि यह एक प्रकारकी समाधि है। सार्वजनिक मन्दिर के रूपमें तो इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। इसे खानगी मन्दिर बनाये रखनेमें भी मेरी रुचि नहीं है, लेकिन यदि कोई व्यक्ति वहाँ जाकर पूजा करता है तो उसे रोका नहीं जा सकता, ऐसा मुझे लगता है। इस सम्बन्धमें पंडितजीकी क्या इच्छा है और वह क्या मानते हैं, यह जानना और मुझे बताना। इस बारेमें हाल ही में क्या कोई प्रश्न उठ खड़ा हुआ है?

कौन लिखता है कि त्रिवेदीके[2] यहाँ कुछ रकम रखी जानी चाहिए? अब तो वहाँ बहुत कम बहनें रह गई हैं। रकम रखनेकी बात त्रिवेदीको पसन्द नहीं आयेगी। लेकिन कुछ रकम रखना आवश्यक जान पड़े तो त्रिवेदीसे पूछकर रखी जा सकती

१. २६ अगस्त, १९३२ को।

२. पूनाके कृषि विद्यालयके प्रोफेसर जयशंकर पीताम्बर त्रिवेदी, जो यरवडा जेलमें रखे गये आश्रम-वासी कैदियोंकी जरूरतोंको पूरा करते थे।

है। मुझे स्वयं ऐसी आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। यदि किसी समय कोई खास जरूरत जान पड़े तो आश्रमको लिखा जा सकता है, और इसके लिए त्रिवेदीसे माँगने में भी मैं संकोचका कोई कारण नहीं देखता। अभी तो वहाँ रमाबहन, वसुमती आदि होंगी। इनके विचार भी जानना।

लीलाधरको लिखा मेरा पत्र पढ़ना। तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा ही करना। राजकोटकी प्रदर्शनीकी कल्पना किसकी थी? क्या सारा बोझ जमनादासपर ही था?

२६ अगस्त, १९३२

मंजुलाका कान यदि अवी भी बहता है तो डा० तलवलकरको दिखाना और वे जो उपचार बतायें वह करना। अगम गिरिसे तुम सीधे ही यह प्रश्न पूछना कि क्या उसे गिरि कुटुम्बसे कोई असन्तोष है? अथवा उसके पास सुझाव देने लायक कोई चीज है? क्या तुम्हें नियमपूर्वक महावीरके पत्र आते हैं? मुझे तो नहीं ही आते। जब शिकायत करनी थी तब तो बराबर आया करते थे।

२७ अगस्त, १९३२

काका वहाँकी जेलमें आ गये हैं। उनसे मिलनेकी माँग करना। बा को इस बार मैंने आज सीधे ही पत्र लिखा है। बा १६ पौंड वजन खो बैठे, इसपर विश्वास ही नहीं होता। यदि वह इतना वजन खो बैठे तब तो कंकाल मात्र रह जाये। तुमने बा को देखा है? इस बारेमें जरा ज्यादा जाँच करना। बा कितना दूध पी सकती है? और क्या-क्या खाती है?

अनन्तपुर-रिपोर्टकी रजिस्टरीकी रसीद रजिस्टर करवाकर जेल-अधीक्षकको भेजना। उसकी एक प्रति अपने पास रख लेना। जब भेजो तब मुझे भी लिखना। ये कागजात इस बार भी मुझे नहीं मिले हैं।

इन्दुको लिखा मेरा पत्र पढ़ना। कनु, मंगला, निर्मला और उसके बीच कुछ अनबन जान पड़ती है, सो क्या बात है? जरा खोजबीन करना। इन्दुको अंग्रेजी सीखनेका लोभ हुआ है। यदि वह कुछ न सीखती हो और यदि अंग्रेजी सीखनेमें उसका मन लगता है तो उसे लगाने देना ही मुझे ठीक लगता है।

तुम्हारा अलगसे २५ तारीखको लिखा हुआ पत्र मुझे मिला है। चार पशु अर्थात् गाय अथवा बैल? उसमें कितना नुकसान हुआ? इन्जेकशन कौनसे और किसलिए लगाये गये थे? नारायणप्पाको तुमने जानेकी अनुमति देकर ठीक ही किया। उसकी ओरसे हमने बहुत-कुछ सहन किया है। लगता है कि उसके बारेमें भगवानजी का निर्णय ठीक ही था। लेकिन इससे उसका विश्वास करनेमें हमसे कोई भूल हुई है, ऐसा मैं नहीं मानता। किसी भी जिम्मेदार व्यक्तिको चाहिए कि वह किसी व्यक्तिको दूसरेके कथनके आधारपर अयोग्य न ठहराये। इससे अच्छा परिणाम यही निकला कि नारायणप्पा अपने ही हाथों अयोग्य सिद्ध हुआ।

कुसुम जरा भी घबराई हुई तो नहीं है न? इसमें घबरा उठनेका कतई कोई कारण नहीं है।

जन्माष्टमीका पारायण अच्छा हुआ। फिलहाल आश्रममें कितने लोग उपस्थित हैं? उनमें कितनी स्त्रियाँ हैं? कितने पुरुष हैं? १६ वर्षकी वयसे नीचेके कितने लड़के-लड़कियाँ हैं? मजदूर कितने हैं?

२८ अगस्त, १९३२

नीमूका पत्र पढ़ना और उसे घी लेनेके लिए मजबूर करना। रामदासकी दलील सही है। मेरी खुराक अभी यही है — बाजरा, केला, बादाम, नारंगी और हरी सब्जियाँ। कब्ज तो दूर हो ही गया है। दूसरी तरहसे भी शरीर ठीक रहता है। तिसपर भी मैं दूध लेकर देखूँगा। इसे लेते हुए भी बाजरा कब्जको दूर करनेमें मदद करता है या नहीं — यह भी देखना है। इसके साथ-साथ मैं यह भी देखता हूँ कि साफ पाखाना लानेमें हरी सब्जियोंका योगदान बहुत ज्यादा है।

पूनी उत्तमसे उत्तम हो, इसकी व्यवस्था तुरन्त कर ही डालना। अभी यदि उनकी मात्रामें कमी आ जाये तो उसकी चिन्ता न करना, लेकिन पूनी साफ, महीन और उत्तम हो इस दिशामें, और कचरा कम हो, इस ओर अधिक ध्यान देना।

कुल ५४ पत्र हैं।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८२४७ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

४६४. सविचार कार्य और विचाररहित कार्य[1]

२८ अगस्त, १९३२

'वाचन और विचार' के बारेमें तो मैं पहले ही लिख चूका हूँ।[2] आज कार्य और विचारके सम्बन्धमें कुछ लिखूँगा। मेरे मतानुसार विचार करनेकी कला ही सच्ची शिक्षा है। यदि यह कला हाथ आ जाये तो बाकी सब उसके पीछे सुन्दर ढंगसे व्यवस्थित हो जाये।

जिस स्त्रीने नेवलेका रक्तसे भरा मुँह देखकर उसके सिरपर अपना जलसे भरा घड़ा दे मारा था उसने बहुत ही अविचारपूर्ण कार्य किया था और अन्तमें उसे अपने बालकके रक्षकका वध करनेके लिए खूब पश्चात्ताप हुआ और वह इस कलंकको जीवन भर न मिटा सकी। और जो घड़ा फूटा, पानी व्यर्थ गया, उसकी तो चर्चा करना ही व्यर्थ है, इतना भारी अपराध उसने किया था।

यह तो चरम उदाहरण हुआ। लेकिन इससे हमारा ध्यान मूल समस्यापर ठीक-ठीक बैठ पायेग। आश्रममें, हम जितने काम करते हैं, यदि उन सबको हम

१. यह लेख "पत्र: नारणदास गांधीको", २५/२८-८-१९३२ के साथ भेजा गया था; देखिए पिछला शीर्षक।

२. देखिए "वाचन और विचार", १४-८-१९३२ तथा २१-८-१९३२।

विचारपूर्वक करें तो शान्तिकी वृद्धि हो, कार्य करनेवालेकी दक्षता बढ़े, बहुत सारा समय बचे, और काम करनेमें नित्य नये आनन्दकी प्रतीति हो। बैलोंके द्वारा हम रहट चलाते हैं। बैल बहुत मजदूरी करते हैं, लेकिन उनके ज्ञानमें कोई वृद्धि नहीं होती, उस कार्यमें उन्हें कोई आनन्द नहीं आता। यदि उनके सिरपर व्यक्ति न बैठा हो तो बैल रहट नहीं घुमायेंगे। लेकिन हम तो मनुष्य हैं। मनुष्यसे ही मानस शब्दकी उत्पत्ति हुई। मनुष्य अर्थात् विचार करनेवाला, ज्ञानवान्। हमें चाहिए कि हम पशुकी तरह न रहें, उसके समान आचरण न करें।

हम पाखाना साफ करते हैं। यदि बिना विचार किये करेंगे तो वह काम तुच्छ लगेगा, खराब लगेगा और निरन्तर ऐसा लगेगा कि कब उससे छुटकारा मिलेगा। यदि विचारपूर्वक करेंगे तो जानेंगे कि यह कार्य करना हमारा धर्म है। साफ करनेका तात्पर्य यह है कि बिल्कुल अच्छी तरहसे साफ करना, पाखानोंको ठीक तरहसे पूरना, सफाईके औजारोंको साफ रखना और पाखानेकी जाँच करना। उसमें खून हो, बदबू हो, कीड़े हों तो हमें समझना चाहिए कि कोई बीमार है। और वह व्यक्ति कौन है, यह ढूँढ़ निकालें। प्रत्येक टट्टीका इस्तेमाल कौन-कौन व्यक्ति करता है, यह तो हमें मालूम ही होता है। और फिर यदि पाखाना साफ करते हुए हमें मालूम हो कि पाखानेको मिट्टीसे ठीक तरहसे ढाँका नहीं गया है, टट्टी बाहर भी पड़ी हुई है, पेशाब भी नीचे पड़ा हुआ है, तो हम उस दोषी व्यक्तिको खोज निकालें और उसे विनयपूर्वक समझायें। यह सब तो वही व्यक्ति कर सकता है जो सेवा-भावसे इसे करे। अन्य शब्दोंमें, हम जैसे-जैसे विचारपूर्वक अपना कार्य करेंगे वैसे-वैसे उसमें सुधार होता जायेगा, वह आसान होता चला जायेगा और मन उचटनेके बजाय हमें उसमें रस आने लगेगा। यहाँ मैंने सब सम्भव उपायोंसे पाखाना-घरोंको साफ रखनेकी बातपर विचार नहीं किया है। यह तो मैंने केवल उदाहरण-भर दिया है।

कताई यज्ञको ही लें, तो उसके सम्बन्धमें भी यदि विचारपूर्वक काम किया जाये तो हमें उससे रसके घूँट मिलें और कातनेकी कलाकी प्रगतिकी भी कोई सीमा न रहे। यदि सब लोग विचारपूर्वक कातें तो हम अनेक नई शोध कर सकते हैं और अच्छेसे-अच्छा सूत कात सकते हैं।

यही बात प्रार्थनाके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। प्रार्थना क्या है? हम प्रार्थना किसके लिए करते हैं? मौन कैसे रखते हैं? प्रार्थना संस्कृतमें ही क्यों है, गुजराती अथवा मराठी अथवा हिन्दीमें क्यों नहीं?— आदि अनेक प्रकारसे विचार करके हम प्रार्थनाको प्रचण्ड शक्तिमें परिणत कर सकते हैं, जबकि लगता है, हम उसके विषयमें कमसे-कम विचार करते हैं।

'योगः कर्मसु कौशलम्'[1] 'गीता' का यह विचार अत्यन्त प्रौढ़ है। योग अर्थात् जुड़ना। ईश्वरके साथ जुड़नेका नाम योग है। वह कर्म-कौशलसे सहज ही साधा जा

१. गीता, २, ५०।

सकता है, ऐसा गीता माताने सिखाया है। कौशल प्राप्त करनेवाले व्यक्तिको अपने कर्ममें तन्मय अर्थात् विचारमय बनना ही चाहिए। तकलीपर कातते हुए किसी व्यक्तिने सोच-विचारकर चरखेकी महान खोज की। चरखा चलानेवालेने सोच-विचार कर हजारों तकलियोंवाला यान्त्रिक चरखा (मिल) बनाया? मेरी दृष्टिमें उसमें बुद्धि तो खूब चली, लेकिन हृदय न चल पाया। इसीलिए विचार भी सद्विचार हों, धार्मिक भावनासे अनुप्रेरित हों! तथापि विचार-शून्य होनेकी अपेक्षा तो यन्त्रकी खोज करनेवालेकी विचारशक्ति भी पूजा करने योग्य ही है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४६५. पत्र : एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको

२८ अगस्त, १९३२

प्रिय बहन,

तुमने मुझे 'मित्र' सम्बोधित करके बिल्कुल ठीक किया है। मैं तुम्हें 'बहन' ही कहता हूँ। शायद इसमें 'मित्र'की अपेक्षा ज्यादा आत्मीयता है। लेकिन तुम्हें जो ज्यादा अच्छा लगे वही कह सकती हो।

तुमने अपनी बैठकका संक्षिप्त विवरण देकर बहुत अच्छा किया। यह फेलोशिप[1] कठिन चीज है। जीवनके हर क्षेत्रमें और सभी जातियों और राष्ट्रोंके लोगोंके बीच पारस्परिक अनवरत व्यवहार द्वारा ही बन्धुत्वकी यह भावना उत्पन्न हो सकती है।

महादेव देसाईको जो पत्र तुमने भेजा था उसे मैंने पढ़ा है। तुमने जो सुन्दर छन्द उसमें उद्धृत किये हैं उन्हें मैंने सँभालकर रखा है।

महादेव तुम्हें अभिवादन भेजनेको कहता है।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६३) से।

१. अनुमानतः "फेलोशिप ऑफ रिकंसिलिएशन"।

४६६. पत्र : सुन्दरबहन भागवतको

२८ अगस्त, १९३२

चि० सुन्दरबहन[1],

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें और देशपाण्डेको[2] हम तीनोंका आशीर्वाद। हमें ऐसी आशा है कि तुम दोनोंका संयुक्त जीवन सुखी होगा, तुम दोनों पूरी आयुको प्राप्त होगे और नित्य सेवापरायण रहोगे। तुम्हारा सम्बन्ध तभी योग्य और सफल माना जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१६९) से।

४६७. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२८ अगस्त, १९३२

चि० परसराम,

तुम्हारी नौ पृष्ठोंकी छोटी-सी पुस्तिका मिली। मैं तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गया हूँ। इतना तो, जवानीमें एक दिन मैंने भाँग पी थी तब हँसा था, ऐसा याद पड़ता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि तुम ऐसी पुस्तकें भेजते ही रहो। 'स्टाप' के बदले 'स्थिर' अथवा 'खड़े हो' सिखाना तो तुम्हारा काम है।[3] तुम्हारे पत्रके नशेमें गुजरातीके साथ हिन्दी मिल जाती है। इन बच्चोंको कैसे समझाया जा सकता है, यह मैं यहाँसे नहीं बता सकता। तुम्हारे प्रेमका अथवा ज्ञानका उनपर इतना प्रभाव तो पड़ना ही चाहिए जिससे वे 'स्टाप' के बदले हिन्दी अथवा उर्दू शब्दका इस्तेमाल करने लगें। जैसे-जैसे तुममें सरलता और मधुरता बढ़ेगी, नम्रता आयेगी वैसे-वैसे हिन्दी सीखनेवालोंमें हिन्दीके प्रति प्रेमभाव पैदा होगा। जो लड़का अथवा लड़की बिल्कुल छोटे बच्चोंको हिन्दी सिखानेके लायक हो उसे अवश्य बच्चोंका वर्ग सौंपा जा सकता है।

'महाभारत' में अर्जुन भी क्लान्त हो उठता है और अन्तमें कोई भी जीवित नहीं रहता, इसका वर्णन करके महाभारतकारने शस्त्रयुद्धकी मूर्खता सिद्ध की है।

१. अब सुशीलाबाई।

२. पाण्डुरंग गणेश देशपाण्डे।

३. यह वाक्य हिन्दीमें है।

'गीता' में भगवानने अपना वर्णन किया है, इसका तात्पर्य यह है कि गीताकारने भगवानके मुखसे वह सब कहलवाया है। बाकी भगवान तो अरूप हैं; वे बोलते-चालते नहीं। अतः प्रश्न यह उठता है कि भगवानके मुखमें ऐसे वचन रखे जा सकते हैं अथवा नहीं? मुझे लगता है कि अवश्य रखे जा सकते हैं। भगवान अर्थात् सर्व-शक्तिमान, सर्वज्ञ। सर्वज्ञके मुखसे जो वचन निकलते हैं वे तो केवल सत्य ही हो सकते हैं, इसलिए (मिथ्या) बड़प्पनका सवाल ही नहीं उठता। चूँकि मनुष्य अपनी शक्तिका ठीक-ठीक अन्दाज नहीं लगा सकता, इसलिए उसके मुखसे ऐसा वर्णन शोभा नहीं देगा। लेकिन प्रसंग खड़ा होनेपर यदि कोई मनुष्य अपनी ऊँचाईके बारेमें ठीक-ठीक बताता है तो इसमें शेखी बघारने-जैसी कोई बात नहीं है अपितु यह तो सत्य है। पाँच गज ऊँचा व्यक्ति यदि अपनेको चार गज ही बताये तो इसमें नम्रता नहीं है। यह तो घोर अज्ञान अथवा दम्भ होगा।

बिल्ली बहन और उसके बच्चे मजे लूटते हैं और खानेके समय अपना हिस्सा लेनेके लिए नियमपूर्वक उपस्थित हो जाते हैं। जो वस्तु उन्हें नहीं दी जाती उसे वे छूते भी नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१०२) से। सी० डब्ल्यू० ३४२४ से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

४६८. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

२८ अगस्त, १९३२

भाई खम्भाता,

तुम्हारा पत्र और मलहम मिला। मलहम लगाना शुरू कर दिया है। परिणाम सूचित करूँगा।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६०३) से। सी० डब्ल्यू० ४३८९ से भी; सौजन्य : तहमीना खम्भाता

४६९. पत्र : प्यारेलाल नय्यरको

२८ अगस्त, १९३२

वल्लभभाई अरबी घोड़ेके वेगसे दौड़ रहे हैं। संस्कृतकी किताब हाथसे छूटती ही नहीं है। मैंने ऐसी उम्मीद कभी नहीं की थी। लिफाफे बनानेमें तो कोई उन तक पहुँच ही नहीं सकता। वे लिफाफे बिना मापके ही बनाते हैं और आँखोंके अंदाजसे ही कागजको ठीक-ठीक काटते हैं, फिर भी उसमें बहुत समय चला गया है, ऐसा नहीं लगता। उनकी व्यवस्था आश्चर्यजनक है। जो काम करना हो उसे कलपर उठा नहीं रखते, जिससे याद करनेकी जरूरत हो। आया कि तुरन्त ही निपटा दिया। जबसे कातनेके कामको हाथमें लिया है तबसे कातनेके समयका बराबर ध्यान रखते हैं। फलतः सूतकी किस्म और गतिमें निरन्तर सुधार होता जाता है। हाथमें लिये हुए कामको वे भूलते तो कदाचित् ही हैं। जहाँ इतनी व्यवस्था हो वहाँ गड़बड़ तो हो ही कैसे सकती है?

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७०. पत्र : श्री० दा० सातवलेकरको

२८ अगस्त, १९३२

भाई सातवलेकर,

आपको तीन पत्र लिखे उनका उत्तर न होनेसे कुछ चिंता होती है।[1]

आपका,
मोहनदास

[पुनश्च :]

एकमें संस्कृत शिक्षिकाकी दूसरी सेट भेजनेका भी लिखा है।

सी० डब्ल्यू० ४७६५ से; सौजन्य : श्री० दा० सातवलेकर

१. सातवलेकरको ओरसे उत्तर न मिलनेकी वजह उनके लड़केकी लम्बी तथा गम्भीर बीमारी थी।

४७१. पत्र : अमतुस्सलामको

२८ अगस्त, १९३२

बेटी अमतुलसलाम,

तुम्हारी मनाही नहीं होगी तबतक मैं उर्दूमें ही खत लिखना पसन्द करूँगा। मासिक धर्मके वक्त पूरा आराम लेनेसे अच्छा ही रहेगा। और दिनोंमें जितना नारणदास कहें उतना ही करना। जिसका दिल साफ है और विकार-रहित है उसे इस जगतमें कुछ भी छुपानेका है ही नहीं। तुम्हारे दर्दके बारेमें कोई किताबका नाम मैं नहीं जानता। मैं तलाश करूँगा।

बेगम लाजर्ससे पूछो। उसे मालूम होना चाहिए। डा० शर्माको मेरा खत पहुँच गया होगा। तुम्हारे हिन्दी हरफ अच्छे हैं। ऐसे ही थोड़ा थोड़ा लिखा करो। कुदसियाँ कहाँतक रहनेवाली है?

बापू

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २५५) से।

४७२. पत्र : एक बालिकाको

२८ अगस्त, १९३२

तू यदि आजन्म ब्रह्मचारिणी रह सके तो यह बात मुझे तो निश्चय ही अच्छी लगे। लेकिन मैंने अनेक लड़कों और लड़कियोंको अपने-आपको धोखा देते हुए देखा है। जो व्यक्ति पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, उसमें पूर्ण सत्य होना चाहिए और उसे किसीसे कुछ छिपाना नहीं चाहिए। ब्रह्मचर्य क्या है, इसका भी उसे पूरा ज्ञान होना चाहिए। विकारोंको वशमें रखना, यह बड़ी बात है। जो व्यक्ति ऐसा करना चाहे उसे भोगमात्रका त्याग करना चाहिए। तात्पर्य यह कि वह जो करे सो भोगके लिए नहीं, अपितु यह जानकर करे कि ऐसा करना आवश्यक है। इसीलिए जो आवश्यक न हो उसे कदापि न करे। यों खाने-पीने, बैठने-उठने, पहनने-ओढ़नेकी समस्त क्रियाएँ इसी भावसे प्रेरित होनी चाहिए। यह सब करनेकी यदि तुझमें शक्ति हो तो बहुत अच्छा है। न हो, तो नम्रतापूर्वक इसे स्वीकार कर लेना चाहिए और जैसे अन्य सब लड़कियाँ करती हैं वैसे तुझे भी करना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं माना जायेगा। शक्तिसे बाहर कुछ नहीं किया जा सकता।

[गुजराती]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७३. पत्र : एक बालिकाको

२८ अगस्त, १९३२

जिसके साथ तुम्हारी सगाई हुई है, तुम्हें उसका विगत इतिहास जान लेना चाहिए। और यदि वह तुम्हें पसन्द न हो तो तुम्हें [अपने अभिभावकोंसे] सगाई तोड़नेका अनुरोध करना चाहिए। विवाह करनेसे स्पष्ट रूपसे इनकार करनेमें संकोच नहीं करना चाहिए। लेकिन तुम यदि यह सब करना चाहती हो तो तुम्हें झूठी लज्जाका परित्याग करना चाहिए। विनयभावको न छोड़ना और जो कष्ट आ पड़ें, उन्हें सहन करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसा करनेवाले व्यक्तिमें इतनी पवित्रता होनी चाहिए कि वह दूसरोंको प्रभावित किये बिना न रहे।

तुम्हें जब गुस्सा आये तो चुप हो जाना चाहिए और रामनाम लेकर उसे निकाल देना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७४. एक पत्र

२८ अगस्त, १९३२

साँझकी प्रार्थनामें पाँच मिनटका [मौन रखनेका] मेरा सुझाव था। दोनों समय यदि इतना मौन रखा जा सके तो यह निश्चय ही ज्यादा अच्छी बात है। सब लोग यदि एकाग्रचित्त होकर इस मौनमें शामिल हों तो आवाज अवश्य बन्द होगी। बच्चोंको भी इतने समयके लिए मौन-पालन करनेकी आदत पड़ जायेगी। मैं तो ऐसी प्रार्थना सभामें भी गया हूँ, जहाँ आधे घंटेतक मौन रखा जाता है। यह विलायतकी बात है। हमारे यहाँ मौनकी बड़ी महिमा है। समाधि भी मौन है। मुनि शब्दकी व्युत्पत्ति भी इसी शब्दसे हुई है। मौनके समय पहले-पहल नींद आती है, मनमें अनेक विचार आते हैं, यह सब सच है। इन्हें दूर करनेके लिए मौनकी जरूरत है। हम लोगोंको बहुत बोलनेकी और आवाजें सुननेकी आदत पड़ गई है। इसीसे मौन कष्टसाध्य लगता है। थोड़ा-सा अभ्यास करनेपर मौन अच्छा लगेगा और अच्छा लगनेपर जो शान्ति मिलेगी वह अलौकिक होगी। हम लोग सत्यके उपासक हैं, इसलिए मौनका अर्थ जानकर उस अर्थके अनुसार मौन-पालन करनेका प्रयत्न करें। मौनमें भी रामनामका जप तो किया ही जा सकता है। मूल बात यह है कि हमारा मन मौनके लिए तैयार रहना चाहिए। तनिक भी विचार करनेपर उसके महत्त्वको समझा जा सकता है। क्या हमें सभामें पाँच मिनटतक स्थिर होकर बैठना नहीं आता? तुम किसी दिन नाटकमें गये हो? अनेक नाट्यशालाओंमें बात करनेकी मनाही होती है। मेरे

जैसा रसिक व्यक्ति तो समयसे एक घंटा पहले ही जाकर बैठ जाये। नाटकके प्रति हमारी रुचि हमें एक घंटेका मौन रखनेके लिए बाध्य करती है। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। नाटक तो चार-पाँच घंटेतक चलता रहता है। इस सारे समय भी देखनेवालेको क्या मौनका पालन नहीं करना पड़ता? लेकिन यह तो उसे अच्छा लगेगा। क्योंकि नाटक देखना उसके मनके अनुकूल है, इसलिए उसे मौन बुरा नहीं लगता। तब ईश्वरके प्रेमके निमित्त पाँच मिनटका मौन रखना भारी क्यों लगता है? यदि मेरे इस दृष्टिकोणमें तुम्हें कोई भूल दिखाई दे तो मुझे बताना, अन्यथा रसपूर्वक मौन धारण करना और जो लोग मौनके विरुद्ध हैं, उनसे मेरी ओरसे वकालत करना।

लेकिन हमें यह नहीं मानना चाहिए कि हममें जो दोष हैं, सिर्फ वे ही सहन किये जाने योग्य हैं। मेरी राय तो ऐसी है कि जो सुधरनेकी कोशिश करनेवाले हों हमें उन सबके साथ अच्छे सम्बन्ध रखने चाहिए। तुलसीदास हमें यह सिखाते हैं कि जो अपने दोषोंका पुजारी है अर्थात् दोषोंको गुण समझता है, उससे तो ईश्वर भी दूर भागता है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७५. पत्र : आश्रमके बच्चोंको

२८ अगस्त, १९३२

आश्रमसे जो-कुछ सीखनेको मिलता है सो सब अच्छी तरह सीख लेना। लेकिन इतना याद रखना कि सबसे बड़ी शिक्षा तो सत्यकी है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

४७६. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

२९ अगस्त, १९३२

चि० सुशीला,

तेरा पत्र मिला, लेकिन मणिलालका नहीं। तूने प्रश्न पूछा सो ठीक किया, लेकिन इस तरह हर बातमें बड़ोंसे पूछकर कदम उठानेकी जरूरत नहीं है। [जीवनके] मूलभूत सिद्धान्तोंको मैं जहाँतक समझ पाया हूँ, सो मैंने तुझे बता दिये थे। तुम दोनों उन्हें जितना ग्रहण कर सके हो उतना याद रखकर, जैसा उचित लगे, सो करना। मुझसे कहाँतक पूछोगे? पूछना तो वस्तुतः अपनी अन्तरात्मासे चाहिए। ऐसा करते हुए तुम्हारे अन्तरसे जो आवाज आये उसके अनुरूप कार्य करना अथवा यथाशक्ति जितना पालन किया जा सके उतना करना। तेरा प्रश्न खादीको लेकर था, यह तो याद है न?

पट्टेका प्रश्न अबतक हल हो गया होगा। मेरे सारे पत्र मिले होंगे। श्री रिचका पत्र पानेपर मैंने एक और पत्र लिखा था। वह भी मणिलालको मिल गया होगा।

देवदास फिलहाल तो ठीक हो गया, ऐसा कह सकते हैं। हम तीनों मजेमें हैं। सरदारकी संस्कृत तेजीके साथ आगे बढ़ती जा रही है।

मुझे पत्र लिखनेमें अगर मणिलाल आलस्य करे, तो भी तू न करना।

तू महाराजकुँवर और उसके परिवारसे मिली होगी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७९४)

४७७. नानाभाई इ० मशरूवालाको

२९ अगस्त, १९३२

भाई नानाभाई,

तुम्हारा और सुशीलाका पत्र मिला। मैंने उसे लिख दिया है कि इन विषयोंपर बड़ोंसे पूछनेकी कोई जरूरत नहीं। दोनोंकी अन्तरात्मा जो कहे उसके अनुसार यथाशक्ति करना चाहिए। मणिलालका पत्र तो नहीं मिला है। कदाचित् आश्रमकी डाकके साथ आये। हम तीनों मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६८५) से। सी० डब्ल्यू० ४३३० से भी; सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

४७८. पत्र : हीरालालको[1]

२९ अगस्त, १९३२

मैं अपने-आपको मन्दबुद्धि मानता हूँ। अनेक वस्तुओंको समझनेमें मुझे दूसरोंसे ज्यादा समय लगता है। लेकिन इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। बुद्धिके विकासकी सीमा होती है, लेकिन हृदयके विकासका अन्त नहीं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड – १

१. संभवतः हीरालाल शाह।

४७९. पत्र : फूलचन्द बापूजी शाहको

३० अगस्त, १९३२

भाईश्री फूलचन्द,

आपका २१ तारीखका पत्र मिला। मैं देखता हूँ कि मेरा ३ जुलाईका पत्र १४ अगस्तको आपके हाथ आया। यदि इस बीच सारा समय मेरा पत्र वहाँ पड़ा रहा हो तो बेहतर यह होगा कि आप अपने पत्र किसी अन्य कैदीके नाम मँगवायें, जिसकी बारी जल्दी आती हो और जिसके नाम औरोंके पत्र न आते हों। ऐसा करनेसे आपको मेरे पत्र जल्दी मिलेंगे। यहाँसे तो मैं आप लोगोंमें से चाहे जिस किसीका पत्र आये, उसका तुरन्त उत्तर दे देता हूँ। यदि हम सारे देशको अपना मानते हों — और मानते भी हैं — तो इस देशके किसी भी भागमें पानीकी एक बूंद अथवा घासका तिनका भी जो दिखाई देता है सो हमारा है। यह बात सबके हृदयमें अच्छी तरह पैठ जानी चाहिए और ऐसा होनेपर यदि किसी भी स्थानपर कोई भी चीज हमारे हाथमें आयेगी तो हम उसका मर्यादापूर्ण ढंगसे उपयोग करेंगे, फिर भले ही उसपर अधिकार किसी औरका हो। हमारे अधिकारमें आई हुई वस्तु भी इस देशकी सम्पत्तिकी उपज है। इस बातकी अनुभूति होनेपर कि सारा देश हमारा है, हम अपनी वस्तु और दूसरेकी वस्तुके उपयोगमें कैसे भेदकर सकते हैं? इस [जेलमें] एकान्तवासके समयमें सब भाइयोंको चाहिए कि वे इसपर बार-बार विचार करें और इसे अच्छी तरह हृदयंगम कर लें, और यह बहुत जरूरी भी है। आपके यहाँ बालकोंकी संख्या बहुत ज्यादा है, इसलिए बड़ोंकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। आपको इतनी सारी साहित्यिक पुस्तकें किसने दी हैं? वहाँ लोग नई भाषाएँ और नये धन्धे सीख रहे हैं, यह तो बहुत अच्छी बात है। सब लोगोंका उत्साह बढ़ानेकी खातिर मैं इतना कहता हूँ कि यहाँ सरदार नवयुवकोंके-से उत्साहके साथ संस्कृत सीख रहे हैं। उन्होंने सातवलेकरकी [संस्कृत] पाठमालाके छः भाग पूरे कर लिये हैं, और 'गीता' के हर रोज पाँच-पाँच श्लोक याद करते हैं। अभी तीसरा अध्याय चल रहा है। उन्हें जितना समय मिल पाता है वह सारा-का-सारा 'गीता' के अध्ययनमें बिताते हैं; इसमें आश्चर्यजनक प्रगति हो रही है। साथ ही कातना भी जारी है और इसमें दोसे ढाई घंटे देते हैं। वे ४० अंकका सूत कातते हैं। इसके अतिरिक्त रोज लिफाफे बनानेका काम तो होता ही है। जितने भी एक ओरसे कोरे कागज अथवा अन्य फेंक देने लायक कागज हाथमें आते हैं, उन सबके वे लिफाफे बना डालते हैं। इस तरह हमें पिछले तीन अथवा चार महीनोंसे लिफाफों पर एक भी पैसा खर्च नहीं करना पड़ा है। यह मिट्टीको सोना बनाना हुआ। चाहे जितनी नगण्य क्यों न हो, फिर भी देशकी दौलत ही बढ़ी। इसी तरह अन्य चीजोंके उपयोगमें भी ऐसी सावधानी बरती जाती है। महादेव फ्रेंच और उर्दू सीख

रहा है, और ४० अंकका सूत कातता है। ब्रेलवी[1] फ्रेंच सीख रहा है और संस्कृत सीखनेका इरादा भी रखता है। वह खुद अपने साथ रहनेवाले कुछेक मराठी भाइयोंको उर्दू सिखाता है। गंगाधरराव गुजराती सीख रहा है। किशोरलाल नासिक[जेल]में कुछ कन्नड़ भाइयोंसे कन्नड़ सीख रहा है। आप काम तो वहाँ सुन्दर कर रहे हैं। आपके उस कार्यमें प्रोत्साहन प्रदान करनेके विचारसे ही मैं यह सब लिख रहा हूँ।

आश्रमके बालकोंसे यदि आदर्श व्यवहारकी आशा न की जाये तो और किससे की जाये? इसीलिए जब आप उन्हें प्रमाणपत्र देते हैं तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। विट्ठल अब जेलसे छूट चुका होगा, लेकिन यदि न छूटा हो तो उससे कहना कि मेरे विचारसे तो उसकी माँ दुःखसे मुक्त हो गई है इसलिए उसका उसे शोक नहीं करना चाहिए। और विट्ठल तो समझदार है तथा मृत्यु मित्र है, यह जानना भी उसने सीख लिया है। रविशंकरकी सेवा तो भारी होनी ही चाहिए। उसका कब्ज दूर हो गया कि अभी है? रविशंकरका जो लड़का वेडछीमें था, उसका क्या हुआ? वह कहाँ है? हम बहुत बार आप सबकी बातें करते हैं और याद करते हैं।

सब भाइयोंको बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४४५-ए) से; सौजन्य: चन्द्रकान्त एफ० शाह

४८०. पत्र: ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

३० अगस्त, १९३२

चि० ब्रजकिसन,

क्यों? अब तक तुमने क्यों नहिं लिखा। मुझे तुमारे पत्र मिले थे। तुमको मेरे नहिं मिले थे ऐसा कुछ लगता है। एक पत्र तो बहोत लंबा लिखा था। उसमें तुमारे प्रश्नोंका उत्तर था। शरीर प्रवृत्ति कैसी है? साथीयोंका अनुभव कैसा हुआ? कृष्ण नेर कहां है? सरदार और महादेव याद करते हैं।

बापुके आशीर्वाद

मूलकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९३) से।

१. सम्भवतः एस० ए० ब्रेलवी, बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक।

४८१. पत्र : मीराबहनको

३१ अगस्त, १९३२

चि० मीरा,

मुझे तुम्हारा नियमित पत्र आज मिला। मुझे खुशी है कि तुम्हारा शरीर अब स्वस्थ है। तुम्हारा नुसखा मेरे कामका नहीं है। उसमें बकरीके दूधका मक्खन प्राप्त करनेकी जरूरत है। मैं यह जहमत नहीं उठाना चाहता। मुझे जरूरत भी नहीं है, क्योंकि उसके बगैर भी मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा चल रहा है। इसलिए उसको माँगनेका कोई बहाना भी मेरे पास नहीं है। हमें स्वादकी खातिर व्यंजन नहीं बनाने चाहिए। मैं कई वर्षों तक वैसा कर चुका हूँ। तुम्हें परिवर्तनकी आवश्यकता है, विशेष रूपसे वहाँ। मुझे जो चीज शरीरके लिए आवश्यक लगती है, उसे प्राप्त करनेमें मैं संकोच नहीं करता। आज मैंने दूध लिया है। लेकिन मेरा इरादा बाजरा लेना जारी रखनेका है ताकि देखूँ कि दूधके साथ लेनेपर वह मेरा पेट अब जैसा ही साफ रखता है या नहीं। बिना दूधके इसने बहुत अच्छे परिणाम दिये हैं। यह बात सभी लोगोंपर शायद ठीक न उतरे। मैंने देखा है कि प्रत्येक व्यक्तिके शरीरकी अपनी विशेषताएँ होती हैं, जिनका पता चलाना पड़ता है।

नन्हीं लक्ष्मीसे कहना कि उसके जेलमें बन्द किये जानेसे पहले मुझे उसका छोटा-सा पत्र[1] मिला था। मैं चाहता हूँ कि उसे अब जो समय मिला है उसका वह अच्छेसे-अच्छा उपयोग करे। मुझे इसकी भी खुशी है कि शान्ताबहन और गंगाबहन भी तुम्हारे साथ हैं। उनसे कहना कि वे अपनी गुजराती पूरी करें और अपनी हिन्दीको पक्का करें। और हम सबोंकी ओरसे उनको प्यार कहना।

मैं इस खबरके लिए बिल्कुल तैयार था कि तुम्हें वहाँसे हटाया नहीं जायेगा। तुम्हें वहाँ भी ठीक रह सकना चाहिए। तुमने जो घी और खजूर भेजनेको कहा था, उसके बारेमें नारणदासने मुझे लिखा था। आशा है तुम्हें दोनों चीजें मिल गई होंगी। मैंने खजूर लेना छोड़ दिया, क्योंकि मुझे अच्छे और घुन-रहित खजूर नहीं मिल सके। तुम छुहारे खा सकती हो, जो कि सख्त और सूखे होते हैं। मैं नहीं खा सकता।

मैं आशा करता हूँ कि तुम्हें कमसे-कम कुछ मित्रोंसे मुलाकात कर सकनेकी अनुमति मिल जायेगी। लेकिन न भी मिले, तब भी अजनबी तो आखिर कोई भी नहीं है। अजनबी, अपराधी और जेलर-सहित सभी मित्र हैं। यहाँ हमने पशुओंमें भी मित्रोंकी पहचान करना सीखा है। यहाँ एक बिल्ली है, जो हमारे लिए रहस्यका उद्घाटन करती है। और अगर हमारे पास पर्याप्त सूक्ष्म दृष्टि

१. जिसमें कहा गया था: "आखिरकार, बापू, मैं भी स्वतन्त्रताके मन्दिरमें प्रवेश कर रही हूँ।..."

होती तो हम पेड़ों और पौधोंकी भाषाकी भी कद्र कर पाते और उनकी मैत्रीका मूल्य समझ पाते।

हम सबोंकी ओरसे प्यार-सहित,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२३६) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९७०२ से भी।

४८२. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

३१ अगस्त, १९३२

चि० कुसुम (बड़ी),

तेरा पत्र मिला। तुझे मेरा वह पत्र मिल गया होगा, जिसमें मैंने लिखा है कि मेरा अभिप्राय किन पत्रोंसे है। तेरी अस्थिरताको मैं यहाँ बैठे-बैठे देख सकता हूँ। लेकिन इस अस्थिरतासे किसी-न-किसी दिन स्थिरता अवश्य आयेगी, मैं अपने इस विश्वासको कभी नहीं छोड़ूँगा।

क्या तू कभी खुर्शीद बहनको[1] लिखती है? हम तीनों मजेमें हैं। सरदारका संस्कृतका अभ्यास खूब जोर-शोरसे चल रहा है, यह सब तो तुझे मालूम ही होगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८४६) से।

४८३. पत्र : वासुदेव गणेश जोशीको[2]

३१ अगस्त, १९३२

भाई वासु काका,

नारणदासको आपने जो पत्र लिखा था, वह उसने मुझे भेजा है। उसमें आपका प्रेम छलक रहा है। लेकिन मैं उस प्रेमका उपयोग नहीं कर सकता। मेरे और आपके दर्दमें बहुत फर्क है। मुझे वैसे तो कुछ भी महसूस नहीं होता। अमुक ढंगसे हाथ घुमाने पर ही दर्द होता है। दर्द बढ़ता भी नहीं है और मुझे किसी तरहकी तकलीफ भी नहीं है। डाक्टर लोग हाथको आराम देनेकी बात ही कहते हैं। ऐसी स्थितिमें, यदि मैं चाहूँ तो भी डा० देशमुखको बुलानेकी अनुमति कदाचित् नहीं मिलेगी। किसी किस्मका भय हो तभी जेल अधिकारी बाहरसे डाक्टर बुलानेकी इजाजत देते

१. दादाभाई नौरोजीकी पौत्री।

२. पूनाकी चित्रशाला प्रेसके मालिक तथा लोकमान्य तिलकके निकट सहयोगी।

हैं। मेरे विषयमें ऐसी तो कोई बात है नहीं, और मेरी तबीयत यों सब तरहसे ठीक ही रहती है। इसलिए अभी तो आपके प्रेमको सहेज कर रखूँगा। आवश्यकता जान पड़ी तो उसका उपयोग करूँगा। डा० देशमुखने आनेके लिए जो तत्परता दिखाई है, उसके लिए मेरी ओरसे उन्हें धन्यवाद देना।

आप यहाँ थे, तभी सरदार आपके बारेमें बात किया करते थे और मिलनेके लिए भी उत्सुक थे। लेकिन वह तो कैसे हो सकता है?

पाँवमें इतना कष्ट होनेपर भी आपने उसकी परवाह नहीं की, यह पढ़कर हम सब बहुत प्रसन्न हुए। भगवान करे, आप दीर्घायु हों।

आपको यह जानकर बहुत खुशी होगी कि सरदार बहुत लगनसे संस्कृतका अध्ययन कर रहे हैं।

आपके द्वारा भेजे गये मोजोंको मैंने उपहारके रूपमें सँभालकर रखा है।

हम सबकी ओरसे वन्देमातरम्। गुजरातीमें क्या आपने ही लिखा है?

मोहनदास

[पुनश्च :]

आपके पत्रकी शीर्ष-पंक्तिमें "Tipe printers" लिखा है। "Tipe" तो भूल है न? पत्रकी शीर्ष-पंक्तिमें ऐसी भूल नहीं होनी चाहिए।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६१६) से।

४८४. पत्र : शान्ता एस० पटेलको

३१ अगस्त, १९३२

चि० शान्ता (पटेल),

छूटनेसे पहले जो चिट्ठी तूने लिखी थी, वह मुझे मिली। जैसा कि तूने लिखा है, तेरे पत्रकी राह देखूँगा। तू किसके साथ रहती है? अपना सारा हिसाब ब्योरेवार लिखना। अपनी मानसिक और शारीरिक अवस्थाके बारेमें बताना। पढ़ने-लिखनेका क्या किया? किसके साथ मिला-जुला करती थी और क्या-क्या सोचा करती थी, सो सब लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०६५)से। सी० डब्ल्यू० १६ से भी; सौजन्य : शान्ताबहन पटेल

४८५. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

३१ अगस्त, १९३२

चि० प्रेमा,

इस बार तुझे क्या नया विशेषण दूं, यह मुझे नहीं सूझ पड़ता। तू जो माँगेगी वही दूंगा।

परचुरे शास्त्रीके लिए पुस्तकें अभी नहीं मिली हैं, लेकिन अब मिल जायेंगी।

मैं नहीं समझता कि उन दो बहनोंके आनेसे यह कहा जा सकता है कि अब पढ़ी-लिखी बहनें आने लगी हैं। ऐसे तो भूली-भटकी कोई आ ही जाती है। लेकिन उनमें से किसीको हम यहाँ रख नहीं सके हैं। बशर्ते कि तुझे पढ़ी-लिखी महिला मानें तो भले ही मानें। लेकिन यह तो अपवाद हुआ। किसी एक मुर्गेके बोलनेका यह मतलब यह नहीं कि सवेरा हो गया।

रामभाऊके बारेमें मुझे अफसोस है। उसे क्लाससे निकाल कर तूने ठीक ही किया। लेकिन उसे भुला मत देना। उसपर नजर रखना और यदि उसे सीधे रास्ते ला सके तो लाना। धीरूके सम्बन्धमें तेरी परेशानीको मैं समझता हूँ। तुझमें यदि उदारता और हिम्मत हो तो तुझे रमाबहन और जोशी[1] से उसकी बात करनी चाहिए और उसके हितके लिए कोई रास्ता निकालना चाहिए। हम अपने मार्गमें स्वयं ही काँटे रोपते हैं और फिर उनके दंशकी शिकायत करते हैं। हम अपनी शक्तिके भरोसे कहीं जायें तो कदाचित् सफल न हों, लेकिन ईश्वरकी शक्तिके साथ जायें तो घोर अन्धकारमें भी उजाला देखेंगे। "मुझमें ऐसा प्रेम नहीं है"—यदि तू यह तर्क रखेगी तो तुझे मेरा कुछ कहना ही व्यर्थ है। और फिर मैं यह मानता हूँ कि मुझमें प्रेम है, फिर भी मैं अनेक लोगोंको कैसे नहीं जीत सका हूँ? "तो फिर मुझे तुझे कुछ कहनेका क्या अधिकार है", मुझसे यह कहकर यदि तू अपना हृदयद्वार बन्द कर ले, तब भी मैं विवश हो जाऊँगा। मैं अपनी अपूर्णताको स्वीकार करता हूँ, लेकिन तू इसका अनुकरण क्यों करती है? अपने अनुभवसे मैं तुझे जो [सलाह] दूँ, तू उसे ग्रहण कर। साथीके दोषोंका हमें संग्रह नहीं करना चाहिए अपितु उन दोषोंसे हमें बचना चाहिए और उसमें जो गुण हों उन्हें ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मैं तेरे समान हार कर नहीं बैठ जाता, बल्कि कठोरतम हृदयके भी ईश्वरकी कृपासे पिघलनेकी आशा रखता हूँ और इसीलिए प्रयत्नशील रहता हूँ।

यदि तू रसोईमें अखबार पढ़ती-सुनाती है और हँसी-मजाक करती है तो इसे मैं खराब बात ही मानूंगा। रसोईमें तो मौन रखा जाना चाहिए। वहाँ कुछ

१. छगनलाल जोशी।

पढ़कर क्यों सुनाया जाये? और फिर, नारणदासका ध्यान चारों ओर होगा। वहाँ तू कुछ पढ़े और पढ़कर सुनाये, यह मैं ठीक नहीं समझता। और यदि तू रसोईमें कुछ पढ़ना ही चाहे तो ऐसा तुझे गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए। इसलिए तू इतना परिवर्तन तो कर ही डालना। यदि तू रसोईमें हँसी-ठट्ठा और नखरे करेगी तो इसका बालकों पर क्या प्रभाव होगा? यदि वे सब वैसे ही करने लगें, तब तो रसोईघरमें धमाचौकड़ी ही मच जायेगी और अनुशासन भंग हो जायेगा। यह सब 'स्मार्ट लिटिल गर्ल' के 'स्मार्ट' भेजेमें आया अथवा उसकी सारी 'स्मार्टनेस' आश्रममें खत्म हो गई है।

इस समय इससे ज्यादा नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३०१) से। सी० डब्ल्यू० ५७५४ से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

४८६. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

३१ अगस्त, १९३२

चि० पण्डितजी,

तुम्हारा पत्र मिला। जिस तरह आनन्दीको 'गीता' में आनन्द आने लगा है, उसी तरह धीरे-धीरे अन्य लोग भी उसमें दिलचस्पी लेने लगेंगे, बशर्ते कि हमारी अपनी रुचि उसमें बनी रहे। तुम्हारे प्रयत्न करने पर भी रामभाऊके सुधरनेकी कोई सम्भावना मुझे दिखाई नहीं देती। उसे खरे-खोटेके भेदकी कोई समझ ही नहीं है। पर मुझे उम्मीद है कि किसीन-किसी दिन उसकी आँख खुलेगी।

आनन्दीको दूध पीने और आराम लेनेके बारेमें लिख रहा हूँ। उसके कार्यक्रमके विषयमें मैं यहाँसे अभी कुछ नहीं लिख सकता। बिना परिश्रमके उसे जो कार्य अच्छा लगे वह उसे करे, यही पर्याप्त है। जो कमजोर हैं, उन्हें ऐसा कोई काम नहीं दिया जाना चाहिए जो उन्हें भाररूप जान पड़े।

लक्ष्मीबहनकी दाढ़में चाँदी किसने भरी? यह काम बहुत नाजुक है। दाढ़का गड्ढा जबतक पूरी तरह साफ न हो तबतक उसे भरा नहीं जाना चाहिए। थोड़ी-सी भी असावधानी हो तो अन्दर सड़ांध हो जाती है, जो नुकसान करती है।

मोहन आदिने जो पत्र लिखवाये हैं वे अच्छे हैं। इससे यह प्रकट होता है कि अक्षर-ज्ञानका बुद्धिके विकासके साथ बहुत थोड़ा सम्बन्ध है। बुद्धिके विकासको अक्षर-ज्ञानके साथ जोड़नेसे बहुत जड़ता पैदा हो जाती है। हम यदि बच्चोंको मुँहजबानी जितना ज्ञान दिया जा सकता हो उतना ज्ञान सिखा दें और अक्षर

लेखनकी कला भी सिखा दे, तो अन्ततः खुद-बखुद पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

[पुनश्च :]

काका के बारेमें मुझे मालूम है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २३२)से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे

४८७. पत्र. मथुरी एन० खरेको

३१ अगस्त, १९३२

चि० मथुरी,

तेरा पत्र मिला। तुझसे जितनी मेहनत हो सके उतनी मेहनतके लिएही मैंने तुझे लिखा है, यह याद है न? तेरी पींजनेकी रफ्तार तो अच्छी है। लेकिन क्या रफ्तारके मुताबिक ही पूनियाँ अच्छी होती है? जितना करो उतना सुन्दर और बढ़िया होना चाहिए, फिर भले ही रफ्तार कम हो। रफ्तार तो धीरे-धीरे ही बढ़ती है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७)से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन एन० खरे

४८८. दैनन्दिनी, १९३२[1]

(१-६-१९३२से ३१-८-१९३२ तक)

१ जून, बुधवार, यरवडा मन्दिर[2]

२०८ तार काते। पत्र — आनन्दानन्दको। जया, राधा, रणछोड, गजानन, लक्ष्मी-बहन, मथुरी, रमा आकर मिल गये। कीर्तिकरका 'वेदान्त'[3] शुरू किया।

२ जून, बृहस्पतिवार

२७८ तार काते। पत्र — मीरा, भोगीलाल व्यास, शान्ति, हेमप्रभा देवीको। गंगाबहनका पत्र आया। 'हिन्दू एस्ट्रॉनॉमी' पूरा किया। सर जेम्स जीन्सकी खगोलशास्त्रपर पुस्तक आरम्भ की है।

१. इसके पूर्वांशके लिए देखिए खण्ड ४९।

२. दैनन्दिनीमें हर तिथिके साथ इसका उल्लेख है, लेकिन यहाँ बादकी तिथियोंमें इसे दोहराया नहीं गया।

३. स्टडीज इन वेदान्त।

३ जून, शुक्रवार

२१४ तार काते। पत्र — तिलक, प्यारअली, फीरोजा तलयारखाँ, नानासाहब, प्रभावतीको।

४ जून, शनिवार

२२४ तार काते। पत्र — गंगाबहन, परचुरे शास्त्री, काकाको। आज डाह्याभाई और मणि मिलने आये। मैं उनसे मिलने नहीं गया। और मीराबहनके सम्बन्धमें यह उत्तर आया कि उसने सविनय अवज्ञा आन्दोलनका संचालन किया था।

५ जून, रविवार

२२२ तार काते। आज डाक्टर मेहताने बायें हाथमें खपचियाँ बाँधीं। वीसापुरसे अमृत नानावटीका पत्र आया।

६ जून, सोमवार

२४८ तार काते। पत्र — जाल नौरोजी, रमणलाल शाह, मारी पीटर्सनको।

७ जून, मंगलवार

१९१ तार काते। पत्र —– आश्रमको–२९, जिसमें "'तितिक्षा' और 'यज्ञ'के विषयमें" नामक लेख भी शामिल है; अमृतलाल नानावटी (वीसापुर), करसनदास, नागरदास, शंकरलालको पत्र लिखे। जेल-अधीक्षकका विचार था कि हाथ पर खपचियाँ जिस तरह बाँधी गई हैं उसका कोई असर नहीं होगा। इस कारण उन्हें खोलकर मजबूतीसे बँधवाया, जिससे सारा दिन हाथ खुला रहा।

८ जून, बुधवार

२१२ तार काते। दुर्गा, आनन्दी, बाबलो आकर महादेवसे मिल गये। आज त्रिवेदीकी ओरसे दूरबीन आई।

९ जून, बृहस्पतिवार

२२५ तार काते। पत्र — बालकृष्ण कोलते (फतहपुर), सावित्री (लुधियाना), प्रभाशंकर (राजकोट), मीरा, पोलक, घनश्यामदास, कर्नल डॉयल और रेहानाको।

१० जून, शुक्रवार

२१२ तार काते। पत्र — हरजीवन कोटक, रामकृष्ण डालमियाको। जेठालाल गांधी (अध्यापक), और बिन्दु माधव गुरलेसे[१] मिला। आजसे पट्टीसे छुट्टी पाई। वासुदेव कीर्तिकरका 'वेदान्त' पूरा किया।

१. साथी कैदी।

११ जून, शनिवार

२०६ तार काते। पत्र – छगनलाल जोशीको, भट्टाचार्यको (विपिनबाबूकी पुस्तकके बारेमें)। लेडी रामनाथनकी 'रामायण' को पढ़ गया। डाह्याभाई वल्लभभाईसे आकर मिल गया। घनश्यामदासके पत्रक पढ़ना शुरू किया।

१२ जून, रविवार

२१६ तार काते। आजसे अलोना भोजन शुरू किया है। हाथको खपच्चियोंसे कोई लाभ नहीं हुआ, इससे मीरा खूब दुखी होगी। उसके सन्तोषके लिए और परिणाम देखनेके लिए ही अलोना भोजन आरम्भ किया है। साथमें रोटीमें सोडा डालना बन्द कर दिया है। घनश्यामदासका छोटा-सा पत्रक पूरा किया।

१३ जून, सोमवार

१८८ तार काते। पत्र – सकलातवाला, नानाभाई, कुरेशी, कर्नल डॉयलको; आश्रम को ३८ पत्र लिखे। चूँकि कल छुट्टी है, इसलिए आश्रमकी डाक आज दे दी।

१४ जून, मंगलवार

२४० तार काते। पत्र – भारती, विट्ठल, गंगाबहनको। गंगाबहनको अटेरन, 'लोकशिक्षण', 'पुरुषार्थ', और 'चन्द्रकान्त' भेजे। आज कर्नल डॉयल मिल गये। दोपहरको आश्रमकी डाक आई।

१५ जून, बुधवार

१९९ तार काते। पत्र – तारामती, महावीर, नारणदासको। आज पतली टट्टी हुई, इसलिए रोटी और बादाम नहीं लिये; अच्छा रहा; वजन १०४$\frac{3}{4}$ [पौंड] हो गया है।

१६ जून, बृहस्पतिवार

२१५ तार काते। पत्र – देवदास, सुमंगल, बली, अगाथा, एन्ड्रयूज, एमा हारकर, शंकर कालेलकरको। हनुमानप्रसादको तथा देवदासको तार। उर्दू चौथी [पुस्तक] पूरी की।

१७ जून, शुक्रवार

२११ तार काते। पत्र — विट्ठलदास, मीरा, उदित मिश्रको। देवदासके बारेमें उसका अपना और हनुमानप्रसादका तार मिला।

१८ जून, शनिवार

२१९ तार काते। पत्र — सरोजिनी नायडू, छगनलाल जोशी, अमतुलको। देवदासके बारेमें संयुक्त प्रान्तके गवर्नरको तार दिया। मीराका पत्र कर्नल डॉयलको भेजा।

१९ जून, रविवार

२०४ तार काते। कल शामको मर्न[1] की बनाई अलोनी रोटी खाई, लेकिन कदाचित् वह पची नहीं। आज शामको नहीं खाई। ढेर-सारे पत्र लिखे। शाहकी मुद्राशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तक जारी है। 'शहीद लड़का' नामक उर्दू नाटक समाप्त किया। 'खेती' नामक पुस्तक शुरू की है।

२० जून, सोमवार

१९८ तार काते। पत्र – ब्रजलाल, मथुरादास, नानाभाई (अकोला), शर्मा, मणिलाल, लॉरी सॉयर, दामोदरदास, बैंकर, श्रीराम शर्मा, वझे, राधा, शंकर जिलानी, नरसिंहनको।

२१ जून, मंगलवार

२११ तार काते। आज पेटमें मरोड़के हलके आसार दिखाई दिये, जिससे केवल अंगूर ही लिये।

पत्र – आश्रमको (३२ पत्र लिखे, जिनमें प्रार्थना-सम्बन्धी लेख और तोतारामजीका पत्र भी शामिल है)। इसके अलावा हेमप्रभादेवी, रेहाना, नवीन, कार्ल हीथ, एरिस्टार्शी, लालवाणी, कमला नेहरू, ललिता, रोहिणी, जानकीबहन, लक्ष्मीराजाको भी पत्र लिखे।

२२ जून, बुधवार

२२३ तार काते। पत्र – गंगाबहन, खम्भाता, ग्लैडिज रिगवेल, देवी, पोलक, मगनलाल, हनुमानप्रसाद, तिलक, शान्ता पटेल (आणंद) और त्रिवेदीको।

आज मेजरने मुझसे दूध-रोटी लेनेका बहुत आग्रह किया। वजन डेढ़ पौंड कम हुआ। मोसंबी आई, दूध भी आया। दोनों लिये।

२३ जून, बृहस्पतिवार

२१० तार काते। पत्र – मीरा और देवदासको। आज दूधमें रोटी ली। मीराबहनके मेरी पत्रमें तबीयतसे सम्बन्धित अंश जेल-अधीक्षकको अच्छा न लगनेके कारण बदल दिया।

२४ जून, शुक्रवार

२०८ तार काते। पत्र – होरेस अलेक्जेंडरको। टॉमस[2] और कर्नल डॉयल आये। यहाँकी आजकी मुलाकातमें मोरारभाई, मराठे, डा० फाटक थे।

२५ जून, शनिवार

२२० तार काते। घनश्यामदासकी ओरसे खादी आई। शीरींबहनने शहद भेजा। डाह्याभाई और मणिबहन आकर वल्लभभाईसे मिल गये। 'किमयागर' शुरू की।

१. एक स्कॉटलैंडवासी जो गांधीजीके साथ यरवडा जेलमें कैद था।

२. बम्बई सरकारके गृहसदस्य।

२६ जून, रविवार

२२४ तार काते। आज नई धोतियाँ निकालीं। अंगूरोंकी दो पेटियाँ और आईं।

२७ जून, सोमवार

२०७ तार काते। पत्र — आश्रमको (३१ पत्र लिखे, जिनमें "अहिंसाका पालन कैसे किया जाये" शीर्षक लेख भी है), कर्नल डॉयलको।

२८ जून, मंगलवार

२२२ तार काते। पत्र — गंगाबहन, जोशीको; कर्नल डॉयलको मीराके पत्रके सम्बन्धमें और अपने दाँतोंके बारेमें दो पत्र लिखे। आश्रमकी डाक आई।

२९ जून, बुधवार

२३३ तार काते। पत्र — बिड़ला, खम्भाता, रेहाना, लक्ष्मीदास, माधवदास, बलवन्तराय, छगनलाल जोशी, मीरा, दामोदरदास, प्रेमकुँवरको।

आज वजन १०४ पौंड हुआ।

३० जून, बृहस्पतिवार

२१७ तार काते। पत्र — जायजी, मीठूबहन, शीरींबहन और देवदासको।

१ जुलाई, शुक्रवार

२०३ तार काते। हीरालाल, श्रीमती लिण्डसे, मीरा, प्रिवा, सातवलेकर, क्रेसवेल (उसकी चार पुस्तकें), स्वामी आनन्द और किशोरलालके पत्र मिले।

२ जुलाई, शनिवार

२४४ तार काते। पत्र — किशोरलाल, स्वामीको। डाह्याभाई और मणि आये।

३ जुलाई, रविवार

२१२ तार काते। पत्र लिखे। आश्रमका इतिहास लिखा।

४ जुलाई, सोमवार

२१२ तार काते। पत्र — आश्रमको (३२ पत्र लिखे, इनमें "सत्यका पालन कैसे करें" शीर्षक लेख भी शामिल है), मंजुला, माताप्रसाद, दिनकर, राधा, लेडी विट्ठलदास, फूलचन्द बापूजी, रावजीभाई, मगनभाई चतुरभाई, हरजीवन कोटकको। आश्रमका इतिहास लिखा।

५ जुलाई, मंगलवार

२३४ तार काते। त्रिवेदीको दूरबीन वापस भेजी। देवदासकी ओरसे पापाके पति वरदाचारीकी मृत्युका तार आया। पापाको और राजाको तार भेजे।

६ जुलाई, बुधवार

२०० तार काते। पत्र – देवदास, बिड़ला, सरलादेवी, भाई परमानन्दको। डॉयल आये – मेरे दाँतों और मीराको पत्र लिखनेके सम्बन्धमें बातचीत कर गये। वजन १०५३⁄४ पौंड हो गया – तीन दिन बादाम लेनेके बाद।

७ जुलाई, बृहस्पतिवार

२२५ तार काते। पत्र – फीरोजाबहन तलयारखाँको। सातवलेकरने संस्कृत पाठावली भेजी। वल्लभभाईने संस्कृतका अभ्यास शुरू किया।

८ जुलाई, शुक्रवार

२२३ तार काते। पत्र – रेहाना, जोहरा, लक्ष्मी और पापाको।

आज मेजरने मुझे सूचना दी कि मेरे नाम आनेवाले पत्र और मैं जो पत्र भेजता हूँ वे अबसे सरकारके पास जाया करेंगे। इस सप्ताहकी आश्रमकी डाक वहाँ गई है। कुरेशी, मोहनलाल, मूलशंकर दवे और हरिदास मिले।

९ जुलाई, शनिवार

२३६ तार काते। पत्र – कर्नल डॉयल, गोकीबहनको। आज आई० जी०[१]के यहाँसे जो थोड़ी डाक आई उसमें कृष्णदास और बाबू मोतीलाल रायके पत्र थे। आज मोसंबी यहींसे मँगवाई।

१० जुलाई, रविवार

२१५ तार काते। आजसे वल्लभभाईने कातना शुरू किया। १२५ तार एक घंटेमें काते। आज 'किमियागर' और 'वैदिक विनय' समाप्त किये। 'गंगा'का वेदांक और प्रेमचन्दजीकी 'रामचर्चा' शुरू की।

११ जुलाई, सोमवार

२१० तार काते। पत्र – आश्रमको (३३ पत्र लिखे; इनमें "शिक्षा" नामक लेख भी शामिल है)।

१२ जुलाई, मंगलवार

२०८ तार काते। जेल-अधीक्षकने मुझसे कहा कि यरवडाके कैदियोंके नाम जो पत्र लिखे जाते हैं, वे भी सरकारके पास भेजे जाने चाहिए। बादाम आये।

१३ जुलाई, बुधवार

२२७ तार काते। पत्र – कर्नल डॉयल, गंगाबहन, जोशीको। नये बादाम खाने शुरू किये।

१. इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिज़न्स।

१४ जुलाई, बृहस्पतिवार

२४५ तार काते। शाहकी 'बैंकिंग' नामक पुस्तक और न्युकमकी 'ऐस्ट्रॉनॉमी' (खगोलशास्त्र) पूरी की। आयरकी 'फॉरिन एक्सचेंज' (विदेशी मुद्रा), खरासकी 'ऐस्ट्रॉनॉमी' (खगोलशास्त्र) – और 'स्वाध्याय संहिता'[1] शुरू कीं।

१५ जुलाई, शुक्रवार

२४५ तार काते। पत्र – खाँ, वेलुसामी, मीराबहन, सु० कु० सेनगुप्तको। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट निरीक्षणके लिए आये। सोमा रिहा हो गया।

१६ जुलाई, शनिवार

२३२ तार काते। आश्रमकी और दूसरी डाक आज आई।

१७ जुलाई, रविवार

२०८ तार काते। आश्रमकी डाक पूरी की।

१८ जुलाई, सोमवार

२२५ तार काते। पत्र – आश्रमको (१६ पत्र लिखे, साथमें "व्यक्तिगत प्रार्थना" शीर्षक लेख भी), देवदास, हामिदअली, लक्ष्मी, खोड़ीदासको।

'द वे ऑफ द क्रॉस' तथा 'पैगम्बरका पश्चिमको सन्देश' ('द प्रॉफेट्स मेसेज टु द वेस्ट') पढ़ गया।

१९ जुलाई, मंगलवार

२२९ तार काते। आज गांडीव पर थोड़ी पूनियाँ कातीं।

पत्र – म्यूरियल, एरिस्टार्शी, मोतीलाल राय, कृष्णदास, वॉशबर्न, एस्थर, नरहरि देवशर्मा, अली हुसेन, गणेशदत्त गौड़, शैलेशचन्द्र मजमुदार, नित्यानन्दम्, आदिगल, सिडनी नीलीको। क्लेटन मिलनेके लिए आये। गंगाबहनकी ओरसे पुस्तकें आईं।

२० जुलाई, बुधवार

२३२ तार काते। पत्र – सातवलेकर, नटवरलालको।

२१ जुलाई, बृहस्पतिवार

२२३ तार काते। पत्र – नरगिस, शीरीं और खुर्शेदको। खुर्शेदके बारेमें लाहोरके सुपरिंटेंडेंटको तार।

आज छगनलाल, मुकुन्द डाक्टर और शंकरसे मिला। शंकरको हीरालालके सम्बन्धमें उलाहना दिया। आज मेजरने डायोथर्मीका उपचार किया। देवदासके फिरसे अस्वस्थ होनेका तार मिला।

२२ जुलाई, शुक्रवार

२२१ तार काते। पत्र – देवदास, मीराको। आज भी डायोथर्मीका उपचार किया। पुस्तकें आईं। आज कुछेक पत्रोंके डाकमें रवाना होनेकी तालिका मिली। उसमें अधिकांश १९ तारीखके पत्र हैं।

१. वैदिकमुनि हरिप्रसाद रचित।

२३ जुलाई, शनिवार

२१३ तार काते। पत्र–कर्नल डॉयल, महाराज राघवदास, रोहिणी, लाला मोहनलालको।

२४ जुलाई, रविवार

२१० तार काते। सारा दिन आश्रमके पत्र लिखनेमें, कर्नल डॉयलको लिखे जानेवाले पत्रके मसविदेको तैयार करनेमें और पढ़नेमें गया।

२५ जुलाई, सोमवार

२०७ तार काते। पत्र—आश्रमको (१९ पत्र लिखे, शीर्षकमें 'देखरेखकी अनावश्यकता' शीर्षक लेख भी शामिल है), काका, कर्नल डॉयल, मेजर भंडारीको।

२६ जुलाई, मंगलवार

२३६ तार काते। पत्र–पोलक, तारामती, मथुरादास, हॉयलैंड, देवदास, रमणीकलाल, मीराबाई, रेहाना, हमीदाको। मालवीयजीको तार।

२७ जुलाई, बुधवार

२१७ तार काते। पत्र–हीरालाल, लिली, राजगोपालाचारी, शीरीं, सुबैया, ललिताको। आज वजन १०४ पौंड हो गया। डेढ़ पौंड कम हुआ। कारण फलका अभाव लगता है।

२८ जुलाई, बृहस्पतिवार

२५० तार काते। पत्र–हरजीवन कोटक, खुर्शेद, रूखी, वेंकटरत्नम्, राधा, मीराबहन, बा को। बाजपेयीको तार। आश्रमकी डाक आई। आज लोकेयर की 'ऐस्ट्रॉनॉमी' (खगोलशास्त्र) शुरू की। तीन दिनोंसे 'सीरत-उन-नबी' शुरू की हुई है। नाडकर्णीकी पुस्तिका भी।

२९ जुलाई, शुक्रवार

१९७ तार काते। पत्र–नरगिस, निर्मला।

३० जुलाई, शनिवार

२२८ तार काते। पत्र–नाजुकलाल, नगीनदास, अमृतलाल, देवदास गांधी। छगनलाल प्राणजीवन और देवदासको तार।

३१ जुलाई, रविवार

२१६ तार काते। आश्रमकी डाक पूरी की। उसमें काफी समय दिया। आज बहुत दिनोंके बाद केले लिये।

१ अगस्त, सोमवार

२१६ तार काते। पत्र–आश्रमको (३६ पत्र लिखे, जिनमें "'गीता' कंठस्थ करें" नामक लेख भी है), बिड़ला, व्रजकिशन, श्यामकिशन, सुभाषबाबू और मीराको। कमलाको तार दिया।

२ अगस्त, मंगलवार

२०७ तार काते। पत्र – भक्तिबहन, प्रभाशंकर, दामोदरदास, विमला, मोहनलाल भट्ट, प्रभावती, जेठालाल, जीवाभाईको।

३ अगस्त, बुधवार

२१६ तार काते। पत्र – कृष्णदास, जगन्नाथ बजाज, जवाहरलाल, हनुमानप्रसाद, मोदी, देवदास, शिवप्रसादको। मेजरने सूचना दी कि सरकारी आदेश प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार बाहर भेजी जानेवाली डाककी जाँच भी अबसे वे ही करेंगे।

४ अगस्त, बृहस्पतिवार

२२५ तार काते। पत्र – कमला नेहरू, वरदराजुलू, मणिलाल, कैलेनबैक, सुशीला, प्रागजी, नारणदास, रतिलाल मेहता, चम्पा, मंजुला, रतिलाल सेठ, छगनलाल मेहता, माणेकबाई, लीलावती, जेकी, रतिलाल, मणि, मणिलाल, नानालाल, खीमचन्द, मगन-लाल, पोलकको। छगनलालको तार दिया। शिवप्रसादको पत्र लिखा।

५ अगस्त, शुक्रवार

२०५ तार काते। पत्र – मंजुला, एस्थरको। छगनलाल, मंजुला, नारणदासको तार। आज ब्रेलवी, जमनादास, हरगोविन्द पण्ड्या और रामदाससे मुलाकात की।

६ अगस्त, शनिवार

२१२ तार काते। पत्र – ब्रेलवी, छगनलाल मेहता, तारामती, श्रीमती सेनगुप्त, हेमप्रभा, हरदयाल नागको। गोखले और सुगणेन्द्र उपवास कर रहे हैं। उनके सम्बन्धमें बातचीत करते हुए अन्ततः उनसे मेरा मिलना तय हुआ। उनसे मिला और उन्होंने कहा कि यदि नियमके अनुसार कैदियोंको ब्राह्मणके हाथका बना खानेका अधिकार न हुआ तो वे अपना आग्रह छोड़ देंगे। इसपर नियमोंकी जाँच की और मैंने उन्हें समझाया, जिसपर उन्होंने उपवास छोड़नेकी बात स्वीकार की। इस काममें आज काफी समय गया।

७ अगस्त, रविवार

१९६ तार काते। आश्रमके पत्र लिखनेमें समय बिताया।

८ अगस्त, सोमवार

२०४ तार काते। पत्र – आश्रमको (३७ पत्र लिखे, जिनमें डाक्टर मेहता विषयक लेख भी है), मंजुला, अन्सारी, मीरा व राजेन्द्रबाबू, देवदासको। छगनलालको तार दिया।

९ अगस्त, मंगलवार

२३२ तार काते। पत्र – मोहनलाल भट्ट, भक्तिबहन, नरसिंहन, जयदेवी कोठारी, प्रभाशंकर, बलवन्त, रमणीक, आनन्दशंकर, प्रभावती, सरोजिनी नायडूको। छगनलालका तार आया।

१० अगस्त, बुधवार

२१७ तार काते। मगनलालको तार दिया। [पत्र]–उमीया, सातवलेकर, हैदरी, सुरेश बनर्जी, मंजुला, छगनलाल मेहता, बनारसी, विट्ठलदास पुरुषोत्तम, केतकर, करसनदास, माधवदास, लक्ष्मी, पापा, हैरिसन, कर्नल डॉयल को।

११ अगस्त, बृहस्पतिवार

२०८ तार काते। पत्र–परचुरे शास्त्री, शंकर, ठक्करबापा, सियेना आश्रमकी बहनोंको, देवदास, सोरिला मेरोया, लेनार्ड स्किफ, त्रिवेदी, मनु, जोहाना, फिनसाइन, इन्द्रसेन, वेरियरको।

१२ अगस्त, शुक्रवार

२१६ तार काते। पत्र–रामदास गांधी, प्रेमी जयरामदास, शास्त्रीको।

आज वल्लभभाईकी और मेरी बतीसीके लिए कर्नल डॉयल डाक्टर दलालको लाये।

मेजरके साथ अन्सारीके सम्बन्धमें अनपेक्षित रूपसे आज तीखी वार्ता[१] हुई।

१३ अगस्त, शनिवार

२०६ तार काते। पत्र–देवदास गांधी, बहराम खम्भाताको। मुझे आज भी डा० दलालके पास जाना पड़ा। आज आलू खाये।

१४ अगस्त, रविवार

२२३ तार काते। आज भी डाक्टर दलालके यहाँ गया। सरोजिनीकी पद्माने अंगूर आदि भेजे। अंगूर खाये। आज मगन चरखेपर कातना शुरू किया। चूँकि कुहनीमें कुछ ज्यादा दर्द होता था इसलिए काफी महीनोंके बाद आज गांडीव पर बायें हाथसे एक पूनी कातनेकी कोशिश की; अच्छा रहा।

१५ अगस्त, सोमवार

२१४ तार काते। पत्र–आश्रमको (४४ पत्र लिखे, इनमें "वाचन और विचार [–१]" शीर्षक लेख भी शामिल है), विमला पटेल, नरगिस, कमला सोनावाला, सत्यमूर्ति, जानकीबहनको।

कब्ज होनेके बावजूद और भूख लगनेके कारण मैंने आज मूर्खतावश दोपहरको खा लिया। फलस्वरूप उलटी हो गई। इस बार उलटी बिना परिश्रमके अपने-आप हुई।

१६ अगस्त, मंगलवार

२०२ तार काते। पत्र––पद्मजा, भक्तिबहन, मोहनलाल भट्ट, मीरा।

आज नई बतीसी मिली। बादाम आये। कैम्पके लिए 'डेन्जर्स ऑफ ओबिडियन्स' और बिपिन पालका वृत्तान्त भेजा। 'वेदमां अध्यात्म' कल पूरा किया। हर्षल और दूसरी कमेटियोंकी रिपोर्टें शुरू कीं।

१. वार्ताकी रिपोर्टके लिए देखिए **महादेवभाईनी डायरी**, भाग–१।

१७ अगस्त, बुधवार

२५४ तार काते। पत्र — रामेश्वर बजाज, छगनलाल मेहता, मणिलाल रेवाशंकर, नौतमलाल भगवानजी, मगनलाल, मंजुला, मेरी बार, रतिलाल देसाई, देवदास, राजेन्द्र बाबू, रेहाना, खम्भाता, प्रभाशंकर, नर्मदानन्दको।

आज भी बतीसी ठीक तरहसे बैठाई गई। मेजरके साथ कपूरथलाके बारेमें बात हुई। आज बाजरा खाया।

१८ अगस्त, बृहस्पतिवार

२०० तार काते। पत्र — मंजुला, छगनलाल मेहता, खीमचन्द, लिली, हीरालाल, पोपट वीरजी, कृष्णदासको।

विधान परिषदोंमें हिन्दू, मुसलमान, सिख इत्यादिकी क्या संख्या रहेगी, इस बारेमें ब्रिटिश सरकारने जो निर्णय किया है वह मुझे कल प्राप्त हुआ। उसपर थोड़ी बातचीत करनेके बाद[1] आज प्रधानमन्त्री मैक्डोनॉल्डको पत्र लिखा। उसमें मैंने २० सितम्बर तककी मोहलत दी है और कहा है कि यदि इस बीच सरकार अपने इस निर्णयको वापस नहीं ले लेती तो मैं २० तारीखको १२ बजेसे अनशन शुरू करने-वाला हूँ। कदाचित् सरकार कुछ और दिनोंकी मोहलत माँगे तो क्या मेरे अनशनकी तिथि आगे ढकेली जा सकती है या नहीं, इसके उत्तरमें मैंने कहा कि जरूरत हुई तो ऐसा करनेमें मुझे कोई एतराज न होगा।

१९ अगस्त, शुक्रवार

२१५ तार काते। पत्र — चम्पा, मीरा, आनन्दशंकर, कमला नेहरू, सरोजिनी, जायजी, करसनदास, मुहम्मद आलम, अगाथाको।

गंगाधरराव, शंकर और देवीदास घेवरीयाके भानजेसे भेंट। शंकरने बातचीत तो सन्तोषजनक की। उसने निश्चित रहनेका आश्वासन दिया है और दुबारा भूल न करनेका वचन दिया है।

२० अगस्त, शनिवार

२३४ तार काते। पत्र — घनश्यामदास बिड़ला, नानालाल, अभ्यंकरको।

फिर बतीसी ठीक करवाई। अभी बाजरा चलता है। कल जेलके बाजरेकी भाखरी खाई। एक पौंड नये बादाम आये।

२१ अगस्त, रविवार

२०० तार काते। आश्रमको पत्र लिखे — एन्ड्रयूजकी पुस्तक।

२२ अगस्त, सोमवार

२०५ तार काते। पत्र — आश्रमको (५१ पत्र लिखे, इनमें "वाचन और विचार [–२]" लेख भी शामिल है), मणिलाल, सुशीला, रिच, हेमप्रभाको।

१. देखिए परिशिष्ट।

२३ अगस्त, मंगलवार

२०५ तार काते। पत्र — तारामती, दिलीप, छगनलाल, माणेकबा, मावाशंकर, लीलावती, छोटालाल, त्र्यम्बकलाल, रतिलाल देसाई, लेडी ठाकरसी, खम्भाता, कल्याणजी कछी, रेहाना, देवदासको। पद्माकी ओरसे फल आये।

२४ अगस्त, बुधवार

२३५ तार काते। पत्र — दरबारी, भक्तिबहन, निर्मला मशरूवाला, प्रभाशंकर, वेलाबहन, राजा, मीराको। आज दो सेर कागजी बादाम आये। वजन १०३ पौंड हो गया।

२५ अगस्त, बृहस्पतिवार

२१० तार काते। पत्र — पद्मजा, प्रेमी, बेगम. मुहम्मद आलम, कृष्णदास, सातवलेकर, राधा, गोविन्ददास (जयपुर), गोविन्ददास (जबलपुर), कृष्णनाथ, बनारसी, फतेबहादुर, मणिलाल रेवाशंकर, गुलाब, तिलक, मगनलाल, काउंट लासडोर्फा, गिजुभाई, गोखले, जेठालाल शाह, बली, मनु, जेकी, छगनलाल मेहता, माणेकबाई मेहता, केशवलाल अम्बालाल, नानी मेननको।

आज भी बतीसीकी जाँच करवाई। नये बादाम शुरू किये। मेटरलिंक [की पुस्तक] समाप्त की। जीन्सकी 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' शुरू की।

२६ अगस्त, शुक्रवार

२१५ तार काते। पत्र — तारा मशरूवाला, तारामती, काका, मृदुला, हंसा मेहता, मणिबहनको। बतीसीकी फिर जाँच करवाई। कर्नल डॉयलसे मुलाकात की और उनसे काकाके सम्बन्धमें[1], प्रधानमन्त्रीके पत्रके विषयमें और बतीसीके बारेमें बातचीत की।

२७ अगस्त, शनिवार

२२० तार काते। पत्र — हीरालाल, काका, बा, केवलराम दयाराम, पी० एन० लाल वर्माको। आज बाजरेकी रोटीके स्थान पर बेकरकी डबलरोटी ली। आँखोंमें मेजरकी भेजी हुई दवाई डाली।

२८ अगस्त, रविवार

२२५ तार काते। 'गांधी विचारदोहन' शुरू की। देवदासको रंगून न जानेके बारेमें पत्र लिखा।

१. डॉयलने गांधीजीको काकाके साबरमती जेल तबादला किये जानेकी सूचना दी थी और उन्हें काकासे चरखा न चलाने देनेके लिए कहा था, जिससे काका पीठके दर्दसे मुक्त हो सकें; देखिए "पत्र: द० बा० कालेलकरको", २६/२७-८-१९३२।

२९ अगस्त, सोमवार

२२७ तार काते। पत्र — आश्रमको (५४ पत्र लिखे, इनमें "सविचार कार्य और विचाररहित कार्य" शीर्षक लेख भी शामिल है), खम्भाता, अभ्यंकर, नौतमलाल, पापा, लक्ष्मी, एलिजाबेथ हॉवर्ड, सुन्दर भागवत, एन्ड्रयूज, सावित्री, पद्मजाको।

आज गेहूँकी रोटी खाई। बिल्लीके एक बच्चा हुआ। आज आश्रमके इतिहासका प्रथम वाचन पूरा किया।

३० अगस्त, मंगलवार

२०३ तार काते। पत्र — लिली, हीरालाल, देवी वेस्ट, नन्दुबहन, रेवाशंकर, मेघजी, शास्त्री, सुशीला, मणिलाल, नानाभाई, शारदा मेहता, नूरबानू, कर्नल डॉयल को। बतीसीकी फिर जाँच करवाई।

३१ अगस्त, बुधवार

२०९ तार काते। आजसे दूध शुरू किया। पत्र — दामोदरदास, राधा, व्रजकिशन, सन्तोक, वेलाबहन, मगनलाल मेहता, मणिलाल, रामदास, नीमू, फूलचन्द, भक्तिबहनको।

मूल गुजराती (एस० एन० १९३३७) से।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

साम्प्रदायिक निर्णयपर बातचीत[1]

१७ अगस्त, १९३२

साम्प्रदायिक निर्णय आज प्रकाशित कर दिया गया। बापू शाम तक अपना काम-काज इस तरह करते रहे जैसे कुछ हुआ ही न हो। . . . मैंने कहा कि यह नया संविधान मॉण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधारोंसे भी बदतर है। बापू बोले, "इसमें तो कोई शक नहीं। उन सुधारोंका आधार लखनऊमें कांग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच होनेवाला समझौता था। किन्तु यह संविधान तो देशमें ऐसी फूट डालनेकी चाल है कि देश अपने पैरोंपर फिर कभी खड़ा ही न हो सके।" शामको प्रार्थनासे ठीक पहले वह मुझसे बोले, "अच्छा तुम और सरदार [वल्लभभाई] स्थितिपर विचार कर लो और तब तुम्हें जो कहना हो, वह निस्संकोच मुझे बताओ। सैमुअल होरको मैंने जो पत्र लिखा है, उसमें वर्तमान परिस्थितिसे निपटनेके लिए मुझे जो कदम उठाने चाहिए उनकी मैंने चर्चा की है। अतएव मुझे ब्रिटिश सरकारको चेतावनी देनी पड़ेगी।" . . . और फिर रातको बापू मैक्डोनॉल्डको पत्र लिखने बैठ गये।

१८ अगस्त, १९३२

बापूने सवेरे पत्र समाप्त करके कहा, "तुम कातना छोड़कर यह पत्र पढ़ डालो, ताकि इसे तुरन्त भेज दिया जाये।" सरदार और मैंने उसे पढ़ा। तब वे [सरदार] बोले, "इसमें [साम्प्रदायिक] निर्णयकी दूसरी बातोंका तो कोई उल्लेख ही नहीं है। इसका अर्थ कहीं यह न माना जाये कि बाकी सब बातें आपको मान्य हैं।" बापूने उत्तर दिया, "नहीं, मेरे विचार तो सुविदित हैं। फिर भी, यदि तुम चाहो तो एक अनुच्छेद जोड़ देता हूँ, हालाँकि तब मुझे बहसमें पड़ना होगा। मैं इस पत्रमें कोई बहस नहीं छेड़ना चाहता। क्योंकि दलीलें तो सैमुअल होरके पत्रमें दे ही चुका हूँ।" मैंने कहा कि बापू इतना ही लिखें कि उनकी आत्मा तो समूचे निर्णयके प्रति विद्रोह करती है, किन्तु उसका कुछ अंश ऐसा है कि उसे रद करवानेके लिए वे अपने प्राणोंकी बाजीतक लगा देंगे। बापू बोले, "नहीं, ऐसी तुलना करना उचित नहीं। ऐसा करनेपर वे यही कहेंगे कि मेरा उद्देश्य समूचे निर्णयको रद करवाना है और उसके कुछ विशिष्ट अंशोंका तो बहाना बनाया है। यह बात तो सही है कि मैं समूचे निर्णयको

१. देखिए "पत्र: रैमजे मैक्डोनॉल्डको", १८-८-१९३२।

रद करवाना चाहता हूँ, किन्तु रातको मैंने एक क्षण इस प्रश्नपर विचार किया कि दूसरे मुद्दोंको भी शामिल किया जाये या नहीं, और फिर उन्हें शामिल न करनेका ही निश्चय किया।"

शामको फिर इसी विषयपर चर्चा हुई। बापूने कहा, "दूसरे मुद्दोंको मैं शामिल कर ही नहीं सकता, क्योंकि यह तो धर्ममें राजनीति मिलानेके समान होगा। वस्तुतः दोनों प्रश्न एक दूसरेसे भिन्न हैं।" फिर कहने लगे, "मैंने सारी बातोंको अपने दिमागमें एक बार फिर दोहराकर देखा है। जो-कुछ तुम सुझा रहे हो, उन सभी बातोंपर मैंने यह निश्चय करनेसे पहले विचार किया था। मुसलमानों और अन्य लोगोंको पृथक् मताधिकार देना खतरनाक है। वे लोग अंग्रेजोंके साथ मिल जायेंगे और सब मिलकर हिन्दुओंको दबायेंगे। किन्तु इस प्रकारके गठबंधनसे निपटनेके तरीके मैं सोच सकता हूँ। [हममें आपसमें] झगड़े करानेवाले बाहरी लोग एक बार चले जायें, उसके बाद हम अपनी समस्याओंसे सफलतापूर्वक निपट सकते हैं। किन्तु जहाँतक तथाकथित अछूतोंका सवाल है, मेरे पास दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। उन बेचारोंको मैं भला कैसे यह सब बातें समझाऊँ-बुझाऊँ? जब दुर्भाग्य पीछा करता रहे तो कष्टको अपने सिर ओढ़ लेना कोई नई बात नहीं है। सुधन्वा भला कैसे खौलते तेलकी कड़ाहीमें कूद गया और प्रह्लाद कैसे अंगारेके समान गर्म लोहेके खम्भेसे लिपट गया? स्वराज्य-प्राप्तिके बाद भी कई सत्याग्रह आन्दोलन होंगे। कई बार मनमें आया है कि स्वराज्य-स्थापनाके बाद मुझे कलकत्ता जाकर धर्मके नामपर होनेवाली पशु-बलि बन्द करवानी चाहिए। कालीघाटके बकरोंका तो अन्त्यजोंसे भी बुरा हाल है। वे मनुष्योंपर सींगोंसे भी हमला नहीं कर सकते। उनके बीच कोई अम्बेडकर कभी पैदा नहीं हो सकता। इस हिंसाका ध्यान आनेपर मेरा खून खौल उठता है। भला लोग बकरोंके बदले बाघोंकी बलि क्यों नहीं देते?"

सुबह हमने बापूके इस कदमकी सम्भावित प्रतिक्रियाओंपर विचार किया। मैंने कहा, "इसका कई ढंगसे गलत अर्थ लगाया जायेगा। यहाँ भारतमें इसका बेतुका अन्धानुकरण किया जायेगा और अमेरिकामें कहा जायेगा कि गांधीने अनशन करके रिहाई पा ली।" बापू बोले, "मैं जानता हूँ। अमेरिकामें तो कोई भी बात लोगोंके गले उतर जायेगी, और गलेसे उतारनेमें उनकी मदद करनेके लिए ब्रिटिश एजेंट तो मौजूद हैं ही। बहुतसे लोग तो यह भी कहेंगे कि मैं दिवालिया हो गया था और मेरी आध्यात्मिकता लाभका सौदा साबित नहीं हो रही थी; इसी कारण मैंने धूर्त दिवालियोंकी तरह आत्मघात कर लिया; और यहाँ इस देशमें अन्धानुकरण और अर्थका अनर्थ किया जायेगा। सरकार सम्भवतः मुझे रिहा कर देगी और जेलके बाहर मरने देगी या जैसाकि मैक्स्वीनीके मामलेमें हुआ था, शायद जेलमें ही मरने दे। हमारे अपने लोग भी टीका करेंगे। जवाहरलालको यह कदम जरा भी पसन्द नहीं आयेगा। वह कहेंगे ऐसा धर्म बहुत हो चुका। किन्तु कोई परवाह नहीं। जब मैं अपने आध्यात्मिक अस्त्रागारका ऐसा अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र प्रयोगमें लाने चला हूँ, तो उसको गलत अर्थ लगनेके भयसे या ऐसी ही बातोंसे हरगिज नहीं रोका जा सकता।"

१९ अगस्त, १९३२

सुपरिंटेंडेंट आया और पूछने लगा कि बापू ऐसा उग्र कदम क्यों उठाने जा रहे हैं? बापू बोले कि और कोई चारा ही नहीं है। सुपरिंटेंडेंटने शंका प्रगट की कि सम्भवतः होरने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलको सूचना भी नहीं दी है। बापूने कहा, "मेरा विश्वास है कि सूचना अवश्य दी होगी। किन्तु आपकी शंका भी निराधार नहीं है। होर ऐसा व्यक्ति है कि शायद सूचना न भी दे। और मन्त्रिमण्डलको खबर लग ही जाये तो ऐसा भी कह सकता है कि जो व्यक्ति ऐसी छोटी-सी बातके लिए मरनेको तत्पर हो, उसके मामलेकी सूचना देकर मन्त्रिमण्डलको परेशान करनेकी आवश्यकता उसे महसूस नहीं हुई। लेकिन मेरे विचारमें यदि उसने सूचना नहीं दी है तो वह अपनी नौकरी और प्रतिष्ठा दोनों गँवा बैठेगा।" सुपरिंटेंडेंटने पूछा कि बापूके अनशनका इंग्लैंडमें क्या प्रभाव पड़ेगा। बापूने उत्तर दिया, "कुछ भी नहीं। यदि सब 'अछूत' एकमत होकर संयुक्त मताधिकारकी माँग करें तो भी अंग्रेज कह सकते हैं कि जो अल्पसंख्यक-जाति सदियोंसे दबाई जाती रही है, उसकी भलाई किस बातमें है, इसका निर्णय केवल अंग्रेज ही कर सकते हैं, क्योंकि दमनकर्ता तो उस जातिकी आवश्यकताओंको समझ नहीं सकते।" फिर वे बोले, "मेरा सारा जीवन ही इस प्रकार बीता है। यह अन्तिम कदम तो मेरे जीवनका श्रेष्ठतम कार्य है। मुझे भान तक नहीं था कि इसके लिए मुझे अपने प्राणोंकी आहुति देनी होगी। लेकिन यह एक महान हेतु है। इस दिशामें शुरुआत आजसे ५० वर्ष पहले हुई थी, जब मैं बालक ही था। मैं धूम्रपान करने लगा और फिर मुझे लगा कि मैं एक गलत चीज कर रहा हूँ और मुझे अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिए। तभीसे मैं सत्यको जानने और उसका अभ्यास करनेकी दिशामें बराबर प्रगति करता रहा हूँ।"

तीसरे पहर कलेक्टर आया और कहने लगा: "यदि वे यह निर्णय न दें तो फिर क्या करें? कोई-न-कोई समाधान तो होना ही चाहिए। ऐसे मामलोंमें पूर्ण न्याय और सत्यका आग्रह कैसे रखा जा सकता है?" बापूने कहा, "नहीं, निराकरण अनुचित भले हो, लेकिन ऐसा होना चाहिए जो सबको मान्य हो। इस निर्णयके पीछे तो कोई सहमति नहीं है। सरकारने इंग्लैंडमें हमसे समाधान बतानेको कहा था, किन्तु उन्होंने यह नहीं देखा कि यह बात वे एक ऐसी सभामें कह रहे थे जिसमें सरकारके चुने हुए आदमी ही भरे हुए थे और इसी कारण उनका सन्तोष कभी नहीं किया जा सकता था।" . . .

सवेरे बापूने कहा था, "सत्याग्रहका नियम है कि यदि किसी मनुष्यके पास कोई भी हथियार न हो और उसे कोई रास्ता न सूझ पड़ता हो, तब उसे देह-त्यागका अन्तिम कदम उठाना चाहिए। राजपूत स्त्रियाँ क्या करती थीं? कमलावतीने, जिसका वृत्तान्त उस दिन हम पढ़ रहे थे, क्या किया था? उसने संकल्प कर लिया था कि जीते-जी वह शत्रुके हाथमें नहीं पड़ेगी। अतः उसने मित्र मानकर मृत्युका आलिंगन कर लिया।"

२० अगस्त, १९३२

आज मैंने और सरदारने तय किया कि बापूके आसन्न अनशनकी खबर किसी-न-किसी प्रकार बाहरी जगततक पहुँचानी चाहिए। किन्तु बापूका दिया हुआ वचन भंग किये बिना यह असम्भव था। उन्होंने वचन दिया है कि वे अपनी ओरसे यह सूचना बाहर नहीं भेजेंगे। हम उनके साथ विश्वासघात नहीं कर सकते थे। सरदार बहुत ही चिन्तित थे। . . .

२१ अगस्त, १९३२

सरदार बोले, "लोग हमसे कहेंगे कि हम तो यहाँ आपके साथ थे और हमें किसी-न-किसी प्रकार बाहर सूचना भेज देनी चाहिए थी, जैसेकि डाह्याभाईके साथ जो हर सप्ताह मुझसे मिलता है।"

बापूने उत्तर दिया, "ऐसी बात तो सोचने लायक भी नहीं है। क्या हम उनसे कह सकते हैं कि हम अब बाहरी दुनियाको किसी-न-किसी प्रकार इसकी खबर भेज देंगे? हमने अपनी ओरसे पूरी गोपनीयताका वचन दिया है और हमारे लिए तो यह चर्चा यहीं खत्म हो जानी चाहिए। तुमने देखा होगा कि मैंने मैक्डोनॉल्डके नाम अपने पत्रमें पूर्ण उदासीन भावसे कहा है कि यदि वे ऐसा होने दें तो मैं चाहता हूँ कि जनमतपर मेरे पत्रोंका प्रभाव पड़े। मान लो कि यदि आज ही मालवीयजी और राजगोपालाचारीको मेरे आसन्न अनशनकी खबर लग जाये तो भला वे क्या कर सकते हैं? यह तो कुछ ही दिनोंका मामला है। मेरे विचारमें इन दोनों नेताओंको भी हलका-सा आघात पहुँचना चाहिए। राजाजी चतुर व्यक्ति हैं और वे तुरन्त समझ जायेंगे कि मुझे ऐसा कदम क्यों उठाना पड़ा। यह आकस्मिक आघात उन्हें कारण समझनेमें मदद देगा। देखते नहीं कि इस पत्रमें मैंने कोई तर्क पेश नहीं किये हैं। क्या मैं एक लम्बा आरोप-पत्र नहीं बना सकता था? किन्तु मैंने अपनी बात उस एक ही मुद्दे तक सीमित रखी है, जिसके लिए मैं खुशीसे प्राणोंका बलिदान कर सकता हूँ। मैंने यह प्राण एक ज्यादा महान उद्देश्यके लिए बचाकर रखे थे, लेकिन बीचमें यह अवसर आ गया है। अब मैं क्या कर सकता हूँ? यह सत्याग्रह कांग्रेसियोंके विरुद्ध तो है नहीं जोकि जेलमें पड़े हुए हैं; यह तो गैर-कांग्रेसियोंके विरुद्ध है ताकि वे समझें कि वे क्या कर रहे हैं। देखते नहीं आप कि 'अछूतों' के विषयमें ब्रिटिश सरकारके प्रस्तावोंसे उनमें से कोई भी व्यक्ति जरा भी उद्विग्न नहीं हुआ है। यह निष्क्रियता अत्यन्त घिनौनी है और इससे निपटनेका और दूसरा कोई उपाय नहीं है। हरिजनोंको पृथक् मताधिकार मिलनेके सम्भावित परिणामोंको सोचकर मेरा मन दहल उठता है। दूसरी सभी जातियोंको पृथक् मताधिकार दिया जाये, तो भी इसकी गुंजाइश रहेगी कि मैं उनके साथ व्यवहार रख सकूँ, किन्तु 'अछूतों' के साथ व्यवहार-सम्बन्ध बनाये रखनेका मेरे पास और कोई उपाय ही नहीं है। ये बेचारे पूछेंगे कि मैं, जो उनका मित्र होनेका दम भरता हूँ, क्या इसी कारण सत्याग्रह कर रहा हूँ कि उनको कुछ विशेष अधिकार मिल गये हैं; वे लोग तो अलग होकर

भी मेरे साथ ही मत देंगे। किन्तु वे नहीं समझते कि पृथक् मताधिकारके फलस्वरूप हिन्दुओंमें ऐसी फूट पैदा होगी कि रक्तपातकी नौबत आ जायेगी। 'अछूत' गुंडे मुसलमान गुंडोंके साथ समान उद्देश्यसे मिल जायेंगे और सवर्ण हिन्दुओंकी हत्याएँ करेंगे। क्या ब्रिटिश सरकारको इसका कोई अनुमान नहीं है? मैं ऐसा नहीं मानता। इतना ही नहीं, अब ऊपरसे वे लोग इर्विनको भी बीचमें खींच लाये हैं। कैण्टरबरीके आर्कबिशपने कहा कि इर्विनके सहयोगके बिना वे लोग कुछ कर ही नहीं सकते। और अब एक सच्चा ईसाई इस जघन्य योजनाका भागीदार बन गया है।"

"नहीं, नहीं, वल्लभभाई। खबर पहलेसे प्रकाशित करनेमें नुकसान ही है, आवश्यकता तो आकस्मिक आघात पहुँचानेकी है। इस कदमको अगर तुम एक गम्भीर भूल मानते, तब तो और बात थी। तुम दोनों भी मेरे इस निर्णयसे सम्बन्धित हो, इस कारण कुछ जिम्मेदारी तो तुम्हारी भी है, किन्तु [इस निर्णयकी] अन्तिम जबावदेही तो केवल मुझपर ही है, क्योंकि जो बात मुझे सूझी मैं वही कर रहा हूँ। यह मामला ऐसा है जिसमें किसी दूसरेकी सहमतिकी आवश्यकता नहीं है। बम्बईके दंगेके दिनोंमें मैंने जब अनशन किया तब चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरूने जोर देकर कहा था कि मुझे अनशनसे पहले उनसे सलाह कर लेनी चाहिए थी। किन्तु मैंने उन्हें समझाया कि मैंने एक कांग्रेसीके नाते नहीं, बल्कि एक मनुष्य होनेके नाते अनशन किया था। मैं एक विशेष धर्मका पालन करता हूँ, और उसीके सिद्धान्तानुसार अनशन करता हूँ। हिन्दू-मुस्लिम तनातनीके सिलसिलेमें मैंने जब अनशन किया था उसके बारेमें हकीम अजमल खाँसे भी मैंने यही बात कही थी। आज भी मेरे लिए यह राजनैतिक नहीं, बल्कि केवल धार्मिक प्रश्न है।"

२२ अगस्त, १९३२

[महादेव देसाईके प्रश्नका उत्तर देते हुए गांधीजी बोले]: ". . . दलित वर्ग आज घोर संकटमें हैं और दुःखकी बात तो यह है कि किसीको इस खतरेका कोई भान नहीं है। सम्भव है कि जब मैं रिहा होऊँ, उस समयतक स्थिति ऐसी बिगड़ चुकी हो कि सुधारे न सुधारी जा सके। शायद अनेक 'अछूत' मुसलमान बनाये जा चुके होंगे, अथवा सम्भव है सवर्ण हिन्दुओंने उन्हें कुचलकर उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करा ली होगी। ब्रिटिश सरकारके निर्णयका यह हिस्सा मुझे इतना खतरनाक मालूम होता है कि यदि बाकी सभी हिस्से स्वीकार्य होते तो भी एक इसीको काटनेके लिए ऐसा कदम उठाना पड़ता। . . ."

[अंग्रेजीसे]

द डायरी ऑफ महादेव देसाई, भाग – १, पृष्ठ २९१–३०४

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और तत्सम्बन्धी कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके सम्बन्धित कागजात रखे हैं।

'एडवांस' : कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'भावनगर समाचार' : भावनगरसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' : नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बम्बई सरकारका गृह-विभाग।

'(द) डायरी ऑफ महादेव देसाई', खण्ड – १ (अंग्रेजी) : वालजी गोविन्दजी देसाई द्वारा गुजरातीसे अनुवादित और सम्पादित, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५३।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : सम्पादक : काका कालेलकर, प्रकाशक : मार्तण्ड उपाध्याय, १९५३।

'बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती) : सम्पादक : काकासाहब कालेलकर, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) : सम्पादिका : मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने', भाग १ (गुजराती) : सम्पादक : नारणदास गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६४।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष' : हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम मुद्रणालय, प्रयाग, १९५७।

'महादेवभाईनी डायरी', खण्ड – १ (गुजराती) : सम्पादक : नरहरि द्वा० परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : सम्पादक : एलिस एम० बार्न्स, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५६।

'सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास' (गुजराती) : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५०।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ जून, १९३२ से ३१ अगस्त, १९३२ तक)

१ जून : यरवडा सेंट्रल जेलमें गांधीजीका कारावास जारी रहा। गांधीजीने मीराबहनको लिखा कि यदि सरकार तुम्हें मुझसे मिलनेकी अनुमति नहीं देगी तो मैं मुलाकातें बन्द कर दूंगा।

पुलिसने वर्धाके सत्याग्रह आश्रमपर कब्जा किया।

३ जून : लॉर्ड लोथियनकी अध्यक्षतामें मताधिकार समितिकी रिपोर्टका प्रकाशन हुआ।

४ जून : गांधीजीको सरकारकी ओरसे पत्र मिला, जिसमें मीराबहनको गांधीजीसे मिलनेकी अनुमति देना अस्वीकार कर दिया गया था। गांधीजीने मुलाकातियोंसे न मिलनेका निश्चय किया।

६ जून : आश्रमवासियोंके लिए "'तितिक्षा' और 'यज्ञ'के विषयमें" शीर्षक लेख लिखा।

९ जून : गांधीजीने कर्नल डॉयलको पत्र लिखा कि जबतक सरकार मीराबहनके विषयमें अपने निर्णयपर पुनर्विचार नहीं करती तबतक मैं किसी भी मुलाकातीसे भेंट नहीं करूँगा।

१० जून : सह-बन्दियों जेठालाल गांधी तथा बिन्दु माधव गुर्लेसे भेंट की।

१४ जून : कर्नल ई० ई० डॉयल भेंट करने आये।

१५ जून : गोरखपुर जेलमें बन्दी देवदासकी बीमारीके सम्बन्धमें तार प्राप्त हुआ।

१८ जून : तार द्वारा सर मैलकम हेलीसे अनुरोध किया कि देवदासको यरवडा या देहरादून जेलमें स्थानान्तरित किया जाये और मीराबहनने अपने बारेमें लगाये गये तथाकथित आरोपोंका खण्डन करते हुए सरकारको जो पत्र लिखा था उसे अग्रेषित किया।

१९ जून : "प्रार्थना" शीर्षक लेख लिखा।

२४ जून : कर्नल ई० ई० डॉयल मिलने आये।

२५ जून : "अहिंसाका पालन कैसे किया जाये" शीर्षक लेख लिखा।

३ जुलाई : "सत्यका पालन कैसे करें" शीर्षक लेख लिखा।

५ जुलाई : वरदाचारीकी मृत्युपर च० राजगोपालाचारी तथा उनकी पुत्रीको संवेदनाके तार भेजे।

६ जुलाई : कर्नल ई० ई० डॉयल मिलने आये।

८ जुलाई : तेजबहादुर सप्रू तथा मुकुन्दराव जयकरने [गोलमेज सम्मेलनकी] परामर्श समितिसे त्यागपत्र दे दिया।

१० जुलाई : "शिक्षा" शीर्षक लेख लिखा।

१३ जुलाई : कर्नल ई० ई० डॉयलको पत्र लिखा, जिसमें अपनी डाकमें होनेवाले विलम्बके प्रति विरोध प्रकट किया और इस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण माँगा।

१७ जुलाई : "व्यक्तिगत प्रार्थना" शीर्षक लेख लिखा।

२१ जुलाई : गांधीजीको देवदासके दुबारा अस्वस्थ होनेका तार प्राप्त हुआ; सह-बन्दियों छगनलाल जोशी, शंकर तथा मुकुन्दसे भेंट की।

२४ जुलाई : "देखरेखकी अनावश्यकता" शीर्षक लेख लिखा। गुजराती, हिन्दी और उर्दूमें अपने पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें कर्नल ई० ई० डॉयलको पत्र लिखा।

३१ जुलाई : "गीता कण्ठस्थ करें" शीर्षक लेख लिखा।

३ अगस्त : रंगूनमें डा० प्राणजीवनदास मेहताका देहावसान।

४ अगस्त : डा० प्राणजीवनदास मेहताके लड़के छगनलाल को संवेदनाका तार भेजा।

५ अगस्त : सह-बन्दियों जमनादास, ब्रेलवी, रामदास तथा हर-गोविन्दसे भेंट की।

६ अगस्त : भूख-हड़ताल करनेवाले दो सह-बन्दियोंसे भेंट की और उन्हें अनशन छोड़ देनेके लिए राजी किया।

७ अगस्त : एक लेखमें डा० प्राणजीवनदास मेहताको श्रद्धांजलि अर्पित की।

१४ अगस्त : "वाचन और विचार – १" शीर्षक लेख लिखा।

१७ अगस्त : मैक्डोनॉल्डने साम्प्रदायिक निर्णय (कम्यूनल अवार्ड)की घोषणा की।

१८ अगस्त : गांधीजीने सर रैमजे मैक्डोनॉल्डको लिखे पत्रमें घोषणा की कि यदि सरकारने 'कम्यूनल अवार्ड' वापस नहीं लिया तो मैं २० सितम्बरसे आमरण अनशन करूँगा।

१९ अगस्त : सह-बन्दियों गंगाधरराव, शंकर तथा देवीदास घेवरियाके भतीजेसे मिले।

२१ अगस्त : "वाचन और विचार – २" शीर्षक लेख लिखा।

२६ अगस्त : कर्नल ई० ई० डॉयल गांधीजीसे मिलने आये तथा उनसे अनुरोध किया कि वे अनशन करनेके अपने निश्चयपर पुर्नविचार करें।

२८ अगस्त : गांधीजीने "सविचार कार्य और विचाररहित कार्य" शीर्षक लेख लिखा।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ऋ

ए

ऐ

ओ

क

ख

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

ध

न

भ

ल

व

श

स

ह